MAHN103CCT

हिंदी साहित्य का इतिहास

एम.ए.

(प्रथम सेमेस्टर के लिए)

पेपर-3

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

हैदराबाद-32, तेलंगाना, भारत

© Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad
Course : Hindi Sahitya ka Itihas
ISBN: 978-93-95203-30-2
First Edition: December, 2022

Publisher	:	Registrar, Maulana Azad National Urdu University
Edition	:	2022
Copies	:	1000
Copy Editing	:	Dr. Wajada Isharat, MANUU, Hyderabad Dr. L. Anil, DDE, MANUU, Hyderabad
Cover Designing	:	Dr. Mohd. Akmal Khan, DDE, MANUU, Hyderabad
Printing	:	Print Times & Business Enterprises, Hyderabad

Hindi Sahitya ka Itihas

For

M.A. Hindi

1st Semester

On behalf of the Registrar, Published by:

Directorate of Distance Education

Maulana Azad National Urdu University
Gachibowli, Hyderabad-500032 (TS), Bharat
*Director:*dir.dde@manuu.edu.in *Publication:* ddepublication@manuu.edu.in
Phone number: 040-23008314 Website: manuu.edu.in

© All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronically or mechanically, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher (registrar@manuu.edu.in)

संपादक

डॉ. आफताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Editor

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar
DDE, MANUU

संपादक-मंडल
(Editorial Board)

प्रो. ऋषभदेव शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद
परामर्शी (हिंदी), दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Prof. Rishabhadeo Sharma
Former Head, Higher Education and Research Centre, Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Hyderabad
Consultant (Hindi), DDE, MANUU

प्रो. श्याम राव राठोड़
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
अंग्रेज़ी और विदेशी भाषा वि.वि.,हैदराबाद

Prof. Shyamrao Rathod
Head, Department of Hindi
EFL University, Hyderabad

डॉ. गंगाधर वानोडे
क्षेत्रीय निदेशक
केंद्रीय हिंदी संस्थान, सिकंदराबाद, हैदराबाद

Dr. Gangadhar Wanode
Regional Director
Central Institute of Hindi
Hyderabad Centre, Secunderabad, Hyd

डॉ. आफताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar, DDE, MANUU

डॉ. वाजदा इशरत
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Wajada Ishrat
Guest Faculty/Assistant Professor (Cont.)
DDE, MANUU

डॉ. एल. अनिल
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. L. Anil
Guest Faculty/Assistant Professor (Cont.)
DDE, MANUU

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. आफ़ताब आलम बेग

सहायक कुल सचिव, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

लेखक	**इकाई संख्या**
• **डॉ. भीम सिंह,** असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद	1,3,5
• **डॉ. ज़ीनित सबा,** असिस्टेंट प्रोफेसर, अस्का साइंस कॉलेज, अस्का, गंजाम, ओड़िसा	2,4,6
• **डॉ. नीरज** , असिस्टेंट प्रोफेसर, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	7,8,9,10
• **डॉ. प्रणव कुमार ठाकुर,** अतिथि प्राध्यापक, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	11,13,14
• **डॉ. प्रियंका,** स्वंत्रत लेखिका	12
• **डॉ. डब्लू. मायादेवी,** असोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद	15
• **डॉ. सुरेश,** अतिथि प्राध्यापक, रेलवे डिग्री कॉलेज, तारनाका, हैदराबाद.	16

विषयानुक्रमणिका

संदेश	:	कुलपति	7
संदेश	:	निदेशक	9
भूमिका	:	पाठ्यक्रम–समन्वयक	10

खंड इकाई /		विषय	पृष्ठ संख्या
खंड 1	:	**हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा**	
इकाई 1	:	साहित्येतिहास की संकल्पना और हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा	13
इकाई 2	:	हिंदी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन, नामकरण और सीमांकन	27
खंड 2	:	**आदिकाल**	
इकाई 3	:	आदिकाल की परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ	43
इकाई 4	:	आदिकालीन साहित्य : सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य	56
इकाई 5	:	रासो साहित्यरासो , साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ और आदिकालीन गद्य साहित्य	73
इकाई 6	:	आदिकाल के प्रमुख साहित्यकार	84
खंड 3	:	**मध्यकाल (भक्तिकाल और रीतिकाल)**	
इकाई 7	:	भक्ति आंदोलन के उदय की सामाजिक – सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	97
इकाई 8	:	निर्गुण भक्ति साहित्य : संत साहित्य और सूफी साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ	116
इकाई 9	:	सगुण भक्ति साहित्य : रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा की काव्यगत विशेषताएँ	133
इकाई 10	:	भक्तिकाल के प्रमुख साहित्यकार	151

इकाई 11	:	रीतिकाल: परिस्थितियाँ, उत्तर-मध्यकालीन काव्य-बोध और प्रवृत्तियाँ	173
इकाई 12	:	रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराएँ	201
खंड 4	**:**	**आधुनिक काल**	
इकाई 13	:	आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की समस्याएँ और स्वतंत्रता-पूर्व आधुनिक हिन्दी साहित्य	227
इकाई 14	:	स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक हिंदी साहित्य	250
इकाई 15	:	समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्श- 1	269
इकाई 16	:	समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्श- 2	296
		परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना	**325**

प्रूफ रीडर:

प्रथम : डॉ. वाजदा इशरत, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर(संविदा) दू. शि. नि., मानू

द्वितीय : डॉ. एल. अनिल, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा), दू. शि. नि., मानू

अंतिम : डॉ. आफताब आलम बेग, सहायक कुल सचिव, दू. शि. नि., मानू

संदेश

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटीकी स्थापना 1998 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई थी। यह NAAC मान्यत प्राप्त एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है। विश्वविद्यालय का अधिदेश है: (1) उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार और विकास (2) उर्दू माध्यम से व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा (3) पारंपरिक और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना, और (4) महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देना। यही वे बिंदु हैं जो इस केंद्रीय विश्वविद्यालय को अन्य सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों से अलग करते हैं और इसे एक अनूठी विशेषता प्रदान करते हैं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा के प्रावधान पर जोर दिया गया है।

उर्दू माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का एकमात्र उद्देश्य उर्दू भाषी समुदाय के लिए समकालीन ज्ञान और विषयों की पहुंच को सुविधाजनक बनाना है। लंबे समय से उर्दू में पाठ्यक्रम सामग्री का अभाव रहा है। इस लिए उर्दू भाषा में पुस्तकों की अनुपलब्धता चिंता का विषय रहा है। नई शिक्षा नीति 2020 के दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू विश्वविद्यालय मातृभाषा / घरेलू भाषा में पाठ्यक्रम सामग्री प्रदान करने की राष्ट्रीय प्रक्रिया का हिस्सा बनने का सौभाग्य मानता है। इसके अतिरिक्त उर्दू में पठन सामग्री की अनुपलब्धता के कारण उभरते क्षेत्रों में अद्यतन ज्ञान और जानकारी प्राप्त करने या मौजूदा क्षेत्रों में नए ज्ञान प्राप्त करने में उर्दू भाषी समुदाय सुविधाहीन रहा है। ज्ञान के उपरोक्त कार्य-क्षेत्र से संबंधित सामग्री की अनुपलब्धता ने ज्ञान प्राप्त करने के प्रति उदासीनता का वातावरण बनाया है जो उर्दू भाषी समुदाय की बौद्धिक क्षमताओं को मुख्य रूप से प्रभावित कर सकता है। ये वह चुनौतियां है जिनका सामना उर्दू विश्वविद्यालय कर रहा है। स्व-अध्ययन सामग्री का परिदृश्य भी बहुत अलग नहीं है। प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ में स्कूल/कॉलेज स्तर पर भी उर्दू में पाठ्य पुस्तकों की अनुपलब्धता पर चर्चा होती है। चूंकि उर्दू विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम केवल उर्दू है और यह विश्वविद्यालय लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों के पाठ्यक्रम प्रदान करता है, इसलिए इन सभी विषयों की पुस्तकों को उर्दू में तैयार करना विश्वविद्यालय की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय अपनेदूरस्थ शिक्षा के छात्रों को स्व-अध्ययन सामग्री अथवा सेल्फ लर्निंग मैटेरियल (SLM) के रूप में पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराता है। वहीं उर्दू माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए भी यह सामग्री उपलब्ध है। अधिकाधिक लोग इससे लाभान्वित हो सकें, इसके लिए उर्दू में इलेक्ट्रॉनिक पाठ्य सामग्री अथवा eSLM विश्वविद्यालय की वेबसाइट से मुफ्त डाउनलोड के लिए उपलब्ध है।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि संबंधित शिक्षकों की कड़ी मेहनत और लेखकों के पूर्ण सहयोग के कारण पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य उच्च-स्तर पर प्रारंभ हो चुका है। दूरस्थ शिक्षा के छात्रों

की सुविधा के लिए, स्व-अध्ययन सामग्री की तैयारी और प्रकाशन की प्रक्रिया विश्वविद्यालय के लिए सर्वोपरि है। मुझे विश्वास है कि हम अपनी स्व-शिक्षण सामग्री के माध्यम से एक बड़े उर्दू भाषी समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होंगे और इस विश्वविद्यालय के अधिदेश को पूरा कर सकेंगे।

एक ऐसे समय जब हमारा विश्वविद्यालय अपनी स्थापना की 25वीं वर्षगांठ मना रहा है, मुझे इस बात का उल्लेख करते हुए हर्ष हो रहा है कि विश्वविद्यालय का दूरस्थ शिक्षा निदेशालय कम समय में स्व-अध्ययन सामग्री तथा पुस्तकें तैयार कर विद्यार्थियों को पहुंचा रहा है। देश के कोने कोने में छात्र विभिन्न दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों से लाभान्वित हो रहे हैं। यद्यपि पिछले दो वर्षों के दौरान कोविड-19 की विनाशकारी स्थिति के कारण प्रशासनिक मामले और संचारचलन भी काफी कठिन रहे हैं लेकिन विश्वविद्यालय द्वारा दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए सर्वोत्तम प्रयास किया जा रहा है। मैं विश्वविद्यालय से जुड़े सभी विद्यार्थियों को इस विश्वविद्यालय का अंग बनने के लिए ह्रदय से बधाई देता हूं और यह विश्वास दिलाता हूँ कि मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय का शैक्षिक मिशन सदैव उनके के लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। शुभकामनाओं सहित!

प्रो. सैयद ऐनुल हसन

कुलपति

संदेश

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को पूरी दुनिया में अत्यधिक कारगर और लाभप्रद शिक्षा प्रणाली की हैसियत से स्वीकार किया जा चुका है और इस शिक्षा प्रणाली से बड़ी संख्या में लोग लाभान्वित हो रहे हैं। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी ने भी अपनी स्थापना के आरंभिक दिनों से ही उर्दू तबके की शिक्षा की स्थिति को महसूस करते हुए इस शिक्षा प्रणाली को अपनाया है। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी का बाकायदा प्रारम्भ 1998 में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और ट्रांसलेशन डिविजन से हुआ था और इस के बाद 2004 में बाकायदा पारंपरिक शिक्षा का आगाज़ हुआ। पारंपरिक शिक्षा के विभिन्न विभाग स्थापित किए गए। नए स्थापित विभागों और ट्रांसलेशन डिविजन में नियुक्तियाँ हुईं। उस वक़्त के शिक्षा प्रेमियों के भरपूर सहयोग से स्व-अधिगम सामग्री को अनुवाद व लेखन के द्वारा तैयार कराया गया।
पिछले कई वर्षों से यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) इस बात पर ज़ोर देता रहा है किदूरस्थ शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था को पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था से लगभग जोड़कर दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के मयार को बुलंद किया जाय। चूंकि मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी दूरस्थ शिक्षा और पारंपरिक शिक्षा का विश्वविद्यालय है, अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) के दिशा निर्देशों के मुताबिक दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम को जोड़कर और गुणवततापूर्ण करके स्व-अधिगम सामग्री को पुनः क्रमवार यू.जी. और पी.जी. के विद्यार्थियों के लिए क्रमशः 6 खंड-24 इकाइयों और 4 खंड – 16 इकाइयों पर आधारित नए तर्ज़ की रूपरेखा पर तैयार कराया जा रहा है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय यू.जी., पी.जी., बी.एड., डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कोर्सेज पर आधारित कुल 15 पाठ्यक्रम चला रहा है। बहुत जल्द ही तकनीकी हुनर पर आधारित पाठ्यक्रम शुरू किए जाएंगे। अधिगमकर्ताओं की सरलता के लिए 9 क्षेत्रीय केंद्र (बंगलुरु, भोपाल, दरभंगा, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, पटना, रांची और श्रीनगर) और 5 उपक्षेत्रीय केंद्र (हैदराबाद, लखनऊ, जम्मू, नूह और अमरावती) का एक बहुत बड़ा नेटवर्क तैयार किया है। इन केन्द्रों के अंतर्गत एक साथ 155 अधिगम सहायक केंद्र (लर्निंग सपोर्ट सेंटर) काम कर रहे हैं। जो अधिगमकर्ताओं को शैक्षिक और प्रशासनिक सहयोग उपलब्ध कराते हैं। दूरस्थ शिक्षा निदेशालय (डी. डी. ई.) ने अपनी शैक्षिक और व्यवस्था से संबन्धित कार्यों में आई.सी.टी. का इस्तेमाल शुरू कर दिया है। इसके अलावा अपने सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश सिर्फ ऑनलाइन तरीके से ही दे रहा है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की वेबसाइट पर अधिगमकर्ता को स्व-अधिगम सामग्री की सॉफ्ट कॉपियाँ भी उपलब्ध कराई जा रही हैं। इसके अतिरिक्त शीघ्र ही ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग का लिंक भी वैबसाइट पर उपलब्ध कराया जाएगा। इसके साथ-साथ अध्ययन व अधिगम के बीच एसएमएस (SMS) की सुविधा उपलब्ध की जा रही है। जिसके द्वारा अधिगमकर्ताओं को पाठ्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं जैसे- कोर्स के रजिस्ट्रेशन, दत्तकार्य, काउंसलिंग, परीक्षा के बारे में सूचित किया जाता है।

आशा है कि देश में शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई उर्दू आबादी को मुख्यधारा में शामिल करने में दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की भी मुख्य भूमिका होगी।

प्रो. मो. रज़ाउल्लाह ख़ान
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

भूमिका

'हिंदी साहित्य का इतिहास' शीर्षक यह पुस्तक मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद, के एम्.ए. (हिंदी) प्रथम सत्र (तृतीय प्रश्न पत्र) के दूरस्थ माध्यम के छात्रों के लिए तैयार की गई है। इसकी संपूर्ण योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू जी सी) के निर्देशों के अनुसार नियमित माध्यम के पाठ्यक्रम के अनुरूप रखी गई है।

किसी भी भाषा और उसके साहित्य का इतिहास उसके स्वरूप और विकास को समझने की कुंजी होता है। हिंदी साहित्य के अध्ययन के लिए सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि इस भाषा और साहित्य का जन्म कब और किन परिस्थितियों में हुआ। साथ ही यह भी जानना होगा कि इसका विकास कितने चरणों में हुआ। इस विकास यात्रा के मोड़ों और पड़ावों के रहस्य को समझने के लिए यह जानना भी जरूरी है कि बदलती सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों ने इस भाषा-समाज की चित्तवृत्ति को किस प्रकार बदला, क्योंकि जनता की चित्तवृत्ति के बदलाव के अनुरूप ही साहित्य की प्रवृत्तियाँ बदलती हैं। इन प्रवृत्तियों के आधार पर ही साहित्य के इतिहास में विभिन्न कालों अथवा युगों का निर्धारण किया जाता है। इसके साथ ही साहित्य का इतिहास परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के अलावा विभिन्न विधाओं के विकास में विभिन्न रचनाकारों के योगदान, उनके व्यक्तित्व, कृतित्व और मूल्यांकन को भी दर्ज करता है। प्रस्तुत पुस्तक में इन सब बातों का ध्यान रखा गया है तथा सारी सामग्री को कुल 16 इकाइयों के रूप में छात्रों की सुविधा के लिए सरल, सहज और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

इस समस्त पाठ सामग्री को तैयार करने में हमें जिन ग्रंथों और लेखकों से सहायता मिली है, उन सबके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

डॉ. आफताब आलम बेग

पाठ्यक्रम समन्वयक

हिंदी साहित्य का इतिहास

इकाई-1 साहित्येतिहास की संकल्पना और हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा

रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मूल पाठ : साहित्येतिहास की संकल्पना और हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा
1.3.1 साहित्येतिहास: अर्थ और परिभाषा
1.3.2 साहित्येतिहास की आवश्यकता क्यों ?
1.3.3 साहित्येतिहास-लेखन की समस्याएँ
1.3.4 हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की पद्धतियाँ
1.3.5 हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा
1.4 पाठ सार
1.5 पाठ की उपलब्धियाँ
1.6 शब्द संपदा
1.7 परीक्षार्थ प्रश्न
1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

मानव की विकास-यात्रामें भाषा की विशिष्ट भूमिका रही है। विभिन्न भाषाओं का अपना विविध साहित्य भी होता है । उस साहित्य को इतिहास के अंतर्गत देखने की प्रणाली का विकास आधुनिक चिंतन में प्राथमिक विमर्श के रूप में उभरा है। इसी क्रम में विविध भाषाओं के साहित्येतिहास-लेखन की परंपरा का उदय और विकास हुआ। आधुनिक काल में ही साहित्य के अध्ययन-अध्यापन को एक स्वंतत्र अनुशासन के रूप में स्वीकार किया गया है। साहित्येतिहासकारों को इसकार्य को करने में अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। पहली समस्या उनके सामने सामग्री के संकलन की आयी, दूसरी- उसकी प्रमाणिकता को कैसे जाँचा जाये, तीसरी- किसी भी भाषा और उसके साहित्य का काल-विभाजन और नामकरण सटीक कैसे हो ? इन सारी चुनौतियों से साहित्येतिहासकार को जूझना होता है।हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों का प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू होता है। इन साहित्य के इतिहास-ग्रंथों पर औपनिवेशिक दृष्टि का प्रभाव देखा जा सकता है, साथ ही यूरोपीय इतिहास-लेखन की दृष्टि से भारतीय भाषाओं के साहित्येतिहास लिखे गए हैं। बीसवीं शताब्दी के शुरूआत में भारतीय भाषाओं के पंडितों और अध्येताओं ने साहित्येतिहास ग्रंथ लिखने की परंपरा का विधिवत प्रयास किया। हिंदी साहित्य का इतिहास कार्य भी इसका अपवाद नहीं है। समकालीन-परिदृश्य के

बदल जाने से समेकित भारतीय साहित्य के इतिहास-लेखन की संभावनाओं ने जन्म लिया है। आज हिंदी का पाट व्यापक और विस्तृत हुआ है। हिंदी साहित्य भी हिंदी प्रदेशों से इतर वैश्विक स्तर पर लिखा जा रहा है तो स्वाभाविक है कि परंपरागत हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की पद्धतियों को समझते हुए नये दौर में, नये और समेकित हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा जाए।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- साहित्य, इतिहास और साहित्येतिहास का अर्थ और महत्त्व को समझ सकेंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास-लेखन में आने वाली समस्याओं को समझ सकेंगे।
- हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन में विविध प्रवृत्तियों के व्यवहार से परिचित हो सकेंगे।
- उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन के प्रारंभिक प्रयासों को समझ सकेंगे।
- उन्नीसवीं शताब्दी में हुए हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन के प्रयासों को समझ सकेंगे।
- बीसवीं शताब्दी में हुए हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन के प्रयासों को समझ सकेंगे।

1.3 मूल पाठ : साहित्येतिहास की संकल्पना और हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा

1.3.1 साहित्येतिहास : अर्थ और परिभाषा

साहित्य का अर्थ-

भारतीय काव्यशास्त्री भामह ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि- 'शब्दार्थौसहितौकाव्यम'- 'काव्यालंकार'। परंपरागत भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य शब्द सम्पूर्ण साहित्य की विधाओं का वाचक था। लेकिन यह परिभाषा उपयुक्त नहीं है। हमारे लिए सब से पहले यह जानना अनिवार्य है कि साहित्य से क्या तात्पर्य है ? किस रचना को साहित्य कहा जाए ? यह तय करने के लिए प्राय: दो तत्त्वों पर बल दिया जाता है। एक तो रचना में 'स-हित' यानी सभी के हित का भाव होना चाहिए तथा दूसरे उसकी अभिव्यक्ति में सौन्दर्य, कलात्मकता तथा रमणीयता होनी चाहिए। यदि केवल 'स-हित' के भाव को आधार मानें तो विज्ञान की पुस्तकों को भी साहित्य मानना पड़ेगा तथा यदि केवल 'रमणीयता' को आधार बनाएँ तो कई सतही तथा हल्का मनोरंजन करने वाली कृतियों को भी साहित्य की श्रेणी में रखना पड़ेगा। यही कारण है कि साहित्य से तात्पर्य केवल उन रचनाओं से होता है जिनमें ये दोनों गुण विद्यमान हैं। इन गुणों का स्तर, अनुपात तथा महत्त्व समय तथा रचनाकार के परिप्रेक्ष्य में बदल सकता है तथा बदलता भी है। यही कारण है कि साहित्य की कोई निश्चित या वस्तुपरक परिभाषा नहीं हो सकती, केवल उस के लक्षणों की पहचान ही हम कर सकते हैं।

बोध प्रश्न-

- साहित्य से क्या तात्पर्य है ?

‘इतिहास’ का अर्थ

‘इतिहास’ का शाब्दि कअर्थ है- ऐसा ही हुआ। इसमें अतीत के तथ्यों व घटनाओं का काल क्रमानुसार समावेश किया जाता है। इतिहास की प्रासंगिकता उस की निरन्तरता में है क्योंकि यह अतीत की जानकारी देते हुए भविष्य पर प्रकाश डालता है। इतिहास तथ्य औरदृष्टिकोण, अनुसंधानऔरव्याख्याकेअन्योन्याश्रयकानामहै।दूसरेशब्दोंमें, यह अतीत का वर्तमान से संवाद है। इसकी चिंता का केंद्र केवल अतीत ही नहीं, वर्तमान भी है।

बोध प्रश्न-

- इतिहास की प्रासंगिता किस में हैं ?

साहित्येतिहास का अर्थ

‘साहित्येतिहास’ शब्द का अर्थ होता है साहित्य की विकासमान परंपरा, उसके जन्म से लेकर अद्यतन स्थिति तक का क्रमबद्ध अध्ययन। साहित्य के इतिहास में हम मानव-भावना के विकास़ क्रम की कहानी पाते हैं और उन भावनाओं को व्यक्त करने वाली भाषिक पद्धति के विन्यास से भी परिचित होते हैं। साहित्य का इतिहास न तो कोरा कवि वृत्त संग्रह है और न मात्र सभ्यता के विकास क्रम का आलेख। इसका उद्देश्य स्रष्टा और परिवेश के आंतरिक संबंधों का उद्घाटन है। यह भावात्मक उत्कर्ष के साथ अभिव्यक्ति सौष्ठव का भी क्रमिक-विकास का आख्यान है।

साहित्येतिहास एक संश्लिष्ट विधा है, जिसके लिए लेखक में ऐतिहासिक-बोध, सामाजिक चेतना, अनुसंधान की क्षमता, कल्पनाशीलता, भाषाशास्त्र और समीक्षा पद्धति सबकी जानकारी होना आवश्यक है।

बोध प्रश्न-

- साहित्येतिहास लेखक को किन चीजों की जानकारी होना अवशयक है ?

1.3.2 साहित्येतिहास की आवश्यकता क्यों?

साहित्यकार की रचना पर तत्कालीन परिस्थितियों और उसके अपने व्यक्तित्व का मिला-जुला प्रभाव पड़ता है। अत: साहित्य को पूरी तरह से समझने के लिए युगीन-परिस्थितियों, समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों व साहित्यकारों की परंपराओं को समझना आवश्यक है।

1.3.3 साहित्येतिहास-लेखन की समस्याएँ

1. इतिहास लेखन के लिए सबसे पहली आवश्यकता सामग्री-संकलन की है। अपूर्ण अथवा त्रुटिपूर्ण सामग्री के आधार पर निर्दोष इतिहास का लेखन संभव नहीं है।

2. इतिहास-लेखन के लिए आवश्यक सामग्रियाँ हैं-प्रमुख और गौण। साहित्यकारों की कृतियों के सुसंपादित संस्करण, कालक्रमानुसारी, अकारादि ग्रंथ सूची, पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें, लोक-साहित्य की विवरणी तथा राजनीतिक-सामाजिक इतिहास आदि की आवश्यकता होती है।
3. परंपरा के वैज्ञानिक अनुशीलन के लिए काल-विभाजन अनिवार्य है। परकाल-विभाजन यथा साध्य साहित्यिक आधार पर किया जाना चाहिए; हालाँकि यह साहित्यिक आधार परिवेशगत परिस्थितियों से पूर्णतया असंपृक्त नहीं हो सकता।
4. काल-विभाजन के समय भावधारा के परिवर्तन के साथ शैली, शिल्प के विन्यास पर भी ध्यान देना आवश्यक है।
5. साहित्येतिहास और आलोचाना गहन संश्लिष्ट विधाएं हैं। साहित्येतिहास-लेखन की सफलता सामग्री की समृद्धि के साथ मूल्यांकन की नवीनता पर भी निर्भर है।
6. यह मूल्यांकन का प्रतिमान इतिहासकार को अपने युग से प्राप्त होता है। अत एव उस के लिए केवल अतीत का विशद् ज्ञान ही नहीं; वर्तमान का जीवंत-बोध भी उतना ही जरूरी है।

1.3.4 **हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की पद्धतियाँ**

वर्णमाला-पद्धति

इस पद्धति को 'वर्णानुक्रमी-पद्धति' जाता है। डॉ. अशोक तिवारी के अनुसार- 'इसमें लेखकों, कवियों का परिचयात्मक विवेचन उनके नामों के वर्णानुक्रम के अनुसार किया जाता है। इस पद्धति में कबीर और केशव का विवेचन एक साथ इसलिए करना पड़ेगा, क्योंकि दोनों के नाम 'क' अक्षर से प्रारंभ होते हैं, भले ही वे कालक्रम की दृष्टि से भक्तिकाल एवं रीतिकाल के कवियों में अलग-अलग कालों से संबंधित हों। गार्सां-द-तासी एवं शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास ग्रंथों में वर्णानुक्रम-पद्धति का ही प्रयोग किया है'।

सीमाएँ- इस पद्धति से लिखे गए इतिहास ग्रंथों को 'साहित्यकार कोश' तो कहा जा सकता है लेकिन साहित्येतिहास-ग्रंथ नहीं। इस पद्धति से लिखे गए इतिहास-ग्रंथ दोषपूर्ण, अनुपयोगी सिध्द हुए हैं। इस पद्धति से लिखे गए दोनों इतिहास-ग्रंथों का प्रारंभिक और ऐतिहासिक महत्त्व है।

कालानुक्रमी-पद्धति

डॉ. अशोक तिवारी के अनुसार- 'इस पद्धति में कवियों एवं लेखकों का विवरण ऐतिहासिक काल क्रमानुसार तिथि क्रम से होता है। प्रायः कृतिकार की जन्म तिथि को आधार मानकर ही इतिहास ग्रंथ में उनका क्रम निर्धारण किया जाता है। जार्ज ग्रियर्सन एवं मिश्रबंधुओं ने इसी पद्धति पर अपने इतिहास-ग्रंथ लिखे हैं'।

सीमाएँ- साहित्येतिहास केवल साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व का लेखा-जोखा मात्र नहीं है अपितु उसमें विभिन्न काल खण्डों की युगीन-परिस्थितियों के सन्दर्भ और

साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण भी होता है। अतः इस पद्धति से साहित्येतिहास, कवियों का जीवन-वृत्त या कवि-वृत्त मात्र रह जाएगा।

वैज्ञानिक-पद्धति

‘वैज्ञानिक पद्धति में इतिहास-लेखक पूर्णतः निरपेक्ष एवं तटस्थ रहकर तथ्य संकलन करता है और उन्हें क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत कर देता है। इसमें क्रमबद्धता एवं तर्क पुष्टता अनिवार्य रूप में होती है’।

सीमाएँ- साहित्येतिहास केवल तथ्य संकलन मात्र नहीं हैं अपितु व्याख्या एवं विश्लेषण भी उसकी अनिवार्य रचना प्रक्रिया का हिस्सा है।

विधेयवादी-पद्धति

इस पद्धति के प्रतिपादक फ्रेंच विद्वान तेन माने जाते हैं। इस पद्धति के आधार पर साहित्य के इतिहास-लेखन को नई गति मिली। इसपद्धति में तीन बीज सूत्र हैं-

1. जाति या प्रजाति।
2. वातावरण या परिवेश।
3. क्षण विशेष या युग।

डॉ. अशोक तिवारी के अनुसार- ‘साहित्येतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परंपराओं, तद्युगीन वातावरण एवं परिस्थितियों का वर्णन, विश्लेषण अपेक्षित होता है’।

नलिन विलोचन शर्मा के अनुसार-हिंदी साहित्येतिहास की परंपरा में सर्वप्रथम इस पद्धति का व्यवहार ग्रियर्सन ने अपने साहित्येतिहास ग्रंथ में किया है। हिंदी में सर्व प्रथम इस पद्धति के आधार पर साहित्येतिहास लिखने का कार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। उन्होंने कवियों/साहित्यकारों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण, तत्कालीन परिस्थितियों एवं वातावरण के परिप्रेक्ष्य में किया है। उन्होंने इसी आधार पर साहित्य के इतिहास को परिभाषित किया है। जो इस प्रकार है-‘जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ‘साहित्य का इतिहास’ कहलाता है।’

सीमाएँ-_इस पद्धति का दोष यह है कि इस पद्धति में तात्कालिकता और महान परंपराओं पर तो बल दिया जाता है लेकिन साहित्य की विकासमान, प्रवाहमान विभिन्न काव्य धाराएँ इसमें ओझल हो जाती हैं।

बोध प्रश्न –

- विधेयवादी पद्धति के बिज सूत्र क्या है ?

अन्य-

हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन को लेकर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशक में दो और प्रयास देखने को मिलते हैं। पहला प्रयास 'हिंदी साहित्य का मौखिक इतिहास' नाम से है, जिसे नीलाभ ने मूर्त रूप दिया है। इस इतिहास-ग्रंथ में वाचिकता को आधार बना कर हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन के नवीन ढांचे को जन्म दिया गया है। दूसरा प्रयास, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा 'हिंदी साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन' परियोजना के तहत किया गया है। इसमें विषय विशेषज्ञोंद्वारा, नवीन स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में, साहित्येतिहास-लेखन की विविध प्रवृत्तियों के समाहार के आधार पर बल दिया गया है। अस्मिता मूलक साहित्य के आगमन ने साहित्य की समाजशास्त्रीय पद्धति और अंतर विद्यावर्ती अनुशासन पद्धति को महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

1.3.5 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा

'साहित्येतिहास' शब्द का अर्थ होता है साहित्य की विकास मान परंपरा, उसके जन्म से लेकर अद्यतन स्थिति तक का क्रम बद्ध अध्ययन। साहित्य के इतिहास में हम मानव-भावना के विकास़ क्रम की कहानी पाते हैं और उन भावनाओं को व्यक्त करने वाली भाषिक पद्धति के विन्यास से भी परिचित होते हैं। साहित्य का इतिहास न तो कोरा कविवृत्त संग्रह है और न मात्र सभ्यता के विकास क्रम का आलेख। इसका उद्देश्य स्रष्टा और परिवेश के आंतरिक संबंधों का उद्घाटन है। यह भावात्मक उत्कर्ष के साथ अभिव्यक्ति सौष्ठव का भीक्रमिक-विकासकाआख्यानहै। साहित्येतिहास एक संश्लिष्ट विधा है, जिसके लिए लेखक में ऐतिहासिक-बोध, सामाजिकचेतना, अनुसंधान की क्षमता, कल्पनाशीलता, भाषाशास्त्र और समीक्षा पद्धति सबकी जानकारी होना आवश्यक है।

साहित्यकार की रचना पर तत्कालीन परिस्थितियों और उसके अपने व्यक्तित्व का मिला-जुला प्रभाव पड़ता है। अत: साहित्य को पूरी तरह से समझने के लिए युगीन परिस्थितियों, समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों व साहित्यकारों की परंपराओं को समझना आवश्यक है।

बोध प्रश्न –

- साहित्येतिहास का उद्देश्य क्या है ?

पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन को तीन कालो में बांट सकते हैं-

1. इतिहास लेखन का आरंभिक काल
2. मध्यकाल
3. आधुनिक काल

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा विधिवत 19वीं शताब्दी में आरंभ होती है। 19वीं शताब्दी से पूर्व जो ग्रंथ मिलते हैं जैसे 'भक्तमाल'-नाभादास, 'कविमाला', 'कालिदास हजारा'-कालिदास त्रिवेदी, 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता'- गोकुलनाथ, अलंकार रत्नाकर', 'सार संग्रह', 'सुंदरी तिलक', 'रस चंद्रोदय', 'दिग्विजय भूषण', 'भाषा काव्य संग्रह' आदि। ये ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि कोण से रहित हैं, उनमें काल-क्रम, सन्-संवत् आदि का अभाव है। इन ग्रंथों में कवियों का आत्मचरित और उनकी साहित्यिक-सामाजिक उपलब्धियों को दर्शाया गया है।

गार्सां-द-तासी

इस संदर्भ में प्रथम प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सां-द-तासी के ग्रंथ 'इस्तवार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' (प्रथम भाग-1839, द्वितीय भाग- 1847 ई०, पुस्तक का संशोधित संस्करण 1871 में प्रकाशित हुआ) के रूप में उपलब्ध होता है। डॉ. सुमनराजे के अनुसार- हिंदी साहित्य का पहला इतिहास लेखक गार्सां द तासी है, इसमें संदेह नहीं है। इस मत का खंडन डॉ. किशोरीलाल गुप्त करते हैं- तासी ने अपने ग्रंथ को हिन्दुई और हिन्दोस्तानी साहित्य का इतिहास कहा है। इसके हिंदी से संबंधित अनुवाद डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' नाम से प्रस्तुत किया है। तासी ने यद्यपि अपने ग्रंथ को इतिहास कहा है, पर यह इतिहास नहीं है, क्योंकि इसमें न तो कवियों का विवरण काल क्रमानुसार दिया गया है, न काल विभाजन किया गया है और जब काल विभाजन ही नहीं है तो प्रवृत्ति निरूपण की आशा ही कैसे की जा सकती ? इसमें निम्नांकित दोष बताए जाते हैं-

अ) हिंदी व उर्दू के कवियों का वृत्त संग्रह है।

ब) काल- विभाजन व युगीन-प्रवृत्तियों की अवहेलना है।

बोध प्रश्न –

- हिंदी साहित्य का इतिहास का पहला लेखक कौन हैं ?

शिवसिंह सेंगर

दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ *शिवसिंह सेंगर* का 'शिवसिंह सरोज' (1883 ई०) है। इसमें 998 कवियों का संक्षिप्त जीवन परिचय संकलित किया गया है। 'शिवसिंह सरोज' के कई संस्करण मिलते हैं। 'शिवसिंह सरोज' तीन खण्डों में विभक्त है-

1. भूमिका
2. काव्य-संग्रह
3. जीवन-चरित्र

'शिवसिंह सरोज' क सातवें संस्करण का गद्य परिष्कृत कर दिया गया है। यह काम रूपनारायण पाण्डेय ने किया है। इस ग्रंथ की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. यह ग्रंथ मूल कृतियों की रचना पर आधारित है।

2. कवियों की संख्या को क्रमबद्ध किया गया है।
3. हिंदी साहित्य परंपरा की निरंतरता का इसमें संकेत है।
4. यह ग्रंथ भाषा काव्य संग्रह भी है और कविवृत्त संग्रह भी।
5. परवर्ती साहित्य इतिहासकारों के लिए यह महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में उपयोगी रहा है।

इसकी अपनी सीमाएं भी हैं। यह भी ऐतिहासिक दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

बोध प्रश्न –

- 'शिवसिंह सरोज' की कुछ विशेषताएँ बताइए।

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन

सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' (1888 ई० में रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल के जर्नल में प्रकाशित हुआ) लिखकर इस परंपरा को बढ़ाया। यह ग्रंथ 11 अध्यायों में विभाजित है और इसमें काल विभाजन भी किया गया है। डॉ. सुमन राजे के अनुसार- ग्रियर्सन ने केवल कालों का वर्गीकरण ही नहीं किया, वरन् उन्हें उपयुक्त नामों से भी विभूषित किया। शुक्ल जी ने आगे चल कर उससे सहायता ली। इसके साथ ही कालों की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने का प्रयास उन्होंने किया है।' यह ग्रंथ अपनी निम्नांकित विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण है-

1) इसमें पहली बार कवियों और लेखकों का काल-क्रमानुसार वर्णन किया गया है।

2) यह हिंदी साहित्य का विधिवत पहला इतिहास है। नलिन विलोचन शर्मा ने इस ग्रंथ को हिंदी साहित्य का पहला इतिहास ग्रंथ स्वीकार किया है।

3) युगीन परिस्थितियों का इसमें चित्रण है, और काव्य-प्रवृत्तियों का उल्लेख है।

4) हिंदी भाषा को अन्य भाषाओं जैसे संस्कृत, प्राकृत, उर्दू से अलग रखा गया है।

5) इस ग्रंथ में लगभग एक हजार कवियों का उल्लेख किया गया है।

इस ग्रंथ की मुख्य दुर्बलता यह है कि इसमें औपनिवेशिक दरबारीपन और हिंदी भाषा के आविर्भाव की प्राचीनता तार्किक और विवेक सम्मत नहीं है।

मिश्रबंधु

मिश्रबंधुओं (श्याम बिहारी, शुकदेव बिहारी, गणेश बिहारी मिश्र) द्वारा 'मिश्रबंधु विनोद', चार खंड़ों में पहले तीन भाग 1913 ई० में, चौथा भाग 1934 ई० में लिखा गया। यह रचना सामग्री तो उपलब्ध कराती है, क्योंकि इसमें लगभग 5000 कवियों का परिचय दिया गया है किन्तु इसमें ऐतिहासिक दृष्टि नहीं मिलती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

पहले व्यवस्थित इतिहास के रूप में उपलब्ध महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929 ई०) का उल्लेख किया जा सकता है।

इसकी दृष्टि ऐतिहासिक व इसकी प्रस्तुति वैज्ञानिक है। शुक्ल जी ने पहली बार साहित्य को आम जनता से जोड़कर देखा। वे मानते हैं 'जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।' आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के अनुसार लोक धर्म साहित्य की महानता का सबसे बड़ा तत्त्व है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इतिहास लेखन में जिस दृष्टिकोण का उपयोग किया है उसे 'विधेयवादी पद्धति' कहते हैं। इस पद्धति के जनक तेन थे। उनके अनुसार सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करते समय जिन तीन संदर्भों पर ध्यान रखना आवश्यक है, वे हैं- 1) क्षण, 2) वातावरण तथा 3) जाति या प्रजाति। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का साहित्येतिहास प्राय: इन्हीं संदर्भों का ध्यान रखते हुए साहित्य में कारण-कार्य का संधान करता है। शुक्ल जी के इतिहास की सबसे बड़ी विशेषता है 'सही काल निर्धारण तथा नामकरण। 'उन्होंने हिंदी साहित्य को चार कालों में विभाजित किया है-

- आदिकाल या वीरगाथाकाल- 1050 से 1375 वि.सं.
- पूर्वमध्यकाल या भक्तिकाल- 1375 से 1700 वि.सं.
- उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल- 1700 से 1900 वि.सं.
- आधुनिक काल या गद्यकाल- वि.सं.1900 से अद्यतन

यह रामचंद्र शुक्ल जी की ऐतिहासिक दृष्टि की परिपक्वता का ही प्रमाण है कि आज तक वीरगाथा काल के अतिरिक्त प्रत्येक युग का नामकरण उन्हीं की दृष्टि के अनुकूल स्वीकार किया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के इतिहास की कुछ सीमाएं भी हैं। एक तो उन्होंने जिस विधेयवादी पद्धति को स्वीकार किया है वह कवि के व्यक्तित्व के महत्त्व को प्रमुखता नहीं देती। इसके अतिरिक्त कबीर, छायावाद, भक्तिकाल का उदय, आदिकाल, सिद्ध-नाथ-जैन साहित्य तथा वीरगाथा काल का नामकरण जैसे प्रसंग एक हद तक उनके दृष्टिकोण विशेष के आग्रह से प्राय: जूझते रहे हैं तथा प्रभावित हुए हैं। मुक्तक साहित्य भी उनकी दृष्टि में अपेक्षित महत्त्व प्राप्त नहीं कर सका है। इन सीमाओं के बावजूद शुक्ल जी का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' हिंदी साहित्येतिहास परंपरा की सबसे बड़ी और क्रांतिकारी उपलब्धि है, इसमें कोई संशय नहीं है।

बोध प्रश्न –

- साहित्य का इतिहास से क्या अभिप्राय है ?
- साहित्य की महानता का सबसे बड़ा तत्व क्या है ?

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

इस शृंखला में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' व 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' नामक ग्रंथों की रचना की है। द्विवेदी जी की इतिहास दृष्टि कुछ प्रसंगों में शुक्ल जी की दृष्टि से अलग है। वे मानते हैं कि साहित्य या कोई भी सामाजिक घटना, परंपरा के विकास के चरण के रूप में ही विश्लेषित की जानी चाहिए। यही कारण है कि वे हिंदी साहित्य के संपूर्ण विकास को संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य की परंपरा से विकास के रूप में ही देखने का आग्रह करते हैं। द्विवेदी जी लोक-सापेक्षता में थोड़ा और आगे बढ़ते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।' साहित्य में मनुष्य की केन्द्रीयता के कारण उनका दृष्टिकोण परंपरावादी तथा मानववादी कहा जाता है। द्विवेदी जी ने कुछ ऐसे प्रश्नों पर पुनर्विचार किया है जिन्हें शुक्ल जी की दृष्टि के कोप का सामना करना पड़ा था। कबीर तथा कबीर की भाषा के महत्त्व की पुन:स्थापना, भक्ति के उदय को भारतीय सामासिक संस्कृति के स्वत: स्फूर्त उद्भव के रूप में व्याख्यायित करना तथा आदिकालीन धार्मिक साहित्य को साहित्य में शामिल कराना कुछ ऐसे कार्य हैं जिन के लिए हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा उनके प्रति ऋणी है।

बोध प्रश्न –

- द्विवेदी जी के अनुसार साहित्य का लक्ष्य क्या है ?

रामस्वरूप चतुर्वेदी

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' में साहित्यको युगीन संवेदना के संदर्भ में परखा है। उनका मानना है कि संवेदना में बदलाव को समझने से साहित्यिक युगों की परिकल्पना और उनके बीच के महत्त्वपूर्ण अन्तरालों को समझा जा सकता है जो साधारण दृष्टि के लिए ओझल बने रहते हैं। वे मानते हैं कि चंदबरदाई, कबीर, जायसी, तुलसी, भारतेन्दु के कृतित्व को न सिर्फ उनके युगीन संदर्भों में समझा जा सकता है और न केवल समकालीन संदर्भों में। इन दोंनों युगों के संबंध, क्रिया-प्रतिक्रिया को स्पष्ट करते हुए रचनाकार के संप्रेषण को समझने की आवश्यता है। चतुर्वेदी जी ने भारतीय नवजागरण को जनजागरण के संदर्भ में व्याख्यायित किया है।

बच्चन सिंह

बच्चन सिंह ने 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास 'में सभी कालों के नामकरण पर असहमति व्यक्त की है। बच्चनसिंह 'आदिकाल', मध्यकाल, आधुनिककाल, संज्ञाओं को भ्रामक मानते हैं। वे लिखते हैं 'आदिकाल' नाम भ्रामक है। इससे बाबा आदम के जमाने का आभास होता है। वे इस काल को 'अपभ्रंश काल'; जातीय साहित्य का उदय' कहना अधिक संगत मानते हैं। इसी तरह वे भक्तिकाल को मध्यकाल कहने के विरोधी हैं। मध्यकाल को वे जकड़ी हुई

मनोवृत्ति का परिचायक मानते हैं। रीतिकाल को उत्तर मध्यकाल कहना उन्हें गणितीय भ्रम लगता है।

कुल मिलाकर बच्चन सिंह ने स्वतंत्र देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सामाजिक, सांस्कृतिक समस्याओं के संदर्भ में 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' लिखा है। उनका मूल दृष्टिकोण ये है कि हिंदी साहित्य के सारे इतिहास या तो शुक्ल जी के इतिहास के अनुकरण हैं या उनके विरोध में हैं। उनके अनुसार एक ऐसे साहित्येतिहास की जरूरत है जो शुक्ल जी के साहित्येतिहास की मान्यताओं से स्वतंत्र होकर लिखा जाए। इसीलिए वे अपनी रचना को 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' कहते हैं।

बोध प्रश्न –

- बच्चन सिंह की रचना का नाम क्या है ?

रामविलास शर्मा

रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी दृष्टि से हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण को समाजवादी यथार्थवाद कहा जाता है। इसके अंतर्गत साहित्यिक तथा सामाजिक परिवर्तनों के पीछे आर्थिक कारणों को आधार माना जाता है। रामविलास शर्मा के अनुसार साहित्य की पहचान- 'रूप' से नहीं, 'वस्तु' की समाज-सापेक्षता से होती है। इसी कारण इन्हें साहित्येतिहास में निराला, प्रेमचंद तथा भारतेंदु जैसे रचनाकार पसंद आये हैं जिन्होंने सामाजिक सांस्कृतिक योगदान दिया है। तुलसी की महानता के संदर्भ में इनका मत है कि अकेले तुलसी ने गरीबी पर जितना लिखा है उतना आधुनिक काल के सारे कवियों ने मिलकर भी नहीं लिखा। महावीरप्रसाद द्विवेदी का भी सबसे बड़ा योगदान इनके अनुसार **'संपत्तिशास्त्र'** विषयक विवेचन है न कि 'सरस्वती' का साहित्यिक दृष्टि से संपादन। कुल मिलाकर इन्होंने हिंदी साहित्य का इतिहास समाजवादी दृष्टि से लिखा। यह दृष्टि कोण विशिष्ट तो है परंतु एक सीमा के बाद एकांगी हो जाता है।

बोध प्रश्न –

- रामविलास शर्मा के अनुसार साहित्य की पहचान किससे होती है ?

विविध

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा को बढ़ाते हुए अनेक विद्वानों ने वैज्ञानिक व आलोचनात्मक प्रयास किए हैं, जिन में डॉ. रामकुमार वर्मा (हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – 1938 ई.), धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. नगेन्द्र व डॉ. हरदयाल (हिंदी साहित्य का इतिहास-संपादित), गणपतिचंद्र गुप्त (हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- 1965 ई.) विजयेन्द्र स्नातक (हिंदी साहित्य का इतिहास), नामवर सिंह (इतिहास और आलोचना),सुमन राजे (हिंदी साहित्य का आधा इतिहास- 2003), शिवकुमार मिश्र (हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिवृत्त),

मैनेजर पाण्डेय (साहित्य और इतिहास दृष्टि- 1981), विश्वनाथ त्रिपाठी (हिंदी साहित्य का सरल इतिहास) आदि के नामों का उल्लेख किया जा सकता है।

1.4 पाठ सार

किसी भी देश या भाषा का साहित्य कई कारणों से महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक होता है। भारत की अधिसंख्यक आबादी, परंपरा और नयी चेतना की सबसे सम्यक् अभिव्यक्ति हिंदी भाषा के साहित्य में हो रही है। इस रूप में भारत की सांस्कृतिक विरासत की उत्तराधिकारिणी हिंदी है। इसका साहित्य और इतिहास दोनों ही विभिन्न युगीन परिस्थितियों की देन है। भारतीय साहित्य का प्राथमिक स्वर हिंदी साहित्य में देखा जा सकता है। उस साहित्य का इतिहास लिखने का श्रेय यूरोपियों को है। उसकी अगली कड़ी में ठोस कार्य भारतीयों का रहा है। इसी कड़ी में साहित्येतिहास-लेखन की विविध पद्धतियों का समाहार साहित्येतिहासकारों ने किया है। ये पद्धतियाँ विभिन्न ज्ञान के अनुशासनों से उपजी और आयी हैं। इनका सन्दर्भ और साहित्येतिहास की दृष्टि से व्यवहार साहित्य के इतिहासकारों ने किया है।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के मुख्य रूप से पांच पड़ाव हैं- कविवृत्त संग्रह संबंधी, औपनिवेशिक प्रयास, राष्ट्रवादी नजरिये से लिखा गया साहित्य इतिहास, मार्क्सवादी-दृष्टि या प्रगतिवादी आन्दोलन से प्रभावित साहित्येतिहास लेखन और विमर्शवादी दृष्टि।

हिंदी साहित्येतिहास की लेखन परंपरा बेहद गतिशील तथा विकासशील रही है। इन संदर्भों में एक प्रश्न यह उठता है कि इस में से किस साहित्येतिहास को हम पूर्ण मानें ? हिंदी में अस्मिता मूलक लेखन और विमर्शों के दौर ने परम्परागत स्थापित साहित्य इतिहास के मानों-प्रतिमानों के समक्ष अनेक मुश्किलें खड़ी कर दी हैं। साहित्य अब समाज और व्यवस्था में भागीदारी से जुड़ गया है। अतः साहित्येतिहास का परम्परावादी और विधेयवादी दृष्टिकोण अब स्वीकार योग्य नहीं हैं।शुक्ल जी तथा द्विवेदी जी के इतिहास ग्रंथ बेहद क्रांतिकारी धारणाओं के कारण श्रेष्ठ साहित्येतिहास हैं पर कोई भी रचनापूर्ण नहीं हो सकती। शुक्ल जी की इतिहास-दृष्टि और द्विवेदी जी की इतिहास-दृष्टि परस्पर विरोधी नहीं बल्कि परस्पर पूरक है। हिंदी साहित्य का आदर्श इतिहास तो वह हो सकता है जो शुक्ल जी तथा द्विवेदी जी की दृष्टियों का समन्वय करता हो, किसी भी दृष्टि की एकांगिता से बचता हो तथा हिंदी साहित्य की एक संश्लिष्ट-समग्र व्याख्या करने में सक्षम हो।

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. साहित्य का इतिहास साहित्य के साथ-साथ मानव भावना के विकास क्रम की कहानी है।
2. साहित्य का इतिहास मानव भावनाओं को व्यक्त करने वाली भाषिक पद्धति के विकास की भी कहानी है।
3. साहित्य के इतिहास को समझने के लिए युगीन परिस्थितियों, समकालीन साहित्यिक प्रवृतियों और साहित्यकारों की परम्पराओं को समझना आवश्यक है।

4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित हिंदी साहित्य का इतिहास जनता की चित्तवृति के परिवर्तन के साथ साहित्य परंपरा के परिवर्तन का इतिहास है।

1.6 शब्द संपदा

चरित काव्य : किसी चरित्र विशेष के संबंध में लिखा गया काव्य।

साहित्येतिहास: किसी भाषा के साहित्य का भाषिक, प्रवृत्तिगत, साहित्यिक, ऐतिहासिक और विधागत क्रमबद्ध इतिहास।

इतिहास लेखन के आधारभूत तत्व: परंपराओं की समझ, तथ्य, काल, घटनाएँ, सन्दर्भ, दृष्टिकोण और मूल्यांकनका संयोजन।

1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. साहित्येतिहास का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकी आवश्यकता तथा साहित्येतिहास लेखन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

2. साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियों का विवेचन कीजिए।

3. इतिहास लेखन की परंपरा की चर्चा कीजिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. इतिहास लेखन की वर्णमाला एवं कालानुक्रम पद्धतियों पर प्रकाश डालिए।

2. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन को कितने कालों में विभाजित किया जाता है ? कुछ प्रमुख इतिहास लेखकों का सामान्य परिचय दीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. 'इस्तावार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' के लेखक कौन है ? ( )

(अ)शिवसिंह सेंगर (आ) गार्साँ द तासी

(इ)ग्रियर्सन (ई) मिश्रबंधु

2. पहली बार किसने साहित्येतिहास लेखन में कवियों और लेखकों का काल क्रमानुसार वर्णन किया है ? ( )

(अ) मिश्रबंधु (आ) डॉ. रामचंद्र शुक्ल

(इ) ग्रियर्सन (ई) शिवसिंह सेंगर

3. 'हिंदी साहित्य की भूमिका' के लेखक कौन हैं ? ( )

(अ) रामचंद्र शुक्ल (आ) बच्चन सिंह

(इ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (ई) रामस्वरूप चतुर्वेदी

4. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किसे साहित्य का लक्ष्य माना ? ( )

(अ) मनुष्य (आ) परंपरा

(इ) संस्कृति (ई) युगीन संदर्भ

5. हिंदी साहित्येतिहास की परंपरा में सर्वप्रथम विधेयवादी पद्धति का प्रयोग किसने किया था? ( )

(अ) रामचंद्र शुक्ल (आ) गार्सां द तासी

(इ)शिवसिंह सेंगर (ई)मिश्रबंधु

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) विधेयवादी पद्धति के जनक ______________थे।

2) मार्क्सवादी दृष्टि से ______________ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा है।

3) गार्सां द तासी ने अपने इतिहास ग्रंथ में ______________पद्धति का प्रयोग किया है।

4) कृतिकार की ______________को आधार मानकर इतिहास ग्रंथ में उनका क्रम निर्धारण किया जाता है।

III. सुमेल कीजिए

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी	(अ) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
2. बच्चन सिंह	(आ) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
3. रामचंद्र शुक्ल	(इ) हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास
4. गणपति चंद्र गुप्त	(ई) हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास
5. रामकुमार वर्मा	(उ) हिंदी साहित्य का इतिहास

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य : संक्षिप्त इतिवृत्त : शिवकुमार मिश्र
3. हिंदी साहित्य का इतिहास और उसकी समस्याएँ : योगेन्द्र प्रताप सिंह
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : विजयेन्द्र स्नातक
5. हिंदी साहित्य के इतिहास पर कुछ नोट्स : राजीव रंजन बन्धु, डॉ, रसाल सिंह
6. प्रतियोगिता साहित्य सीरीज,हिंदी प्रश्न-पत्र-2 : डॉ. अशोक तिवारी
7. साहित्य और इतिहास दृष्टि : मैनेजर पाण्डेय
8. हिंदी भाषा और साहित्य-प्रशासनिक सेवाओं के सन्दर्भ में : सं. डॉ. नगेन्द्र
9. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास : सुमनराजे

इकाई-2 : हिंदी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन, नामकरण और सीमांकन

रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मूल पाठ : हिंदी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन, नामकरण और सीमांकन
2.3.1 हिंदी साहित्य में काल विभाजन और नामकरण का आधार
2.3.2 रामचंद्र शुक्ल से पूर्व इतिहास ग्रंथों में काल-विभाजन, नामकरण और सीमांकन
2.3.3 रामचंद्र शुक्ल के इतिहास-ग्रन्थ में काल-विभाजन,नामकरण और सीमांकन
2.3.4 रामचंद्र शुक्ल के बाद लिखे इतिहास-ग्रंथों में काल-विभाजन, नामकरण और सीमांकन।
2.4 पाठ सार
2.5 पाठ की उपलब्धियाँ
2.6 शब्द संपदा
2.7 परीक्षार्थ प्रश्न
2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व साहित्येतिहास और उसके लेखन पद्धतियों का परिचय दिया गया है। इस इकाई के अंतर्गत हिंदी साहित्य के प्रमुख इतिहास ग्रंथों में लिखित काल-विभाजन, नामकरण और सीमांकन पर बात की जाएगी।

किसी भी भाषा के साहित्य को अगर पढ़ने का प्रयास किया जाएगा तब सबसे बड़ी समस्या उसकी समग्रता को लेकर उत्पन्न होगी। क्योंकि समग्रता के आधार पर किसी साहित्य के इतिहास को समझना आसान नहीं होगा। इसलिए किसी भी भाषा के साहित्य को समझने के लिए 'काल विभाजन' और नामकरण की आवश्यकता होगी। साहित्य में काल-विभाजन या नामकरण करते समय किन आधारों के बल पर उनका निर्माण किया जाए, यह एक सबसे बड़ी समस्या है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों को भी इस तरह की समस्याओं से जूझना पड़ा होगा। इस लिए हिंदी साहित्य में काल-विभाजन और नामकरण को लेकर विभिन्न मत और तर्क दिखाई देते हैं। किन्तु इन सभी से यह स्पष्ट अवश्य हो जाता है कि सभी इतिहासकारों का यही उद्देश्य रहा कि कैसे वे सुसंगत विभाजन को अध्ययन कर्ता के समक्ष रखें, जो ज्यादा तार्किक और सटीक हो, जिससे अध्ययन कर्त्ता के लिए समस्या उत्पन्न न हो।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में काल-विभाजन और नामकरण की आवश्यकता को समझ सकेंगे।

- साहित्य इतिहास-ग्रंथों में काल-विभाजन और नामकरण की समस्या से परिचित हो सकेंगे।
- प्रमुख हिंदी साहित्य के इतिहासों में काल-विभाजन और नामकरण के स्वरूप को जान पायेंगे, साथ ही इनकी सीमाओं से भी परिचित हो सकेंगे।

2.3 मूल पाठ : हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन, नामकरण और सीमांकन

2.3.1 हिंदी साहित्य में काल विभाजन और नामकरण का आधार

'काल विभाजन का लक्ष्य इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसकी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों के विकास के क्रम को उद्घाटित करना होता है।'

साहित्य के इतिहास में काल विभाजन के कई आधार हो सकते हैं।जैसे –

1. प्रवृत्तिपरक।
2. भाषाई।
3. सांस्कृतिक।
4. ऐतिहासिककाल-क्रम आदि।

हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने उपरोक्त आधारों पर काल-विभाजन करने का प्रयास किया है। जैसे रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ में काल-विभाजन साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर किया, मिश्र बन्धुओं ने भाषाई आधार पर, हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक काल-क्रम के आधार पर तो गणपतिचंद्र गुप्त ने सांस्कृतिक आधार पर। इतिहासकारों के विभिन्न आधारों को देख कर यह स्पष्ट होता है कि इतिहासकारों की हिंदी साहित्य को देखने की दृष्टिभिन्न- भिन्न रही है। किन्तु यह भी स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि हिंदी साहित्य में 'प्रवृत्ति परक' काल-विभाजन ज्यादा लोकप्रिय रहा। किन्तु समस्या यह रही कि इनमें भी कहीं-न-कहीं त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जिसके फलस्वरूप अनेक तरह की भ्रांतियाँ उत्पन्न होती हैं। जिन्हें समय-समय पर परिशोधित रूप देने का प्रयास किया जाता रहा है।

बोध प्रश्न –

- काल विभाजन का लक्ष्य क्या होता है ?

2.3.2 रामचंद्र शुक्ल से पूर्व इतिहास ग्रंथों में काल-विभाजन, नामकरण और सीमांकन

हिंदी साहित्य के इतिहास का सर्वप्रथम काल विभाजन करने का प्रयास सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने किया। इससे पूर्व जो हिंदी साहित्य के इतिहास लिखे गए उसमें काल विभाजन प्रायः नहीं मिलता है। जैसे- गार्सां-द-तासी के द्वारा फ्रेंच भाषा में लिखित इतिहास ग्रन्थ 'इस्तवार-द-ला-लितरेत्यूर ऐन्दुई-ए-ऐन्दुस्तानी'(२ भाग, पहला 1839 ई., दूसरा 1847 ई. में और दूसरा संस्करण 1871 में प्रकाशित) में हिंदी और उर्दू के कवियों की विस्तृत सामग्री दी गई है, जिसमें 72 कवि ही हिंदी के हैं और अन्य शेष कवि उर्दू के हैं। साथ ही उस ग्रन्थ में कवियों का वर्णन काल क्रमानुसार न होकर वर्णानुक्रम से दिया गया है। इसमें कोई दो राय नहीं

है कि यह हिंदी साहित्य लेखन का प्रथम प्रयास है किन्तु इस इतिहास ग्रन्थ में काल-विभाजन न होने की वजह से यह ग्रन्थ कवियों का संग्रह मात्र हो कर रह जाता है।

शिवसिंह सेंगर द्वारा प्रथम बार हिंदी में लिखित इतिहास ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज'(1883 ई.) है। इस ग्रन्थ में 998 कवियों का वर्णन है। 'शिवसिंह सरोज' हिंदी का पहला साहित्येतिहास ग्रन्थ माना जाता है क्योंकि यह ग्रन्थ हिंदी भाषा में हिंदी भाषी लोगों के लिए सर्व प्रथम लिखा गया था। पर सरोज सर्वेक्षण करते हुए पाया गया है कि यह पुस्तक कवियों का वर्णानुक्रम से दिया गया संक्षिप्त परिचय मात्र है। अतः इसे हम 'कवि वृत्त संग्रह' या कवि कीर्तन की संज्ञा दे सकते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ में इस ग्रन्थ को 'कवि वृत्त संग्रह' ही माना है।

बोध प्रश्न –

- हिंदी का पहला साहित्येतिहास ग्रंथ का नाम बताइए।

तीसरा महत्त्वपूर्ण हिंदी साहित्य का इतिहास ग्रियर्सन द्वारा रचित 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान'(1888) है। यह पुस्तक हिंदी में नहीं लिखी गई। यह पुस्तक मूलतः अंग्रेजी भाषा में और अंग्रेजों के लिए लिखी गई है। पर यह पुस्तक अंग्रेजी में होते हुए भी हिंदी साहित्य वालों के लिए बहुत उपयोगी है। ग्रियर्सन का इतिहास ग्रन्थ –'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान' पुस्तक में पूरे हिंदी साहित्य को ग्यारह अध्यायों में बाँटा गया है। इसमें प्रत्येक अध्याय मुख्यतः एक काल का सूचक है जो निम्न प्रकार से हैं –

1. चारण काल (700-1300 ई.)
2. 15वीं शताब्दी का धार्मिक पुनर्जागरण
3. जायसी का प्रेम काव्य
4. ब्रज का कृष्ण काव्य(1500-1600)
5. मुगल दरबार
6. तुलसी दास
7. रीतिकाव्य(1580-1692ई.)
8. तुलसीदास के अन्य परवर्ती (1600-1700 ई.)
9. अठारहवींशताब्दी
10. कंपनी के शासन में हिन्दुस्तान(1800-1857)
11. महारानीविक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान (1857-1887)

ग्रियर्सन के काल-विभाजन की सबसे बड़ी त्रुटि यह रही कि इसमें काल-विभाजन का एक आधार नहीं है। कुछ कालखंडों का नामकरण उन्होंने कवियों की दृष्टि से किया है।जैसे- जायसी का प्रेम काव्य, तुलसी दास आदि।तो कहीं उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों को आधार बना कर काल विभाजन किया। जैसे 15वीं शताब्दी का धार्मिक पुनर्जागरण, मुग़ल

दरबार, अठारहवीं शताब्दी के शासन में हिन्दुस्तान आदि। कहीं-कहीं पर तोउन्होंने प्रवृत्ति के आधार पर भीकाल विभाजन किया। कालखंडों के समयसीमा को लेकर भी इस ग्रन्थ में कोई प्रवाह मान धारा नहीं देखी गई है। उन्होंने किस आधार पर इस समयसीमा का निर्धारण किया होगा इसका कोई तटस्थ तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। जैसे चारण काल का प्रारंभ उन्होंने 700 ई. से मानते हुए 1300 ई. में इस काल का अंत माना। वहीं 200 सालों के अन्तराल के बाद 1500 ई. में धार्मिक पुनर्जागरण का उदय माना। उसी तरह फिर कुछ कालों की समयसीमा देना उन्होंने जरूरी नहीं समझा जैसे- जायसी का प्रेम काव्य, मुग़ल दरबार, तुलसी दास आदि। किन्तु उन्होंने ब्रज के कृष्ण काव्य का आरम्भ 1500-1600 ई.तक माना। इस समय सीमा के निर्धारण के पीछे ग्रियर्सन ने कृष्ण काव्य के प्रमुख कवि सूरदास के रचना कर्म को आधार बनाया होगा।

बोध प्रश्न –

- ग्रियर्सन ने समय सीमा निर्धारण के लिए क्या आधार बनाया ?

इसके उपरांत उन्हों ने रीति काव्य की समय सीमा 1580-1692 ई. तक निर्धारित की है इससे पूर्व कृष्ण काव्य का समय भी उन्होंने 1500 ई. तक ही स्वीकार किया था। इससे समय सीमा की स्पष्टता में बाधा उत्पन्न होती है। पाठक इस चीज़ में उलझ कर रह जाता है कि वह 1500ई. को पुनर्जागरण का युग माने या रीति काल का आरम्भ। भले ही इस दौर में रीति सम्बन्धी एक दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं किन्तु इस आधार पर इस काल खंड को रीति युग का प्रारंभ मानना कहाँ तक उपयुक्त है ? अब कठिनाई यह है कि तुलसी दास को तो हमने रीति युग से पूर्व रखा था। किन्तु फिर से रीति युग के बाद ‘तुलसीदास के अन्य परवर्ती नाम से काल विभाजन करना तथा उनकी समय सीमा 1600-1700 ई. तक निर्धारित करना हमारे लिए और एक समस्या उत्पन्न करता है। तुलसीदास के अन्य परवर्ती को तुलसी दास के बाद तथा रीति काव्य से पूर्व रखना ज्यादा तर्कसंगत लगता है।

आधुनिक काल की शुरुआत ग्रियर्सन अठारहवीं शताब्दी से मानते हैं। वहीं फिर से कंपनी के शासन में हिन्दुस्तान की समय सीमा 1800-1857तक निर्धारित करते हैं। अगर उन्होंने कंपनी शासन को आधार बना कर समय सीमा 1800ई. मान ही लिया था तो ‘अठारहवीं शताब्दी’ नाम से एक काल खंड का निर्माण करना वैज्ञानिक एवं तार्किक नहीं लगता।उसके बाद महारानी विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान की समय सीमा 1857-1887ई. तक माना। इस तरह देखें तो काल विभाजन, नामकरण और उसके सीमांकन को लेकर अनेक विवाद हैं। किन्तु इन सबसे इतर यह हिंदी का पहला इतिहास ग्रन्थ है जिसमें काल विभाजन के आधार दिए गए हैं जो आगे के इतिहासकारों के लिए एक नई पृष्ठभूमि का निर्माण करने का कार्य करता है। किन्तु इस ग्रन्थ के काल विभाजन में वैज्ञानिकता का अभाव दिखता है। वैज्ञानिकता के अभाव होने के उपरांत भी ग्रियर्सन की दृष्टि ‘विधेयवादी दृष्टि’ मानी गई। नलिन विलोचन शर्मा ‘साहित्य का इतिहास दर्शन’ ग्रन्थ में लिखते हैं कि –“विधेयवाद के आदिम प्रवर्तक शुक्ल जी नहीं अपितु ग्रियर्सन हैं।” अन्ततः यह स्पष्ट करना भी आवश्यक जान पड़ता है कि प्रारंभिक प्रयास में ऐसी त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है इससे उनके हिंदी साहित्य के प्रति योगदान को कमतर नहीं आँक सकते हैं।

बोध प्रश्न –

- विधेयवाद के आदिम प्रवर्तक कौन हैं ?

मिश्र बंधुओं का काल विभाजन :

पूर्व आलोचना में यह बताया गया कि ग्रियर्सन के द्वारा लिखित इतिहास ग्रन्थ अंग्रेजी भाषा में लिखित है, जिसमें काल विभाजन का निर्देश है। अतः यह अंग्रेजी में लिखित हिंदी साहित्य के काल विभाजन का प्रथम प्रयास है। वहीं हिंदी भाषा में सर्वप्रथम काल विभाजन मिश्रबंधुओं के द्वारा लिखित 'मिश्रबंधु विनोद' (रचनाकार गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र तथा चार खंडों में प्रकाशित पहले 3 भाग 1913 और चौथा भाग-1934 में प्रकाशित) में है। उनकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने ग्रियर्सन से इतर नए तरह से काल-विभाजन करने का प्रयास किया जो ग्रियर्सन के ग्रन्थ से ज्यादा प्रौढ़ दिखाई देता है। इस पुस्तक को रामचन्द्र शुक्ल ने 'बड़ा भारी कविवृत्त संग्रह' की संज्ञा दी है क्योंकि वृत्त संग्रहों में यह सबसे वृहदाकार और सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसमें कुल मिलाकर 4599 लेखकों का विवरण संग्रहीत है। इस ग्रंथ में अनेक ग्रंथों का सहारा लिया गया है। सर्वाधिक सहायता काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट से ली गई है। इनके द्वारा किया गया काल विभाजन निम्नलिखित है –

1. प्रारंभिक काल – पूर्वारंभिक काल(सं700-1343)
   - उत्तराम्भिक काल (सं1343-1444)
2. माध्यमिक काल –पूर्व माध्यमिक काल (सं1445-1560)
   - प्रौढ़ माध्यमिक काल (सं1561-1680)
3. अलंकृत काल – पूर्वालंकृत काल (सं1681-1790)
   - उत्तरालंकृत काल (सं1791-1889)
4. अज्ञात काल
5. परिवर्तन काल (सं1890-1925)
6. वर्तमान काल (सं1926 से अब तक)

इस ग्रन्थ की पद्धति या वर्गीकरण स्पष्ट है किन्तु तथ्यों की दृष्टि से इनमें भी विसंगतियां विद्यमान रही हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि मिश्रबंधुओं के द्वारा वर्गीकृत यह नामकरण और काल विभाजन ग्रियर्सन के काल विभाजन से ज्यादा विकसित है। किन्तु इस इतिहास ग्रन्थ के काल विभाजन और नामकरण की समस्या यह रही कि इन्होंने पूरे काल खंड को आँख मूंदकर आदि, मध्य, पूर्व और उत्तर में बाँट दिया है। समय सीमा को लेकर भी इसमें स्पष्टता नहीं दिखाई देती। कुछ काल खंड को तो उन्होंने पर्याप्त समय दिया जबकि उन्होंने कुछ काल खंड की समयावधि कम कर दी है। जिन काल खण्डों के समयावधि कम की है उसे भिन्न काल खंड के रूप में निर्मित करने की आवश्यकता ही नहीं थी। जैसे- परिवर्तन काल,उसे उन्होंने 35 वर्षों में ही समेट कर रख दिया है। 'परिवर्तन' काल के नामकरण से यह संदेह उत्पन्न होता है कि परिवर्तन

यानी किसका? क्या इससे पूर्व के काल खण्डों में कोई परिवर्तन नहीं है ? या इस युग में ऐसा क्या परिवर्तन हो गया था जिसके लिए परिवर्तन युग ही इसके लिए उपयुक्त रहा। अतः 'परिवर्तन काल' अपने आप ही उलझाने वाला प्रतीत होता है। यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि कुछ काल खण्डों को जैसे पहला, दूसरा और चौथा नाम उन्होंने विकासवादी धारा के आधार पर वर्गीकृत किया तो किसी को प्रवृत्ति के आधार पर, उदाहरण स्वरूप 'अलंकृतकाल' उस कालखंड की आंतरिक प्रवृत्ति को स्पष्ट करता हुआ दिखाई देता है। साथ ही यह बताना भी आवश्यक है कि उन्होंने अपभ्रंश साहित्य को भी हिंदी साहित्य के आदिकाल में स्थान दिया था। इसलिए इनके काल-विभाजन, नामकरण और समयसीमा में भी त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, किन्तु त्रुटियों के होते हुए भी मिश्रबंधुओं का कार्य महत्त्वपूर्ण और परवर्ती साहित्य इतिहास ग्रन्थ के लिए आवश्यक सिद्ध होता है।

बोध प्रश्न –

- किन विद्वानों को मिश्रबंधु नाम से जाना जाता है ?
- मिश्रबंधु के नामकरण के लिए क्या आधार बनाया ?

1.3.3.रामचंद्र शुक्ल के इतिहास-ग्रंथ में काल- विभाजन, नामकरण और सीमांकन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काल विभाजन का मुख्य आधार जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन को बनाया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929) में लिखा भी है कि 'जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता चला जाता है।' इस दृष्टि से शुक्ल के इतिहास ग्रन्थ के काल विभाजन को पढ़ते समय यह ध्यान रखना आवश्यक हैकि इसका सम्बन्ध लोगों की रुचियों के प्रवाह से है।

1. आदिकाल(वीरगाथा काल, वि.सं.1050-1375)
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, वि.सं.1375-1700)
3. उत्तरमध्यकाल (रीति काल, वि.सं.1700-1900)
4. आधुनिक काल (गद्यकाल, वि.सं.1900-1984)

बोध प्रश्न –

- रामचंद्र शुक्ल ने काल विभाजन का क्या आधार बनाया ?

शुक्ल जी ने जहाँ जनता की चित्तवृत्तियों के परिवर्तन को आधार मानकर उपयुक्त काल विभाजन किया वहीं उन्होंने इस बात का स्पष्ट संकेत कर दिया है कि चित्तवृत्तियों में यह परिवर्तन एकाएक या आमूलचूल रूप से परिवर्तन नहीं आता है। उन्होंने लिखा है कि "यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काल में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थीं। जैसे भक्तिकाल या रीतिकाल को लें तो उसमें वीर रस के अनेक काव्य मिलेंगे जिसमें वीर राजाओं की

प्रशंसा उसी ढंग की होगी जिस ढंग की वीरगाथा काल में हुआ करती थीं।" इस तरह शुक्ल जी ने काल विभाजन का व्यापक और ठोस आधार निर्मित किया।

आचार्य शुक्ल के काल विभाजन की यदि तुलना मिश्रबंधुओं के काल विभाजन से की जाए तो अनेक विशिष्टताएँ सामने आएँगी। जैसे इन्होंने मिश्रबंधुओं के प्रारंभिक काल की पूर्वारम्भिक सीमा 700 वि.सं. के स्थान पर 1050 वि.सं. को मान कर उसे यथार्थ सीमा के थोड़ा निकट ला दिया। दूसरी विशेषता यह है कि इन्होंने काल विभाजन के सीमित और तार्किक बनाने की कोशिश की। तीसरी विशेषता यह रही कि शुक्ल ने काल विभाजन का एक आधार चुना।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल का नामकरण' वीरगाथा काल' रखा। उन्होंने इस काल के अंतर्गत दो प्रकार की रचनाओं को स्थान दिया, एक अपभ्रंश दूसरा देशी भाषा। अपभ्रंश की पुस्तकों में ज्यादातर पुस्तकें जैन-धर्मतत्व निरूपण से सम्बंधित थीं जिसे उन्होंने साहित्यिक कोटि में नहीं रखा है। उनका मानना था कि यहाँ अपभ्रंश भाषा के पुस्तकों का हवाला देना केवल अपभ्रंश भाषा के व्यवहार और विकास को दिखाने का रहा है। साहित्य के कोटि में कुछ जो रचनाएँ आती हैं उनमें भिन्न विषयों के फुटकर दोहे हैं जिससे कोई विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं की जा सकती। साथ ही उन्हें आदिकाल की दीर्घ डेढ़ सौ वर्ष में कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है। इसलिए उन्होंने आदिकाल की समय सीमा वि.सं.1050 से स्वीकार की है। अतः एक तरह से अपभ्रंश के साहित्य को शुक्ल जी आदिकाल में स्थान देना नहीं चाहते थे। किन्तु प्रारंभिक रचनाओं में अपभ्रंश साहित्य की भरमार है और 'परिनिष्ठित हिंदी' का पूर्व रूप भी। इसलिए उनके साहित्य को एकदम ख़ारिज करना उचित नहीं प्रतीत होता साथ ही शुक्ल जी का यह कहना अपभ्रंश साहित्य में ज्यादातर रचनाएँ धार्मिक ही हैं तो प्रश्न यह खड़ा होता है कि तब भक्तिकालीन साहित्य में धार्मिकता के पुट उपलब्ध नहीं हैं क्या ? शुक्ल जी ने वीरगाथा काल में 12 वीरतामूलक ग्रंथों के आधार पर इस युग का नाम वीरगाथा काल रखा। किन्तु उन ग्रंथों में भी कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है, कुछ परवर्ती रचना है तो कोई नोटिस मात्र है। इस लिए 'वीरगाथा काल' नाम देने पर नामकरण एकांगी हो जाता है इसलिए यह नाम उपयुक्त नहीं लगता है। इस युग के लिए 'आदिकाल' नाम ही सर्वाधिक उपयुक्त ठहरता है जो भाषा, साहित्य की आरम्भिक अवस्था का द्योतक है।

पूर्व मध्यकाल को शुक्ल जी ने भक्ति काल नाम दिया। इस युग में 'भक्ति' की प्रधानता रही इसलिए यह नामकरण उपयुक्त है। उत्तर मध्यकाल को शुक्ल जी रीतिकाल के नाम से अभिहित करते हैं। विद्वानों में भी इस नाम को लेकर मतभेद दिखाई देते हैं। किन्तु विवादों के इतर भी यह नाम उपयुक्त जान पड़ता है। इस युग के लिए ग्रियर्सन ने भी अपने इतिहास ग्रन्थ में 'रीति काव्य' नाम दिया है। अतःउन्हीं के नामकरण से सहमति रखते हुए, रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस काल खंड को 'रीति युग' से अभिहित किया होगा। रीतिकालीन कवियों ने सर्व प्रथम रीति शब्द का व्यवहार अपनी कविता में किया, वहीं से शुक्ल जी ने इसे ग्रहण किया।

आधुनिक काल को शुक्ल जी ने 'गद्य काल' माना। किन्तु यह नाम उपयुक्त नहीं लगता। परवर्ती काल के विचारकों ने 'वीरगाथा काल', 'रीतिकाल' और 'गद्यकाल' के नामकरण को अपर्याप्त सिद्ध किया है। आधुनिक काल का समय सिर्फ गद्य का समय नहीं रहा क्योंकि इस

समय छायावाद जैसे सशक्त एवं प्रभावकारी काव्य आंदोलन का भी उदय हुआ। साथ ही गद्य काल के प्रथम, द्वितीय और तृतीय उत्थान में शुक्ल जी ने काव्यों की शृंखला, विकास और विस्तार को ज्यादा महत्त्व प्रदान किया। इसलिए इस काल को 'गद्यकाल' कहना तर्क संगत नहीं लगता।गद्य का विकास इस युग में हुआ किन्तु कविता भी इसके समानांतर चलती रही है। इसलिए इस युग को 'गद्यकाल' नाम देना एक पक्षीय हीहोगा।

समय सीमा या सीमांकन के आधार पर वीरगाथा काल को छोड़ कर अन्य कालों की समय सीमा उपयुक्त है। शुक्ल जी के परवर्ती इतिहासकारों ने भी थोड़े बहुत फेर बदल कर के भी इसी समय सीमा को स्वीकार किया है। शुक्ल जी के काल विभाजन और नामकरण को लेकर विद्वानों ने अनेक तर्क देते हुए शुक्ल जी के सिद्धांतों का खंडन किया। किन्तु शुक्ल जी की यह पुस्तक हिंदी साहित्य की आधार शिला है जिस पर आक्षेप तो लगाया जा सकता है किन्तु उसे ख़ारिज नहीं किया जा सकता।और सबसे बड़ी बात तो यह है कि अगर शुक्ल जी ने यह इतिहास ग्रन्थ न लिखा होता तो शायद यह आक्षेप भी सामने नहीं आते। अनेक कमियों के बावजूद परवर्ती अनेक कृतियों को उन्होंने प्रभावित किया है जिसमें तनिक भी संदेह नहीं है। नलिन विलोचन शर्मा भी 'साहित्य का इतिहास-दर्शन' पुस्तक में लिखते हैं कि 'शुक्लजी के इतिहास का जो अकल्याणकारी प्रभाव बाद के हिंदी साहित्येतिहासकारों पर पड़ा है, अवश्य इसके लिए वे दोषी नहीं हैं, इससे तो उनकी सशक्तता ही प्रमाणित होती है।'

बोध प्रश्न –

- पूर्व मध्यकाल को शुक्ल जी ने क्या कहा ?
- आधुनिक काल को शुक्ल जी ने किस नाम से अभिहित किया ?

2.3.4 रामचंद्र शुक्ल के बाद लिखे इतिहास-ग्रंथों में काल-विभाजन, नामकरण और सीमांकन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद दूसरे प्रमुख इतिहासकार रामकुमार वर्मा हैं, जिन्होंने 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (1938) लिखा। शुक्लोत्तर इतिहासकारों में रामकुमार वर्मा का काल विभाजन महत्त्वपूर्ण रहा। जो इस प्रकार है-

1. संधि काल(सं. 750 से 1000)
2. चारण काल (सं.1000 से 1375)
3. भक्ति काल (सं.1375 से 1700)
4. रीति काल (सं.1700से 1900)
5. आधुनिक काल (सं.1900 से अबतक)

डॉ. रामकुमार वर्मा ने पूरे हिंदी साहित्य को पाँच कालों में बाँटा है। यह काल विभाजन शुक्ल जी के काल विभाजन को कुछ परिवर्तन कर प्रस्तुत किया गया है। किन्तु यह अवश्य है कि उन्होंने शुक्ल जी के काल विभाजन या नामकरण को अधिक सरल बनाने की कोशिश की है। जैसे 'वीरगाथा काल' को 'चारण काल' नाम देने के अतिरिक्त 'संधिकाल' नाम से भी अभिहित किया जिससे पाठक काल खंड को सरल तरह से समझ पाए। साथ ही ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी

जैसे जटिल नामों को परिवर्तित करके सरल नाम 'संतकाव्य' और 'प्रेमकाव्य' दिए। एक ओर जहाँ रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में अपभ्रंश या देशी भाषा के साहित्य का नामोल्लेख करते हुए भी वीरता मूलक साहित्य को आधार बना कर वीरगाथा काल नाम दिया वहीं राम कुमार वर्मा दोनों भाषा के बीच छिड़ी बहस को ध्यान में रखते हुए आदिकाल को भी दो खंड में बाँटते हैं। उन्होंने एक कार्य अच्छा किया कि अपभ्रंश और हिंदी के विवाद को दरकिनार करते हुए अपभ्रंश साहित्य को आदिकाल के अंतर्गत समाहित किया। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि –"यद्यपि इस समय तक अपभ्रंश और हिंदी का भेद भलीभांति स्पष्ट हो चुका था तथा स्वयं डॉ. वर्मा ने भी दोनों को भिन्न-भिन्न माना है, फिर भी अपभ्रंश के सिद्ध, जैन व नाथपंथी कवियों की वाणी को हिंदी साहित्य में स्थान देने का वे भी लोभ संवरण नहीं कर पाए।" जो भी हो रामकुमार वर्मा ने हिंदी के समानान्तर अपभ्रंश भाषा के साहित्य को स्थान दिया और दोनों के मध्य संधि जैसी अवधारणा को भी सामने लाए। यह संधि दो भाषाओं के साहित्य के बीच थी। किन्तु संधि काल नाम से यह भ्रम उत्पन्न होता है कि क्या उस समय संधि सम्बन्धी कोई साहित्य लिखा गया था। सोच के धरातल यह एक सेकुलर दृष्टि है किन्तु नामकरण के आधार पर संधि और चारण काल उपयुक्त नहीं है। अन्य काल खंड तो प्रवृत्ति के आधार पर किए गए किन्तु यह दो नाम उस युग की प्रवृत्ति भी नहीं थी और न उससे कोई आधार स्पष्ट हो पाता है। साथ ही रामकुमार वर्मा के द्वारा दिया गया 'चारण काल' ग्रियर्सन का अनुकरण भी लगता है। इसलिए इस युग के लिए 'आदिकाल' नाम ही उपयुक्त है।

बोध प्रश्न –

- रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य के इतिहास को कितने कालों में बाँटा है ?
- रामकुमार वर्मा अपभ्रंश साहित्य को किस काल में समाहित किया ?

समय सीमा की दृष्टि से देखें तो आदिकाल को छोड़ कर अन्य कालों की समय सीमा शुक्ल जी के अनुरूप ही है। इसलिए समय सीमा की दृष्टि से आदिकाल पर बात करना ही समीचीन होगा। इसमें कोई दो राय नहीं है कि रामकुमार वर्मा ने स्वयंभू को पहला कवि मानते हुए हिंदी साहित्य का आरम्भ 693 ई. स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट हो रहा है कि रामकुमार वर्मा अपभ्रंश साहित्य को आदिकाल के अंतर्गत रखने के पक्षधर हैं।

एक तरह से राम कुमार वर्मा का यह काल विभाजन रामचंद्र शुक्ल के गुण-दोष का विस्तार ही है। किन्तु रामकुमार वर्मा ने इसके अतिरिक्त कवियों के मूल्यांकन को सहृदयता के साथ विवेचित किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि यह ग्रन्थ भक्तिकाल तक ही सीमित है। इसके बाद के अध्याय प्रायः अलिखित हैं। रामकुमार वर्मा की सबसे बड़ी सीमा यह है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल की अपेक्षा रामकुमार वर्मा के इतिहास में विस्तार अधिक है, किन्तु गहराई नहीं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध आलोचक और इतिहासकार हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं। काल-विभाजन के इन सभी प्रयत्नों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और

हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत सर्वाधिक मान्य है। आचार्य शुक्ल ने प्रवृत्तियों के आधार पर कालों का सुव्यवस्थित विभाजन किया है। जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के विभाजन को ही स्वीकार किया किन्तु संवत् के स्थान पर शताब्दी का प्रयोग कर उन्होंने काल-विभाजन को और अधिक व्यवस्थित कर दिया है। साथ ही कालों के नामकरण को लेकर भी नवीन तथ्य उपलब्ध कराए। उनकी मान्यता शुक्ल के मतों के खंडन करने के लिए था। इससे यह आशय बिलकुल न लगाया जाए कि हजारी प्रसाद द्विवेदी शुक्ल के विरोधी रहे। उनका बस यह प्रयत्न रहा कि जिस पर रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि नहीं गई है या अपनी नवीन दृष्टि का परिचय देते हुए नए तार्किक तथ्य को प्रस्तुत करना उनका ध्येय रहा है। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र कहते हैं –"जहाँ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ऐतिहासिक 'युग की परिस्थिति, को प्रमुखता प्रदान करते थे, वहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परंपरा का महत्व प्रतिष्ठित करते हुए उन धारणाओं को खंडित किया, जो युगीन प्रभाव के एकांगी दृष्टिकोण पर आधारित थीं।" साहित्य में जाहिर सी बात है सबकी अलग-अलग दृष्टि होती इससे किसी को बड़ा या छोटा नहीं कहा जा सकता। उन्होंने भारतीय चिंतन और भारतीय साहित्य के स्वाभाविक विकास की बात की। अतः पहली बार उन्होंने सांस्कृतिक कारकों की पड़ताल करते हुए साहित्य को देखने का प्रयास किया। अब यह बताना आवश्यक है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इतिहास सम्बंधित तीन पुस्तकों की रचना की। जैसे-1. हिंदी साहित्य की भूमिका (1940), 2.हिंदी साहित्य का आदिकाल (1952), हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास (1952)।

अब पाठक वर्ग यह जानने को जिज्ञासु रहेगा कि काल विभाजन का निर्देश हजारी प्रसाद द्विवेदी के किस ग्रन्थ में उपलब्ध है। इसलिए यह बताना आवश्यक है कि 'हिंदी साहित्य की भूमिका' पुस्तक में हजारी प्रसाद द्विवेदी स्वयं लिखते हैं कि –"यह पुस्तक हिंदी साहित्य का इतिहास नहीं है न ही यह किसी इतिहास का स्थान ही हो सकता है। आधुनिक इतिहासों को अधिक स्पष्ट करती हैं और भविष्य के लिखे जानेवाले इतिहासों की मार्गदर्शिका है।" 'हिंदी साहित्य की भूमिका' पुस्तक क्रम और पद्धति की दृष्टि से इतिहास के रूप में प्रस्तुत नहीं है। किन्तु इस पुस्तक में प्रस्तुत लेख ऐसे तथ्यों और निष्कर्षों को प्रस्तुत करते हैं जो हिंदी साहित्यकारों के लिए नयी दृष्टि और नयी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उनकी दूसरी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' शुक्ल जी का सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य को महत्त्व न देने के विरोध में लिखी गई। साथ ही संत काव्य धारा की परम्परा के स्रोतों की पड़ताल करते हुए, उनकी महत्ता को स्थापित करने का ध्येय भी उनका लक्ष्य था। साथ ही वीरता युक्त साहित्य के आधार पर नामकरण भी इसका एक कारण रहा। उन्होंने इस पुस्तक में भाव, विचार, भाषा, शैली तथा तर्क पद्धति के आधार पर यह सिद्ध किया कि हिंदी का संत काव्य पूर्ववर्ती सिद्ध व नाथ पंथियों के साहित्य का सहज विकसित रूप है। इसलिए उन्होंने भक्तिकाल को इस्लामिक प्रतिकिया के फलस्वरूप आया नहीं माना बल्कि परंपरा का सहज विकास से रूप में स्वीकार किया। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' नामक पुस्तक लिख कर यह सिद्ध किया

कि सिद्ध, नाथ, जैनों का साहित्य हमारी पूर्व धरोहर है अर्थात् प्रारंभिक साहित्य है जिस को छोड़ कर आदिकाल की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

उनके द्वारा लिखित 'हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास' पुस्तक में काल विभाजन किये गए हैं। द्विवेदी जी ने इस ग्रन्थ में पूरी शताब्दी को हिंदी साहित्य के काल-विभाजन का आधार बनाया है जो निम्न प्रकार सेहैं –

1. आदिकाल (10वीं से14वीं शताब्दी)
2. भक्तिकाल (14वीं शताब्दी से16वीं शताब्दी)
3. रीतिकाल (16वीं शताब्दी से19वीं शताब्दी)
4. आधुनिककाल (19वींशताब्दी से अब तक)

उनके द्वारा लिखित काल विभाजन में 'आदिकाल' उनके द्वारा दिया गया नाम है। 'आदिकाल' नाम की सार्थकता उन्होंने 'आदिकाल' पुस्तक में ही प्रस्तुत की है। बाकी अन्य नाम शुक्ल जी के अनुरूप ही हैं। वे चाहते तो नामों में परिवर्तन कर सकते थे। किन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया। डॉ.नगेन्द्र के अनुसार –"उन्होंने अपना लक्ष्य आचार्य शुक्ल द्वारा स्थापित इतिहास के स्थूल ढाँचे में ही अपनी धारणाओं को समेट देने तक का रखा है, जबकि उसे आमूलचूल परिवर्तित कर देने की शक्ति का भी उनमें अभाव नहीं था। शुक्ल जी द्वारा स्थापित प्रथम तीन काल खण्डों को बाह्य रूप व भीतरी आधारों की दृष्टि से पूर्णतः झकझोर देने के बाद भी उन्होंने उसे उन्मूलित करने का कार्य अपने हाथों से सम्पादित नहीं किया। शायद यह उनकी अहिंसक दृष्टि का परिणाम है कि वे पूर्व व्यवस्था के सारे दोषों व अवगुणों का उद्घाटन करने के बाद भी अपनी ओर से उस में परिवर्तन का कोई प्रयास नहीं करते।"

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने आचार्य शुक्ल के विभाजन की खामियों को बताते हुए अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' (1965) में हिंदी साहित्य के इतिहास को तीन कालों में बाँटा है-

1. प्रारंभिक काल या उन्मेष काल (1184 से 1350 ई.)
2. मध्य काल-(1350-1857 ई. तक)
3. आधुनिक काल(1857 ई.से अब तक)।

गुप्त जी का यह विभाजन न तो वैज्ञानिक है और न ही यह प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता हुआ नजर आता है। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने सांस्कृतिक परंपराओं तथा बाह्य परिस्थितियों के क्षेत्र में रचनाओं एवं काव्य परम्पराओं को सम्मिलित करते हुए हिंदी साहित्य को प्रमुख रूप से तीन कालों में विभक्त किया है। प्रारंभिक काल में दो काव्य-परम्पराओं के प्रवर्तन का उल्लेख किया है –(क) धार्मिक रासकाव्य परंपरा (ख) संत काव्य परंपरा। सबसे प्रमुख बात तो यह है कि उनके द्वारा दिया गया 'प्रारंभिक काल नया नहीं है। मिश्रबंधुओं ने इस युग को आरंभिक काल

कह कर काल विभाजन किया था। इन्होंने शालिभद्र सूरी के 'भरतेश्वर बाहुबली रास' को हिंदी की प्रथम रचना मानते हुए इसका उदय 1184 ई. से माना। उन्होंने आदिकाल के सम्बन्ध में तर्क दिया है कि 'हिंदी साहित्य के आदिकाल में केवल धार्मिक रास काव्य परंपरा और संत काव्य परंपरा ही उपलब्ध होते हैं।' उन्होंने अपभ्रंश भाषा को हिंदी से पृथक मानते हुए हिंदी साहित्य के इतिहास में अपभ्रंश रचनाओं को स्थान नहीं दिया है। उनके द्वारा निर्धारित समय सीमा 1184ई.से ही स्पष्ट होती है कि इससे पूर्व के साहित्य को अपभ्रंश मान के छोड़ दिया गया है। बड़ी दुखद स्थिति यह है कि वे नाथ साहित्य आदि का ज़िक्र तो करते हैं किन्तु उन्हें आदिकाल के अंतर्गत स्थान नहीं देते। वे आरंभिक जैन रचनाओं काभी उल्लेख नहीं करते जो 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के तरह प्रामाणिक है। इन आधारों पर उनकी दृष्टि एक पक्षीय नजर आती है।
मध्यकाल का आरम्भ उन्होंने 1350 ई. से माना है। मध्यकालीन परम्पराओं को उन्होंने तीन अवांतर भेदों में समाहित किया है (क) पूर्व मध्यकाल या उत्कर्ष काल (ख) मध्यकाल या चरमोत्कर्ष काल (ग) उत्तर मध्यकाल या अपकर्ष काल। उन्होंने मध्यकाल के अंतर्गत आश्रय भेद के कारण ग्यारह काव्य परंपरा का आकलन किया जो तीन तरह से विभाजित हैं –

1. धर्माश्रित काव्य
2. राजाश्रित काव्य
3. लोकाश्रित काव्य

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त का मानना है कि मध्यकालीन चेतना कमोबेश एक ही रही है। संतकाव्य, प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य, वीरकाव्य, रीतिकाव्य की धाराएँ पूरे मध्यकाल में प्रवाहित होती रहीं। पर यह मत भी विद्वानों को मान्य नहीं है। यह ठीक है कि संतकाव्य, प्रेमाख्यान काव्य, राम और कृष्ण काव्य धाराएँ पूरे मध्यकाल में प्रवाहित होती रहीं किन्तु 17वीं शताब्दी के आते-आते मुख्य प्रवृत्ति बदल गई थी। भक्ति के स्थान पर अलंकरण और शृंगार-विलास का प्राधान्य हो गया था। इसके काव्य की चेतना और काव्य के रूप में स्पष्ट अंतर आ गया था। इसलिए मध्यकाल को प्रवृत्तियों के आधार पर दो कालों भक्ति और रीति में विभाजित करना जरूरी है। साथ ही गणपतिचंद्र गुप्त का आरंभिक काल के उत्तर मध्यकाल को 'अपकर्ष काल' कहना उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि यह काल कला की दृष्टि से उत्कर्ष-काल रहा है।

बोध प्रश्न –

- मिश्रबंधु ने आदिकाल के संबंध में क्या तर्क दिया ?

आधुनिक काल का प्रारंभ 19वीं शताब्दी के मध्य से माना जाता है। जबकि गणपति चन्द्र गुप्त 1857 की क्रांति से आधुनिक काल का प्रारंभ मानते हैं। उन्होंने आधुनिकता की शुरुआत '1857 की क्रांति' को माना।1857 की क्रांति भारतीय इतिहास की एक बड़ी घटना है। यह क्रांति मध्यकालीन युग की समाप्ति और आधुनिक युग के प्रारंभ की सूचक है। आधुनिक काल के

विभाजन में गणपतिचंद्र गुप्त ने परंपरा का ही पालन किया है –(क) भारतेंदु युग (ख) द्विवेदी युग (ग) छायावाद युग (घ) प्रगतिवाद युग (ङ) प्रयोग युग। समस्या यह है कि गणपतिचंद्र गुप्त के इस तरह के काल विभाजन में विधा, वस्तु, भाषा, प्रवृत्ति, शैली आदि कई आधार लक्षित होते हैं। साथ ही उनके द्वारा किया गया काल विभाजन काव्य को आधार बना कर किया गया है। इसमें एक तरह से गद्य साहित्य के विकास को नहीं दिखाया गया है। इस तरह देखें तो उन्होंने भले वैज्ञानिक इतिहास लिखने की कोशिश की किन्तु यह वैज्ञानिक न होकर अवैज्ञानिक हो गया है।

गणपति चन्द्र गुप्त स्वयं के विभाजन से संतुष्ट नहीं थे। उनका कथन है कि –"एक तो यह केवल कविता की दृष्टि से किया गया है। इस युग के गद्य-साहित्य के साथ इसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। दूसरे, इस युग में अनेक काव्य परम्पराएं एवं गद्य की विधाएँ साथ-साथ विकसित होती हैं जबकि उपर्युक्त विभाजन इस स्थिति के प्रतिकूल है। अतः आधुनिक काल की सामग्री को कालखंडों की अपेक्षा साहित्य रूपों एवं काव्य परम्पराओं में ही वर्गीकृत करना अधिक उचित होगा।"

बोध प्रश्न –

- गणपति चन्द्र गुप्त के काल विभाजन का क्या आधार है ?

2.4 पाठ सार

काल विभाजन, नामकरण और सीमांकन पर विस्तृत चर्चा के उपरांत साहित्य में उसकी उपयोगिता को समझ सकेंगे। साथ ही यह भी जान पाएँगे कि काल विभाजन करते समय इतिहासकार को उस युग की परिस्थितियों, परम्परा का ज्ञान, लोगों की चित्तवृत्ति तथा उस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। बिना इन सब के ज्ञान के काल विभाजन निसार हो सकता है। काल-विभाजन करते समय यह भी ध्यान रखना होता है कि प्रत्येक युग का नामकरण उस काल का द्योतक होना चाहिए। इससे आपको यह भी पता लग गया होगा कि काल विभाजन और नामकरण का कोई एक आधार नहीं होता इसके कई आधार हो सकते हैं। किस तरह इतिहासकार नामकरण के बल पर उस समग्र काल खण्ड को पाठक के समक्ष सहज रूप से प्रस्तुत करने के लिए अनेक दृष्टि अपनाते हैं इसका भी आपको अंदाजा लग गया होगा। अंत में यह कहना आवश्यक है कि भले ही अनेक हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने काल विभाजन और उचित नामकरण के प्रयासरत किये हों। किन्तु काल विभाजन, नामकरण और सीमांकन पर बात करते हुए शुक्ल के काल विभाजन को छोड़ कर बात करना असंभव ही है क्योंकि बाद के इतिहासकारों ने उसे ही आधार पुस्तिका के रूप में ग्रहण कर काल विभाजन किया है।

2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं

1. काल विभाजन का लक्ष्य इतिहास की परिस्थितियों के सन्दर्भ में घटनाओं और प्रवृतियों के विकास का संकेत देना होता है।
2. काल विभाजन्म के कई आधार हैं- जैसे- प्रवृत्ति परक, भाषाई, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक आदि।
3. हिंदी साहित्य के इतिहास का सर्वाधिक स्वीकृति काल विभाजन और नामकरण रामचंद्र शुक्ल के इतिहास पर आधारित है।
4. मोटे तौर पर हिंदी साहित्य के आरंभिक काल को आदिकाल तथा नवजागरण के समय से अबतक को आधुनिक काल कहा जाता है।
5. आदिकाल और आधुनिक काल के बीच के लबे कालखंड को मध्यकाल कहा जाता है इसके पहले हिस्से को पूर्व मध्यकाल और बाद के हिस्से को उत्तर मध्यकाल कहा जाता है।
6. प्रमुख साहित्यिक प्रवृति के आधार पर पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल तथा उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल कहा जाता है।
7. आधुनिक काल में परिस्थितियाँ और प्रवृतियाँ बहुत तेजी से बदली, इसलिए इसके कई उपविभाग है : जैसे – भारतेंदु युग (नवजागरण काल), द्विवेदी युग (जागरण सुधार काल), छायावाद युग, प्रगतिवाद युग, प्रयोगवाद युग, नवलेखन काल।

2.6 शब्द-संपदा

1. वर्तुलाकार दृष्टि : भारतीय इतिहास दृष्टि जिसमें समय सीधे नहीं चलता गोलाई में चला है। जीवन एक वृत्ताकार यात्रा है बीज से बीज तक। बीज शुरू होता है और अंततः बीज तक पहुँच जाता है, यही समय की चक्रियता है।

2. रेखीय दृष्टि: पश्चिम की इतिहास दृष्टि रेखीय है नदी की तरह। एक बिन्दु से चलती है और दूसरी जगह चली जाती है और फिर कहीं वापस लौटना नहीं है।

3. औपनिवेशिक दृष्टि : साम्राज्यवादी देश या मुल्क आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक नियंत्रण के तहत अधीन मुल्क/देश के इतिहास, भाषा, संस्कृति और शिक्षा व्यवस्था को विद्रूपित करता है। अफ़्रीकी विचारक थुन्गु साम्राज्यवाद की आरंभिक लड़ाई के तीन चरण बताते हैं- पहला बारूद, दूसरा ब्लैक बोर्ड यानी शिक्षा और उपनिवेश की संस्कृति को नष्ट करना।

4. राष्ट्रवादी दृष्टिकोण : पराधीन मुल्क द्वारा अपनी स्वाधीनता और स्वत्व को पाने के लिए किए गये संघर्ष और विविध प्रयास जो साम्राज्यवादी देश के एनकाउंटर के रूप में देखे जाते हैं।

5. अपभ्रंश: मध्यकालीन आर्यभाषा के अंतिम चरण में बोली जाने वाली भाषा (500 ई. से 1000 ई.)।

2.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में काल-विभाजन और नामकरण की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए।
2. रामचंद्र शुक्ल के पूर्व इतिहास ग्रंथों की सीमाओं पर प्रकाश डालिए।
3. रामचंद्र शुक्ल के बाद लिखे गए इतिहास ग्रंथों पर प्रकाश डालिए।
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा किए गए काल-विभाजन का विवेचन कीजिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का काल विभाजन किस आधार पर किया है ? संक्षिप्त रूप से चर्चा करें।
2. मिश्रबंधुओं के काल बिभाजन की सीमाओं का विवेचन कीजिए।
3. रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल को वीरगाथा काल क्यों कहा ? स्पष्ट कीजिए।
4. आधुनिक काल को किस विद्वान ने गद्य काल कहा है और क्यों ? इस पर टिप्पणी लिखिए।
5. गणपतिचंद्र गुप्त ने हिंदी साहित्य के इतिहास को कितने कालों में विभाजित किया है ? प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1. हिंदी का पहिला साहित्येतिहास ग्रंथ _____है। ( )

   (अ)मिश्रबंधु विनोद (आ) शिवसिंह सेंगर
   (इ)हिंदी साहित्य का इतिहास (ई) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास

2. किस विद्वान ने आदिकाल को वीरगाथा काल कहा ? ( )
   (अ) गार्सं द तासी (आ) शिवसिंह सेंगर
   (इ) मिश्रबंधु (ई) रामचंद्र शुक्ल

3. रामकुमार वर्मा ने पुए हिंदी साहित्य को कितने भागों में बाँटा है ? ( )
   (अ) 4 (आ)5 (इ) 6 (ई) 11

4. आदिकाल को चारण काल किसने कहा ? ( )
   (अ) शिवसिंह सेंगर (आ) ग्रियर्सन (इ) रामचंद्र शुक्ल (ई) मिश्रबंधु

5. किसके इतिहास ग्रंथ में संधिकाल का नामकरण प्राप्त होता है ? ( )

(इ) रामचंद्र शुक्ल (आ) ग्रियर्सन

(इ) रामकुमार वर्मा (ई) हजारी प्रसाद द्विवेदी

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान के लेखक __________ हैं।

2) समय सीमा निर्धारण के लिए ग्रियर्सन ने __________ के रचनाकर्म को आधार बनाया।

3) आधुनिक काल को शुक्ल जी ने __________ काल कहा।

4) हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास के रचनाकार __________ है।

5) गणपतिचंद्र गुप्त ने __________ की क्रान्ति से आधुनिक काल का आरंभ माना है।

III सुमेल कीजिए।

1.	आदिकाल	(अ) रीतिकाल
2.	पूर्वमध्यकाल	(ब) गद्य काल
3.	उत्तर मध्यकाल	(क) भक्तिकाल
4.	आधुनिक काल	(ड) वीरगाथा काल

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं.डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रथम खंड : गणपति चन्द्र गुप्त
3. साहित्य और इतिहास दृष्टि : मैनेजर पाण्डेय

इकाई -3 : आदिकाल की परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ

रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मूल पाठ : आदिकाल की परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ
3.3.1 आदिकालीन परिस्थितियाँ
3.3.2 आदिकालीन प्रवृत्तियाँ
3.4 पाठ सार
3.5 पाठ की उपलब्धियाँ
3.6 शब्द संपदा
3.7 परीक्षार्थ प्रश्न
3.8 पठनीय पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

हिंदी के आरंभिक काल को 'आदिकाल' कहते हैं। इस का काल विक्रम संवत् 1050 से 1375 (1000-1400 ई.) तक है। आदिकाल को 'वीरगाथा काल 'भी कहा गया है क्योंकि इस काल में वीर रस से ओत-प्रोत रचनाएं लिखी गईं लेकिन इस काल में मात्र वीर काव्य ही नहीं शृंगार एवं लोक कथाओं पर आधारित रचनाएं भी लिखी गईं। वस्तुत: हिंदी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का आरंभ इस काल से शुरू हुआ इसलिए इसे 'आदिकाल' कहा गया।

3.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों! इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- आदिकालीन परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के बारे में जान सकेंगे।

3.3 मूल पाठ : आदिकाल की परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ

3.3.1 आदिकालीन परिस्थितियाँ

राजनीतिक-परिस्थिति

आदिकालीन राजनीति के सन्दर्भ में लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि- 'तत्कालीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने में सामंती प्रथा का काफ़ी हाथ रहा। अपने देश में साम्राज्य की नींव मंडलों पर आधारित थी। मंडलों के शासक स्थानीय हुआ करते थे। वे स्थानीय शासक, सम्राट की सैनिक सहायता किया करते थे। मध्ययुगीन अराजकतापूर्ण

परिस्थिति में सामंतवादी प्रथा को प्रोत्साहन प्राप्त होना आश्चर्यजनक नहीं माना जा सकता। जनता भी इन्हीं स्थानीय शासकों, सामंतों का मुँह देखने लगी और संपूर्ण साम्राज्य या देश के व्यापक हित के प्रतिभक्ति कम हो गई। इससे सैनिक शक्ति क्षीण हुई और देश अनेक राज्यों में बँट कर एकरूपता और संगठन खो बैठा। सामंतगण क्षुद्र स्वार्थों में लीन होकर, पशुबल और आतंक का सहारा लेते हुए जनता के कल्याण की बात भूल गये। उनके स्थान पर प्रांतीयता और स्थानीयता की भावना प्रबल होती गई। राजनीतिक उदासीनता के कारण राजवंशों का परिवर्तन जनता को प्रभावित न कर पाता था। यहाँ तक कि विदेशी राजवंशों को स्वीकार करने में भी उसे संकोच न होने लगा। जनता की दृष्टि अपनी सुरक्षा और जीविका तक ही सीमित रह जाती थी। इन्ही कारणों से हमें इस काल में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की व्यापक भावना का अभाव मिलता है। यह भारत वासियों की राष्ट्रीय एवं मानसिक क्लान्ति का ही परिणाम था कि देश में मध्ययुगीन विदेशी आक्रमणकारियों का शासन दीर्घकालीन सिध्द हो सका। '

इस काल तक भारत में केंद्रीय शासन समाप्त हो गया था और छोटे- छोटे राज्यों का जन्म हो गया था। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद पूर्वी भारत के पालवंश, राजस्थान के गुर्जर-प्रतिहार तथा महाराष्ट्र-कर्नाटक के राष्ट्रकूट राजाओं में आपसी संघर्ष बढ़ने लगा। मध्यप्रदेश पर चंदेल वंश, कलचुरि वंश, चौहान वंश, परमाल वंश और चालुक्य निरंतर आपस में युद्ध करते रहे। राजनीतिक एकता की कमी के इसी वातावरण में तुर्कों के आक्रमण हुए। महमूद ग़ज़नवी और मुहम्मद गोरी ने इस देश पर अनेक बार आक्रमण किया। इसी कालखण्ड में देश में गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश आदि उभरे। इन वंशों ने इस देश के जनमानस को प्रभावित किया। राजसत्ता, धर्म और समाज में नए बदलाव के बिन्दु उभरे। इस बदलाव देश की शासन प्रणाली और जीवन-संस्कृति में अपना मुक़ाम हासिल कर लिया। यहाँ 'हिन्दू –तुर्क' (तुरक) का संघर्ष एक महत्त्वपूर्ण लोक गाथा को जन्म देता है। इस दौर में सत्ता प्राप्ति एक अभियान है जिसके रथ पर हर वर्ग और हर मत के लोग आरूढ़ होना चाहते हैं। ऐसे दौर में राजनीतिक तंत्र सामन्ती जीवन प्रणाली से केन्द्रीकृत दिशा की ओर उन्मुख होता है। एकता के अभाव में एकीकरण के प्रयास इस दौर में देखे जा सकते हैं।

बोध प्रश्न –

- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने में किसका हाथ रहा ?

धार्मिक-परिस्थिति

धर्म भारतीय संस्कृति का एक अपरिहार्य अंग है। हिंदी साहित्य का आदिकाल धार्मिक उथल-पुथल का युग था। इस काल में वैदिक धर्म की कुछ-कुछ परंपरा बनी हुई थी। ब्राह्मण धर्म पाशुपत (शैव), वैष्णव और शाक्त आदि धार्मिक और दार्शनिक संप्रदायों में विभक्त हो रहा था। इस काल में भारतीय जीवन में विभिन्न धार्मिक मत-मतान्तरों का प्रचार था। जैन, वैष्णव, शैव,

शाक्त आदि संप्रदायों की प्रतिद्वंद्विता राष्ट्रीय शक्ति को कमजोर कर रही थी। ये धर्म मनुष्य की सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति के साधन बनने के स्थान पर विच्छेद-भाव उत्पन्न करने के साधन बन रहे थे। जैन धर्म निवृत्ति मूलक और श्रमण-प्रधान धर्म था। उसने अहिंसा, आचार और मोक्ष के साधनों पर विशेष बल दिया। इस का क्षेत्र-विस्तार राजस्थान, गुजरात, मालवा और दक्षिण के कुछ राज्य में था। यह धर्म भी दो शाखाओं श्वेताम्बर और दिगंबर में विभक्त हो गया। बाद में इनकी भी अनेक उपशाखाएँ बन गई। सूफियों के आगमन से भारतीय अद्वैतमत और इस्लाम के एकेश्वरवाद के मध्य धार्मिक सद्भाव का वातावरण निर्मित हुआ। बाद में, इस मत के विचारों ने निर्गुण रचनाकारों को प्रभावित किया।

डॉ. विकास दिव्य कीर्ति ने आदिकालीन धार्मिक स्थिति को इस प्रकार बताया है कि- 'वेदांत, बौद्ध और जैन मत की भिन्न-भिन्न प्रांतों में विभिन्न शाखाएं दिखाई देने लगीं। बौद्धमत, मंत्रयान और हीनयान में विभाजित हो गया था। कालांतर में इन्हीं से सहजयान, मंत्रयान और वज्रयान आदि उभरे। शैव, शाक्त और वैष्णव आचार्यों ने अनेक मतों-सिद्धांतों का प्रचार किया। शाक्तमत में बुद्ध को शिव और तंत्र मत को मिलाकर ब्रह्म और शक्ति को एकाकार कर लिया। पूजा, स्वर्ग, देवता, स्त्री-पुरुष, शरीर स्थितचक्र, शास्त्र, मंत्र, मुद्रा, साधना, उपासना आदि की छाप पड़ी थी।'

बोध प्रश्न –

- जैन धर्म में क्या प्रधान था ?
- जैन धर्म में किस पर विशेष बल दिया जाता है ?

सामाजिक-परिस्थिति

इस काल का सामाजिक संगठन धर्म से प्रभावित था। वर्ण-व्यवस्था की जड़ें और मजबूत हो गईं। ब्राह्मणों का शिक्षा पर एकाधिकार हो गया। इस काल में जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था विकृत हो गई थी, उसी प्रकार आश्रम धर्म का ह्रास हो गया था। इसमें व्यक्ति के उत्थान के स्थान पर दिखावा मात्र रह गया था। प्रमुख धर्म शास्त्रीय ग्रन्थ 'मिताक्षरा' (याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका) से तत्कालीन पारिवारिक व्यवस्था का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। परिवार सम्मिलित, पितृसत्तात्मक और पितृस्थानीय था और उसके सदस्यों की संख्या काफ़ी अधिक रहती थी। वैवाहिक संबंध प्रायः अविच्छिन्न ही रहते थे। इस समय का सामाजिक इतिहास यह बताता है कि छुआछूत और जातिभेद धर्म के आवश्यक तत्त्व समझे जाने लगे थे। भारतीय समाज व्यवस्था सामाजिक और धार्मिक दुर्बलताओं से ग्रस्त थी। ऐसे दौर में मुसलमानों ने अपना साम्राज्य विस्तार किया। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात बाल-विवाह

की प्रथा ने जोर पकड़ा। इस के ठोस सामाजिक कारण थे। पर्दा-प्रथा का प्रचलन भी इस दौर में शुरू हुआ। इससे पूर्व भारतीय समाज और कलाओं में शुद्ध यौनाचार पर बल दिया जाता था। इस को खजुराहो और अजंता-एलोरा के स्थापत्य में देखा जा सकता है। समाज की दृष्टि शृंगार से वीरता की ओर उन्मुख हुई। अत: इस युग में धर्म, वीरता और शृंगार को आधार बनाकर अधिकांश काव्य रचे गए।

बोध प्रश्न –

- मुसलमान आक्रमणों के कारण भारतीय समाज में क्या फैला ?

साहित्यिक-परिस्थिति

आदिकालीन साहित्य विविध भाषाओं में लिखा जा रहा था। इस काल खंड में संस्कृत साहित्य की साहित्यिक परंपरा भी विकसन शील रही है। प्राकृत को छोड़कर अपभ्रंश के उदय का यह काल खंड है। जैन-साहित्य इस मत की पुष्टि करते हैं। देश-भाषा काव्य उस समय का वास्तविक साहित्यिक-यथार्थ था। इस के अंतर्गत 'आल्हाखंड' को देखा जा सकता है। सिद्धों के साहित्य की भाषा जनोन्मुखीया उस समय की जन-भाषा थी। इस लिए इस दौर को डॉ. नामवर सिंह भारतीय जन-भाषाओं के उदय के नाम से अभिहित करते हैं। नाथों के यहाँ प्रादेशिक और स्थानीय जन-भाषा को हम देख सकते हैं। चंदबरदाई के यहाँ डिंगल-पिंगल युक्त भाषिक समावेशन को देखा जा सकता है। सूफियों के आगमन से विभिन्न भाषाई परिवारों के सामाजिकों के मध्य सांस्कृतिक संगम भी इसी काल खंड की देन है। अमीर खुसरो के यहाँ ब्रज, खड़ी बोली ('हिन्दवी' का काव्य-गोपीचंद नारंग के अनुसार) और फारसी का साहित्यिक और सांस्कृतिक संगम हम देख सकते हैं। विद्यापति के यहाँ गेय प्रधान, गीति-परंपरा के अंतर्गत मैथिली और अवहट्ठ अर्थात देशी भाषा की विविधता को देख सकते हैं। उपरोक्त भाषिक विविधता साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन संस्कृतियों को साहित्य में दर्ज कर रही थी। हिंदी साहित्य के आदिकाल को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित आरेख के आधार पर विभक्त किया जा सकता है-

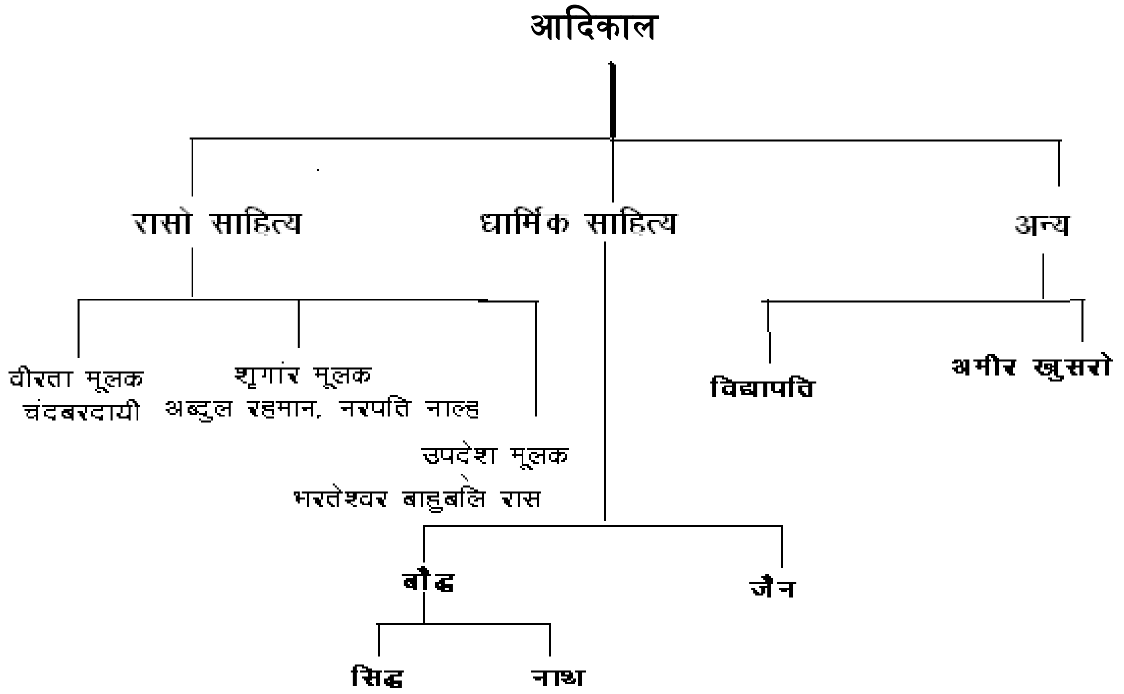

बोध प्रश्न –

- सिद्धों की साहित्यिक भाषा कैसी थी ?

3.3.2 आदिकालीन प्रवृत्तियाँ

हिंदी-साहित्य का आदिकाल भले ही राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ, सामाजिक दृष्टि से दीन हीन तथा धार्मिक दृष्टि से असंतुलित रहा किन्तु आदिकालीन साहित्य कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त संपन्न रहा। इस युग में एक ओर जहाँ सिद्धों, नाथ योगियों और जैन कवियों के द्वारा आध्यात्मिक और रहस्यात्मक साहित्य लिखा गया वहीं दूसरी ओर चारण कवियों के द्वारा वीरगाथात्मक एवं शृंगारपरक साहित्य लिखा गया। आदिकालीन साहित्य जन जीवन के विविध अनुभूतियों को लेकर प्रकट हुआ था। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार 'वह एक भीड़ का सायास लिखित साहित्य नहीं है, अपितु एक सचेतन समाज की सहज स्थितियों से उत्पन्न साहित्य है। यही कारण है कि उसमें जीवन की विभिन्न दशाओं और स्वछन्द प्रवृत्तियों के विविध चित्र मिलते हैं '। इस काल की प्रवृत्तियाँ निम्न लिखित हैं-

बोध प्रश्न –

- आदिकालीन साहित्य किन दृष्टियों से संपन्न रहा ?

1. आश्रयदाताओं की प्रशंसा

इस काल के अधिकांश साहित्य की रचना राज्याश्रित कवियों के द्वारा हुई है। इस काल के कवियों ने अपने-अपने आश्रय दाताओं की खूब प्रशंसा की है। डॉ. श्यामसुंदर दास इस सम्बन्ध में लिखते हैं- "राजाश्रित कवियों की वाणी अपने स्वामियों के कीर्ति-कथन में कभी कुंठित नहीं हुई।" अपने आश्रयदाताओं को ऊँचा दिखाना तथा विरोधियों को नीचा दिखाना इनका कर्तव्य था। इसलिए अपने आश्रयदाताओं को सर्वश्रेष्ठ वीर, पराक्रमी, सम्राट, अनुपम दानवीर, दृढ़ प्रतिज्ञ सिद्ध कर उनका अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। उस के साथ-साथ कहीं उनके आश्रयदाता रुष्टन हो जाए इस भय से उन्होंने उनकी पराजय और कायरता को नहीं दिखाया। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार- "कवि का आदर्श अधिकतर अपने चरित नायक के गुण वर्णन तक सीमित रहता था।" स्वर्ण मुद्रा और पद को बचाए रखने के लालच में आकर कवियों ने राजाओं का झूठा यशोगान भी कर डाला था। परिमाणतः इस काल की अधिकांश रचनाएँ स्तुतिगान बन कर रह गयीं।

'पृथ्वीराज रासो' के भाग दो से पृथ्वीराज की सेना का वर्णन स्तुतिगान ही अधिक लगता है। जैसे- चढ्यौ साहि साहबकरि जुध्द साजं।
करी पंच फौजं सुभं तथ्थ राजं।।
बरं मद्द वारे अकारे गजानं।
हलै रत्त चौंसठ्ठ बैरत्त बानं।। ('पृथ्वीराज रासो' भाग- दो, पृ. सं. 116)

बोध प्रश्न –

- कवि आश्रयदाता राजाओं का झूठा यशोगान क्यों करते थे ?

2. ऐतिहासिकता का अभाव

इस युग में ऐतिहासिक व्यक्तियों के आधार पर चरित काव्य लिखने की परंपरा का चलन हो गया था। जैसे- 'पृथ्वीराज रासो', 'परमाल रासो', 'कीर्तिलता' आदि। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- 'हिंदी साहित्य में धार्मिक और ऐतिहासिक चरितों की उन प्रवृत्तियों का विकास होता दिखाई देता है, जो भक्तिकाल में 'रामचरित मानस' एवं 'पद्मावत' जैसे महा काव्यों के रूप में समृद्ध हुई।' किन्तु समस्या यह रही कि इस दौर में इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों को तो लिया गया किन्तु उनका वर्णन शुद्ध इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरा। इन कवियों के द्वारा दिए गए संवत और तिथियाँ इतिहास से मेल नहीं खाते साथ ही संस्कृत काव्यों में दिए गए संवतों और घटनाओं से भी इनका मेल नहीं बन पाता। इन काव्यों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का बाहुल्य था। शिवकुमार शर्मा के अनुसार- "इतिहास के विषय को लेकर चलने वाले से जो

सावधानी अपेक्षित होती है, वह इन काव्य निर्माताओं में नहीं। अतिरंजनापूर्ण शैली इस दिशा में एक ओर महाव्याघात सिद्ध हुई है। इन चारण कवियों को अपने आश्रयदाताओं को राम, कृष्ण, नल, युधिष्ठिर आदि से उत्कृष्ट बताना एवं सर्व विजेता घोषित करना अभिप्रेत था, अतः इतिहासको अतिश्योक्ति तथा कल्पना पर न्यौछावर कर दिया।"

डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी इस सम्बन्ध में लिखा कि "यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओंका विवरण भी उसमें प्राप्त होता है, पर उसका विस्तार और वर्णन कल्पना के सहारे ही किया जाता था। तिथि पर भी कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।" उदाहरण के तौर पर देखें तो 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज को उन राजाओं का भी विजेता कहा गया जो कई शताब्दियों पूर्व अथवा पश्चात विद्यमान थे। डॉ. नामवर सिंह ने भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि से इन ग्रंथों को देखने की हिदायत दी है।

बोध प्रश्न –

- आदिकालीन काव्यों में किसका बाहुल्य था ?

3. संदिग्ध रचनाएँ

इस काल में उपलब्ध होने वाली प्रायः सभी वीरगाथाओं की प्रामाणिकता संदेह की दृष्टि से देखी जा सकती है। इस का मुख्य कारण रचनाओं की भाषा, शैली और विषय सामग्री में निरंतर परिवर्तन है। इन रचनाओं में इतनी प्रचुर मात्रा में परिवर्तन हुए कि इस का मूल रूप ही कहीं खो गया। अब यह कहना भी मुश्किल है कि इन रचनाओं को आश्रयदाता के समय में या उसके परवर्ती समय में लिखा गया। जैसे- 'खुमाणरासो' में 16वीं शताब्दी तक के तथ्य समाविष्ट कर लिए गए हैं। 'परमाल रासो' का रूप 'आल्हा-खंड' से कितना बदला हुआ है। 'पृथ्वीराज रासो' की भी यही स्थिति है। किन्तु 'बीसलदेव रासो' लघु होने के कारण इस में अपेक्षा कृत अधिक परिवर्तन नहीं हुए हैं। इस लिए इन ग्रंथों की प्रामाणिकता संदिग्ध जान पड़ती है।

बोध प्रश्न –

- कुछ संदिग्ध रचनाओं के नाम बताइए.

4. युद्धों का सजीव चित्रण

युद्धों का सजीव चित्रण इसकाल के ग्रंथों का प्रमुख विषय रहा, इसका कारण यह था कि आदिकालीन कवि अपने आश्रयदाताओं की केवल प्रशंसा राजदरबार में ही नहीं करते थे बल्कि उनके साथ युद्ध-क्षेत्र में जाते थे। आवश्यकता पड़ने पर समर स्थल में युद्ध तक करते थे। इसलिए इनके द्वारा वर्णित युद्ध-वर्णन सजीव, मार्मिक और यथार्थ बन पड़े हैं। उनके द्वारा लिखित काव्य कर्कश पदावली तथा वीर रस से ओत प्रोत रहते थे। उनका उस समय एक मुख्य कार्य था कि

उनके आश्रयदाताओं को युद्ध के लिए उत्तेजित करना। जिससे उनके आश्रयदाता भाव विभोर हो उठते थे, उत्साह और साहस से पूर्ण हो कर वे युद्ध किया करते थे। किन्तु इस सब के इतर यह बताना भी आवश्यक है कि इस समय अधिक लड़ाई स्त्रियोंके लिए भी हुआ करती थी। इसलिए चारण कवियों ने काव्य में नारी को कल्पित कर काव्य-सृजन किया है। बहरहाल हिंदी के प्रारंभिक युग का यह काव्य हिंदी साहित्य में अद्वितीय रहा।

बोध प्रश्न –

- आदिकाल के ग्रंथों का प्रमुख विषय क्या है ?

5. संकुचित राष्ट्रीयता

इस समय राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाताओं को ही सर्वापरि और श्रेष्ठमान के कारण उनकी राष्ट्रीय भावना आश्रयदाताओं के छोटे-छोटे राज्य तक ही सीमित हो गई थी। इस लिए उनके साहित्य में समग्र राष्ट्र के लिए प्रेम दिखाई नहीं देता। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उस समय राष्ट्र जैसी अवधारणा से वे परिचित हीन थे। उनके लिए राष्ट्र भारत के छोटे-छोटे राज्य तक की सीमित थे। इसलिए देश द्रोही जयचंद के गुणानुवादक भी विद्यमान थे। अजमेर और दिल्ली के राज-कवि को कन्नौज अथवा कालिंजर के समृद्ध अथवा उजाड़ हो जाने पर कोई हर्ष या विषाद नहीं था। इस दौर के 'जयचंद प्रकाश' और 'जयमयंक जसचन्द्रिका' में इसका पुट देख सकते हैं।

बोध प्रश्न –

- इस काल की रचनाओं में राष्ट्र प्रेम क्यों दिखाई नहीं देता ?

6. धार्मिक और उपदेशात्मक साहित्य की प्रमुखता

इस दौर में धार्मिक और उपदेशात्मक साहित्य की प्रमुखता रही है। जैसे- सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य। इस साहित्य में धार्मिकता का पुट अवश्य था किन्तु इन्हें शुद्ध धार्मिक साहित्य नहीं कहा जा सकता। क्यों कि इस साहित्य में पाखंड और आडम्बर का विरोध भी देखा जा सकता है। जैसे-

"जई णग्गा होई मुत्ति, ता शुणह सियालह
लोमुपाड़णे अत्थी सिद्धि, ता जुबई णिहमुह।"(सिद्ध साहित्य)

अर्थात नग्न रहने पर अगर मुक्ति मिलती तो सबसे पहले कुत्ते और सियार को मुक्ति मिलती, अगर बाल निकालने पर मुक्ति मिलती तो सबसे पहले युवतियों को ..पूँछ रखने पर अगर मुक्ति मिलती तो हाथी और घोड़े को मुक्ति मिलती ..।

साथ ही इस साहित्य में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति भी देखी गई है। उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति के कारण इस साहित्य में रुक्षता भी प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न –

- आदिकालीन साहित्य की कुछ प्रवृतियों का उल्लेख कीजिए ?

7. जनजीवन की अनुभूति तथा उपेक्षा

इस काल में एक ओर जहाँ सिद्ध और नाथ साहित्य में जन जीवन की अनुभूतियों का चित्रण है तो वहीं दूसरी ओर रास और रासो ग्रंथों में जन जीवन की उपेक्षा है। इन रास और रासो ग्रंथों में सामंती जीवन उभरकर आता है जिनका आम जीवन के साथ कोई सम्पर्क नहीं है। वीरगाथात्मक तथा रीतिग्रंथ के कवियों ने स्वान्तः सुखाय को महत्त्व दिया।

बोध प्रश्न –

- इन कवियों ने किसे महत्त्व दिया?

8. प्रकृति चित्रण

इस युग के साहित्य में प्रकृति का आलंबन और उद्दीपन रूप दोनों ही उपस्थित होता है। इस दौर की रचनाओं में नगर, नदी, पर्वत आदि का वर्णन भी बहुत सुन्दर ढंग से हु है। प्रकृति का अधिकतर प्रयोग उद्दीपन रूप में किया गया।

बोध प्रश्न –

- इस युग के साहित्य में प्रकृति किस रूप में उपस्थित है ?

9. काव्य के रूप

आदिकालीन रचनाएँ प्रबंध और मुक्तक दोनों रूपों में मिलती हैं। प्रबंधकाव्य का सबसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्ध ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' है जब कि प्राचीन मुक्त कग्रन्थ 'बीसलदेव रासो' है। इस समय की कुछर चनाएँ अप्रामाणिक और कुछ अर्ध-प्रामाणिक और कुछ नोटिस मात्र हैं। भट्ट के दार का 'जयचंद प्रकाश' तथा मधुकर का 'जयमयंक जस चन्द्रिका' दोनों ही नोटिस मात्र हैं। इनका उल्लेख मात्र ही 'राठौड़ां री ख्यात' में मिलता है।

इन दो रूपों के अतिरिक्त फुट कर रूप में गद्य लिखे जाने के भी संकेत मिलते हैं। 'राउल वेल', 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' तथा 'वर्ण रत्नाकर' आदि इस प्रकार के ही ग्रन्थ हैं। अतः इन धाराओं से गद्य धारा की अखंडता सूचित होती है।

बोध प्रश्न –

- प्रबंध काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ का नाम बताइए।

10. वीर और शृंगार रस का समन्वय

इस काल की एक प्रमुख विशेषता वीर और शृंगार रस का समन्वय है। इस दौर में वीर रस का इतना सुन्दर चित्रण हुआ है कि जो परवर्ती हिंदी साहित्य में देखना दुर्लभ है। जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया गया कि उस समय स्त्रियों और भूमि के लिए ही प्रायः युद्ध होते थे। पारस्परिक कलह का मुख्य कारण स्त्री का रूप ही हुआ करता था। इस लिए वीरगाथात्मक साहित्य में उन के रूप का वर्णन करने के कारण शृंगार रस का प्रयोग देखने को मिलता है। इस लिए वीर और शृंगार का प्रयोग एक साथ ही देखा गया है। किन्तु यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि रासो ग्रंथों में चर्चित नर-नारी प्रेम, वासना से ऊपर नहीं उठ पाया है। वीर रस को जागृत करने के लिए लिखे गए वीरता के पद भी वासनात्मक प्रवृत्ति को उत्तेजित करने हेतु लिखे गए। डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार 'उक्त ग्रंथों में निरूपित युद्धों के मूल में उदात्त प्रेम भावना या राष्ट्रीयता का सहज उल्लास नहीं है। अस्तु! वीर और शृंगार जैसे दो विरोधी रसों का समावेश इस साहित्य में इतने सुन्दर ढंग से किया गया है कि कहीं भी विरोध आभासित नहीं होता।'

बोध प्रश्न –

- आदिकालीन साहित्य में किन रसों का समावेश हुआ है ?

11.छंदों का विविध मुखी प्रयोग

छंदों का जितना विविधता पूर्ण वर्णन इस युग के साहित्य में हुआ, उतना उनके पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं हुआ। इस दौर में ही दोहा जैसे छंद का पहली बार प्रयोग हुआ। जो इस दौर का सबसे प्रमुख छंद भी है। इस के इतर तोटक, तोमर, गाथा, गाहा, पद्धारी, आर्य, सट्टक, रोला आदि छंदों का कलात्मक प्रयोग किया गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं- 'रासो के छंद जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कम्पन उत्पन्न करते हैं।' रासों ग्रंथों के अध्ययन के दौरान पाया गया कि छंदों का इस प्रकार परिवर्तन कहीं भी अस्वाभाविक नहीं है।

बोध प्रश्न –

- कुछ छंदों के नाम बताइए।

12. डिंगल और पिंगल भाषा का प्रयोग

हिंदी साहित्य के आदिकाल और उस से पूर्व साहित्य की भाषा संस्कृत हुआ करती थी। इसी शिष्ट भाषा के विरोध में अपभ्रंश और मिश्रित भाषा में लिखना सचमुच एक सराहनीय कार्य रहा। इस काल की मुख्य भाषा डिंगल और पिंगल है। आदिकालीन हिंदी साहित्य में वीर रस की रचनाओं में डिंगल भाषा का प्रयोग होता है तथा कोमल भावों की अभिव्यंजना पिंगल भाषा में की जाती है। जहाँ डिंगल भाषा में बोलियों के कर्कश शब्दों को अपनाया गया था वहीं पिंगल

भाषा के प्रयोग में धीरे-धीरे कोमलकान्त शब्दावली का विकास हो रहा था। डिंगल की कर्कश शब्दावली सीमित थी, इस लिए इस भाषा के साहित्य का विस्तार न हो सका। पिंगल शैली लोक प्रिय होती चली गई और उस का ब्रज भाषा में विकास हुआ।

बोध प्रश्न –

- आदिकाल की मुख्य भाषा क्या है ?

3.4 पाठ सार

आदिकालीन हिंदी साहित्य परस्पर विरोधी परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों से उपजा है। आदिकालीन साहित्य में कोई एक प्रवृत्ति प्रधान नहीं थी। आदिकालीन प्रवृत्तियों का विकास परवर्ती मध्य कालीन साहित्य में देखा जा सकता है। इस काल के साहित्य में कई साहित्यिक परंपराओं का उदय देखा जा सकता है। अपभ्रंश से विकसित पुरानी हिंदी कैसे जन-भाषा के रूप में विकसित और स्थापित होती है इसे भी इस काल का साहित्य पुष्ट करता है। इस काल खंड के साहित्य पर धार्मिकता और ऐतिहासिकता दोनों का प्रभाव रहा है।

3.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. हिंदी साहित्य के आरंभिक काल को आदिकाल कहा जाता है।
2. इसे प्रायः वीरगाथा काल भी कहा जाता है लेकिन यह नाम इसकाल की केवल एक प्रवृत्ति द्योतक है अतः अव्याप्ति दोष से युक्त है।
3. आदिकाल की सामजिक आर्थिक राजनितिक और धार्मिक परिस्थियाँ परिवर्तन शील पतानोंमुख थी।
4. साहित्यिक दृष्टि से यह काल भारतीय जनभाषा के उदय का काल है।

3.6 शब्द संपदा

1. वीर काव्यपरंपरा: वीर शब्द मूलतः शूर अथवा योध्दा के लिए प्रयुक्त होता है, अतः वीर काव्य के अंतर्गत उन समस्त रचनाओं को सम्मिलित किया जाता है, जिनका आधार ऐतिहासिक घटनाएँ हैं, या जिनमें आश्रयदाताओं की कीर्ति, युध्द सज्जा, गर्वोक्तियाँ, युध्द एवं वीरतापूर्ण कार्य कलाप का चित्रण किया गया हो।
2. ऐतिहासिक महाकाव्य : ऐतिहासिक महाकाव्य वे हैं, जिनका कथानक इतिहास से लिया गया है, और जिनका घटना क्रम भी इतिहास सम्मत होता है पर जिनकी शैली शास्त्रीय महाकाव्य की होती है... परन्तु ऐसे काव्य जिनका लक्ष्य इतिहास क्रम का चरित नायक के जीवन वृत्त का सीधा वर्णन कर देना रहता है, और साथ ही जिसमें काल्पनिक घटनाओं और पात्रों का मनमाना उपयोग भी किया जाता है, ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य कहे जा सकते हैं। भारतीय ऐतिहासिक शैली के काव्य ही अधिक रहे हैं, जिनका उपजीव्य तथ्य से अधिक कल्पना है।

3. गाथा नाराशंसी : इतिहास-पुराण और गाथा नाराशंसी दोनों एक साथ ही प्रयुक्त हुए हैं।
4. प्रबंध काव्य : इसमें एक ही कथा होती है एवं एक छंद दूसरे छंद से जुड़ा होता है कि कथा का प्रवाह बना रहे, जैसे- महाकाव्य।
5. मुक्तक काव्य : इसमें लगातार चलने वाली कथा नहीं होती बल्कि प्रत्येक छंद स्वयं में पूर्ण होता है, जैसे- पद, मुकरी, पहेली आदि।
6. काव्यरूढ़ियाँ : कवियों द्वारा कथा कहने का विशेष ढंग, जैसे- शुक-शुकी संवाद, आकाशवाणी द्वारा कथा का विकास।
7. डिंगल : ओज गुण प्रधान बोली, राजस्थान में प्रचलित।
8. पिंगल: यह पश्चिमी हिंदी है जिसमें राजस्थानी, ब्रज का मिश्रण है।
9. चरित काव्य : किसी चरित्र विशेष के संबंध में लिखा गया काव्य।

3.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शोब्दों में दीजिए।

1.आदिकालीन परिस्थितियों की चर्चा कीजिए।

2. आदिकालीन प्रवृतियों की चर्चा कीजिए।

3. आदिकालीन साहित्यिक-परिस्थितियों की चर्चा विस्तारपूर्वक करें।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शोब्दों में दीजिए।

1.आदिकालीन राजनीतिकपरिस्थिति की चर्चा कीजिए।-

2. आदिकालीन सामाजिक परिस्थिति का संक्षिप्त रूप में विवेचन कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. हिंदी साहित्य के अंतर्गत धार्मिक उथल-पुथल का युग किसे कहा जाता है ?( )

   (अ)आदिकाल (आ) भक्तिकाल

   (इ) रीतिकाल (ई) आधुनिक काल

2. हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद किन-किन राज वंशों में आपसी संघर्ष बढ़ने लगा ? ( )

   (अ)चोल वंश (आ) पांड्य वंश

   (इ) खिलजी वंश (ई) पाल वंश

3. किसके आक्रमण के पश्चात बाल-विवाह की प्रथा ने जोर पकड़ा।

   (अ) खिलजियों (आ) तुगलको

(इ) मुसलमानों (ई) चालुक्यों

4. किस कालखंड में प्राकृत को छोड़ अपभ्रंश का उदय हुआ ? ( )

(अ) भारतेंदु युग (आ) आदिकाल

(इ) रीतिकाल (ई) भक्तिकाल

5. आदिकाल को किसने 'भारतीय जन-भाषाओं के उदय के नाम से अभिहित किया है ? ( )

(अ) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (आ) रामचंद्र शुक्ल

(इ) डॉ. नामवर सिंह (ई) ग्रियर्सन

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

1) पर्दा-प्रथा का प्रचलन _________ में शुरू हुआ।

2) सिद्धों के साहित्य की भाषा _________ थी।

3) _________ कवियों के द्वारा वीर गाथात्मक एवं शृंगारपरक साहित्य लिखा गया।

4) _________ संदिग्ध रचनाएँ हैं।

5) कवि का आदर्श अधिकतर अपने _________ के गुण वर्णन तक सीमितरहता था।

III. सुमेल कीजिए

1. जैन धर्म (अ) मुक्तक ग्रंथ
2. पृथ्वीराज रासो (आ) शैली
3. रोला (इ) श्रमण प्रधान
4. बीसलदेव रासो (ई) छंद
5. पिंगल (उ)प्रबंध काव्य

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां : डॉ. शिवकुमार शर्मा,
2. हिंदी साहित्य का नवीन इतिहास : डॉ. लालसाहबसिंह,
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल,
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल,

इकाई 4 : आदिकालीन साहित्य : सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य

रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मूल पाठ : आदिकालीन साहित्य : सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य

4.3.1 सिद्ध साहित्य

4.3.1.1 सिद्ध साहित्य की काव्यगत उपलब्धियाँ

4.3.2 नाथ साहित्य

4.3.2.1 नाथ साहित्य की उपलब्धियाँ

4.3.3 जैन साहित्य

4.3.3.1 जैन साहित्य की उपलब्धियाँ

4.4 पाठ सार

4.5 पाठ की उपलब्धियाँ

4.6 शब्द-संपदा

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

4.8 पठनीय पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि पर चर्चा की गयी है। इस इकाई में हम सिद्ध, नाथ, जैन और लौकिक साहित्य की विकास-यात्रा को समझने का प्रयास करेंगे।

आदिकालीन साहित्य हिंदी भाषा का प्रारंभिक साहित्य है। जिसमें सिद्ध, नाथ, जैन तथा लौकिक साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इनके साहित्य से परिचित होने से पूर्व यह जानना आवश्यक होगा की किन-किन परिस्थितियों के कारण इस तरह के साहित्य का विकास हुआ होगा? मध्यकालीन भारतीय समाज में धार्मिक पाखंड और रूढ़ियों का जब बोल-बाला रहा तब इन पाखंडों, कुरीतियों और रूढ़ियों को लेकर अनेक बार इनके खिलाफ़ आवाज उठी। सिद्धों, नाथों और जैनों के साहित्य में भी इन पाखंडों और रूढ़ियों के खिलाफ आवाज उठी, किन्तु समस्या यह रही कि इन्होंने भी धार्मिक चोला पहन कर रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध किया। इसलिए इनके साहित्य को भी धार्मिक साहित्य की कोटि का मान लिया गया। किन्तु आदिकालीन साहित्य के अध्ययन के दौरान ये पाया गया कि प्राचीन समय के लोगों की आध्यात्मिक चेतना और धर्म के प्रति आसक्ति ही प्रारंभिक साहित्य को परिपुष्ट करने का कार्य करती रही हैं। इसलिए ही इस दौर के साहित्य में धर्म का पुट स्वतः ही उपस्थित हो जाता है, चाहे वह सिद्ध, नाथ या जैन साहित्य ही क्यों न रहा हो। यह सर्वमान्य सत्य है कि सिद्ध, नाथ

या जैन मूलतः कवि नहीं थे, वे मुख्यतः अपनी धार्मिक मान्यताओं को काव्य के जरिये व्यक्त कर रहे थे। किन्तु इससे यह अर्थ न लगाया जाए कि उनका साहित्य शुद्ध सांप्रदायिक है, क्योंकि उनके काव्य में भी कहीं-कहीं ऐसे साहित्यिक तत्व मिलते हैं जो जीवनानुभव का सजीव चित्रण करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- आदिकालीन साहित्य की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आदिकालीन साहित्य के विकास-क्रम और उनकी प्रासंगिकता को भी जान पाएँगे।
- आदिकालीन कवियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी साहित्य में सिद्धों, नाथों और जैनों के योगदान के बारे में जान सकेंगे।
- हिंदी साहित्य के इतिहास में सिद्धों, नाथों और जैनों को लेकर हुए विवादों से भी परिचित हो सकेंगे।

4.3 मूल पाठ : आदिकालीन साहित्य : सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य

सिद्ध से तात्पर्य

"साधना में निष्णात, अलौकिक सिद्धियों से संपन्न चमत्कारपूर्ण अतिप्राकृतिक शक्तियों के युक्त व्यक्ति सिद्ध कहलाते थे।" मन्त्रों के द्वारा सिद्धि प्राप्त करने हेतु वे सिद्ध कहलाये। ये सिद्ध अपनी तांत्रिक क्रिया, अलौकिक शक्ति और विभूतियों के लिए प्रसिद्ध रहे। उन्होंने गृहस्थ जीवन पर बल दिया। उनका मानना था निर्वाण की प्राप्ति सब कुछ को छोड़ कर नहीं बल्कि सब कुछ को साथ ले कर ही प्राप्त हो सकती है। इसलिए उन्होंने स्त्री के साथ रह कर निर्वाण प्राप्ति को महत्त्व दिया। जीवन की सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास रखने के कारण उनका सिद्धांत 'सहज मार्ग' कहलाया।

बोध प्रश्न –

- सिद्ध किसे कहते हैं ?
- सिद्धों के सिद्धांत का क्या नाम है ?

सिद्धों की उत्पति

बौद्ध धर्म कालांतर में जबतंत्र-मंत्र के चपेट में आ गया तब उनमें भी दो संप्रदाय बने एक हीनयान और दूसरा महायान। हीनयान में बौद्ध धर्म के सिद्धांत को अपनाया गया और महायान में बौद्ध सिद्धांतों में कुछ परिवर्तन करके, नए पंथ का निर्माण किया गया। महायान संप्रदाय में जब जटिल कर्मकांड का विकास हुआ तभी एक नया संप्रदाय का उदय हुआ जिसे 'वज्रयान' कहा गया। एक ओर जहाँ वज्रयान सिद्धांत पक्ष को लेकर आगे बढ़ा वहीं दूसरी ओर महायान व्यवहारिक पक्ष को लेकर आगे बढ़ता है। 'महायान में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, गृहस्थ-संन्यासी आदि का भेद नहीं था। वे सभी को निर्वाण तक पहुँचाने का दावा करते थे। जबकि हीनयान केवल विरक्तों और संन्यासियों को आश्रय देता था। महायान वैष्णवों की भक्ति से अत्यंत प्रभावित हुआ और इसका व्यवहारिक पक्ष शंकर के ज्ञान कांड से जुड़ गया।' वज्रयान शाखा का

सम्बन्ध सिद्धों से रहा। सिद्धों का मुख्य आवास पूर्वी भारत मेंथा किन्तु उनके साधना स्थल पूरे देश में विद्यमान रहे, जिसे सिद्ध पीठ कहा जाता था। "ओडियान, काम रूप, जालंधर, पूर्वगिरि, आर्बुद तथा श्रीहट्ट इनके प्रमुख साधना केंद्र थे। उनके अतिरिक्त नालंदा तथा विक्रम-शिला के विद्यापीठ में ये निवास करते थे।" मुख्यतः ये बिहार से लेकर असम तक फैले हुए थे। राहुल सांकृत्यायन ने 84 सिद्धों का उल्लेख किया है। जिनमें प्रथम सिद्ध सरहपा माने जाते हैं। इन सिद्धों में हिंदी के प्रमुख सिद्ध सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा और कुक्कुरिपा आदि कवि माने जाते हैं। सिद्धों में सभी योगियों के नामों में 'पा' (पाद-आदरसूचक) जोड़ने की परंपरा देखने को मिलती है।

बोध प्रश्न –

- महायान किससे प्रभावित था ?
- वज्रयान शाखा का संबंध किससे है ?

सिद्ध-साहित्य

'सिद्ध साहित्य से तात्पर्य वज्रयानी परंपरा के सिद्धाचार्य के साहित्य से है जो अपभ्रंश के दोहों और चर्यापदों के रूप में उपलब्ध है।' सिद्धों की रचनाएँ प्रमुखतः दो काव्य रूपों में उपलब्ध है –'दोहा कोश' तथा 'चर्यापद'। 'दोहा कोश' दोहों से युक्त चतुष्पदियों की कड़वक शैली में मिलते हैं और 'चर्या पद' मुक्त पदों का समाहार है। सिद्ध-साहित्य में साहित्य और दर्शन का अपूर्व समन्वय देखने को मिलता है। इसका अच्छा उदाहरण सिद्धों की भाषा-'संधा भाषा' है। सिद्ध साहित्य बाहरी रूप/पक्ष में साहित्य का आनंद प्राप्त कराता है, तो आंतरिक-पक्ष दर्शन का गूढ़ अर्थ व्यक्त करने वाला है। कुछ विद्वान इनकी भाषा को 'संध्या भाषा' भी कहते हैं। उनके अनुसार संध्या(दो वेला का मिश्रित रूप) के समान उनकी भाषा एक क्षण समझ में आती है दूसरे क्षण समझ में नहीं आती है। सहजिया सिद्धों का आंतरिक पक्ष इतना क्लिष्ट है कि जो आम पाठक को समझ में नहीं आती है। इसलिए रामचंद्र शुक्ल कहते हैं- "रहस्य मार्गियों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार सिद्ध लोग अपनी बानी को ऐसे पहेली के रूप में भी रखते थे जिसे कोई बिरला ही बूझ सकता है।" इन 'चर्या पदों' का बाहरी अर्थ बहुत मोहक है, यही कारण रहा जिसकी वजह से चर्या गीतों की प्रसिद्धि आम लोगों में हो पाई। नेपाल और तिब्बत के लोगों के हृदय में आज भी यह पद पैठे हुए हैं।

बहरहाल हिंदी साहित्य में सिद्ध साहित्य को लेकर दो मत देखने को मिलते हैं। पहले मत के अनुसार-सिद्ध साहित्य को शुद्ध धार्मिक ग्रन्थ के रूप में देखा गया साथ ही यह भी माना गया कि सिद्धों की साधना पद्धति वाममार्गी एवं भोग-विलास-प्रधान थी। जिसे आदिकालीन साहित्य में स्थान नहीं दिया जाने योग्य समझा गया। इस मत को मानने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल और गणपति चन्द्र गुप्त आदि हैं। दूसरे मत के अनुसार सिद्ध साहित्य में धार्मिक तत्व होने के बावजूद भी उसमें दर्शन, रहस्य और उस समय के पंडितों को फ़टकार लगाने वाला साहित्य है, साथ ही भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इनके साहित्य की महत्ता है। इस मत को मानने वालों में हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामकुमार वर्मा, धर्मवीर भारती आदि आते हैं। दोनों तरह के मतों के बावजूद भी सिद्ध

साहित्य की अपनी विशिष्टता रही है। किन्तु प्रश्न यह खड़ा होता है कि क्या नारी के साथ रह कर सिद्धि प्राप्त करना या निर्वाण प्राप्त करना भोग है ? तब कबीर भी सबसे बड़े भोगी हैं क्योंकि उन्होंने भी गृहस्थ जीवन में रहते हुए निर्वाण प्राप्ति की बात की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में 'महायान' के सम्बन्ध में लिखते हैं- "महायान, हीनयान की अपेक्षा अधिक मानवीय, लोकगम्य, सहज और समन्वयमूलक है। वह प्राचीन बौद्ध धर्म की भांति केवल यही नहीं करता कि सबकुछ छोड़कर चले आओ, बल्कि यह सलाह देता है कि सबकुछ लिए हुए भी तुम परम पद तक पहुँच सकते हो।" यह तथ्य सहजयानी सिद्धों पर भी लागू होता है क्योंकि एक तो यह महायान का ही विकृत रूप माना गया दूसरा इन्होंने भी गृहस्थ जीवन पर बल दिया।

बोध प्रश्न –

- सिद्धों की भाषा को क्या कहा जाता है ?
- सिद्धों की साधना पद्धति क्या है ?

सिद्ध-कवि

सरहपा

सिद्ध कवियों में सर्वप्रथम सरहपा माने जाते हैं। ये सरहपाद, सरोज वज्र, राहुल भद्र आदि कई नामों से प्रख्यात हैं। जाति से ये ब्राह्मण थे। इनके रचनाकाल के विषय में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। राहुल जी ने इनका समय 769 ई. माना है, जिससे अधिकांश विद्वान सहमत हैं। इनके द्वारा रचित 32 ग्रन्थ बताए जाते हैं जिनमें से 'दोहा कोश' हिंदी की रचनाओं में प्रसिद्ध है।

बोध प्रश्न –

- सिद्धों में सर्वप्रथम कवि कौन है ?
- 'दोहाकोश' के रचनाकार कौन हैं ?

शबरपा

शबरपा के जन्म को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। डॉ. विनय तोष भट्टाचार्य ने शबरपा का समय 657 ई.माना है। लेकिन महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने उन्हें राजा धर्मपाल (779-809ई.) का समसामयिक माना है। उनकी जाति शबर होने की वजह से अनुमानतः उनका नाम शबरपा रखा गया होगा। उन्होंने अपनी दो पत्नी लोकी और गुनी के साथ ही सिद्धाचार्य नागार्जुन से मन्त्रयान की दीक्षा ली थी। दीक्षा लेने के उपरांत लोकी और गुनी का नाम परिवर्तित हो कर पद्मावती और ज्ञानवती हो गया। वे दीक्षा लेने के उपरांत श्री पर्वत में साधनारत हुए। शायद इसलिए भी सिद्धों का साधना स्थल श्री पर्वत माना गया। 'पाग साम जॉन जांग' के अनुसार उन्होंने बँगला के शबर सम्प्रदाय में जन्म ग्रहण किया था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने उन्हें विक्रमशिला का निवासी और जाति की दृष्टि से क्षत्रिय माना है। जोगिपा और सर्वभक्षपा नाम के उनके दो शिष्य थे। 'चर्यापद' इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। इन्होंने भी माया मोह का विरोध करते हुए सहज जीवन पर बल दिया।

"हेरी ये मोरि तइलाबाड़ी खसमे समतुला

षुकड़ए सेरे कपासु फुटिला।
तइला वाड़िर पासेर जोहणा वाड़ी ताएला
फिटेलिअंधारि रे आकाश फुलिआ।"

बोध प्रश्न –

- 'चर्यापद' के रचनाकार कौन हैं ?

लुइपा

तांत्रिक परंपरा में 'लुइपाद' प्रथम सिद्धाचार्य हैं। 84 सिद्धों में इनका सबसे ऊँचा स्थान माना जाता है। 'पाग साम जॉन जांग' के अनुसार उनका जन्म उड्डीयान के एक कैवर्त परिवार में हुआ था। उड्डीयान के राजा ने उन्हें लिपिकार के रूप में नियुक्त किया था। उस समय उनका नाम सामंतशुभ था। लुइपा शबरपा के शिष्य थे और महाजोगेश्वर के रूप में विख्यात थे। दीक्षा ग्रहण करने के बाद कुछ मत्स्य भक्षण करने के पश्चात उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। लुइपा के समय को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। डॉ. विनय तोष भट्टाचार्य उन्हें 669 ई. का मानते हैं लेकिन पंडित राहुल जी के अनुसार लुइपा को 769-809ई. में ख्याति प्राप्त हुई। डॉ. प्रबोध चन्द्र बागची लुइपा को दशम शताब्दी का मानते हैं। लुइपा की संख्या के सम्बन्ध में भी मतभेद दिखता है। कुछ विद्वानों ने उन्हें दो माना है, जबकि डॉ. बागची तिब्बत में लुइपा को मत्स्येन्द्र नाम से प्रसिद्ध होने के कारण एक ही मानते हैं। 'दोहा कोश' के अतिरिक्त लुइपा द्वारा रचित ग्रन्थ कुछ इस प्रकार हैं- 'श्री भगवत भी समय', अभिसमय विभंग', 'बुद्धदय', बज्रसत्व साधन' आदि। लुइपा के काव्य में रहस्य भावना की प्रधानता रही है। एक उदाहरण-

'काआ तरुवर पंच बिड़ाल। चंचल चीए पइठो काल।
दिट करिअ महासुख परिणाम। लुइ भणइ गुरु पुच्छिय जाण।।'

बोध प्रश्न –

- तांत्रिक परंपरा में प्रथम सिध्दाचार्य का नाम बताइए।

डोम्भिपा

मगध के क्षत्रिय-वंश में इनका जन्म हुआ था। डोम्भिपा का जन्म 840 ई. में हुआ था। विरूपा से इन्होंने दीक्षा ली थी। इनके द्वारा रचित 21 ग्रन्थ बताए जाते हैं। जिनमें से 'डोम्बि-गीतिका', 'योगचर्या', 'अक्षरद्विकोपदेश' आदिप्रसिद्ध हैं। इनकी एक पंक्ति निम्न प्रकार हैं –

'गंगा जउना माझेरे बहर नाइ।
तांहि बड़िली मातंगि पोइआली ले पार करई।।"

कण्हपा

कण्हपा का जन्म कर्णाटक के ब्राह्मण वंश में हुआ था। इनका जन्म 820 ई. में हुआ था। जालंधरपा इनके गुरु थे किन्तु उन्होंने अन्य सिद्धों से भी शिक्षा ग्रहण की थी। इनके द्वारा लिखित 74 ग्रन्थ बताए जाते हैं। इनके अधिकतर ग्रन्थ दार्शनिक विषयों पर हैं। इन्होंने अपने काव्य में शास्त्रीय रूढ़ियों का खंडन किया है। उदाहरण के लिए –

'आगम वेअ पुराणे, पंडित मान बहंति।

पक्क सिरिफल अलिअ, जिम वहारित भ्रमयंति।।'

कुक्कुरिपा

इनका जन्म कपिलवस्तु के एक ब्राह्मण परिवार में हुआथा। इनके जन्म काल सम्बन्धी तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। चर्पटीया उनके गुरु थे। इनके द्वारा रचित सोलह ग्रन्थ हैं। इनकी कविता काएक उदाहरण है-

'ससुरी निंद गेल, बहुड़ीजागअ। कानेट चोर निलका गई मागअ।
दिवसइ बहुणी काढ़इ उरे भाअ। रति भइले कामरू जाअ।।'

बोध प्रश्न –

- डोम्भिपा की रचानों के नाम बताइए।
- कण्हपा के काव्य में क्या पाया जाता है ?

4.1.1 सिद्ध-साहित्य की काव्यगत उपलब्धियाँ

धार्मिक पाखंडों का विरोध

सिद्ध साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्होंने सभी धर्म में व्याप्त पाखंड पर गहरा चोट किया है, चाहे वह जैन, ब्राह्मणया कापालिक क्यों न हो। उदाहरण स्वरूप सरहपा लिखते हैं-

"जई णग्गा होई मुत्ति, ता शुणह सियालह
लोमुपाड़णे अत्थी सिद्धि, ता जुबई णिहमुह।"

अर्थात नग्न रहने पर अगर मुक्ति मिलती तो सबसे पहले कुत्ते और सियार को मुक्ति मिलती, अगर बाल निकालने पर मुक्ति मिलती तो सबसे पहले युवतियों को पूँछ रखने पर अगर मुक्ति मिलती तो हाथी और घोड़े को मुक्ति मिलती ..।

गीति काव्य का विकास

सिद्ध साहित्य से गीति काव्य का विकास होता है। जिस काव्य में लोक धुन, लय, ताल होगा, वह लोकप्रिय होगा ही और गाया भी जाएगा क्योंकि उसमें संगीत तत्व विद्यमान है। यह चर्या गीत भी राग-रागिनी द्वारा गाया जाता रहा है। इसदृष्टि से देखें तो एक-एक चर्या गीत सार्थक गीति काव्य है। जिसे लोगों ने मुक्त कंठ से गायन किया। गीति काव्य नेआम जन को साहित्य से जोड़ने का बहुत बड़ा कार्य किया है। गीति काव्य का प्रयोग आगे चलकर रासो काव्य से होते हुए आधुनिक काल में होता है।

बोध प्रश्न –

- गीति काव्य का विकास किससे माना जाता है ?

साधारण चरित्रों का काव्य में प्रवेश

सिद्ध साहित्य में प्रयुक्त पात्र कोई उदात्त पुरुष या नायिका नहीं थे बल्कि उसके स्थान पर उनके पात्र निम्न वर्ग (आम जन) के रहे। निम्न वर्ग में भी शूद्र जो वर्णाश्रम आधारित समाज व्यवस्था में सबसे 'उपेक्षित जाति' मानी जाती थी, उनको उन्होंने काव्य का पात्र बनाया। जैसे उनके साहित्य में डिम्ब, शबरी, चंडाल आदि की औरतें भीकाव्य नायिका हुआ करती थी। इससे

हम स्त्रियों और शूद्रों के प्रति उनकी क्या दृष्टिरही इसका पता लगा सकते हैं। इसी तत्व को आधुनिक काल के रचनाकारों ने भी अपनाया है। उन्होंने भी आम जन जैसे- किसान, मजदूर आदि को अपनी रचनाओं का पात्र बनाया। दूसरी ओर आम लोगों को काव्य का पात्र बनाकर अभिजात्यवादी-संस्कृति के विरोध में उन्होंने अपना पहला कदम रखा था।

बोध प्रश्न –

- सिद्ध साहित्य के चरित्र नायक कौन है ?

शिष्ट भाषा का विरोध

जिस समय साहित्य में शिष्ट भाषा या संस्कृत का प्रयोग हो रहा था, उस समय साहित्य अपभ्रंश और मिश्रित भाषा में लिखना सचमुच एक सराहनीय कार्य रहा। उन्होंने लोगों के लिए साहित्य लिखा जिसके श्रोता या पाठक आम वर्ग से थे, कोई राजा या पंडित नहीं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि केवल साहित्य संस्कृत में नहीं बल्कि आम भाषा में भी लिखा जा सकता है। इन चर्या गीतों के विषय में अनुसन्धान करते समय एक बात यह स्पष्ट हुई कि इन चर्या गीतों पर संस्कृत की टीकाएँ भी लिखी गई। इसका एक कारण यह भी रहा होगा कि यह भाषा या गीत लोगों को प्रिय रहे होंगे। जिसके कारण उसकी प्रशंसा करने के अतिरिक्त उनके पास कोई मार्ग नहीं रह गया था। अतःउनका यह कार्य भविष्य के रचनाकारों के लिए पृष्ठभूमि बनाने का कार्य कर रहा था।

बोध प्रश्न –

- इस समय के श्रोता कौन थे ?

समसामयिक समाज की प्रतिछ्वि और अनुभूति

सिद्ध साहित्य में अनुभूति की प्रधानता रही। उन्होंने अनुभूति के आधार पर काव्य लिखा। इसलिए उनके साहित्य में समसामयिक समाज की प्रतिछ्वि देखने को मिलती है। जैसे समाज के लोगों की वेशभूषा, विवाह, दाम्पत्य-जीवन, जीवनचर्या आदि को लेकर उन्होंने काव्य लिखा। इसमें प्रेम, अभिमान, वीर, करुण आदि रसों का भी प्रयोग किया जो आम जन-जीवन या रोज़मर्रा के जीवन से जुड़ी हुई थीं। कण्हपा का एक गीत इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है-

"ऊँचा ऊँचा पर्वत तहीं बसईवाली
मोरंगी पीच्छ परहीण गिवत गुंजरी माली...।"

बोध प्रश्न –

- सिद्ध साहित्य में किसकी प्रधानता रही ?

काव्य में अलंकारों का प्रयोग

उनके काव्य में उपमाओं का बहुत प्रयोग हुआ है। डॉ. धर्मवीर भारती 'सिद्ध साहित्य' में इस काव्य के प्रतीक और रूपक को लेकर विस्तृत रूप में बात करते हैं। इनके काव्य में केवल उपमा ही नहीं उसके साथ-साथ उत्प्रेक्षा और दृष्टांत आदि अलंकार का भी बहुत प्रयोग हुआ है। 'आर्य देव पाद' की एक पंक्ति इसका सबसे अच्छा उदाहरण है जो निम्नलिखित है-

"चांदो रे चांदोकांति जिम पतिभासअ

चिअ विकीरणे, तहीं टली पइसअ।"

अर्थ-डूबता हुआ चाँद जिस प्रकार ज्योत्स्ना या चाँदनी में लीन हो जाता है, उसी प्रकारचित्त जब अचित्त हो जाता है तब उसमें वासना विलीन हो जाती है।

सीमाएँ

इन विशेषताओं के बावजूदभी सिद्ध-साहित्य की कुछ सीमाएं हैं। सिद्धों की सबसे बड़ी कमी यह रही कि उन्होंने एक से अधिक नारियों के साथ विहार किया। भोग की प्रधानता के कारण उनका साहित्य विद्रोही परक होने के बावजूद भी निंदनीय रहा। सिद्ध मूलतः कवि नहीं थे, वे एक साधक थे, जो साधना के पथ पर अग्रसर थे। यह उनकी सबसे बड़ी सीमा है। साथ ही सिद्ध साहित्य मूलतः काव्य-सृजन के लिए नहीं लिखा गया, वे अपनी धार्मिक मान्यताओं को प्रसार करने के लिए काव्य रच रहे थे। उनकी दूसरी सीमा यह रही कि उनके साहित्य में धार्मिकता का पुट ज्यादा होने के कारण वह ऊबाऊ होने लगा। इसलिए भी कुछ समय के पश्चात उनका साहित्य लुप्त होता गया।

बोध प्रश्न –

- सिद्ध साहित्य की कुछ सीमाओं का उल्लेख कीजिए.

4.3.2 नाथ-साहित्य

'नाथ' से तात्पर्य

'नाथ' का सामान्य अर्थ 'स्वामी' या 'प्रभु' होता है। 'अथर्ववेद' में नाथ का प्रयोग 'रक्षक' और 'शरणदाता' के रूप मेंहुआ है। किन्तु नाथ संप्रदाय में नाथ का प्रयोग शिव के लिए होता रहा। नाथ पंथी खुद को शिव भक्त मानते थे इसलिए उनके नाम के साथ नाथ जोड़ने की परंपरा देखने को मिलती है। किन्तु बाद में 'नाथ' शब्दमुक्ति देने वाला के अर्थ में रूढ़ हो गया था।

बोध प्रश्न –

- अथर्ववेद में नाथ का प्रयोग किस रूप में हुआ है ?

नाथ सम्प्रदाय का उदय

नाथ सम्प्रदाय का उदय यौगिक क्रियाओं के उद्धार के लिए हुआ था। जब तांत्रिक चमत्कार, मद्य, मांस और स्त्री सम्बन्धी आचारों के कारण सिद्ध घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे तब नाथ सम्प्रदाय का उदय हुआ। उन्होंने सिद्धों के द्वारा अपनाए गए पंचमकारों (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन) का विरोध किया। नारी भोग को वर्जित किया। इन्होंने भी बाह्य आडम्बर का विरोध किया। अतःसिद्धों के 'महासुखवाद' के विरोध में नाथ पंथ का उदय हुआ। राहुल सांकृत्यायन ने नाथ पंथ को सिद्धों की परंपरा का विकसित रूप ही माना। "योग साधना के द्वारा अपनी काया को अमर करने और विभिन्न चमत्कारों का प्रदर्शन करने के लिए नाथ योगी प्रख्यात थे।" नाथ संप्रदाय का सम्बन्ध मूलतः 'योग' और 'हठयोग' पद्धति से रहा। 'ह' का अर्थ सूर्य और 'ठ' का अर्थ चन्द्र इन दोनों के योग को हठयोग कहा गया। गोरखनाथ ने षट्चक्र वाला योग मार्ग नाथ पंथ में चलाया था। इस साधना पद्धति को मानने वाले शरीर और मन को शुद्ध करते हुए शून्य में समाधि लगाते हैं और ईश्वर से साक्षात्कार करते हैं। नाथों ने निवृत्ति मार्ग पर

बल दियाहै। इनकी संख्या 9मानी जाती है, इसलिए इन्हें 'नवनाथ' भी कहा जाता है। इसमें आदिनाथ शिव हैं और मत्स्येन्द्र नाथ, जालंधर नाथ और गोरखनाथ प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न –

- नाथ संप्रदाय का उदय किस लिए हुआ ?
- हठयोग क्या है ?
- नाथों की संख्या कितनी है ?

'सिद्ध' और 'नाथ' में अंतर

सिद्ध और नाथों के बीच समता और विषमता दोनों ही देखने को मिलती हैं। सिद्धों की तांत्रिक साधना नाथों के यहाँ भी देखी जातीहै किन्तु उनका मूल आधार योग क्रिया ही रहा। नाथों ने सिद्धों के प्रवृत्ति मार्ग का विरोध किया और निवृत्ति मार्ग को महत्त्व दिया। उन्होंने संयम और सदाचार पर बल दिया जबकि सिद्धों में संयम और सदाचार प्रायः लुप्त रहे। सिद्धों ने नारी भोग को प्रधानता दी जबकि नाथों ने नारी का विरोध किया। सिद्ध इन्द्रिय अनुभूति को महत्त्व देते हैं जबकि नाथ इन्द्रिय शक्ति को वश में रखने की बात करते हैं। सिद्धों के लिए मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन साधना के आवश्यक अंग थे जबकि नाथों के लिए अहिंसा, शुचिता, सदाचार, पवित्रता आदि साधना के लिए आवश्यक थे। नाथों ने सिद्धों की तरह ही बाह्य आडम्बर, जाति-प्रथा, छुआछूत आदि का विरोध किया था।

बोध प्रश्न –

- सिद्ध और नाथ के बीच कोई एक अंतर बताइए ।

नाथ-साहित्य

नाथ मुनियों के द्वारा लिखा गया साहित्य नाथ साहित्य है। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया गया कि नाथ संप्रदाय में योग की प्रधानता रही इसलिए उनके साहित्य में 'योग' सम्बन्धी तथ्य ज्यादा हैं। उनकी रचनाओं में गुरु महिमा, इन्द्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनः साधना, कुण्डलिनी-जागरण, शून्य समाधि, षट्चक्र आदि का वर्णन मिलता है। एक तरह से उनके साहित्य में साधना और नैतिक वाणी की प्रधानता रही। किन्तु जीवन की अनुभूतियों को भी इनकी रचनाओं में स्थान मिला। साथ ही शिल्प की दृष्टि से भी इनका साहित्य महत्त्वपूर्ण है। गोरखनाथ के द्वारा लिखित काव्य इसका सबसे अच्छा उदाहरण है जैसे उनके काव्य में छंदों का अपूर्व समन्वय देखने को मिलता है। इनकी रचनाओं में पाखंड और आडम्बरों का विरोध भी है। इसलिए नाथ साहित्य सिद्ध साहित्य से अपनी एक अलग पहचान बनाता है।

बोध प्रश्न –

- नाथ संप्रदाय में क्या प्रधान है ?

नाथ मुनियों का परिचय

नाथ मुनियों का परिचय देने से पूर्व यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि कई नाथों के नाम सिद्धों की सूची में भी पाए जाते हैं। नाथ परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ के गुरु जलंधर नाथ माने जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार जलंधर नाथ ने ही नाथ संप्रदाय को सिद्धों से अलग कर

लिया था। मत्स्येन्द्रनाथ के गुरु जलंधर नाथ थे और गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ। इनके सम्बन्ध में ऐसी अनुश्रुति प्रचलित रहीहै कि मत्स्येन्द्रनाथ विलास लीला में फंस गए थे और गोरखनाथ ने उनका उद्धार किया था। मत्स्येन्द्र नाथ की 'कौल-ज्ञान निर्णय' नामक पुस्तक भी प्रसिद्ध है। इसी परंपरा में और अन्य मुनि भी जुड़े हुए हैं जैसे आदिनाथ, जालंधर, मत्स्येन्द्र नाथ, नागार्जुन, सहसार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड़भरत आदि।

गोरखनाथ

गोरखनाथ, नाथ-साहित्य के आरंभकर्ता माने जाते हैं। गोरखनाथ के जन्म को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। राहुल सांकृत्यायन ने उनका समय 845 ई. माना है, हजारीप्रसाद द्विवेदी उन्हें 9वीं शती तथा रामचंद शुक्ल उन्हें 13वीं शती का मानते हैं। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने उन्हें 11वीं शती का माना है। उनके ग्रंथों की संख्या 40 मानी जाती है, किन्तु डॉ. बड़थ्वाल ने उनके द्वारा रचित 14 ग्रन्थ को ही स्वीकार किया है। उन्होंने संस्कृत और देश भाषा दोनों में काव्य रचना की है। गोरखनाथ की एक पंक्ति निम्नलिखित है-

"अंजन मांहि निरंजन भेट्या, तिल मुख भेट्या तेलं।
मूरति मांहि अमूरती परस्या, भया निरंतरि खेलं।।"

इनके अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी नाथ साहित्य को समृद्ध करने में अपना योग दिया जैसे- चौरंगीनाथ, गोपीचंद, चुणकर नाथ, भरथरी आदि। इनकी रचनाओं में भी उपदेश की प्रधानता थी साथ ही खंडन-मंडन पर अधिक बल रहा। इन्होंने भी गोरखनाथ की परंपरा का ही अनुसरण किया, इसलिए उनके साहित्य में विशेष कुछ परिवर्तन नजर नहीं आता। इसलिए इनके साहित्य को विशेष स्थान नहीं दिया गया।

बोध प्रश्न –

- नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक कौन थे ?

4.3.2.1 नाथ साहित्य की उपलब्धियाँ

अनेक संस्कृतियों और भाषा का मिश्रण

जिस तरह सिद्धों का क्षेत्र पूर्वी भारत रहा उसी तरह नाथों का क्षेत्र पश्चिमोत्तर भारत रहा किन्तु इनकी विशेषता यह रही कि यह भारत के प्रायः अनेक राज्यों में फ़ैल गए थे। अनेक राज्यों में फैलने के कारण उनके साहित्य में अनेक भाषाओं का मिश्रण और अनेक संस्कृतियों का मिश्रणभी होता गया। इसलिए रामचंद्र शुक्ल उनकी भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहते हैं। नाथों का आत्मसात करने वाला गुण के कारण ही वे लोगों के प्रिय रहे हैं। इसलिए सभी धर्मों के लोग इनके प्रति आकृष्ट हुए।

बोध प्रश्न –

- नाथों की भाषा को रामचंद्र शुक्ल ने क्या नाम दिया ?

उलटबांसियों का प्रयोग

नाथ-साहित्य में अन्तःसाधना का विस्तार से वर्णन किया गया है। उनके यहाँ साधना से सम्बंधित शब्दभी देखने को मिलते हैं। उन्होंने जीवनानुभवों को भी महत्त्व दिया है किन्तु उनका अनुभव वे उलटबांसी के रूप में करते हैं। इस उलटबांसी का प्रयोग संत साहित्य में भी देखने को मिलता है। वे 'जोई-जोई पिण्डे, सोई ब्रह्मांडे' अर्थात जो शरीर में है वही ब्रह्मांड में है' की बात करते हैं।

संत कवियों के लिए नयी पृष्ठभूमि का निर्माण

नाथ साहित्य ने भक्ति कालीन कवियों के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने का कार्य किया। नाथ साहित्य की शारीरिक और मानसिक पवित्रता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, बाह्य आडम्बर का विरोध आदि चीजों ने संत साहित्य को भी प्रभावित किया। रामचंद्र शुक्ल ने भी यह स्वीकार किया है कि संत साहित्य को परिपुष्ट करने का कार्य नाथ साहित्य ने किया।

हठयोग का महत्त्व

इनकी और एक विशेषता यह रही कि इनका द्वारा प्रचलित 'हठयोग' बाद में रहस्यवाद के रूप में प्रतिफलित हुआ। जिसका प्रयोग संत साहित्य और इनके परवर्ती साहित्य में भी हुआ।

जाति-पांति का विरोध

नाथ पंथ ने जाति-पांति का भी विरोध किया था। यही जाति-पांति के विरोध ने धार्मिक-विरोध की खाई को भी कम किया। इसलिए हिन्दू-मुसलमान दोनों ने इस साधना को स्वीकार किया। कुछ मुसलमान भी नाथ पंथ में शामिल हुए। सीधे-सीधे तो नहीं कहा जा सकता कि कबीर नाथ पंथी थे किन्तु यह प्रभाव संत काव्य धारा में कबीर के पास भी देखने को मिल सकता है। उन्होंनेभी जाति-पांति की खूब निंदा की है।

सीमाएँ:

इनके साहित्य की सबसे बड़ी सीमाएं यह रही कि साहित्य में गृहस्थ जीवन का अनादर किया और स्त्री का बहिष्कार किया। जिसकी वजह से उनका साहित्य नीरस हो गया। साथ ही इसमें 'योग' और 'हठयोग' की बातें लोगों को आकर्षित नहीं करती हैं। यह साहित्य मूलतः नाथ पंथियों को दिया गया उपदेश है जो कभी-कभी ऊबाऊ भी होने लगता है।

बोध प्रश्न –

- नाथ साहित्य की एक सीमा का उल्लेख कीजिए।

4.3.3 जैन-साहित्य

'जैन' से तात्पर्य

'जैन' भारत का सबसे प्राचीन धर्म है। जो 'जिन' के अनुयायी हैं उन्हें जैन कहा जाता है। 'जिन' का अर्थ है जीतने वाला जिन्होंने अपने मन को जीत लिया, अपनी वाणी को जीत लिया, अपनी काया को जीत लिया और विशिष्ट ज्ञान को पा कर सर्वज्ञ या पूर्णज्ञान प्राप्त किया है, उन आप्त पुरुष को 'जिन' कहा जाता है।

बोध प्रश्न –

- जैन कौन हैं ?

जैन संप्रदाय का उदय

जैन धर्म का प्रचार भगवान महावीर ने किया। सबसे पहले जैन धर्म का प्रचार और प्रसार उत्तर भारत में अधिक हुआ। गुजरात में इनकी प्रधानता 8वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी तक बनी रही।वहां के चालुक्य, राष्ट्रकूट और सोलंकी राजाओं पर इनका प्रभाव ज्यादा पड़ा। महावीर का जैन धर्म हिन्दू सदाचार के अधिक निकट दिखाई देता है। जैन धर्म का ईश्वर सृष्टि का निर्णायक नहीं बल्कि चित्त और आनंद का स्रोत है। इस धर्म की यह मान्यता रही कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी साधना और पौरुष(शक्ति) से परमात्मा बन सकता है। इस धर्म में अहिंसा, करुणा, ब्रह्मचर्य(व्यभिचार न करना), अस्तेय(चोरी न करना), अपरिग्रह(कोई वस्तु संचित ना करना) आदि का महत्त्व है। जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हुए हैं। जैन धर्म में निर्वाण के 3तत्वोंको महत्त्वपूर्ण माना गया सही विश्वास, सही ज्ञान और सही आचरण। इन्हें 'त्रि-रत्न' कहा जाता है।

बोध प्रश्न –

- जैन धर्म का प्रचार किसने किया ?
- जैन धर्म में ईश्वर किसका स्त्रोत है ?
- जैन धर्म में कितने तीर्थंकर हैं ?

जैन साहित्य और जैन कवि

आदिकालीन साहित्य में जैन साहित्य की रचनाएँ प्रामाणिक रूप से उपलब्ध होती हैं। जैन-साहित्य मुख्यतः 8वीं शताब्दी से प्राप्त होता है। जैन मत का प्रचार करने के लिए जो साहित्य लिखा गया, वे रचनाएँ जैन-साहित्य के अंतर्गत आती हैं। मुख्य रूप से भारत के पश्चिम क्षेत्र में जैन साधुओं ने अपने मत को काव्य के द्वारा व्यक्त किया। जैन-साहित्य की अधिकांश रचनाएँ अपभ्रंश साहित्य में लिखी गई। जैन साहित्य का व्यापक प्रभाव परवर्ती साहित्य पर पड़ा। जैन साहित्य में 3 तरह के साहित्य देखने को मिलते हैं। जैसे-

1. पौराणिक काव्य,
2. मुक्तक काव्य,
3. व्याकरणिक रचनाएँ।

पौराणिक काव्य के अंतर्गत स्वयंभू और पुष्पदंत की रचनाएँ आती हैं जो मुख्यतः 'राम' और 'कृष्ण' पर आधारित हैं। मुक्तक काव्य के अंतर्गत मुख्यतः आचार, रास, फागु, चरित काव्य आदि आते हैं। इन मुक्तक काव्यों की अपनी-अपनी शैली है। जैसे- आचार-शैली में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को आधार बनाया गया है। 'रास' संस्कृत साहित्य में क्रीड़ा और नृत्य से सम्बंधित था। कृष्ण की लीलाएँ भी 'रास' शब्द के लिए रूढ़ हो गई हैं। 'रास' शैली में जैन कवियों ने जैन तीर्थंकारों के जीवन चरित तथा वैष्णव अवतारों की कथाओं को जैन आदर्शों के साथ प्रस्तुत किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि जैनों के द्वारा लिखित रास-काव्य, रासो से अलग है। उस समय रास काव्य की इतनी प्रसिद्धि रही कि जैन मंदिरों में भी 'रास' काव्य का

गायन किया जाने लगा था।फागु और चरित शैली सामान्यता के लिए प्रसिद्ध हैं। व्याकरणिक रचनाओं के अंतर्गत हेमचन्द्र और मेरुतुंग की रचनाएँ लोकप्रिय हुईं।

जैन साहित्य में अनेक तरह के काव्य देखने को मिलते हैं जिनमें से कुछ काव्य और काव्य रूपों को निम्नलिखित रूप दिया गया है-

1. जैन प्रबंध काव्य
इसके अंतर्गत 'पउमचरिउ', 'नेमिनाथचरिउ', 'सोमिनाथचरिउ', 'प्रद्युम्न चरित' आदि।
2. जैन गीति काव्य- 'चंद्रायण', 'अष्टक', 'चन्दनवालारास'आदि।
3. जैन धार्मिक काव्य - 'पाहुड़ दोहा','कलिजुग रास'आदि।
4. रास काव्य रूप-'भरतेश्वर बाहुबली रास', 'गयसुकुमाल रास' आदि।
5. जैनफागुकाव्य- 'स्थूलभद्री फागु','वसंत विलास फागु' आदि।
6. चर्चरी काव्य- 'सामराइच कहा','अभिधान चिंतामणि'आदि।
7. बारहमासा शीर्षक काव्य- 'नेमिनाथचतुष्पदिका', 'स्थूलभद्र बारहमासा 'आदि।

बोध प्रश्न –

- स्वयंभू और पुष्पदंत की रचनाएँ किस पर आधारित हैं ?
- आचार-शैली में किसे आहार बनाया जाता है?
- व्याकरणिक रचनाओं का नाम बताइए।
- जैन प्रबंध काव्य का नाम बताइए।

4.3.3.1 जैन साहित्य की उपलब्धियाँ

प्रामाणिक रूप में उपलब्ध

जैन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जैन आचार्यों की रचनाएँ निस्संदेह प्रामाणिक और मूल रूप में उपलब्ध हैं। इससे पूर्व की रचनाओं के कुछ अंश प्राप्त हैं तो कुछ अंश अप्राप्त।

लोक-भाषाको प्रश्रय

जैन आचार्यों ने प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश में भी प्रचुर रचनाएँ लिखीं। एक तरह से लोक-भाषा के काव्य रूपों को समझने के लिए जैन साहित्य विशेष रूप से सहायक है। साथ ही उस काल की भाषागत अवस्थाओं और प्रवृत्तियों को समझने के लिए भी जैन साहित्य सहायक सिद्ध होते हैं।

चरित काव्य का आरम्भ

यहीं से चरित काव्य की परंपरा प्रारंभ होती है। जो पद्धड़िया बंध में लिखे जाते हैं। प्रारंभिक जैन साहित्य में दोहा-चौपाई पद्धति पर चरित-काव्य का निर्माण किया गया जिसे आगे चल कर सूफी कवियों ने अपनाया था। इन चरित काव्यों के अध्ययन से परवर्ती काल के हिंदी साहित्य के कथानकों, कथानक-रूढ़ियों, छंद योजना, वस्तु विन्यास तथा कवि कौशल आदि स्पष्ट हो जाते हैं। श्री अगरचंद नाहटा 'हिंदी साहित्य (भाग-2)' पुस्तक में इस सन्दर्भ में कहते हैं कि- "परवर्ती काल में जो छंद, रचना शैली, काव्य-शिल्प तथा अन्य साहित्यिक

मान्यताएं हिंदी साहित्य को प्राप्त हुई उसकी परंपरा को स्पष्ट करने वाले अनेक सूत्र जैन भाषा साहित्य में मिल सकते हैं।" इस लिए हिंदी साहित्य के विकास में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा है।

व्याकरणिक ग्रंथ लेखन

चौथी विशेषता यह है हेमचन्द्र जैसे व्याकरणिकाचार्य ने हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के सामने नए खोज और विचार या कहें नए अन्वेषण के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करने का कार्य किया। शृंगारिक और नीतिपरक काव्य की प्रधानता जैन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शृंगारिक काव्य और नीतिपरक काव्य की परंपरा को समझने के लिए यह जैन-काव्य विशेष सहायक रहे हैं। जैसे बिहारी, मतिराम, मुबारक के शृंगारिक काव्य को समझने के लिए जैन साहित्य सहायक हैं, वहीं जैन आचार्यों के नीति विषयक काव्य रहीम और वृन्द की याद दिलाते हैं।

सीमाएँ

जैन साहित्य की सीमाएं यह है कि उनका साहित्य मूलतः धर्म प्रचार का साहित्य है। नए तरह के काव्य-सृजन करना या उनका विकास उनका लक्ष्य नहीं था। किन्तु उनके धार्मिक साहित्य में भी साहित्यिक अंश पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। कुछ जैन आचार्य जैसे स्वयंभू, पुष्पदंत और धनपाल आदि ने हिन्दुओं की रामायण और महाभारत से राम और कृष्ण के चरित्रों को अपने धार्मिक सिद्धांतों के अनुरूप चित्रित किया है। जो कि रचनात्मकता की दृष्टि तो सही लगते हैं पर धार्मिक दृष्टि से सटीक नहीं है। इस तरह इस साहित्य में नए प्रयोग तो हैं किन्तु यह प्रयोग धार्मिक दृष्टि से किए गए हैं, साहित्यिक दृष्टि से नहीं।

बोध प्रश्न –

- चरित काव्य की परंपरा का प्रारंभ कब हुई ?
- जैन साहित्य की कुछ विशेषताएँ बताइए ।

लौकिक-साहित्य

आदिकालीन साहित्य में धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त दूसरे प्रकार का साहित्य भी लिखा गया। इस साहित्य का सम्बन्ध 'लोक' से रहा, इसमें लौकिक-जीवन का चित्रण प्रमुख रहा। इसलिए इसे लौकिक साहित्य के नाम से अभिहित किया गया। इस साहित्य का सृजन भी 'लोक भाषा' या 'देशी भाषा' में हुआ। जो साहित्य लोक से जुड़ा हुआ होगा वहाँ लोक-भाषा का प्रयोग होगा ही। इस साहित्य की धारा स्वच्छंद रही। यह साहित्य केवल साहित्यिक दृष्टि से नहीं अपितु सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण रहा।

इसके अंतर्गत 'सन्देश रासक' -अब्दुल रहमान, 'ढोल-मारू-रा दूहा'-कल्लोल कवि, 'वसंत विलास'-अज्ञात, 'जयमयंक-जसचंद्रिका' मधुकर, 'जयचंद-प्रकाश' भट्टकेदार, 'खुसरो की पहेलियाँ'-अमीर खुसरो आदि आते हैं।

बोध प्रश्न –

- लोक-भाषा में लिखित साहित्य के कुछ उदहारण दीजिए।

ढोला-मारू-रा दूहा

ढोला-मारू-रा दूहा आदिकाल का प्रसिद्ध राजस्थानी प्रेम-परक लोकगीत है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका समय 11वीं-12वीं शती का निश्चित किया है। किन्तु इसके रचनाकाल को लेकर विद्वानों में मतभेद देखने को मिलते हैं। लोक-गीत की परम्परा से यह काव्य जुड़े होने के कारण इसके निर्माण कर्त्ताभी ज्ञात नहीं हैं। किन्तु रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि 'यह सोलहवीं शताब्दी की रचना है और इसके रचयिता कुशललाभ कहे जाते हैं।' डॉ. नगेन्द्र के अनुसार 'कुशल लाभ' ने दोहों में कुछ चौपाइयों को जोड़ कर विस्तार दिया है। कुछ विद्वान इसके रचयिता कल्लोल कवि को मानते हैं। इसमें ढोला नामक राजकुमार और मारवणी नामक राजकुमारी की प्रेम कथा वर्णित है। कछवाहा वंश के राजा नल का पुत्र ढोला जब तीन वर्ष का और पूंगल के राजा की कन्या मारवणी डेढ़ वर्ष की थी तब उनका विवाह कर दिया गया था। ऐसा माना गया कि पूंगल में अकाल पड़ने पर पिंगल विवश हो कर नल के राज्य में चले गए थे। तभी पिंगल की रानी ढोला पर रीझ जाती है और उनका विवाह मारवणी से कर देती है। जब ढोला बड़ा होता है तब उसका दूसरा विवाह मालवणी से होता है, इसी सन्देश से मारवणी दुःखी हो जाती है। ढाढ़ियों के माध्यम से मारवणी अपना विरह सन्देश ढोला तक भेजती है। अंत में दोनों का पुनर्मिलन होता है। डॉ. नगेन्द्र कहते हैं- "ढोल-मारू-रा दूहा का मूल रूप दोहों में मिलता है। ये दोहे शृंगार-काव्यकी जो परंपरा आरंभ करते हैं, वह आगे जा कर बिहारी के काव्य में प्रति फलित हुई। मारवणी के वियोग और संयोगके चित्र इन दोहों में अधिक भावपूर्ण बन पड़े हैं, जबकि बिहारी के दोहों की नायिका के संयोग और वियोग-चित्रों में कलापक्ष की प्रधानता है। "

बोध प्रश्न –

- 'ढोला-मारू-रा दूहा' क्या है ?

4.4 पाठ सार

आदिकालीन साहित्य ने परवर्ती हिंदी साहित्य के लिए नयी पृष्ठभूमि तैयार करने का कार्य किया जिसमें सिद्ध-साहित्य, नाथ-साहित्य जैन तथा लौकिक साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहा। आदिकालीन साहित्य की सबसे बड़ी विशिष्टता यह रही कि अब भी इसके कुछ अंश उपलब्ध हैं जो हिंदी के प्राचीन रूप को समझने के लिए सहायक हैं। समय और परिस्थिति के साथ-साथ हिंदी साहित्य में भी परिवर्तन होते रहे हैं। परम्परागत बदलाव के कारण आज का हिंदी साहित्य इतना समृद्ध हो पाया है। आदिकालीन साहित्य का सबसे बड़ा योगदान जन-भाषा को समृद्ध करना रहा चाहे वह सिद्ध, नाथया जैन साहित्य ही क्यों न रहा हो। एक ओर सिद्ध जहाँ पूर्वी भारत में जन-भाषा में साहित्य लिख रहे थे वहीं दूसरी ओर पश्चिमोत्तर भारत में नाथ अपने मतों को काव्य के जरिये परिपुष्ट कर रहे थे। जैनाचार्य भी अपने अधिकांश काव्य गुजरात, राजस्थान और दक्षिण के कुछ प्रदेशों में रच रहे थे। इस तरह आदिकालीन साहित्य इससाहित्य के बिना अधूरा सा प्रतीत होने लगता है।

4.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं।

1. हिंदी साहित्य का आदिकाल अनेक प्रवृतियों का पुंज है।
2. आरंभिक हिंदी साहित्य धार्मिक और सांस्कृतिक ऊहपोह से उत्पन्न हुए सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य की समानांतर प्रवृतियों के साथ विकसित हुआ है।
3. हिंदी का सिद्ध साहित्य अपभ्रंश के बोध साहित्य का अगला चरण है। यह मुख्य रूप से व्जरयानी परंपरा के अनुरूप विकसित हुआ है।
4. नाथ साहित्य बड़ी सीमा तक सिद्धों द्वारा अपनाए गए महासुखावाद के विरोध में विकसित हुआ। इसका आधार हठ योग है।
5. जैन साहित्य भगवान महावीर के शिक्षा के अनुरूप प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य का अगला चरण है।
6. इस काल में धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त लोक जीवन प्रधान लौकिक साहित्य भी उपलब्ध होता है।

4.6 शब्द-संपदा

1. प्रवृत्ति मार्ग: जीवन-यापन का वह प्रकार जिसमें मनुष्य सांसारिक कार्यों और बन्धनों में पड़ा रहकर दिन बिताता है।

2. निवृत्ति मार्ग : निवृत्ति मार्ग का अनुसरण कर ही परमात्म तत्वों की अनुभूति होती है। निवृत्ति मार्ग संतों का है जबकि प्रवृत्ति मार्ग गृहस्थों का।

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए ।

1.'सिद्ध' से क्या तात्पर्य है इसका विवेचन करते हुए सिद्ध साहित्य की काव्यगत उपलब्धियों को विस्तार पूर्वक समझाइए।

2.नाथ से क्या तात्पर्य है इसका विवेचन करते हुए नाथ साहित्य की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए ।

2. जैन साहित्य पर प्रकाश डालते हुए जैन साहित्य की काव्यगत उपलब्धियों की चर्चा विस्तार पूर्वक करें।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए ।

1. सिद्ध और नाथ की चर्चा करते हुए इन दोनों के बीच अंतर को स्पष्ट कीजिए।

2. जैन साहित्य पर संक्षिप्त चर्चा करें।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1. सिद्धों की संख्या कितनी है ? ( )
   (अ) 9 (आ) 12 (इ) 15 (ई) 84

2.नाथों की संख्या कितनी है ? ( )
   (अ) 27 (आ) 84 (इ) 9 (ई) 12

3.तंत्र-मंत्र पर विश्वास कौन करते थे ? ( )
   (अ) सिद्ध (आ) नाथ (इ) जैन (ई) अलवार

4. सरहपा किन नामों से नहीं जाने जाते ? ( )
   (अ) चर्यापद (आ) सरोज वज्र (इ) राहुल भद्र (ई) सरहपाद

5.तांत्रिक परंपरा के प्रथम आचार्य कौन है ? ( )
   (इ) सरहपा (आ) शबरपा (इ) लुइपा (ई) कण्हपा

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

1) नाथ साहित्य के आरंभकर्ता ____________ माने जाते हैं।

2) 'पउमचरिउ' ____________ प्रबंध काव्य है।

3) लौकिक साहित्य का सृजन ____________ में हुआ।

4) सहज मार्गी ____________ कहलाए ।

5) बोध ____________ संप्रदाय में विभाजित हुए।

III सुमेल कीजिए ।

1. सरहपा	(अ) अभिसमय विभंग
2. लुइपा	(आ) दोहा कोश
3. शबरपा	(इ) योग्चर्या
4. डोम्भिपा	(ई) चर्यपाद
5. संदेश रास्क	(उ) अब्दुल रहमान

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां : डॉ. शिवकुमार शर्मा
2. हिंदी साहित्य का नवीन इतिहास : डॉ. लाल साहब सिंह
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं.डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल

इकाई-5 रासो साहित्य, रासो साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ और आदिकालीन गद्य साहित्य

रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 मूल पाठ : रासो साहित्य, रासो साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ और आदिकालीन गद्य साहित्य

5.3.1 रासो-साहित्य के संबंध में विद्वानों के मत और अभिमत

5.3.2 रासो-साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ

5.3.3 आदिकालीन गद्य साहित्य

5.4 पाठ सार

5.5 पाठ की उपलब्धियाँ

5.6 शब्द-संपदा

5.7 परीक्षार्थ प्रश्न

5.8 पठनीय पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के आदिकालीन साहित्य में सर्वाधिक विवादास्पद विषय है- रासो-साहित्य। इस साहित्य के सन्दर्भ में विद्वानों के विभिन्न विचारों ने हिंदी आलोचना के विकास में सार्थक बहसों को जन्म दिया। रासो-साहित्य के मुख्यतः तीन प्रकार देखने में आते हैं- वीरतामूलक, शृंगारमूलक और उपदेशमूलक। ‘रासो’ शब्द की व्युत्पत्ति को लेकरभी विद्वान एकमत नहीं है। रासो-रचनाएँ प्रमाणिकता, अप्रमाणिकताको लेकर संदेह के दायरे में रही हैं। आदिकालीन साहित्य में रासो काव्यधारा का विशेष स्थान है। इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्त्व उतना नहीं हैं जितना इनका काव्यगत और भाषिक आधार पर महत्त्व है। आदिकाल में गद्य-साहित्य भी लिखा गया है। इसका ऐतिहासिक और भाषिक आधार पर महत्त्व बना हुआ है।

5.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई को पढ़कर आप -

- रासो साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- रासो साहित्य की काव्यगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन गद्य-साहित्य के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।

5.3 मूल पाठ : रासो साहित्य, रासो साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ और अधिकालीन गद्य साहित्य

5.3.1 रासो साहित्य के संबंध में विद्वानों के मत और अभिमत

'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों के मतों की समीक्षा आवश्यक है।

1. गार्सां-द-तासी 'रासो' शब्द को 'राजसूय' से जोड़ते हैं। चारण काव्यों में 'राजसूय' यज्ञ का उल्लेख मिलता है, इसी आधार पर उन्होंने अपना मत प्रस्तुत किया है। यह मत इसलिए भी स्वीकार्य नहीं है कि जिन रचनाओं में शृंगार परक प्रेम का वर्णन है उनमें कहीं भी 'राजसूय' यज्ञ का उल्लेख नहीं है। जैसे- 'संदेश रासक' और 'बीसलदेव रासो'।
2. कविराज श्यामलदास और डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल ने 'रासो' शब्द का संबंध 'रहस्य' से जोड़ा है परन्तु रासो ग्रंथों में कोई गूढ़ दार्शनिक रहस्य का अभीतक उल्लेख नहीं हुआ है।
3. नरोत्तम स्वामी ने 'रासो' की व्युत्पत्ति 'रसिक' शब्द से मानी है। उनके अनुसार- 'रसिक> रासउ > रासो'। चारण कवियों के द्वारा रचित रासो ग्रंथों में तो यह मत एक सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है किन्तु अपभ्रंश में लिखित रासो काव्यों पर यह मत स्वीकार्य नहीं है।
4. चन्द्रबली पाण्डेय ने 'रासक' से रासो की उत्पत्ति मानी है। उन्होंने रासक को संस्कृतनिष्ठ अर्थ में ग्रहण किया है। रासक का संस्कृतनिष्ठ अर्थ में संबंध रूपक या उपरूपक से जोड़ा जाता है। पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी इस मत का समर्थन करते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' के प्रारंभिक भाग में नट और नटी का उल्लेख है। इस नाटकीय वार्तालाप से इस ग्रन्थ का श्रीगणेश हुआ है। अधिकांशतःप्रारंभिक रासो ग्रंथों में इस नाटकीय पध्दति का व्यवहार नहीं हुआ है, अतः यह मत भी स्वीकार योग्य नहीं है।
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'रासो' शब्द का संबंध 'रसायण' से माना है। इस सन्दर्भ में उन्होंने 'बीसलदेव रासो' की एक पंक्ति का उल्लेख किया है। यथा-

   'नाल्ह रसायन आरम्भई, शारदा तुठी ब्रह्मकुमारि'।

   इस मत को भी परवर्ती आलोचकों ने अस्वीकार कर दिया।
6. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "'रासक' एक छंद भी है और काव्यभेद भी। काव्य के इस बंध में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ करता था'। 'पृथ्वीराज रासो' उसी परंपरा का काव्य है। आदिकाल की वीरगाथाओं में चारण कवियों द्वारा निर्मित चरित-काव्यों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। डॉ. दशरथ शर्मा इस मत का ही समर्थन करते हैं।
7. डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'रासो साहित्य विमर्श' के अंतर्गत 'रास' और 'रासक' से इस शब्द (रासो) की व्युत्पत्ति को जोड़ा है।

8. 'रास' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 'श्रीमद्भागवत्' में मिलता है।
9. पुराणों में 'हरिवंश पुराण' तथा 'विष्णुपुराण' में 'रास' शब्द का अर्थ 'नृत्य गीत' के रूप में मिलता है। बाद में 'रास' शब्द का प्रयोग 'गेय नाट्य' के रूप में होने लगा।
10. भरतमुनि ने 'रासक' के तीन भेद किए हैं – तालारासक, दंडरासक तथा मंडल रासक।
11. जैन कवियों के यहाँ दो प्रकार के रासक प्रचलित थे – 'तालारास' (ताली बजाकर), 'लगुडारास'(लकड़ी या दंड बजाकर)।
12. 'रास-साहित्य और रासो-साहित्य का मुख्य अंतर भावानुभूति को लेकर है। रास साहित्य की संवेदना धार्मिक अनुभूति अथवा लौकिक प्रेम की अनुभूति से जुड़ी हुई है। रास काव्य का प्रसार जैन साहित्य में देखने को मिलता है। रास साहित्य में लौकिक प्रेमानुभूति को भी अभिव्यक्त किया गया है। 'संदेश रासक' इसी तरह के साहित्य का उदाहरण है। आदिकालीन साहित्य में रास काव्य का नाम जैन रचनाकारों द्वारा लिखे गए रासक ग्रंथों और 'संदेश रासक 'जैसे प्रेमानुभूति प्रधान काव्य संवेदना के लिए रूढ़ हो गया है। वस्तुत: रास, रासो, रासउ और रसायण शब्द अलग-अलग हैं और वे एक ख़ास तरह के मनोभाव को अभिव्यक्त करते हैं।'
13. रासो सहित्य से जिस अर्थ की ध्वनि निकलती है उसमें चारणों के द्वारा सृजित साहित्य को प्रधानता प्राप्त हो गयी है। चारणों का सम्बन्ध सामंतवादी व्यवस्था से रहा है। इसलिए प्रशस्तिगान उसमें प्रधान हो गया। युद्ध और प्रेम इसके दो प्रमुख विषय हो गये। अत: वीरतापरक रासो ग्रंथों ने स्वाधीनता की चेतना के निर्माण के लिए अध्येताओं का ध्यान आकर्षित किया। इसका ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही उसका राजनीतिक प्रदेय भी है। पराधीन मुल्क के मानस के लिए वीरता का भाव आवश्यक है।

उपरोक्त मतों-अभिमतों के परिप्रेक्ष्य में कोई एक सर्वमान्य मत 'रासोके ' सम्बन्ध में व्यक्त करना तथ्यों और उनकी तार्किकता पर सवाल खड़ा करने जैसे होगा। ,रूप भी है-छंद 'रासो' गेय-रूप भी है-काव्य ,भेद भी है और रस-सम्बन्धी भी। अत: इसके सम्बन्ध में मध्यममार्गी और समन्वयवादी दृष्टि ही अपनाई जा सकती है।' रासो 'का अर्थ विवादास्पद है। समग्रत: **'रासो'** शब्द का प्रयोग **'रस'** के लिए ही किया जाता है।

बोध प्रश्न –

- गार्सां ड तासी ने 'रासो' शब्द को किससे जोड़ा है ?
- भरतमुनि ने 'रासक' के कितने भेद किए ?
- रास साहित्य और रासो साहित्य में क्या अंतर है ?

रासोकाव्य-धारा

रासो काव्यधारा में तीन तरह के 'रासो ग्रंथ' लिखे गये -

1. वीरताप्रधान

2. शृंगारप्रधान

3. उपदेशप्रधान।

वीर रस प्रधान रासो काव्य परंपरा में वीर रस अंगी रस है और संयोग शृंगार गौण रस है। इस में चारण कवियों ने आश्रयदाताओं की प्रशंसा हेतु अतिशयोक्ति पूर्ण वीर काव्य लिखे हैं। उदाहरण के लिए' - पृथ्वीराज रासो-' चंदबरदायी, 'हम्मीररासो-' शाङ्गधर ',खुमानरासो '– दलपति विजय ,आदि।

बोध प्रश्न –

- पृथ्वीराज रासों में गौण रस क्या है और अंगी रस क्या है ?

'पृथ्वीराज रासो'

वीरतापरक रासो साहित्य की प्रामाणिकता और अप्रमाणिकता ने विद्वानों के बीच एक लम्बी और कभी न समाप्त होने वाली बहस को जन्म दिया। इसमें सर्वाधिक विवाद 'पृथ्वीराज रासो' को लेकर ही रहा है। इसकी प्रस्तावना रची प्रो. बूलर ने जबकि कर्नल टॉड के लिए वह राजपूताना के इतिहास का प्रवेश द्वार था। इस कड़ी में 'पृथ्वीराजरासो' के विविध संस्करण वृहद् ,मध्यम ,लघु और लघुत्तम ने विवाद को जन्म दिया। उपलब्ध साक्ष्यों ने भी इसमें घी डालने का काम किया। इससे इसके समर्थक विरोधी और आंशिक विरोधी मतों का प्रणयन हुआ। माधव हाड़ा के अनुसार -'मध्यकालीन आख्यान जीवन और झूठ की जुगलबंदी है।' कविराज श्यामलदास, कविराज मुरारीदान, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, डॉ. बूलर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल व रामकुमार वर्मा इस ग्रन्थ की अप्रमाणिकता को लेकर आगे बढ़े। इस मत के मानने वालों का मत है कि 'पृथ्वीराज रासो' उस समय की रचना नहीं है, जिसका महिमामंडन किया जा रहा है और इसके मूल रचनाकार चन्दबरदाई नहीं हैं। इसमें ऐतिहासिकता का अभाव है। इसका लेखन परवर्ती दौर में भी होता रहा है. अत: इसे अप्रमाणिक ग्रन्थ के तौर पर देखा जाना चाहिए। 'पृथ्वीराज रासो' की प्रमाणिकता वाले वर्ग में श्यामसुन्दर दास, मथुराप्रसाद, दीक्षित, मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, मिश्रबंधु, मोतीलाल मेनारिया आते हैं। इस वर्ग का मत है कि चन्द, पृथ्वीराज का समकालीन है और यह रचना उन्होंने ही लिखी है, अत: यह प्रामाणिक है। तीसरे वर्ग का मत है कि मूल पाठ अप्राप्य है और उसमें परिवर्तन आ गया है। इसके माननेवालों में अगरचन्द नाहटा, सुनीतिकुमार चटर्जी, मुनि जिन विजय, डॉ. दशरथ शर्मा, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह और कविराज मोहनसिंह आते हैं। चौथा मत श्री नरोत्तम स्वामी का है। उनके अनुसार चन्द ने पृथ्वीराज के दरबार में रहकर मुक्तक रूप में रासो की रचना की थी, रासो मूलत: प्रबंधकाव्य नहीं था। रासो की प्रमाणिकता के इस विवाद ने हिंदी के अकादमिक जगत के लोकवृत्त में घर कर लिया और यह बहस आज भी जीवित है। माधव हाड़ा इसे 'जीवन और झूठ की जुगलबंदी' के रूप में देखते हैं। 'पृथ्वीराजरासो' का वाचिक स्वरूप आज भी जीवित है इसे बंजारा समुदाय अपनी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत के तौर पर बचाए हुए है। अत: यह जीवन के बहु आयामी सत्यों का निर्माण करता है। यह सत्य का

बहुआयामी स्वरूप ही विविधता को जन्म देता है। अत: यह वास्तविक यथार्थ के बने-बनाये प्रतिरूप का प्रत्याख्यान रचता है। अत: इसे जीवन और कविता के सत्य और कल्पना के संयोजन के रूप में देखने की आवश्यकता है । शृंगारपरक रासो काव्यों में अंगी रस शृंगार है। शृंगार के संयोग व वियोग दोनों पक्षों का चित्रण है। प्राय: वियोग शृंगार प्रबल है। अब्दुल रहमान (अद्दहमाण) का 'संदेशरासक' व नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो' उल्लेखनीय विरह काव्य है।

धार्मिक रासो काव्यों की रचना जैन कवियों द्वारा अपने धर्म व उपदेश का प्रचार करने के लिए की गई है। इसमें जिनदत्त सूरि रचित 'उपदेश रसायन रास', शालिभद्र सूरि कृत 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' उल्लेखनीय है।

बोध प्रश्न –

- पृथ्वीराज रासो वाचिक स्वस्थ्य में किस समुदाय में सुरक्षित है ?

5.3.2 रासो-साहित्य की काव्यगत-विशेषताएँ

यहाँ 'रासो-साहित्य' का अभिप्राय है- आदिकालीन साहित्य की वीरगाथात्मक कृतियों से लिया जा रहा है। इस साहित्य के स्वरूप में वैविध्यपूर्ण काव्य-प्रवृत्तियों का समाहार दिखाई देता है। इसमें गेय रूप भी है तो कहीं कथात्मकता का विकास भी। यह चरित प्रधान भी है और अतिरंजनापूर्ण भी। इसमें वीरता का जो वर्णन मिलता है उसके स्वरूप को लेकर भी बहस हो सकती है। इन रचनाओं में वर्णित वीरता में राष्ट्रीय प्रबोधन का स्वर प्राथमिक है या वे मात्र प्रशस्तिपरक ही हैं। रासो-साहित्य में मुख्यत: सामंतों के आपसी सत्ता-संघर्ष का महा आख्यान मिलता है। सामन्तवाद की कोख से उपजी रासो-साहित्य की इस धारा के अनेक आयाम हो सकते हैं। सबसे पहले संघर्ष के कारको की तलाश जरूरी है। इस संघर्ष के मूल में भूमि का विस्तार प्राथमिक है। दूसरा कारण, स्त्री के रूप-सौन्दर्य की लालसा के वशीभूत युद्ध को जन्म देने की रही है। तीसरा कारण, झूठ और गर्व से मदमाता सामंत वर्ग का चरित्र है। सामंत वर्ग का युद्ध करना क्या राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्रेरित था या उनके अपने संकीर्ण स्वार्थ थे ? 'परमाल रासो' और' पृथ्वीराज रासो' के पाठ में इस फर्क़ को देखने की आवश्यकता है। क्या यह साहित्य जनता में वीरता की चेतना का संचार कर पाता है ? ये अनसुलझे सवाल रासो-साहित्य के काव्य-वस्तु से जुड़े हुए हैं। अब हम इस आदिकालीन साहित्य के स्वरूप पर बिन्दुवार चर्चा करेंगे।

सामंती जीवनमूल्यों की प्रबलता

सामन्ती जीवन मूल्यों की प्रबलता इस काव्यधारा की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। 'धर्म, ऐहिकता और स्त्री के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण रचना की दुनिया में सामन्तवाद के मूल आधार कहे जा सकते हैं।' इन काव्यों में सामंती जीवन मूल्यों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। जैसे-

'एउ जिम्मु णग्गह गिउ, भडसिरि खग्गन भग्गु।
तिक्खा तुरीय णमाणिया, गोरी गले न लग्गु।।'

अर्थात् ऐसे व्यक्ति को धिक्कार है जिसने अपने सिर से तलवार को न तोड़ा हो, खतरनाक घोड़े को वश में न किया हो तथा गोरी को गले न लगाया हो।

ऐतिहासिकता और कल्पना का सम्मिश्रण

अधिकतर रासो काव्यों की विषय-वस्तु ऐतिहासिक है किंतु उन में कल्पना की अधिकता है। साहित्य केवल इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होता अत: उसमें कल्पना का समावेश स्वाभाविक है, किंतु रासो काव्यों में ऐतिहासिक तत्वों जैसे घटनाओं, तिथियों, वंशावली आदि में की गई छेड़-छाड़ ने उनकी प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है।

अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन

रासो काव्य राजाओं के आश्रय में रहकर लिखे गए अत: उन में आश्रयदाताओं की बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा की गई। उनकी दान वीरता एवं युद्ध वीरता आदि का अतिशय वर्णन किया गया है जिस के लिए वर्णन-शैली का प्रयोग किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' वर्णन प्रधान काव्य है जिसमें नगर, राजभवन, वन-कानन, सेनाओं का वर्णन हुआ है। यह अतिशयोक्ति पूर्ण रचना है जिसमें कल्पना का भरपूर समावेश हुआ है।

वीरता व शृंगार का चित्रण

रासो काव्यों में मूलत: वीर प्रधान काव्य आते हैं। अपभ्रंश व हिंदी की कुल आठ रासों रचनाओं में वीर रसको अंगी रस मानते हुए आचार्य शुक्ल ने आदिकाल का नाम 'वीरगाथाकाल' रखा था। उस समय के सामंती परिवेश में वीरता व शृंगार की प्रवृत्तियां स्वाभाविक थी। शौर्य प्रदर्शन उस समय की जरूरत थी। यथा-

'बारह बरस लौ कूकर जीवै, अरू तेरह लौ जीवे सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीवे, आगे जीवन को धिक्कार।।'

रासो ग्रन्थ मूलत: वीर रस प्रधान रचनाएँ हैं किंतु शृंगार और रौद्र रस का भी प्रयोग हुआ है। शृंगार वर्णन में संयोग व वियोग दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है औरनख-शिख वर्णन आदि काव्य – रूढ़ियों का प्रयोग भी हुआ है। युद्धों का जीवंत चित्रण और गुण उस समय के रचनाकार केवल कवि हीन हीं थे बल्कि योद्धा भी थे। उन्होंने युद्धों को स्वयं भोगा था। इस लिए उन के युद्ध-चित्रण जीवंत हो उठे हैं। जिन में युद्धों के विभिन्न क्षणों का सजीव वर्णन किया गया है। इसमें प्रयुक्त काव्य शैली ओज गुण प्रधान है पर साथ ही इसमें माधुर्य और प्रसाद गुणों के भी दर्श न होते हैं। जन चेतना की अनुपस्थिति रासो काव्य राजदरबारों या मठों में बैठ कर लिखे गए अत: उन में जन-सामान्य के भावों की अभिव्यक्ति नहीं मिल सकी है।

काव्य-रूप

रासो काव्य प्राय: प्रबन्धात्मक हैं। 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी का पहला महाकाव्य है। 'पृथ्वीराज रासो' चरितात्मक महाकाव्य है। इसके चार संस्करण उपलब्ध हैं- वृहत संस्करण, मध्यम संस्करण, लघु संस्करण व लघुत्तम संस्करण। इन में से कौन-सा संस्करण चंदबरदाई का है, इस संदर्भ में संशय है। इसकी प्रामाणिकता के संदर्भ में अलग-अलग मत प्रचलित हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, राम कुमार वर्मा और गौरी शंकर ओझा इसे अप्रमाणिक रचना मानते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसके शुक-शुकी संवाद वाले अंश को प्रमाणिक मानते हुए इसे अर्धप्रामाणिक मानते हैं, मिश्रबंधु इसे प्रामाणिक मानते हैं। 'बीसलदेव रासो' खण्ड काव्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है। उपदेशात्मक रासो काव्य मुक्तक में रचे गए।

बोध प्रश्न –

- हिंदी के पहले महाकाव्य का ना बताइए।
- हजारी प्रसाद द्विवेदी पृथ्वीराज रासो के किस अंश को प्रामाणिक माना ?
- शृंगार काव्यों में किस भाषा की प्रधानता है ?

भाषिक विविधता

इन काव्यों में भाषिक विविधता दिखाई देती है। वीर रस प्रधान काव्य 'डिंगल' में लिखे गए। शृंगार काव्यों की रचना में पिंगल-भाषा की प्रधानता रही तो उपदेशात्मक रासो काव्य अपभ्रंश में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अरबी, फारसी, प्राकृत, पंजाबी, ब्रज आदि का प्रयोग भी हुआ है।

छंद

सैंकड़ों छन्दों का प्रयोग हुआ। अकेले 'पृथ्वीराज रासो' में 68 प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें से दोहा, चौपाई, रोला, गाथा, कवित्त आदि प्रमुख छन्द रहे हैं। रासो ग्रंथों में छंद के प्रयोग के स्तर पर विविधता के दर्शन होते हैं।

कथानक-रूढ़ियाँ एवं अलंकार

'कथानक रूढ़ियाँ लोक-साहित्य के अध्ययन के आवश्यक उपादान हैं। कथानक रूढ़ियों में जीवन और समाज का संश्लिष्ट अर्थ स्तर छिपा रहता है , जिसे अनदेखा करके आदिकाल के काव्य के मर्म तक नहीं पहुँचा जा सकता। ये कथानक रूढ़ियाँ विविध प्रकार की हैं। पशु-पक्षी, देव-दानव, सरीसृप, वृक्ष, शाप, वरदान, स्वप्न, संकेत, अभिज्ञान, शुक-शुकीसंवाद, अप्सराओं का साक्षात्कार, यक्ष-गन्धर्व से मिलन आदि विविध प्रकार की कथानक रूढ़ियों के सांकेतिक अर्थ और उनके प्रचलन की परंपरा है।' इसमें अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है।

प्रमुखत: अनुप्रास और यमक अलंकारों का प्रयोग हुआ है। शब्दालंकार व अर्थालंकार दोनों का प्रयोग प्रसंगानुसार हुआ है।

बोध प्रश्न –

- लोक साहित्य के अध्ययन के आवश्यक उपादान क्या हैं ?

5.3.3 आदिकालीन गद्य-साहित्य

हिंदी साहित्य के आदिकाल में काव्य-रचना के साथ-साथ गद्य-साहित्य के प्रारंभिक प्रयास भी देखे जा सकते हैं। आदिकाल में अनेक गद्य रचनाएँ लिखी गई होंगी, वे अब अनुपलब्ध हैं। डॉ. हरीश ने आदिकाल के गद्य-साहित्य को लेकर मौलिक और अभूतपूर्व कार्य किया है। आदिकालीन गद्य-साहित्य में तीन रचनाएँ अभीतक प्राप्त हुई हैं।

राउलवेल (चंपू)

'राउलवेल' शिला पर अंकित रचना है। इसका पाठ बम्बई के प्रिंस ऑफ़ वेल्स संग्रहालय से प्राप्त कर प्रकाशित किया गया है। इसका रचनाकाल वीं शताब्दी माना गया है 10। यह गद्य और पद्य मिश्रित चंपू काव्य है। 'इस रचना में कवि ने राउल के सौन्दर्य का वर्णन पद्य में किया है और फिर गद्य का प्रयोग किया गया है'। इस रचना का लेखक रोड़ा नामक कवि माना जाता है। इस रचना से हिंदी में नख-शिख-वर्णन की शृंगार परंपरा की शुरूआत होती है। इसकी भाषा में हिंदी प्रदेशों की सात बोलियों के शब्द मिलते हैं।इस ग्रन्थ की प्रधान भाषा राजस्थानी है। इस रचना में रचनाकार ने राउल के सौंदर्य को चित्रित करने के लिए आलंकारिक और वर्णन-शैली का प्रयोग किया है। यह आलंकारिक शैली गद्य प्रधान है।

<u>बोध प्रश्न –</u>

- राउलवेल की प्रधान भाषा क्या है ?
- राउलवेल किसकी रचना है ?

उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार -"'उक्तिप्रकरण-व्यक्ति-' एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इससे बनारस और आसपास के प्रदेशों की संस्कृति और भाषा आदि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और उस युग के काव्य- रूपों के संबंध में भी थोडा-बहुत जानकारी प्राप्त होती है।" इस रचना के रचनाकार पंडित दामोदर शर्मा (12 वीं शताब्दी) थे, जो महाराज गोविन्द चन्द्र के सभा पंडित थे। इस ग्रन्थ की भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है- "वेद पढ़ब, स्मृति अभ्यासिब, पुराण देखब, धर्म करब।" अर्थात् वेद के पढ़ने से, स्मृतिके अभ्यास से, पुराण के देखने से और धर्म के करने से जीवन में उन्नति संभव है। इस रचना में हिंदी भाषा में तत्सम शब्दावली के बढ़ते हुए प्रयोग के आधार पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला की यह पुरानी हिंदी का लक्षण है जो अपभ्रंश से अपने को मुक्त कर रही है।इसी रचना में हिंदी व्याकरण की ओर ध्यान जाने के भी संकेत प्राप्त होते हैं।

वर्णरत्नाकर

इस रचना को प्रकाश में लाने का कार्य डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और पंडित बबुआ मिश्र को है।इस रचना का समय 14वीं शताब्दी माना गया है। इसके लेखक ज्योतिरीश्वर ठाकुर थे जो मैथिली भाषा के भी कवि थे।इस रचना में मैथिलीऔरहिंदी में गद्य लिखा गया है। 'वर्ण रत्नाकर' में विभिन्न भाषाओं के शब्दों का समाहार काव्यात्मक रूप में हुआ है। इन शब्दों में तत्समताकीप्रवृत्ति मिलती है।जैसे-

'उज्जवल कोमल लोहित सम... यमुना का तरंग अइसन भुजइ।'

5.4 पाठ सार

भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है -'विरोद्धों का सामंजस्य'। आदिकालीन रासो साहित्य पर यह घटित हुआ है। सांस्कृतिक दृष्टि से परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का समाहार करने की दृष्टि रासो कवियों के यहाँदेखी जा सकती है। आदिकालीन रासो ग्रंथों में वीरता की भावना की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है। इसलिए इसकाल के कवियों ने युध्दों का सजीव चित्रण तो किया है लेकिन उसमें राष्ट्रीय चेतना नहीं है। ये युध्द सामंती जीवन-मूल्यों की छत्र छाया में विकसित हुए हैं, इसलिए इसमें जन चेतना की अनुपस्थिति है।

आदिकालीन गद्य-साहित्य पुरानी हिंदीके विकास को द्योतित करने वाला है। इसका भाषिक और ऐतिहासिक महत्त्व है। आदिकालीन गद्य-साहित्य में तत्कालीन जन-समाज भी सांकेतिक रूप में चित्रित हुआ है। इस साहित्य का साहित्यिक महत्त्व अत्यधिक है।

5.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. आदिकालीन हिंदी साहित्य में टीन प्रकार के रासो काव्य प्राप्त होते हैं- वीरता प्रधान, शृंगार प्रधान, उपदेश प्रधान।
2. वीरता प्रधान रासो काव्यों में चंदबरदाई का पृथ्वीराज रासो प्रमुख है। इसमें पृथ्वीराज चौहान के विभिन्न युद्धों का ओजपूर्ण वर्णन मिलता है।
3. शृंगार प्रधान रासो काव्यों में नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो प्रमुख है। इसमें रानी राजमति का संदेश अत्यंत कारुणिक बन पड़ा है।
4. उपदेश प्रधान रासो काव्यों में विभिन्न जैन काव्यों की गणना की जाती है। इनमें शालिभद्र सूरी के भरतेश्वर बाहुबली रास को प्रमुख स्थान प्राप्त है।
5. सिद्ध, नाथ, जैन और रासो परंपरा के साहित्य के अतिरिक्त आदिकाल में लौकिक साहित्य और गद्य साहित्य भी उपलब्ध होता है।
6. आदिकालीन गद्य साहित्य में शिला पर अंकित रचना राउल वेल प्रमुख है।

5.6 शब्द-संपदा

1. **काव्य रूढ़ियाँ :**कवियों द्वारा कथा कहने का विशेष ढंग जैसे- शुक शुकी संवाद, आकाशवाणी द्वारा कथा का विकास।
2. **ओजगुण:** इस गुण के द्वारा मन में उत्साह का संचार होता है।
3. **माधुर्य गुण :** इस गुण के द्वारा चित्त में आनंद का संचार होता है।
4. **प्रसाद गुण :** जहाँ शब्द के साथ अर्थ भी सरलता से स्पष्ट हो जाए वहाँ प्रसाद गुण की स्थिति मानी जा सकती है।
5. **अप्रमाणिक:** रासो काव्य की रचना सामान्यतः आश्रयदाता कवियों के द्वारा हुई लेकिन ये रचनाएँ इतिहास के तथ्यों एवं प्रमाणों की दृष्टि से प्रायः बहुत अविश्वनीय मानी गई हैं। हिंदी कविता का पहला महाकाव्य'पृथ्वीराज रासो' ऐतिहासिकता एवं प्रमाणिकता की दृष्टि से सर्वाधिक संदिग्ध काव्य माना गया है।
6. **भाषिक संक्रमण :** आदिकाल की काव्य भाषा न तो पूरी तरह साहित्यिक अपभ्रंश की भाषा है और न ही हिंदी की। इस काल के काव्य में क्रिया पदों का रूप सामान्यतः अपभ्रंश से प्रभावित है जबकि परसर्गों के प्रयोग से हिंदी भाषा की अपनी विशेषताएँ उभरती हुई दिखाई देती हैं

5.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1.'रासो' साहित्य के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। इस कथन की पुष्टि कीजिए।

2.रासो साहित्य की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1.आदिकालीन गद्य साहित्य पर प्रकाश डालिए।

2.पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता और अप्रमाणिकता का विवेचन कीजिए।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1. पृथ्वीराज रासो में कितने प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है ? ( )

(अ) 45 (आ) 68 (इ) 86 (ई) 54

2. 'राऊल वेल' किस प्रकार की रचना है ? ( )

(अ) प्रबंध काव्य (आ) खंड काव्य

(इ) चंपू काव्य (ई) गद्य काव्य

3.रासो काव्यों की रचना सामान्य रूप से किसके द्वारा हुई ? ( )

(अ) आश्रयदाता राजाओं (आ) आश्रयदाता कवियों

(इ) सामंतों (ई) सेनापतियों

4. किस गुण के द्वारा चिंत में आनंद का संचार होता है.? ( )

(अ) ओज गुण (आ) माधुर्य गुण

(इ) प्रसाद गुण (ई) सभी

5. हजारी प्रसाद द्विवेदी 'पृथ्वीराज रासो' के किस अंश को प्रामाणिक माना है ? ( )

(इ) शुक-शुकी संवाद (आ) पृथ्वीराज जीवन की घटनाएँ

(इ) संयोगिता (ई) सामंतों के साथ युद्ध

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) उपदेशात्मक रासो काव्य भाषा में मिलते हैं ।___________

2) लोक साहित्य के अध्ययन के लिए आवश्यक उपादान है। ___________

3)गद्य और पद्य मिश्रित काव्य को कहा जाता है । ___________

4) चारणों का संबंध व्यवस्था से रहा है। ___________

5) वीर रस प्रधान रासो काव्य ___________ में लिखे गए ।

III सुमेल कीजिए।

1. राऊल वेल	(अ) पं. दामोदर शर्मा
2. पृथ्वीराज रासो	(आ) दलपति विजय
3. उक्ति-व्यक्ति प्रकरण	(इ) रोड़ा
4. संदेश रासक	(ई) चंदबरदाई
5. खुमान रासो	(उ) प्रेमानुभूति प्रधान काव्य

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य : शहाबुद्दीन इराकी
3. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास : विश्वनाथ त्रिपाठी
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
5. हिंदी साहित्य का आदिकाल : हजारी प्रसाद द्विवेदी
6. हिंदी साहित्य : संक्षिप्त इतिवृत्त : शिवकुमार मिश्र
7. हिंदी साहित्य का इतिहास और उसकी समस्याएँ : योगेन्द्र प्रताप सिंह
8. हिंदी साहित्य के इतिहास पर कुछ नोट्स : राजीव रंजन बन्धु, डॉ. रसाल सिंह

इकाई-6 आदिकाल के प्रमुख साहित्यकार

रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मूल पाठ : आदिकाल के प्रमुख साहित्यकार
6.3.1 सरहपा
6.3.2 शबरपा
6.3.3 लुईपा
6.3.4 गोरखनाथ
6.3.5 शालिभद्र सूरि
6.3.6 स्वयंभू
6.3.7 पुष्पदन्त
6.3.8 अद्दहमाण
6.3.9 हेमचन्द्र
6.3.10 चंदबरदाई
6.3.11 अमीर खुसरो
6.3.12 विद्यापति
6.4 पाठ सार
6.5 पाठ की उपलब्धियाँ
6.6 शब्द संपदा
6.7 परीक्षार्थ प्रश्न
6.8 पठनीय पुस्तक

6.1 प्रस्तावना

यह इकाई आदिकालीन रचनाकारों और उनकी रचनाओं पर आधारित है। इस इकाई में आदिकालीन प्रमुख रचनाकारों की रचनाओं का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। साथ ही कथा का विस्तार न हो इसके प्रति भी ध्यान रखते हुए कवियों से संबंधित परिचय को सीमित रूप दिया गया है। इच्छुक पाठक इस काल से संबंधित प्रमुख रचनाकारों का परिचय तथा रचनाओं का संक्षिप्त परिचय हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों से प्राप्त कर सकते हैं।

6.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों! इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- आदिकाल के प्रमुख साहित्यकारों के जीवन परिचय से अवगत हो सकेंगे.

- आदिकालीन कवियों की प्रमुख कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे.
- आदिकालीन काव्य कृतियों की विशेषताओं को समझ सकेंगे.
- आदिकालीन कवियों और उनकी रचनाओं को लेकर प्रमुख इतिहासकारों व आलोचकों के मत-अभिमत से परिचित हो सकेंगे।

6.3 मूल पाठ : आदिकाल के प्रमुख साहित्यकार

6.3.1 सरहपा

सिद्धाचार्य सरहपा आदिसिद्ध के रूप में जाने जाते हैं। इन्हें हिंदी के प्रथम कवि होने का श्रेय प्राप्त है. तिब्बतीय 'तान्गुर' ग्रंथानुसार वे उड्डीयान व ओड़िसा के निवासी थे। 'पाग साम जॉन जांग' पुस्तक के अनुसार पूर्वांचल के रागी नाम स्थान में सरहपा का जन्म हुआ था। सरहपा जाति से ब्राह्मण थे। ये उस समय राहुलभद्र, सरहपाद, सरोज वज्र व पद्म ब्रज नाम से भी प्रसिद्ध थे। इनके रचनाकाल के विषय में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। राहुल जी इनका समय 769 मानते हैं। जबकि डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य ने उनका समय विक्रम संवत 690 निश्चित किया है। उन्हें बौद्ध शास्त्र और ब्राह्मण शास्त्र दोनों पर पांडित्य हासिल था। महाराष्ट्र में एक तीर निर्माता की पुत्री के साहचर्य से सरहपा ने सिद्धि प्राप्त की थी। यह अनुमानित सत्य है कि सरहपा हाथ में सर या तीर लेकर चलते थे इसलिए उनका नामकरण सरहपा हो गया। वे संस्कृत के बहुत बड़े आचार्य थे। उनके द्वारा रचित 32 ग्रन्थ बताए जाते हैं जिनमें से 'दोहाकोश' प्रमुख है। उन्होंने पाखंड और आडंबर का विरोध किया है, साथ ही पाखंडियों पर भी करारी चोट की है।

'पंडिअ सअल सत्त बक्खाणइ। देहहि बुद्ध बसंत न जाणइ।'

उन्होंने गुरु सेवा को महत्त्व दिया है। "ये सहज भोग मार्ग से जीव को महासुख की ओर ले जाते हैं।" उनके काव्य में भावों का सहज प्रभाव मिलता है। उनकी भाषा पर कहीं-कहीं अपभ्रंश का प्रभाव देखने को मिलता है। भाव और शिल्प की परंपरा इन्हीं से विकसित होती हुई दिखाई देती है।

बोध प्रश्न –

- हिंदी के प्रथम कवि होने का श्रेय किसे प्राप्त है ?

6.3.2 शबरपा

इनका जन्म क्षत्रिय कुल में 780 ई. में हुआ था। सरहपा से इन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। शबरों का –सा जीवन व्यतीत करने के कारण ये शबरपा कहे जाने लगे। 'चर्यापद' इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। ये माया-मोह का विरोध करते हुए सहज जीवन पर बल देते हैं तथा इसे 'महासुख' की प्राप्ति का मार्ग बताते हैं।

बोध प्रश्न –

- 'चर्यापद' के रचनाकार का नाम बताइए।

6.3.3 लुईपा

ये राजा धर्मपाल के शासनकाल में कायस्थ परिवार में जन्म लिए थे। इन्हें शबरपा ने अपना शिष्य बनाया था। इनकी साधना का प्रभाव ओड़िशा के तत्कालीन राजा तथा मंत्री पर भी पड़ा था इसलिए वे इनके शिष्य हो गए थे। चौरासी सिद्धों में इनका सबसे ऊँचा स्थान माना जाता है। इनकी कविता में रहस्य की भावना अधिक थी।

6.3.4 गोरखनाथ

नाथपंथियों में सबसे अधिक प्रभावशाली गोरखनाथ हैं। ये मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। किन्तु मत्स्येन्द्रनाथ ने नाथपंथ का प्रवर्तन नहीं किया। वे सिद्ध कवि थे। 84 सिद्धों में उनका नाम भी सम्मिलित है। गोरखनाथ ने सिद्ध मार्ग का विरोध किया है। गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे। उनके पश्चात इस परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ का नाम आता है। किन्तु यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि मत्स्येन्द्रनाथ के आचरण का विरोध उनके शिष्य गोरखनाथ ने किया था। मूल रूप से नाथपंथ को स्थापित करने का श्रेय गोरखनाथ को ही है। यह भी माना जाता है कि गोरखनाथ के संपर्क में आकर ही उनके गुरु ने नाथ पंथ अपनाया था। राहुल सांकृत्यायन ने गोरखनाथ का समय 845 ई. माना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी गोरखनाथ को नवीं शती का मानते हैं जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार उनका समय 13 वीं शती है । गोरखनाथ को डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ग्यारहवीं शती का मानते हैं तथा रामकुमार वर्मा शुक्ल जी के मत से सहमत हैं। गोरखनाथ का मुख्य स्थान गोरखपुर माना जाता है, किन्तु इनके मत का अधिक प्रचार पंजाब तथा राजस्थान में हुआ। इनके ग्रंथों की संख्या चालीस मानी जाती है, किन्तु डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने केवल उनके द्वारा लिखित चौदह रचनाएँ को स्वीकार किया है। जिनके नाम –'सबदी', 'पद', 'प्राणसंकली', 'सिष्यादरसन', 'नरवै-बोध', 'अभैमात्राजोग', 'आमत-बोध', 'पन्द्रह तिथि, 'सप्तवार', 'मछीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यानतिलक', 'ग्यान चौंतीसा' एवं 'पंचमात्रा'। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' नाम से उनकी रचनाओं का एक संकलन भी सम्पादित किया है, जिनकी कई रचनाएँ साहित्य की सीमा में आती हैं। गोरखनाथ ने उनकी रचनाओं में गुरु-महिमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनः साधना, कुण्डलिनी-जागरण, शून्य समाधि आदि का वर्णन किया है। इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता मिलती है। यही कारण है कि इन रचनाओं को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य में सम्मिलित नहीं किया था। किन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि शुक्ल जी से भिन्न रही। उनका यह मानना था कि इनके साहित्य में अनुभूति की गहराई भी थी। इन्हीं का विकास हमें संत साहित्य में देखने को भी मिलता है। इसलिए संत साहित्य को जोड़ने वाली कड़ी नाथ साहित्य है। और नाथ साहित्य में गोरखनाथ की वाणी प्रबल और मुखर रूप से प्रस्तुत भी होती है। इसका एक उदाहरण निम्नलिखित हैं -

'नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।'

बहरहाल गोरखनाथ ने ही षट्चक्रों वाला योग मार्ग हिंदी साहित्य में चलाया। इस मार्ग में विश्वास करनेवाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और ब्रह्म का साक्षात्कार करता था।

बोध प्रश्न –

- नाथ पंथियों में सबसे अधिक प्रभावशाली कौन हैं ?
- नाथपंथ को स्थापित करने का श्रेय किसको जाता है ?

6.3.5 शालिभद्र सूरि

शालिभद्र सूरि अपने समय के प्रसिद्ध जैन आचार्य तथा अच्छे कवि थे। शालिभद्र सूरि के द्वारा लिखित 'भरतेश्वर बाहुबली रास' जैन साहित्य की रास परंपरा का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। इसकी रचना 1184 ई. में हुई थी। इस ग्रंथ में भरतेश्वर और बाहुबली का चरित वर्णन है। इस ग्रंथ की कथा में इन्हें आयोध्यावासी ऋषभ जिनेश्वर के यहाँ सुनंदा और सुमंगला से उत्पन्न बताया गया है। भरत आयु में बड़े एवं पराक्रमी थे जो अयोध्या के राजा बनाए गए तथा बाहुबली को तक्षशिला का राज्य मिला। कवि ने दोनों राजाओं की वीरता और युद्धों आदि का विस्तार से वर्णन किया, किन्तु हिंसा और वीरता के पश्चात विरक्ति और मोक्ष के भाव को प्रतिपादित करना कवि का लक्ष्य रहा। इस ग्रंथ के अतं में वीर और शृंगार रसों का निर्वेद में अंत हुआ है। यह ग्रंथ 205 छंदों में रचित एक सुंदर खंडकाव्य है।

बोध प्रश्न –

- जैन साहित्य की रास परंपरा का प्रथम ग्रंथ होने का श्रेय किसे प्राप्त है ?

6.3.6 स्वयंभू

स्वयंभू, अपभ्रंश भाषा के महाकवि थे। ये सहृदय, संवेदनशील, विद्वान, काव्यशास्त्र के ज्ञाता एवं श्रेष्ठ कवि थे। इसलिए स्वम्भू को अपभ्रंश का वाल्मिकी कहा जाता है। उनके समय सीमा को लेकर विद्वानों में मतभेद है। इनका समय मूल रूप से 8 वीं शताब्दी माना गया है। स्वयंभू की उपलब्ध रचनाओं से उनके विषय में इतना ही ज्ञात होता है कि उनके पिता का नाम मारुतदेव और माता का पद्मिनी था। अभी तक इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं- 'पउमचरिउ' (पद्मचरित), 'रिट्ठणेमिचरिउ' (अरिष्ट नेमिचरित या हरिवंश पुराण) और 'स्वयंभू छंदस्'। इनमें प्रथम दो रचनाएँ प्रबंध काव्य तथा तीसरी प्राकृत-अपभ्रंश छंद शास्त्रविषयक है। ज्ञात अपभ्रंश प्रबंध काव्यों में स्वयंभू की प्रथम दो रचनाएँ ही सर्वप्राचीन, उत्कृष्ट और विशाल पाई जाती हैं और इसीलिए उन्हें अपभ्रंश का आदि महाकवि भी कहा गया है।

एमहि तिह करोनि पुणु रहुवइ।
जिह ण होमि पडिवारें तिय मई ॥

बोध प्रश्न –

- ‘अपभ्रंश का वाल्मीकि’ कौन हैं ?

6.3.7 पुष्पदन्त

पुष्पदंत अपभ्रंश भाषा के महाकवि थे जिनकी तीन रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं- 'महापुराण', 'जसहरचरित' (यशोधरचरित) और 'णायकुमारचरिअ' (नागकुमारचरित)। इन ग्रंथों की उत्थानिकाओं एवं प्रशस्तियों में कवि ने अपना बहुत कुछ वैयक्तिक परिचय दिया है। इसके अनुसार पुष्पदंत काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे तथा शिवजी के भक्त थे। उनके पिता केशवभट्ट और माता मुग्धादेवी पूर्व में शिवभक्त थे, फिर वे जैन धर्मावलंबी हो गए। उन्हें तत्कालीन राष्ट्रकुल नरेश कृष्णराज तृतीय के मंत्री भरत ने आश्रय दिया और उन्हें काव्यरचना की ओर प्रेरित किया। इसके फलस्वरूप कवि ने ‘महापुराण’ की रचना की। इनकी कविता में स्वयंभू की अपेक्षा अलंकरण की प्रवृत्ति अधिक सुंदर रूप में दिखाई पड़ती है। पुष्पदंत को 'अभिमान मेरु' की उपाधि मिली थी।

बोध प्रश्न –

- पुष्पदंत को किस उपाधि से अलंकृत किया गया था ?

6.3.8 अद्दहमाण (अब्दुल रहमान)

अद्दहमाण मुल्तान के निवासी थे और जाति से जुलाहा थे।मुनि जिनविजय, राहुल सांकृत्यायन तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कवि अब्दुल रहमान को अमीर खुसरो से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है और इनका जन्म 12वीं शताब्दी निर्धारित किया है। ‘संदेश रासक’ अपभ्रंश का महान ग्रंथ है। यह ग्रंथ अपने साहित्यिक सौन्दर्य के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है अपितु ऐतिहासिक महत्ता भी रखता है। इसमें 223 छंदों का प्रयोग किया गया है। इसमें मूल रूप से 21 प्रकार के छंदों का इस्तेमाल किया गया। यह विरह प्रधान काव्य है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं – इस संदेश में ऐसी करुणा है, जो पाठक को बरबस आकृष्ट करती है। विरहिणी नायिका पथिक से अपने प्रियतम को संदेश देती हुई कहती है-

‘गरुअउ परिहउ कि न सहउ, पइ पोरिस निलएण।
जिहि अंगिहि तू बिलसिया, ते दद्धा बिरहेण ॥’

बोध प्रश्न –

- ‘संदेश रासक’ के रचनाकार का नाम बताइए।

6.3.9 हेमचंद्र

‘आचार्य हेमचन्द्र’ (डॉ. वि.भा मुसलगाँवकर) का जन्म गुजरात में अहमदाबाद से सौ किलो मीटर दूर दक्षिण-पश्चिम स्थित धंधुका नगर में विक्रम संवत् 1145 के कार्तिक पूर्णिमा की

रात्रि में हुआ था। हेमचन्द्र उस समय के सबसे प्रसिद्ध जैन आचार्य थे। हेमचन्द्र दार्शनिक, वैयाकरणीक, आलंकारिक के रूप में प्रसिद्ध हैं। हेमचन्द्र न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धान्त, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और योग आदि विषयों के प्रखर विद्वान थे। हेमचन्द्र राजा सिद्धराज जयसिंह के सभा-कवि थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह (संवत् 1150-1199) और उनके भतीजे कुमारपाल (संवत् 1199-1230) के यहाँ इनका बड़ा मान था।" वे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न आचार्य थे। इनके अद्वितीय ज्ञान एवं बहुमुखी प्रतिभा के कारण ही इन्हें 'कलिकालसर्वज्ञ' की उपाधि से अलंकृत किया गया है। इन्होंने एक बड़ा भारी व्याकरण ग्रन्थ 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' की रचना की थी। इसका समय आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सिद्धराज के समय से माना है। इसके साथ उन्होंने यह भी संकेत किया है कि इस ग्रन्थ में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का समावेश है। इसका एक उदाहरण है-

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।
लज्जेजंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु।।

(भला हुआ जो मारा गया, हे, बहिन! हमारा कंत(पति)। यदि वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समवयस्काओं से लज्जित होती।)

बोध प्रश्न –

- हेमचंद्र की रचना का नाम बताइए।

6.3.10 चंदबरदाई

आचार्य रामचंद शुक्ल के अनुसार चंदबरदाई हिंदी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका 'पृथ्वीराजरासो' हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। उन्होंने चंदबरदाई को दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान का सामंत और राजकवि माना है। तॉसी भी चंद को पृथ्वीराज के समकालीन मानते हैं। महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद और रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इनका जन्म लाहौर में हुआ था। इस तरह इनके जन्म के सम्बन्ध में कई धारणाएँ मिलती हैं। शुक्ल जी इनका समय 1168 ई. और मृत्यु 1192 ई. मानते हैं। उनके सम्बन्ध में शुक्ल जी 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं –"रासो के अनुसार ये भट्ट जाति के जगात नामक गोत्र के थे। इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब थी, जहाँ लाहौर में इनका जन्म हुआ था। इनका और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही दिन यह संसार भी छोड़ा था। ये महाराज पृथ्वीराज के राज कवि ही नहीं, उनके सखा और सामंत भी थे तथा षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंदशास्त्र, ज्योतिष, पुराण, नाटक आदि विद्याओं में पारंगत थे।" रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ में यह स्पष्ट कर दिया कि चंदबरदाई का जीवन पृथ्वीराज से एकमात्र अभिन्न था। ये सभा, युद्ध, आखेट तथा यात्रादि में सदा महाराज के साथ रहा करते थे। इस से संबंधित कथा प्रचलित है कि- जब शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज चौहान को बंदी बना कर गजनी ले गया तब चंद भी वहां पहुँचे और रासो का लेखन-कार्य अपने पुत्र को सौंप गए। इससे संबंधित पंक्ति बहुत प्रसिद्ध है-

'पुस्तक जल्हण हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज।'

गजनी पहुँचकर चंद ने सम्राट चौहान को मुक्त करने के लिए पृथ्वीराज द्वारा शब्दबेधी बाण चलाने की योजना बनाई। पृथ्वीराज ने चंद के संकेत पर बाण चलाकर गोरी का काम तमाम कर दिया, तत्पश्चात चंद और पृथ्वीराज ने कटार मार कर आत्मोत्सर्ग किया। यह कहा जाता है कि जल्हण ने चंद के अधूरे महाकाव्य को पूर्ण किया था।

रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
प्रथिराज सुजस कवि चंदकृत, चंद नन्द उद्धरिय तिमि।।

डॉ. शिव कुमार शर्मा 'हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ' पुस्तक में चंदबरदाई को षड्-भाषा, कुरान तथा पुराण के ज्ञाता होने का दावा किया है... षड्-भाषा कुरानंच पुराण विदित माया। 'वर्णरत्नाकर' के लेखक ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने षड्-भाषाओं के अंतर्गत संस्कृत, प्राकृत, अवहठ, पैशाची, शौरसेनी तथा मागधी का उल्लेख किया है। उनके अनुसार- शकारी, आभीरी, चांडाली, सावली, द्राविड़ी, औत्कलि और विजातीया, ये सात उप भाषाएँ हैं। हमारा अनुमान है कि चंदबरदाई को उपयुक्त भाषाओं का विशिष्ट ज्ञान था और यह कोई आश्चर्यचकित करने वली बात भी नहीं थी कि पृथ्वीराज रासो अपने मूल रूप में प्राकृत-भाषा में या तत्संबंधी-अपभ्रंश में लिखा गया हो तथा बाद में उसकी भाषा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रही हो।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चंदबरदाई से संबंधित जनश्रुति की परम्परा नितांत कपोल नहीं हो सकती है। उनके जीवन से संबंधित सामग्रियां भले ही विश्वसनीयता और संतोषजनक नहीं लगे किन्तु इससे यह भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आप आदिकाल के महत्वपूर्ण कवियों में एक हैं। किन्तु चंदबरदाई पर विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता महसूस होती है।

बोध प्रश्न –

- 'पृथ्वीराज रासों' अपने मूल रूप में किस भाषा में थी ?

6.3.11 अमीर खुसरो

अमीर खुसरो इनका उपनाम है, इनका वास्तविक नाम अब्दुल हसन है। इनका जन्म 1253ई. एटा में हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इन्होंने ग्यासुद्दीन बलबन से लेकर अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन मुबारक तक कई पठान बादशाहों का जमाना देखा था। आप फारसी के बहुत अच्छे ग्रंथकार और अपने समय के नामी कवि थे। आप बड़े ही मिलनसार, दानी, विनोदी और उदार थे। इनमें साम्प्रदायिक कट्टरता का लेशमात्र नहीं था। डॉ. ईश्वरीप्रसाद इनके सम्बन्ध में लिखते हैं- "खुसरो केवल कवि ही नहीं था, वह योद्धा भी था और साथ ही क्रियाशील मनुष्य भी।" जब संवत् 1324 में इनके गुरु निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु हुई, तब वह ग्यासुद्दीन तुग़लक के साथ बंगाल में थे। मुत्यु का समाचार सुनते ही वे शीघ्र ही दिल्ली पहुंचे और उनके कब्र के पास जाकर एक दोहा पढ़कर बेहोश हो गए। इनके द्वारा पढ़ा गया यह दोहा आज भी प्रसिद्ध है –

गौरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन, भई चहुँ देस।।

अंत में कुछ दिनों के बाद ही उनकी भी 1325 ई में मृत्यु हो गयी।

अमीर खुसरो आदिकाल के खड़ीबोली के प्रथम प्रयोगकर्त्ता माने जाते हैं। इस लिए आदिकाल में उनका ऐतिहासिक महत्त्व है। वे अरबी, फारसी, तुर्की और हिंदी आदि के भी ज्ञाता थे। इन्होंने कविता की 99 पुस्तकें लिखीं, जिनमें कई लाख शेर थे। किन्तु उनमें से भी 20-22 ग्रन्थ प्राप्त हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं- 'किस्सा चार दरवेश', 'खालिक बारी' (तुर्की-अरबी-फारसी और हिंदी का पर्याय कोश), 'नुह सिपहर' आदि प्रमुख हैं। इन्होंने फारसी से कहीं अधिक हिंदी में लिखा है। इनकी कुछ पहेलियाँ, मुकरियाँ और फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं। जैसे-

पहेली-

एक थाल मोती से भरा। सब के सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाल फिरे। मोती उससे एक न गिरे।। उत्तर (आकाश)

दो-सुखने-

सितार क्यों न बजा ?
औरत क्यों न नहाई ? उत्तर- परदा न था।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "खुसरो की हिंदी रचनाओं में भी दो प्रकार की भाषा पाई जाती है। ठेठ खड़ी बोली में, पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो-सखुने मिलते हैं। यद्यपि इनमें भी ब्रज भाषा की झलक है। पर गीतों की भाषा ब्रज या मुख्य-प्रचलित काव्य भाषा ही है।" उनका यह भी मानना है कि- खुसरो के नाम पर संग्रहित पहेलियों में कुछ प्रक्षिप्त और पीछे की जोड़ी पहेलियाँ भी मिल गई हैं। डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय ने लिखा है. 'खुसरो की लोकप्रियता का कारण इनकी हिन्दवी की रचनाएँ हैं।' हिन्दवी ज्ञान पर इनको स्वयं पर गर्व है।'आशिका' नामक रचना में इन्होंने हिंदी की बड़ी प्रशंसा की है। इनके साहित्य में हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न तथा उसमें भाषा सम्बन्धी सामंजस्य का आदर्श भी उपस्थित किया है। आचार्य श्यामसुन्दर दास कहते हैं कि- 'खुसरो के पूर्ववर्ती साहित्य में राजकीय मनोवृत्ति है उसे जन-साहित्य नहीं कहा जा सकता किन्तु हम उनकी कविता में युग-प्रवर्तक का आभास पाते हैं।'

खुसरो ने न केवल ऐतिहासिक घटनाओं का परंपरागत ब्यौरा मात्र ही प्रस्तुत किया है बल्कि तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी सजीव चित्रण उपस्थित किया है। खुसरो प्रसिद्ध संगीतकार भी थे। ध्रुव पद के स्थान पर कौल या कव्वाली बनाकर इन्होंने बहुत से नए राग निकाले थे। जो अब तक प्रचलित है। येभी उनके संबंध में कहा जाता है कि बीन को घटा कर उन्होंने सितार बनाया था। संगीतज्ञ होने के कारण इनके साहित्य में संगीतात्मकता की मात्रा भी दृष्टिगोचर होती है।

बोध प्रश्न –

- खड़ी बोली के प्रथम प्रयोगकर्ता कौन हैं ?

6.3.12 विद्यापति

विद्यापति संक्रमण काल के कवि थे। एक ओर वे आदिकालीन साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं तो दूसरी ओर वे हिंदी भक्ति और शृंगार की परम्परा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका जन्म बिहार के दरभंगा जिले के विसपी गाँव में हुआ था। ये तिरहुत के महाराज शिवसिंह के आश्रय में रहते थे। तिरहुत के राजा शिवसिंह ने विद्यापति को वि.संवत् 1457के लगभग 'अभिनव जयदेव' की उपाधि सहित विसपी ग्राम दान में दिया था। महाराज शिवसिंह के अतिरिक्त रानी लखिमा देवी भी इनकी बड़ी भक्त थीं। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' में अपने आश्रयदाता शिवसिंह और कीर्तिसिंह की वीरता का बड़े ही ओजस्वी और प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है। विद्यापति किस क्षेत्र के कवि हैं इसको लेकर काफी विवाद रहा है, बंगाली लोग इन्हें बँगला का कवि समझते थे तो मिथिला वाले मैथिली के।

विद्यापति एक महान पंडित थे। उन्होंने अपनी रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा में लिखी हैं। संस्कृत पर भी उनको पांडित्य हासिल था, इस लिए इन्होंने अपनी अधिकतर रचनाएँ संस्कृत में ही लिखी। 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' में उनका वीर कवि का रूप है। 'पदावली' में उनका शृंगारी रूप झलकता है। और 'शैव सर्वस्व सार' में वे भक्ति भाव से झूमते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस तरह उनके साहित्य में तीनों रूपों का संगम है।भाषा और भाव की दृष्टि से इनकी रचनाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। भाषा के आधार पर इनकी रचनाएँ -

(1)संस्कृत-शैव सर्वस्वसार, प्रमाणभूत पुराण संग्रह, भूपरिक्रमा, पुरुष परीक्षा, लिखनावली, गंगा वाक्यावली, दान वाक्यावली, विभागसार, गया पत्तलक, वर्ण कृत्य, दुर्गा भक्ति तरंगिणी।

(2) अवहट्ट- कीर्तिलता और कीर्ति पताका।

(3)मैथिली- पदावली।

हिंदी साहित्य में विद्यापति की अक्षुण्ण कीर्ति का आधार उनके तीन ग्रन्थ हैं- 'पदावली', 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका'। 'पदावली' के लिए ही उन्हें मैथिल कोकिल की उपाधि मिली थी। विद्यापति ने पदावली में राधा-कृष्ण के प्रणय लीलाओं का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में उनके आदर्श कवि जयदेव रहे हैं। जयदेव का 'गीत-गोविन्द' इनका प्रेरणात्मक ग्रन्थ है। वे भाव और शैली दोनों दृष्टियों से जयदेव से प्रभावित दिखाई देते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस सम्बन्ध में लिखते हैं- "आध्यात्मिक रंग के चश्मे आज कल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने गीत-गोविन्द के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी।" 'पदावली' में इनका शृंगारी रूप पूर्ण रूप से उभर कर आया है। इसमें शृंगार के दोनों रूप संयोग और वियोग का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें राधा और कृष्ण के बीच ईश्वरीय भावना की अनुभूति को नहीं दिखाया गया है। इसमें दोनों प्रेम-युगल की तरह विहार करते हुए नजर आते हैं। उदाहरण स्वरूप–

'कि आरे नव जौवन अभिरामा।

जाट देखल तत कहएन पारिअ छओ अनुपम इकठामा।।

'वस्तुतः विद्यापति संयोग-पक्ष के सफल गायक हैं और प्रेम के परम पारखी हैं।'

'कीर्तिलता' का हिंदी साहित्य में दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण स्थान है- पहला साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से तथा दूसरा भाषा परिवर्तन के कारण से। इस ग्रन्थ में अपने आश्रयदाता कीर्तिसिंह की वीरता का वर्णन किया गया है। 'यह एक अपूर्ण ऐतिहासिक काव्य है। पृथ्वीराज रासो से यह अपने ऐतिहासिक महत्त्व के कारण भिन्न हो जाता है। कवि ने अपने समसामयिक राजा का गुणगान बड़ी अलंकृत भाषा में किया है। फिर भी कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पित घटनाओं एवं संभावनाओं से धूमिल नहीं होने दिया है।' इस ग्रन्थ में उस समय की सभी परिस्थितियों का चित्र उपस्थित किया गया है। इस ग्रन्थ की विशिष्टता यह है कि हिन्दू, मुसलमान, खान, वेश्याओं तथा सैनिकों के सजीव एवं पक्षपात रहित पक्ष को उपस्थित किया गया है। अतः कहने का तात्पर्य यही है कि कवि ने कहीं भी ऐतिहासिक तथ्यों को विकृत करने का प्रयास नहीं किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कीर्तिलता' के सम्बन्ध में लिखते हैं कि – "ऐसा जान पड़ता है कि 'कीर्तिलता' बहुत -कुछ उस शैली में लिखी गई थी, जिसमें चंदबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' लिखा था। यह भृंग-भृंगी के संवाद के रूप में है। इसमें संस्कृत और प्राकृत के छंदों का प्रयोग है। संस्कृत और प्राकृत के छंद रासो में बहुत आये हैं। रासो की भांति 'कीर्तिलता' में भी गाथा(गाहा) छंद का व्यवहार प्राकृत भाषा में हुआ है। यह विशेष लक्ष्य करने की बात है कि संस्कृत और प्राकृत पदों में तथा गद्य में भी तुक मिलाने का प्रयास किया गया है जो अपभ्रंश के परम्परा के अनुकूल ही है।"

बोध प्रश्न –

- ' मैथिल कोकिल' की उपाधि किसे प्राप्त थी ?
- विद्यापति की रचनाओं का नाम बताइए ।
- कीर्तिलता_________ के संवाद के रूप में है।

6.4 पाठ सार

इस पाठ में आदिकाल के प्रतिनिधि कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व के पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है।इस काल के अधिकांश कवि चारण और राजाश्रित थे। प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व पहलू उन्हें एक-दूसरे से भिन्न और विशिष्ट बनाता है। कुछ रचनाकारों के सम्बन्ध में विवाद भी है कि इन्हें हिंदी साहित्य के कवि के रूप में देखा जाये या न देखा जाए। कुछ रचनाओं को तो शुद्ध धार्मिक मान कर साहित्य की कोटि में स्थान नहीं दिया गया। किन्तु कुछ आलोचकों ने उनकी गुणवत्ता और महत्ता को स्थापित करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि उनके साहित्य के बिना आदिकालीन साहित्य अपूर्ण ही रहेगा। भले ही उस साहित्य में धार्मिकता का पुट है किन्तु यह दौर हिंदी साहित्य का आरंभिक दौर है। इसलिए इसमें इस तरह की धार्मिकता का पुट दिखाई देना स्वाभाविक है। किन्तु धार्मिकता के इतर इनका साहित्य अनभूति और सजीवता का साहित्य है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता है।

6.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं –

1. आदिकाल हिंदी साहित्य की जड़ों का पत्ता देने वाला साहित्य है।
2. हिंदी साहित्य की ये जड़ें जहाँ एक ओर बौद्ध साहित्य से जुड़ती हैं तो दूसरी ओर जैन परंपरा से भी पोषण ग्रहण करती है।
3. संस्कृत के चरित काव्य से लेकर संदेश काव्यों तक भी आदिकाल की जड़ों की पैठ है।
4. पाली, प्राकृत और अपभ्रंश में उपलब्ध नीति काव्य और गाथाओं का आदिकालीन साहित्य को प्राप्त हुआ है।
5. आदिकाल के प्रमुख साहित्यकारों की रचनाओं के अनुशीलन से उपर्युक्त समस्त बिंदुओं की पुष्टि होती है।

6.6 शब्द संपदा

1. सिद्ध : मन्त्रों की सिध्दि चाहने वाले सिध्द कहलाये। सिध्दों का समय 797 ई. से 1257 ई. तक माना गया है।

2. दोहाकोश: दोहाकोशमें दोहा छंद का प्रयोग है। दोहों की रचना परिनिष्ठित अपभ्रंश में है। इसमें मतों का खंडन-मंडन हुआ है।

3.चर्यापद : चर्यापद गेय हैं। विभिन्न राग रागिनियों में गयी जा सकती है। चर्या का अर्थ चरित या दैनंदिन कार्यक्रम का व्यावहारिक रूप है। ये वे गीतिपद हैं जिनमें सिध्दों की मनःस्थितिप्रतीकों द्वारा व्यक्त की गयी है।

4. सन्धा भाषा : संधा भाषा का अर्थ अभिसंधि युक्त या अभिप्राय युक्त भाषा से है। जिस भाषा में गूढ़ अर्थ छिपा वह संधा भाषा है। सिध्दों ने अपना अभिप्रेत गूढ़ आशय अभिव्यक्त करने के लिए जिस सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया, वह संधा भाषा है। यह दुर्बोध है तथा अटपटी भी है।

5. हठयोग: नाथ पंथ में हठयोग को साधना का अनिवार्य अंग माना गया है।

6.फागु : यह गेय काव्य है। इसमें वसंत के मादक वातावरण का काव्यात्मक चित्रण मिलता है।

7. देहलवी: दिल्ली और दिल्ली के आसपास की भाषा। अमीर खुसरो 'देहलवी हिन्दवी' के कवि थे।

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. विद्यापति का जीवन परिचय डेट हुए उनकी प्रमुख रचनाओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
2. अमीर खुसरो का जीवन परिचय देते हुए उनकी प्रमुख रचनाओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
3. चंदबरदाई के साहित्यिक रचनाओं पर आलोचना करने वाले विद्वानों पर चर्चा करें।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1.गोरखनाथ कौन थे उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए। ?

2.स्वयंभू की भाषा पर विचार करते हुए उनकी रचनाओं का संक्षिप्त में परिचय दीजिए।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1. 'पंडित सअल सत् बक्खाणइ' पंक्ति किसकी है ? ( )

(अ) सबरपा (आ) सरहपा

(इ) लुईपा (ई) स्वयंभू

2. 'चर्यापद' किसकी रचना है ? ( )

(अ) जोइन्दु (आ) हेमचंद

(इ)पुष्पदंत (ई)शबरपा

3.गोरखनाथ की परंपरा में नहीं आते हैं ? ( )

(अ) हेमचंद (आ) मत्येद्रनाथ

(इ) गोरक्षनाथ (ई) कृष्णपाद

4.अद्दहमाण की रचना है। ( )

(अ) महापुराण (आ) संदेश रासक

(इ) शब्दानुशासन (ई) चर्यागीत

5. हेमचन्द्र का जन्म कब हुआ ? ( )

(अ) 1145 (आ) 1146

(इ) 1147 (ई)1148

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) शुक्ल जी पृथ्वीराज का समय ___________ मानते हैं।

2) संवत् 1324 में ___________ के गुरु निज्मुद्दीन औलिया की मृत्यु हुई।

3) मैथिल कोकिल नास से ___________जाने जाते थे।

4) डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य ने सरहपा का समय वि. सं. ___________ बताया है।

5) अब्दुल रहमान ___________ वीं शताब्दी के कवि हैं।

III सुमेल कीजिए।

1.	सरहपा	(अ) पउमचरिउ
2.	स्वयंभू	(आ) दोहा कोश
3.	शबरपा	(इ) पद
4.	गोरखनाथ	(ई) चर्यापद
5.	अमीर खुसरो	(उ) खालिक बारी

6.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां : डॉ. शिवकुमार शर्मा
2. हिंदी साहित्य का नवीन इतिहास : डॉ. लाल साहब सिंह
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्यरामचंद्र शुक्ल
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं.-डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल

इकाई 7 : भक्ति आंदोलन के उदय की सामाजिक – सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

रू रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3मूल पाठ : भक्ति आंदोलन के उदय की सामाजिक – सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
7.3.1 भक्ति आन्दोलन का अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य
7.3.2 भक्तिकाल के प्रमुख आचार्य एवं संप्रदाय
7.3.3.1 श्री संप्रदाय
7.3.3.2 ब्रह्म संप्रदाय
7.3.3.3 रुद्र संप्रदाय
7.3.3.4 सनकादि संप्रदाय
7.4 पाठ सार
7.5 पाठ की उपलब्धियाँ
7.6 परीक्षार्थ प्रश्न
7.8 पठनीय पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

भारतीय परंपरा और संस्कृति के निर्माण में भक्ति आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। भक्ति आन्दोलन वास्तव में सामंती संस्कृति एवं वर्चस्व के विरुद्ध जनसंस्कृति के उत्थान एवं हस्तक्षेप का अखिल भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन है। इसलिए भक्त कवियों की दृष्टि में “मानुष सत्य के ऊपर कुछ भी नहीं है – न कुल, न जाति,न धर्म, न संप्रदाय, न स्त्री-पुरूष का भेद, न किसी शास्त्र का भय और न लोक का भ्रम।” (पांडेय, मैनेजर – भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृष्ठ - दूसरे संस्करण की भूमिका) भारतीय चिंतन परंपरा में के० दामोदरन लिखते हैं - "भक्ति आंदोलन का मूल आधार भगवान विष्णु अथवा उनके अवतारों राम और कृष्ण की भक्ति थी।... यह सिद्धान्त कि ईश्वर के सामने सभी मनुष्य फिर वे ऊंची जाति के हों अथवा नीची जाति के -समान हैं, इस आंदोलन का ऐसा केंद्र बिन्दु बन गया जिसने पुरोहित वर्ग और जाति-प्रथा के आतंक के विरुद्ध संघर्ष करने वाले आम जनता के व्यापक हिस्सों को अपने चारों ओर एकजुट किया। इसप्रकार मध्य युग के इस महान आंदोलन ने न केवल विभिन्न भाषाओं और विभिन्न धर्मों वाले जनसमुदायों की एक सुसंबद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की, बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरूद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का भी मार्ग प्रशस्त किया।" (दामोदरन, के० – भारतीय चिंतन परंपरा, पृष्ठ 327) स्पष्ट है कि भक्ति सिर्फ एक आध्यात्मिक क्रिया व्यापार नहीं बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध मनुष्य के समानता

और मुक्ति के मानवतावादी चेतना से भी संदर्भित है।

7.2उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस पाठ को पढ़कर आप -

- आन्दोलन के उदय की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- भक्ति की अवधारणा और इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।
- भक्ति आन्दोलन के उदय के बारे में प्रचलित अलग-अलग व्याख्यायों पर तर्कपूर्ण दृष्टि से विचार कर सकेंगे।
- भक्ति आन्दोलन के एक अखिल भारतीय आन्दोलन होने के बारे में विविध मतों से अवगत हो सकेंगे.
- भक्ति आन्दोलन के दार्शनिक आधारों पर चर्चा करते हुए इस आन्दोलन के निर्माण में विभिन्न आचार्यों के योगदान को समझ संकेंगे।

7.3 मूल पाठ : भक्ति आंदोलन के उदय की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

7.3.1 भक्ति की अवधारणा

विश्व की लगभग सभी संस्कृतियों में ईश्वर को न केवल सृष्टि-नियंता माना जाता है अपितु उसे सर्वशक्तिमान, अजर-अमर, अविनाशी, विधाता, आदि, अनंत, परम एवं अनश्वर इत्यादि ऐसे अनेक नामों से पुकारा जाता है। भारतीय धर्म चिंतन की वैचारिकता के जो प्रमाणिक पाठ उपलब्ध हैं उसके मूल में भी देखें तो वहाँ ईश्वर की कल्पना समस्त सांसारिक पापों से मुक्त करने और भौतिक जगत से मोक्ष देने वाले 'मोक्षदाता' के रूप में उसकी अनेक लीलापरक व्याख्याएं मौजूद हैं। 'श्रीमदभागवत गीता' में जब कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते है कि मुझसे बाहर और श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि मुझमें समाहित है तो आस्था, श्रद्धा और सर्वस्व-समर्पण के इस महिमागान के मूल में ईश्वर की विराटता और सर्व शक्तिमानता के अलावा कोई दूसरा अर्थ शायद ही स्वीकार हो। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारतीय परंपरा में धर्म के भीतर ईश्वर या अलौकिक सत्ता के साथ मनुष्य के संबंध स्थापित करने की चार प्रमुख पद्धतियाँ प्रचलित रहीं हैं – ज्ञान, योग, कर्म और भक्ति। इसमें ज्ञान का सम्बन्ध 'ईश्वर संबंधित तत्त्व चिंतन' से होने के कारण यह अत्यंत सूक्ष्म, जटिल और इसी कारण नीरस एवं शुष्क माना जाता है, जबकि योग शारीरिक-साधनों पर आधारित होने के कारण कठोर साधना और तप को महत्त्वपूर्ण मानता है। कर्म का संबंध हालाँकि उन सामाजिक आचरणों से होता है जिसका पालन करके मनुष्य स्वयं को ईश्वर प्राप्ति के योग्य बनाता है, लेकिन व्यावहारिक रूप में यह बाह्य विधि-विधान, आडंबर, देशाटन एवं तीर्थाटन में सीमित होकर रह गया है। इन सभी पद्धतियों में सबसे अलग भक्ति धर्म का वह रसात्मक, लोकग्राह्य एवं मानवीय रूप है जो बुद्धि, शरीर और अन्य क्रियाओं पर निर्भर न होकर 'मनुष्य की भावनाओं' पर आधारित होता है। (देखें – विश्वनाथ त्रिपाठी, – हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, भक्ति आंदोलन की विशेषता यह बताई गई है की

इसमें धर्म साधना का नहीं, भावना का विषय बन गया था। पृ॰ 12) यही कारण है कि लोक जीवन में जब धर्म ने आंदोलन का रूप धारण किया तो उसका माध्यम भक्ति बनी न कि ज्ञान ,योग या कर्म। मध्यकालीन समाज में यह भक्ति न केवल विश्वास और साधना-पद्धतियों के यथा स्थितिवाद को तोड़ती है अपितु मानवीय एकता और सामाजिक समता को सबसे सशक्त माध्यम के रूप में भी स्वीकार करती है। शायद इसीलिए दार्शनिक स्तर पर मतभेद होते हुए भी भक्ति के स्तर पर सगुण और निर्गुण में कोई अंतर नहीं है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'मध्ययुग के संतों का सामान्य विश्वास' पर विचार करते हुए 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में लिखा है - "सबसे पहली बात जो इस सम्पूर्ण साहित्य के मूल में है, यह है कि भक्त का भगवान के साथ एक व्यक्तिगत संबंध है। भगवान या ईश्वर इन भक्तों की दृष्टि में कोई शक्ति या सत्ता मात्र नहीं है बल्कि एक सर्वशक्तिमान व्यक्ति है, जो कृपा कर सकता है, प्रेम कर सकता है, उद्धार कर सकता है, अवतार ले सकता है। निर्गुण मत के भगवान हो या सगुण मत के, भगवान के साथ उन्होने कोई-न-कोई अपना संबंध पाया है।" (द्विवेदी, हजारी प्रसाद – हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ॰ 85)

बोध प्रश्न –

- संतों के बारे में हजारीप्रसाद द्विवेदी का क्या कथन हैं ?

भक्ति 'भज' धातु में क्तिन प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ होता है भजन, स्मरण करना एवं भगवान की सेवा प्रकार। आरंभिक काल से लेकर आज के इस वैज्ञानिक युग में जहां धर्म और भक्ति को नितांत 'व्यक्तिगत आस्था' का विषय मान लिया गया है, अलग-अलग विद्वानों और चिंतकों ने इसे अपने-अपने ढंग से समझने और समझाने का प्रयास किया है। पूजा आदि में प्रगाढ़ प्रेम (पूजादिष्वानुराग इति पाराशर्य - व्यास) ईश्वर के गुण-कीर्तन के प्रति अनन्य प्रेम (कथादिष्विति गर्गः - गर्ग मुनि) से लेकर वर्ण, वर्ग, संप्रदाय तथा धर्मगत बंधनों से इतर एक समतामूलक मानवतावादी चेतना तक के संदर्भ में भक्ति की कई व्याख्याएँ मौजूद हैं। शांडिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार-"सा परानुरक्ति ईश्वरे भक्ति।" अर्थात ईश्वर में अनन्य अनुराग ही भक्ति है फिर ईश्वर चाहे सगुण हो या निर्गुण। नारद ने भक्ति सूत्र में भक्ति को स्पष्ट करते लिखा है –"सा त्वस्मिन परमप्रेम रूपा।" भक्त कवियों का मानना है की इसी प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करने के लिए ही मनुष्य जीवन भर साधना करता है और ईश्वर की कृपा के अलावा किसी भी तरह के किसी भी संसारिक कामना की वह इच्छा नहीं करता है। चूँकि भक्ति के मूल में "असत से सत की ओर गमन करने की प्रवृत्ति भी विद्यमान रहती है जिसके लिए मन और इन्द्रियों की स्थिरता आवश्यक है।" (पी॰ जयरामन – भक्ति के आयाम, पृ॰ 287) इसलिए मध्ययुग के लगभग सभी आचार्यों ने भक्ति को मुक्ति का सबसे सरल और सुगम उपाय माना है। तुलसीदास ने ईश्वर से वरदान मांगते हुए पाप के नाश के लिए भक्ति की मांग करते कहा है -'देहुं भगति तिहुं पाप नसावनि।' कबीर भी कहते हैं –'हरि भगति जाने बिना बूड़ि मुआ संसार।' अर्थात हरि यानी ईश्वर में जिसकी भक्ति नहीं है वह संसार में डूब कर मर जाने लायक है और

जो इस संसार में डूब कर मर जाने लायक है भक्ति उसे भी सार्थकता देती है। इसलिए भक्ति जीवन का अनिवार्य और उसे सार्थकता प्रदान करने वाला तत्व है।

भक्ति मूल रूप से ईश्वर और मनुष्य के बीच रागात्मक संबंध की चेतना का नाम है। मन के भीतर निहित पूजा या श्रद्धा भाव जब किसी अलौकिक या परम शक्ति के प्रति उदय होकर भावनात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है तब वह भक्ति कहलाता है। इसमें ईश्वर का भजन, पूजन, प्रीति, नाम स्मरण, पादसेवन,और आत्म समर्पण सभी शामिल है। भक्ति की प्रवृत्ति बकौल विजयेन्द्र स्नातक –"ईश्वर के अस्तित्व के साथ जुड़ी हुई है। मन के भीतर निहित पूज्यभाव या श्रद्धाभाव जब अपने से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति के प्रति व्यक्त होता है तब वह लौकिक श्रद्धा कहलाता है किन्तु जब यह भाव किसी अलौकिक, अदृष्ट शक्ति के प्रति उदय होकर शाब्दिक रूप से प्रकट किया जाता है, भक्ति कहलाता है। भारतीय तत्व चिंता में भक्ति को ईश्वर की उपासना, आराधना, पूजा, सेवा आदि के मूल में स्थित मुख्य प्रेरक भाव माना गया है।" (नगेन्द्र (संपादक)–भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, पृष्ठ 215) हिंदी साहित्य के पहले वैज्ञानिक इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी 'श्रद्धा और भक्ति' नामक अपने निबंध में भक्ति को परिभाषित करते हुए लिखते है – "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा भाजन के सामीप्य –लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब ह्रदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवन, कीर्तन, ध्यान आदि से आनंद का अनुभव होने लगे -जब उससे संबंध रखनेवाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आसक्त होने लगे, तब भक्ति रस का संचार समझना चाहिए।"(चिंतामणि –रामचंद्र शुक्ल ,पृष्ठ 19)

जहां तक भक्ति के सर्वप्रथम उल्लेख का सवाल है तो हम यह जानते हैं कि भारतीय धर्म चिंतन का सबसे प्रमाणिक और मूल स्रोत वैदिक वांग्मय है। पी जयरामन लिखते हैं – "वेद जैसे कर्म एवं ज्ञान का उद्गम स्थल है वैसे ही वह भक्ति का भी उद्गम-स्थल है। यह अवश्य है कि वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रंथों में अनुरागसूचक भक्ति शब्द का सर्वथा अभाव है और इस शब्द द्वारा उपासना का भी अर्थबोध नहीं कराया गया है।" (पी॰ जयरामन – भक्ति के आयाम पृ॰ 24) स्पष्ट है कि भक्ति का जो रूप आगे चल कर अखिल भारतीय आन्दोलन का स्वरूप पाता है उसका मूल तत्व वैदिक साहित्य में जरुर मिलता है लेकिन प्रवृत्ति के रूप में भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वर' उपनिषद में मिलता है। भक्ति मार्ग का प्रमुख सम्प्रदाय भागवत धर्म है जिसका उदय ईसा के लगभग 1400 वर्ष पूर्व माना जाता है। भगवत धर्म सम्प्रदाय के प्रधान उपास्य देव वासुदेव हैं जिन्हें ज्ञान, शक्ति, बल वीर्य, ऐश्वर्य और तेज इन छह गुणों से संपन्न होने के कारण भगवान् या भगवत कहा गया है। आज जिसे हम वैष्णव धर्म या वैष्णव सम्प्रदाय के नाम से जानते हैं उसका ही प्राचीन नाम भागवत धर्म या पांचरात्र मत है। हिंदी साहित्य के इतिहास में चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच जो भक्ति काव्य का जो भी स्वरूप हमें दिखाई देता है उसके मूल में या यूँ कहें की उसका मूल स्रोत यही भगवत धर्म है।

बोध प्रश्न –

- भक्ति किसे कहते हैं ?

7.3.2 भक्ति आन्दोलन के उदय की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भक्ति को मुक्ति के साधन और साध्य के रूप में स्वीकार, भारतीय परंपरा में प्राचीन काल से ही चली आ रही है, लेकिन मध्यकालीन भारत में ख़ासकर चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच भक्ति की जिस भावना ने सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन का रूप लिया उसे हम सब भक्ति आन्दोलन के नाम से जानते हैं। भारतीय साहित्य के आरंभिक अध्येता एवं इतिहासकार जार्ज ग्रियर्सन इस आन्दोलन को भारत में सबसे विशाल और सबसे प्रभावी आन्दोलन बताते हुए लिखते हैं – "हम अपने को एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं जो उन सब आन्दोलनों से कहीं अधिक विशाल है जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है। यहाँ तक की बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल है, क्योंकि इसका प्रभाव आज भी वर्तमान है।" (हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिंदी साहित्य : उद्भव एवं विकास, पृष्ठ 58) भक्ति आन्दोलन के उद्भव और विकास पर विचार करते हुए हम आगे इस कथन के निहितार्थ पर गंभीरता से विचार करेंगें, लेकिन यहाँ जो बात बिल्कुल स्पष्ट है और जो प्रमाणित हो चुका है कि भक्ति आन्दोलन एक अखिल भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन था, एक ऐसा आंदोलन जो न केवल लगभग चार सौ साल तक फैला हुआ था बल्कि इसका प्रभाव साहित्य के साथ-साथ कला और संस्कृति के लगभग सभी अनुशासनों (जैसे संगीत, ललित कला, वास्तुकला, नृत्यकला इत्यादि) पर दिखाई पड़ता है। इसी आन्दोलन ने भारतीय साहित्य को कबीर, सूर, तुलसी, जायसी एवं मीरा जैसे महान कालजयी रचनाकार भी दिए है। यहाँ तक की आज जिसे हम भारतीय परंपरा और संस्कृति के नाम से जानते और जिस पर गर्व करते हैं उसका मूल स्रोत भी यही आन्दोलन है। आनुभूतिक गहराई, लोकव्यापी स्वरुप एवं अखिल भारतीय विस्तार के कारण भक्ति काल को न केवल हिंदी साहित्य का 'स्वर्णयुग' माना जाता है अपितु इस आन्दोलन से उपजे काव्य 'भक्ति काव्य' में हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, दर्शन, आचार-विचार या यूँ कहें की हमारी भारतीय जीवन-पद्धति का बहुत बड़ा भाग सुरक्षित है। लेकिन यह भी इतिहास का विचित्र विरोधाभास है कि जिस भक्ति काव्य को हिंदी साहित्य के इतिहास का 'स्वर्णकाल' माना जाता है उसी भक्ति के उद्भव का प्रसंग हिंदी साहित्येतिहास के सर्वाधिक विवादास्पद प्रसंगों में से एक है। इसलिए अब हम भक्ति आन्दोलन के उद्भव और विकास को लेकर जो अलग अलग मान्यताएं हैं उसकी वैचारिकता और तार्किकता की सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को समझने की कोशिश करते हैं।

बोध प्रश्न –

- हिंदी साहित्य के किस काल को स्वर्णकाल कहा जाता है ?

भक्ति आन्दोलन के उद्भव और विकास की ऐतिहासिकता को लेकर साहित्येतिहासकार और विचारकों में काफी विवाद रहा है। खासकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतों ने न केवल साहित्यिक प्रवृत्तियों के निर्धारण में परंपरा और परिस्थितियों

की भूमिका के पड़ताल की पीठिका निर्मित की बल्कि लोक और शास्त्र के बीच का अंतर भी स्पष्ट किया। बहरहाल हम अपने को भक्ति आन्दोलन के उद्भव और विकास पर ही केन्द्रित करें तो हम पाते हैं की भक्ति आन्दोलन के उदय का संबंध जॉर्ज ग्रियर्सन और ताराचंद जैसे इतिहासकार अभारतीय या विदेशी प्रभाव से जोड़ते हैं वहीं आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने इसे विशुद्ध रूप से भारतीय प्रभावों से जोड़कर देखा है। आगे चलकर भक्ति साहित्य के निर्माण में निम्नवर्गीय जातियों की भूमिका को लेकर भी कई शोध आए इसलिए अब एक एक करके इन विद्वानों के स्थापनाओं पर विचार करते हैं।

भक्ति के उद्भव पर पहला व्यवस्थित प्रयास जॉर्ज ग्रियर्सन के यहाँ दिखाई देता है। उन्होंने भारतीय भक्ति आन्दोलन का स्रोत भारत की परंपरा और परिस्थितियों में न खोजकर उसका मूल यूरोपीय ईसाई धर्म में ढूंढा। दूसरे शब्दों में कहें तो वे भक्ति के उद्भव को ईसाईयत का परिणाम स्वीकार करते हैं। बौद्ध धर्म से तुलना करते हुए इसे वे एक विशाल और व्यापक प्रभाव वाला धार्मिक आन्दोलन मानते है, लेकिन इसे बिजली के समान अचानक प्रकट बताते हुए लिखते हैं –"बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों में अन्धकार के ऊपर एक नयी बात दिखाई दी। कोई हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का काल निश्चित नहीं कर सकता।" (हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिंदी साहित्य:उद्भव और विकास पृष्ठ 58) आगे जॉर्ज ग्रियर्सन ने सन 1907 में एक विस्तृत विवेचना के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि- "सन ईसवी की तीसरी शताब्दी में नेस्टोरियन ईसाइयों का एक दल मालाबार के किनारे आ बसा। सन 660 ईसवी तक इनका कोई नियमित मठ न था। चौदहवीं शताब्दी में इन्होनें बप्तिस्मा भी छोड़ दिया था। सेंट थॉमस पर्वत पर इनका जो तीर्थ था उसमें हिन्दू भी सम्मिलित होते थे। रामानुज का जन्म और शिक्षा दीक्षा इसी पर्वत के समीपस्थ स्थानों पर हुई थी, इसलिए उनके ऊपर ईसाई भक्तिवाद का जबर्दस्त प्रभाव था। रामानंद तो इस ईसाई के स्रोत को आकंठ पान कर चुके थे। इसलिए सारा भक्तिवाद ईसाइयों की देन है।" (हजारी प्रसाद द्विवेदी – सूर साहित्य,पृष्ठ 29) स्पष्ट है कि ग्रियर्सन मानते है कि रामानंद (जिन्हें भक्ति को दक्षिण से लाकर उत्तर में उसका प्रसार करने का श्रेय प्राप्त है) ईसाई धर्म के प्रभाव से ही करुणा के भाव से परिचित हुए और फिर उन्होंने भक्ति की अलख जगाई।

बोध प्रश्न –

- भक्तिवाद को ईसाइयों की देंन किसने माना ?

ग्रियर्सन के मत को बाद के लगभग सभी इतिहासकारों ने ऐतिहासिकता के अभाव में नकार दिया है। यह सिद्ध हो चुका है कि ग्रियर्सन का मत उनकी औपनिवेशिक मानसिकता से उपजा हुआ है। पाश्चात्य विद्वान् बेवर ने तो कृष्ण को क्राइस्ट का रूपांतरण ही ठहरा दिया। इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रकार के अनेक भ्रांत धारणाओं के पीछे ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार और उसकी प्रतिष्ठा का सवाल जुड़ा हुआ है। ग्रियर्सन से उपजी हुई भ्रांत धारणा की पुष्टि प्रो एच एच विल्सन ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू रिलिजन' में की है। भारतीय विद्वानों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और अन्य विद्वानों ने ग्रियर्सन के मत का जोरदार खंडन किया है। हमें समझ लेना

चाहिए कि इतना बड़ा आन्दोलन बिना किसी पृष्ठभूमि के अचानक प्रकट हो ही नहीं सकता है। इसलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति को भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास मानते हुए सही ही लिखा है –"जिस बात को ग्रियर्सन ने अचानक बिजली की चमक की तरह फ़ैल जाना लिखा है, वह ऐसा नहीं है। उसके लिए सैकड़ों वर्षों से मेघखंड एकत्र हो रहे थे।"(हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिंदी साहित्य:उद्भव और विकास पृष्ठ 59) इस पर भी विचार किया जा सकता है कि ईसाइयत का यह प्रभाव सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में भारत में ही क्यों उभरा। भारतीय चिंतकों ने एक और अकाट्य तर्क उपस्थित करते यह सवाल उठाया है कि –"ईसा की बाल लीला पर कितने पद यूरोप की भाषाओं में लिखे गए, ईसाई धर्म तो सिखाता है कोई तुम्हारे गाल पर एक तमाचा मारे तो उसके आगे दूसरा गाल भी रोप दो लेकिन तुलसीदास ने मानस में अन्यायी के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध का आदर्श उपस्थित किया है।"(हिंदी साहित्य कोश–शम्भुनाथ (प्र.संपा.),पृष्ठ 2532) रही बात प्रपत्ति भाव की तो प्रपत्ति भाव ईसा से भी पहले भारत में आलवारों की रचनाओं में दिखाई देता है। फिर करुणा का तत्त्व तो ईसाईयों के आगमन से बहुत पहले बौद्ध धर्म में विद्यमान था, जोकि शत प्रतिशत एक भारतीय आंदोलन था। ऐसे अनेक तर्कों से न केवल ग्रियर्सन समेत उन सभी विद्वानों के मत ख़ारिज हो गए जिन्होंने भक्ति को पाश्चात्य प्रभाव से जोड़कर देखने की कोशिश की। ऐतिहासिक दृष्टि के अभाव के कारण ही ग्रियर्सन का मत अमान्य हो गया।

भक्ति आन्दोलन के उदय सम्बन्धी सबसे महत्वपूर्ण स्थापना हिंदी साहित्य के पहले वैज्ञानिक इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रस्तुत की है। हिंदी साहित्य का इतिहास, सूरदास, तुलसीदास, चिंतामणि जैसी रचनाओं में उन्होंने भक्ति के उदय एवं विकास को लेकर विस्तार से प्रकाश डाला है। हलांकि भक्ति के उदय सम्बन्धी उनके विचार पर काफी विवाद हुआ, खासकर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो उनकी मान्यताओं का जोरदार खंडन किया है। भक्ति के उदय के सामाजिक ऐतिहासिक कारणों पर विचार करते उन्होंने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है –"देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के ह्रदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया था। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे। देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे।...आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।...भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनैतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के ह्रदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से जिस सगुण का निरूपण किया था उसकी ओर जनता आकर्षित होती चली आ रही थी।" (पृष्ठ 34-35) आगे चलकर बाबु गुलाब राय और रामकुमार वर्मा भी प्रकारांतर से रामचंद्र शुक्ल के मत का समर्थन करते नजर आते हैं। शुक्ल जी

के विचारों का विश्लेषण करें तो वे भक्ति के उदय को इस्लाम की प्रतिक्रिया के रूप में देखते है और मुस्लिम आक्रान्ताओं से हिन्दुओं के पराभव और उससे उत्पन्न सांस्कृतिक संकट को भक्ति के विकास का प्रमुख कारक मानते हैं। साथ ही वे यह भी बताते है की भक्ति दक्षिण से उत्तर भारत में आई और भक्ति के नाम पर जो आन्दोलन चला था उसका विकास सगुण रूप में था। मतलब वे रामकाव्य धारा से इसका विकास जोड़ते हैं। यह सही है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल भक्ति के उदय के कारणों पर प्रकाश डालते हुए सामाजिक परिवर्तन और जनता की चितवृत्ति दोनों को ध्यान में रखकर अपनी बात करते है लेकिन उनकी स्थापनाओं में तर्क का अभाव है। इसलिए आगे चलकर विद्वानों ने खासकर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी मान्यताओं से असहमति जताई।

बोध प्रश्न –

- भक्ति आंदोलन उदय संबंधी महत्वपूर्ण स्थापना किसने दियी ?

हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति साहित्य के विकास को न तो बाहरी आक्रमण की प्रतिक्रिया (शुक्ल जी इसे ही इस्लाम की प्रतिक्रिया मानते हैं) मानने के पक्षधर है न ही वे हिंदी साहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति के पराभव के साथ जोड़ने के समर्थक। भक्ति आन्दोलन को 'भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास' मानते हुए वे आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यताओं का जोरदार खंडन करते कहते हैं -"यह भी बताया गया है कि जब मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगे तो निराश होकर हिन्दू लोग भगवान का भजन करने लगे। यह बात अत्यंत उपहास्यास्पद है। जब मुसलमान लोग उत्तर भारत में मंदिर तोड़ रहे थे उसी समय अपेक्षाकृत दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलामानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भाव धारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में और फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर वह हुई दक्षिण में।" (हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास,पृष्ठ 59) ऐसा नहीं है कि अपनी स्थापनाओं में द्विवेदी जी मुस्लिम शासकों की भूमिका और उनके शासन को नजरअंदाज करते हैं। वे तत्कालीन समाज और साहित्य पर विचार करते हुए इस बात पर बल देते है कि यहाँ प्रभाव को प्रभाव के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए प्रतिक्रिया के रूप में नहीं। वे लिखते है – "मैं इस्लाम के महत्त्व को भूल नहीं रहा हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।" (हिंदी साहित्य की भूमिका,पृष्ठ 16) स्पष्ट है की आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि वैष्णव धर्म साधारण जनता में लोक धर्म के रूप में पहले से मौजूद था। बाद में वह वैष्णव आचार्यों द्वारा शास्त्र का सहारा पाकर एक आन्दोलन के रूप में विकसित हुआ, इस्लाम की प्रतिक्रिया के स्वरूप नहीं। अगर यह इस्लाम की प्रतिक्रिया होता तो मंदिर और मूर्तियों को तोड़ने का काम जब उत्तर भारत में हो रहा था तो भक्ति को भी उत्तर भारत में ही उत्पन्न होना चाहिए था, जबकि वह हुआ दक्षिण में। साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भक्ति काव्य उत्साह और जिजीविषा का काव्य है हताशा और निराशा का नहीं।

भक्ति आन्दोलन भगवद भजन करने वाला एक सामान्य आन्दोलन मात्र न होकर लोक

और लोक भाषाओं के उद्भव और विकास का काल भी था। ऐतिहासिक और सामाजिक शक्तियों के अंतर्विरोध और सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में भक्ति आन्दोलन की व्याख्या करने वालों में के दामोदरन और रामविलास शर्मा का नाम महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने अपने शोध में पाया कि तेरहवीं –चौदहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के बीच भारत में सामंती व्यवस्था के भीतर ही विकासमान पूंजीवादी उत्पादन पद्धति के तत्त्व निर्मित होने लगे थे। स्थानीय बाज़ारों का विस्तार होने से व्यापार के नए नए केंद्र बनने लगे। व्यापारी और कारीगर नए ताकत के रूप में उभरे। फलस्वरूप मानव मात्र की समानता का विचार ऐतिहासिक आवश्यकता बन कर फैलना शुरू हुआ जिससे नई जातीय इकाईयां और भाषाओं का विकास हुआ। के दामोदरन के मतानुसार – "भक्ति आन्दोलन उस समय आरम्भ हुआ जब हिन्दू और मुसलमान पुरोहितों और उनके द्वारा समर्पित और समृद्ध किए गए निहित स्वार्थों के खिलाफ संघर्ष एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गया था। ...चौदहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के बीच भारत में एक नई भावना फ़ैली थी। प्रत्येक क्षेत्र में –आर्थिक,प्रशासनिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में नई हवाओं के झोंके आ रहे थे। प्रतीत हो रहा था कि पहली बार सामंती संबंधों का स्थान धीरे धीरे विकासमान पूंजीवादी सबंध ले रहे हैं। यही भारत में जातियों के प्रथम अंकुरों के फूटने और विभिन्न भाषाओं के विकास का काल था। देश में बहुमुखी बौद्धिक जागृति की लहर उठी थी। इस सर्वांगीण लहर ने मानो सदियों के गतिरोध और नींद से देश को झकझोर दिया था।" (भारतीय चिंतन परंपरा, पृष्ठ 328) स्पष्ट है कि के दामोदरन व्यापारी और कारीगर को मुख्य प्रेरक और किसान को मुख्य सहयोगी सामाजिक शक्ति के रूप में उस दौर में स्थापित करते हैं और बताते है कि भक्ति आन्दोलन के उभरने और फैलने में इस वर्ग की सबसे बड़ी भूमिका थी। इसलिए यह अनायास नहीं था कि भक्ति काल के अधिकाँश संत और भक्त कवि इन्हीं निम्न वर्ग से आए थे।

आगे चलकर इतिहासकार इरफ़ान हबीब और रामशरण शर्मा ने भी भक्ति आन्दोलन को तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से जोड़कर देखा है। उनका मानना है कि भक्ति आन्दोलन की निर्गुण धारा का सम्बन्ध केन्द्रीय सत्ता स्थापित होने पर सुविधा और विलास सामग्री की बढ़ी मांग से है, साथ ही सड़क, भवन आदि का निर्माण एवं सिंचाई के नए साधन विकसित हुए। इस विकास से अवर्ण शिल्पी, जाट, किसानों एवं तथाकथित छोटी जातियों को काम मिला जिससे उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर हुई। उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर होने से उनमें सामाजिक सम्मान एवं पहचान की भावना जागी और वे निर्गुण भक्ति की ओर अग्रसर होकर अपनी चिंता एवं सरोकारों का साहित्य सृजन करने लगे। मतलब संत काव्य की प्रेरणा के रूप में निम्नवर्ग की बेहतर होती आर्थिक स्थिति, सुविधा के नए साधनों का विकास और अपने स्वाभिमान और सम्मान की तलाश का भाव प्रमुख था। प्रसिद्ध हिंदी आलोचक मुक्तिबोध भी 'मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का एक पहलु' नामक अपने निबंध में भक्ति आन्दोलन से सम्बंधित कुछ बातों पर विचार करते हुए प्रधानतः तीन बातों पर बल देते हैं – पहला कि जो भक्ति आन्दोलन दक्षिण भारत से आया था उसे समाज की धर्म शास्त्रवादी ,वेद

उपनिषदवादी शक्तियों ने नहीं बल्कि आलवार संतों ने और उनके प्रभाव में रहने वाले जनसाधारण ने उसका प्रसार किया था। दूसरी बात कि ग्यारहवीं सदी में महाराष्ट्र में गरीब जनता में भक्ति आन्दोलन का प्रभाव अधिक हुआ और ये जनता हिन्दू मुस्लिम दोनों प्रकार के उच्चवर्गीय से पीड़ित रहे तथा तीसरी बात कि निर्गुण मत के विरुद्ध सगुण मत का संघर्ष निम्न वर्ग के विरुद्ध उच्च वर्गीय संस्कारशील अभिरुचि वालों का संघर्ष था। सगुण मत विजयी हुआ। उसका प्रारंभिक विकास कृष्ण भक्ति के रूप में हुआ।

इसप्रकार हम देखते है कि अलग अलग विद्वानों ने भक्ति काल के उदय की अलग अलग व्याख्या की है। इनमें से किसी भी एक व्याख्या को न तो पूर्णतःस्वीकार किया जा सकता है न ही पूर्वाग्रह से मुक्त होकर उसकी उपेक्षा की जा सकती है। हाँ यह बात सही है कि भक्ति के उद्भव को पाश्चात्य प्रभाव मानने का तर्क अब लगभग ख़ारिज हो चुका है। लेकिन भक्ति आन्दोलन के उद्भव के एक से अधिक कारण उस समाज में मौजूद थे। स्वाभाविक विकास के रूप में यह आन्दोलन जहां आलवार संतों से होते हुए सिद्ध एवं नाथों की साधना को पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार करता है वही दूसरी ओर इस्लाम का आगमन खास कर आक्रान्ता (चाहे वे शासक हो या सामंत) का भी योगदान था। इसलिए भक्ति आन्दोलन भारतीय परम्परा के स्वाभाविक विकास का ही परिणाम है और इस परिणाम में परिस्थितियों की भी भूमिका थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे ठीक ही 'भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास' मानते हैं।

बोध प्रश्न –

- दामोदरन का भक्ति आंदोलन से संबंधित मत को बताइए।

7.3.3 भक्ति आन्दोलन का अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य

भक्ति आन्दोलन हिंदी साहित्य के सर्वाधिक विवादास्पद प्रसंगों में से एक है। भक्ति आन्दोलन से उपजे भक्तिकालीन काव्य को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। लोकजागरण के इस सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन का स्वरूप अखिल भारतीय और चरित्र सामंत विरोधी है। हिंदी भाषा, हिंदी जाति और हिंदी साहित्य के उत्कर्ष के साथ-साथ मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य, संगीत और वास्तुशिल्प में भी एक कलात्मक उंचाई इस काल में देखने को मिलती है। शिव कुमार मिश्र लिखते हैं -"विभिन्न वर्गों तथा वर्ण-व्यवस्था से जर्जर, सामाजिक ऊँच-नीच की भावना से आक्रांत, नाना प्रकार के धार्मिक भेदभाव, कर्मकांड एवं विधि निषेधों से परिचालित भारतीय जीवन में भक्ति आन्दोलन का प्रादुर्भाव और उसके द्वारा उद्घोषित 'मनुष्य सत्य' हमारे लेख उस समय की एक ऐसी अभूतपूर्व घटना एवं अनुभव था जिसकी मिसाल नहीं है।"(भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य,पृष्ठ 27)स्पष्ट है कि भक्ति आन्दोलन एक व्यापक प्रभाव वाला अन्दोलन था, लेकिन हिंदी आलोचना में जब इस आन्दोलन की चर्चा होती है तो इस पर अनेक आरोप जैसे की शास्त्र समर्थित मूल्यों की प्रधानता, ब्राह्मणवादी सोचों का समर्थक इत्यादि भी लगाए जाते हैं। कुछेक आलोचकों ने तो इसके स्वरूप पर ही प्रश्न चिन्ह लगाते हुए इसे हिंदी प्रदेश का आन्दोलन सिद्ध करने की कोशिश की है, जबकि ऐसा है नहीं। इसलिए इस उपशीर्षक के अंतर्गत हम इसके स्वरूप को समझाने की कोशिश करेंगें और देखेंगें की क्या सच में इसका स्वरूप अखिल भारतीय था ?

पिछले उपशीर्षक में हमने देखा की भक्ति आन्दोलन एक सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन था। तमाम विवादों के बावजूद आलोचकों में अब यह आम राय हो गई और जो सच्चाई भी है कि भक्ति आन्दोलन का उद्धव दक्षिण में हुआ और दक्षिण से ही वह धीरे धीरे उत्तर भारत में आया। उपलब्ध ग्रंथों का अध्ययन करने पर हमें यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि भक्ति के उद्भव के सम्बन्ध में सबसे आरंभिक और अधिक प्रमाण हमें ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में प्राप्त होते हैं। डॉ बेनी प्रसाद वर्मा ने भी अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' में स्वीकार किया है कि –"भारतीय भक्ति सम्प्रदाय का आदिस्रोत ऋग्वेद है। इसके कुछ मन्त्रों में मनुष्य और देवताओं के बीच गाढे प्रेम और मैत्री भाव की कल्पना की गई है।" (नगेन्द्र- हिंदी साहित्य का समेकित इतिहास) भक्ति आन्दोलन के प्रवाह की ओर संकेत करते हुए 'श्रीमदभागवतमहात्म्य' में लिखा गया है कि-

"उत्पन्ना द्राविड़े साहं वृद्धि कर्नाटके गाता
क्वाचित क्वाचित महाराष्ट्र गुर्जर जीर्णताम गता
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनैव सरुपिणी
जातां युवती सम्यक श्रेष्ठ रूपा तु साम्प्रतं। "

इसी प्रकार हिंदी में भी यह बहुप्रचलित पंक्ति है कि –

"भक्ति द्राविड उपजी,लाए रामानंद
प्रकट करी कबीर ने सप्त दीप नव खंड। "

भक्ति के उद्भव सम्बन्धी इन दोनो उद्धरणों का भावार्थ देखें तो भक्ति के उद्धव का संशय तो मिट ही जाएगा, यह भी सिद्ध हो जाता है की भक्ति आन्दोलन का स्वरूप अखिल भारतीय था। दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि भक्ति का उदय द्राविड देश में हुआ,तमिलनाडु में हुआ। परन्तु इस तथ्य से आगे का अर्थ दो तरह का संकेत देता है। 'श्रीमदभागवतमहात्म्य' का श्लोक बताता है कि भक्ति का आगे का विकास कर्नाटक और फिर धीरे धीरे महाराष्ट्र में हुआ। उसका पतन गुजरात देश में हुआ और फिर वृन्दावन में उसे पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। हिंदी की अनुश्रुति भक्ति के दक्षिण से रामानंद द्वारा लाए जाने और उत्तर में कबीर द्वारा प्रसारित किये जाने का संकेत करती है। स्पष्ट है कि 'श्रीमदभागवतमहात्म्य' की पंक्ति का संकेत कृष्ण भक्ति की ओर है तो हिंदी की अनुश्रुति रामभक्ति की ओर। ऐतिहासिक परिस्थितियों के अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि अपने आरंभिक दौर में जहां तक आलवारों का सम्बन्ध है कृष्ण की भक्ति पर अधिक बल होते हुए भी व्यावहारिक रूप में वहाँ राम और कृष्ण में कोई बड़ा अंतर दिखाई नहीं देता है। आलवारों और नयनारों ने भक्ति का उपयोग दक्षिण भारत में जैनियों और बौद्धों को भगाने के लिए किया। दक्षिण भारत में भक्ति के जो रूप दिखाई देते हैं उनमें पहला वैष्णव साम्प्रदाय की भक्ति का है, जिसमें राम और कृष्ण से सम्बंधित सम्प्रदाय भी मिला हुआ है। इसका रूप आलवारों से होता हुआ रामानुजाचार्य, रामानंद, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य और विष्णु स्वामी जैसों के द्वारा आगे तक हुआ। दूसरी शाखा शैवों की थी जो नयनारों के बीच विकसित होती रही। तीसरी शाखा बौद्धों और जैनियों को मार भगाने के बाद वैष्णवों और शैवों के मध्य उत्पन्न

हर भेदों को दूर करने के लिए समन्वयात्मक रूप लेकर आयी। इसकी एक कड़ी कर्णाटक के पुंडलीक थे। स्पष्ट है की भक्ति दक्षिण से चलकर कर्णाटक, महाराष्ट्र और गुजरात होते हुए उत्तर के ब्रज प्रदेश में पहुंची। फिर यहाँ से पूरे उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार प्रसार हुआ। इसलिए भक्ति आन्दोलन एक अखिल भारतीय आन्दोलन था।

रामविलास शर्मा ने भी भक्ति के स्वरूप के साथ साथ उसकी व्यापकता और गहराई पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने भक्ति आन्दोलन की व्यापकता पर विचार करते हुए यह कहा है कि इसके सामर्थ्य का रहस्य इस तथ्य में है कि उसमें देश और प्रदेश, राष्ट्र और जाति दोनों की धारणाएं एक साथ बहती है। भक्ति आन्दोलन ने भद्र समाज में संस्कृत, अपभ्रंश और फ़ारसी जैसी शास्त्रीय और राज्याश्रित भाषाओं को छोड़ कर कश्मीरी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, तमिल, मलयालम, तेलुगु, कन्नड़, बंगला, असमिया आदि जातीय भाषाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भारत के इतिहास में यह एक बहुत बड़ा सांस्कृतिक परिवर्तन था, यह लोक जागरण था। के दामोदरन भी लिखते है –"भक्ति आन्दोलन ने देश के भिन्न-भिन्न भागों में, भिन्न –भिन्न मात्राओं में तीव्रता और वेग ग्रहण किया। यह आन्दोलन विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ,किन्तु कुछ मूलभूत सिद्धांत ऐसे थे जो उस समय पूरे आन्दोलन पर लागू होते थे -पहले धार्मिक विचारों के बावजूद जनता की एकता को स्वीकार करना, दूसरे ईश्वर के सामने सबकी समानता,तीसरे जाति प्रथा का विरोध,चौथे यह विश्वास कि मनुष्य और ईश्वर के बीच तादात्म्य प्रत्येक मनुष्य के सद्गुणों पर निर्भर करता हैं कि उनकी जाति अथवा धन संपत्ति पर, पांचवें इस विचार पर जोर कि भक्ति ही आराधना का उच्चतम स्वरूप है और अंत में कर्मकांडों, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन और अपने को दी जाने वाली यंत्रणाओं की निंदा।" (भारतीय चिंतन परंपरा, पृष्ठ 330) स्पष्ट है कि देश के अलग अलग भागों में भक्ति में ये सारे गुण भक्त कवियों की रचनाओं में मिलते हैं। इसलिए ईश्वर के बहाने कर्मकांडों, आडम्बरों का विरोध और मनुष्य की एकता को स्वीकार करने के कारण ही भक्ति आन्दोलन का स्वरूप अखिल भातीय होने के साथ साथ व्यापक बन गया।

महाराष्ट्र में संत तुकाराम एवं नामदेव जैसे कवि तथा वारकरी सम्प्रदाय और महानुभाव सम्प्रदाय ईसा की 15 वीं सदी में उत्पन्न हुए, तो गुजरात में नरसी मेहता जैसा भक्त कवि हुआ। आलवारों की भक्ति प्राचीन है। आरंभिक आलवारों को विष्णु के गदा, शंख, नंदक का अवतार माना जाता है। आलवारों की संख्या 12 मानी गई है जिसमें अंतिम तिरुपानी है। इसी में अंडाल नामक महिला भी थी। अंडाल के भक्ति गीत में प्रेम लक्षणा भक्ति का गहरा पुट है जो वैष्णव भक्ति का भाव कांति भक्ति या उज्जवल रस से परिपूर्ण है। तमिलों का भक्ति आन्दोलन ब्राह्मण धर्म की प्रभु सत्ता के विरुद्ध खड़ा हुआ। कर्णाटक के वीरशैव /लिंगायत भी उसी वर्ग के विरुद्ध जात -पात के विरोध में भक्ति का सहारा लेते दिखाई देते हैं । बंगाल में जयदेव (12 वीं शताब्दी) और चैतन्य (1485 – 1533) भी उदाहरण के तौर पर देखे जा सकते हैं। संत सेवा में उन्मुख आत्म चिंतित ईश्वर भक्ति के प्रणेता गुरु नानक (1469 -1539) भी इसी दौर के भक्त कवि थे। भक्ति अन्दोलन को शास्त्रीय निकष प्रदान करने का प्रयास 10 वीं शताब्दी

में और अधिक हुआ। शंकराचार्य ने अद्वैवाद का प्रचार किया और उनके इस मत को न स्वीकार करने वाले रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और वल्लभाचार्य ने भक्ति के लिए नए मार्ग की तलाश कर उसे लोगों तक पहुँचाया। मध्यकालीन भक्ति का जो स्वरूप भारतीय भाषाओं में विकसित हुआ उसका श्रेय उन्हीं आचार्यों को है। कबीर, सूर, तुलसी से लेकर तमाम भक्त कवि इन्हीं आचार्यों की शिष्य परंपरा में आते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं -"रामानंद में कुछ न कुछ ऐसी साधना अवश्य थी जिसके कारण योगप्रधान भक्ति मार्ग, निर्गुन पंथी भक्ति मार्ग और सगुणोपासक भक्ति मार्ग तीनों के ही पुरस्कर्ता भक्तों ने उन्हें अपना गुरु माना।"(हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास) इन्हीं भक्त आचार्यों में रामानंद से गुरुमंत्र प्राप्त कर कबीर ने विद्रोह और भक्ति का रसायन तैयार किया था, तो वल्लभाचार्य के शिष्य सूरदास ने वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्र में कोना कोना झाँकने में सफलता पाई। नरहर्यानिन्द के संपर्क में आकर तुलसी समन्वय, आदर्श और मर्यादा के चर्मोत्कर्ष तक पहुँचते है तो मीरा जीव गोस्वामी से प्रसाद पाकर रूढ़ी और बंधनों के सामंती संस्करों से लोहा लेती है। कुल मिलाकर देखें तो भक्ति का स्वरूप अखिल भारतीय था और उसका चरित्र सामंतविरोधी। मानवतावाद उसका उद्देश्य तो ईश्वर की प्राप्ति की साधना उनका कर्म था।

बोध प्रश्न –

- वारकरी संप्रदाय के कवि कौन हैं ?

7.3.4 भक्ति आन्दोलन के प्रमुख आचार्य एवं सम्प्रदाय

लोकजागरण की चेतना से स्पंदित भक्ति आन्दोलन एक अखिल भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन है। लेकिन न तो इस आन्दोलन की सारी विशेषताएं एक साथ प्रकट हो गई थी, न ही सिर्फ सामंती समाज और पूंजीवादी समाज की टकराहट इसके उदय के तत्कालीन कारण थे। सिर्फ मुगलों के आगमन को भी इसके लिए एकदम जरुरी नहीं ठहराया जा सकता है। भक्ति को अखिल भारतीय स्वरूप और शास्त्रीयता का आधार प्रदान करने में अनेक कई दार्शनिक चिन्तक एवं उनके सम्प्रदायों की भी अहम भूमिका है। साहित्यिक इतिहास के ऐतिहासिक विश्लेषण से हम जानते है कि आज जिसे हम भक्ति आन्दोलन के नाम से जानते हैं उस आन्दोलन का आधार और उसकी प्रेरणा किसी न किसी रूप में शंकराचार्य के अद्वैतवादी सिद्धांत और उसकी असहमति में विकसित हुई। शंकराचार्य ने बौद्धों के अनीश्वरवादी विचारों का खंडन करते हुए जब जगत का निषेध कर जब ब्रह्म और जीव की अद्वैतता का सिद्धांत प्रतिपादित किया और यह कहा कि जगत ब्रह्म का आभास मात्र है और इसकी रचना ईश्वर माया के माध्यम से करता है तो उनके इस सिद्धांत के विरोध में आगे चलकर अनेक दार्शनिक विचारों की स्थापना हुई। माना जाता है कि भक्ति आन्दोलन के निर्माण में इन्हीं दार्शनिक विचार और उनके विचारकों की भूमिका सर्व महत्त्वपूर्ण है। इसलिए अब हम भक्तिकाल के इन प्रमुख आचार्य और उनके सम्प्रदाय की सामान्य चर्चा यहाँ करेंगें।

1.) **रामानुजाचार्य –** शंकराचार्य के अद्वैतवादी सिद्धांत के बाद दर्शन के क्षेत्र में अनेक विवाद उत्पन्न होने लगे। अद्वैत के अर्थ की अलग अलग व्याख्याएं होने लगी। बाद के अधिकांश

आचार्य शंकराचार्य के मत से सहमत नहीं थे लेकिन वे उनका खंडन करने की स्थिति में भी नहीं थे,इसलिए उन्होंने अद्वैतवाद की नयी नयी व्याख्याएं प्रस्तुत की। अद्वैतवाद के विरोध में जितने सिद्धांत आए उनमें रामानुजाचार्य और उनका विशिष्टाद्वैत सर्व प्रमुख है। रामानुजाचार्य ने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की थी। कहा जाता है कि "लक्ष्मी ने इन्हें जिस मत का उपदेश दिया उसी के आधार पर इन्होंने अपने मत का प्रवर्तन किया। इसलिए इनके सम्प्रदाय को श्री सम्प्रदाय कहा जाता है"(विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, पृष्ठ 15) इन्हीं की परंपरा में रामानंद हुए जिन्हें दक्षिण से लाकर उत्तर में भक्ति के प्रसार का श्रेय प्राप्त है। इतिहास में कबीर, रैदास, पीपा जैसे लगभग 12 प्रसिद्ध शिष्य इसी रामानंद के थे।

रामानुजाचार्य (1017-1137) का जन्म दक्षिण भारत के भूतपुरी (वर्तमान में पेरुम्बुपुरम) में हुआ था। उन्होंने प्रस्थान त्रयी –उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता पर भाष्य लिखे और वेदान्तसार, वेदार्थ् संग्रह, वेदान्त दीपिका जैसे ग्रंथों की रचना की है। शंकराचार्य ने ब्रह्म को एकमात्र सत्य मानते हुए जीव और ब्रह्म के एका की बात कही है। साथ ही इस बात पर भी बल दिया है कि बिना ज्ञान के मोक्ष संभव नहीं है। इसप्रकार उन्होंने भक्ति के लिए बुद्धि की अनिवार्यता को जरुरी बताया, लेकिन रामानुजाचार्य ने शंकराचार्य के विरोध में और एक तरह से भक्ति की व्यावहारिक दार्शनिक व्याख्या करते हुए एक नयी धारणा प्रस्तुत की। उनके अनुसार –

क) आत्मा और परमात्मा एक नहीं है।

ख) आत्मा और जगत ईश्वर के अंश है, उनकी भी वास्तविक सत्ता है। इसलिए आत्मा भी सत्य है और जगत भी।

ग) ईश्वर और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, और वह सगुण है। सत, चित और आनंद उसके गुण हैं।

घ) ईश्वर की भक्ति जीव के लिए परम पुरुषार्थ है।

ङ) शंकराचार्य ज्ञान को मुक्ति का साधन मानते थे जबकि रामानुजाचार्य भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि रामानुजाचार्य ने पहली बार अवतारवाद तथा धर्म की सामाजिक भूमिका की प्रस्तावना की और यहीं से ईश्वर की ऐहिक भूमिका की शुरुआत हुई।

बोध प्रश्न –

- रामानुजाचार्य किस संप्रदाय की स्थापना की ?

2) निम्बार्काचार्य – निम्बार्काचार्य के जन्म के बारे में प्रमाणिक रूप से तथ्यों का अभाव है। यह माना जाता है कि इनका जन्म वैल्लरी जिले के निम्ब या निम्बपुर में हुआ था। कुछ विद्वान् इन्हें रामानुजाचार्य के बाद और मध्वाचार्य से पहले का बताते है। यह भी प्रचलित है कि ये दक्षिण में गोदावरी नदी के तट पर वैतुपत्तन के पास अरुणाश्रम में श्री अरुण मुनि और उनकी पत्नी वैजन्ती देवी के पुत्र थे। इनके सम्बन्ध में एक जनश्रुति है कि ये वृन्दावन के पास रहते थे। इनका नाम भास्कराचार्य था। एक बार कोई अतिथि इनके पास आया और तत्वचिंतन की बात करते करते सूर्यास्त हो चला। इन्होंने अतिथि को भोजन कराना चाहा लेकिन उसने सूर्यास्त के बाद भोजन

करना स्वीकार नहीं किया। फिर इन्होंने अपनी योग शक्ति से सूर्य की गति रोक दी और सूर्य पास के नीम के पेड़ पर स्थित हो गए। अतिथि ने सूर्यास्त न होता देख भोजन कर लिया। तभी से ये भास्कराचार्य के बदले निम्बार्काचार्य के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

निम्बार्काचार्य वैसे तो दक्षिण के थे पर रहे वे वृन्दावन में ही। ये पहले आचार्य थे जिन्होंने राधा कृष्ण की भक्ति को आगे बढ़ाया । इनके अनुयायी बंगाल और ब्रज में पाए जाते थे। इस सम्प्रदाय के लोग संन्यासी और गृहस्थ दोनों होते थे। निम्बार्काचार्य के दर्शन को द्वैताद्वैत और इनके द्वारा स्थापित सम्प्रदाय को सनकादी सम्प्रदाय कहा जाता है। निम्बार्काचार्य मानते है कि व्यावहारिक धरातल पर ब्रह्म, जीव और जगत अलग अलग है लेकिन अपनी अंतिम परिणति में ये एक हो जाते हैं। यह भी माना जाता है कि हिंदी भक्ति साहित्य में प्रसिद्ध राधावल्लभी सम्प्रदाय का सम्बन्ध इसी सनकादी सम्प्रदाय से है। राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोसाईं हितहरिवंश का जन्म 1502 में मथुरा के पास हुआ था। कहा जाता है कि हितहरिवंश पहले मध्वानुयायी थे।

बोध प्रश्न –

- निम्बार्काचार्य संप्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं ?

3) मध्वाचार्य – इनका जन्म गुजरात के बेलिग्राम नामक गाँव में वेद्विद ब्राह्मण के घर हुआ था। यह प्रचलित है कि ये बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे लेकिन पढ़ने में इनका मन नहीं लगता था। 11 वर्ष की अवस्था में इन्होंने अद्वैत मत के संन्यासी अच्युत प्रेक्षाचार्य से संन्यास की दीक्षा ली। आगे चलकर इन्होंने शंकराचार्य और रामानुजाचार्य दोनों का विरोध करते हुए द्वैत सम्प्रदाय की स्थापना की। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इन्होंने वैशेषिक शास्त्र को आधार बनाया। ये शंकराचार्य के मतों का सीधे सीधे विरोध करते हैं। ये मानते है कि-

क) ईश्वर उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण है।

ख) विष्णु ही ब्रह्म हैं। उनकी पत्नी लक्ष्मी हैं जो विष्णु की शक्ति और उनके अधीन है, और ये लक्ष्मी ही ब्रह्म के अवतार लेने पर उनकी अर्धांगिनी या प्रेयसी बनकर आती हैं।

ग) अंतिम स्थिति में भी ब्रह्म और जीव में भेद बना रहता है।

घ) इस जगत को ब्रह्म ने बनाया है और उनके द्वारा बना गया यह जगत भी पूरी तरह ब्रहम के समान ही सत्य है।

ङ) जीव और जीव में भी भेद होता है। प्रत्येक जीव ब्रह्म के साथ एक ही तरह का सम्बन्ध नहीं रखता है। ज्ञान, भक्ति और साधना के आधार पर जीवों की अलग अलग कोटियाँ होती है।

4) विष्णुस्वामी – विष्णुस्वामी ने रूद्र सम्प्रदाय की स्थापना की थी। इस सम्प्रदाय के अंतर्गत ही पुष्टि सम्प्रदाय का उद्भव हुआ जिसके आचार्य वल्लभाचार्य थे। वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ के चार चार शिष्यों को मिलाकर अष्टछाप की स्थापना हुई। इस सम्प्रदाय के कवि कृष्ण की भक्ति किया करते थे।

बोध प्रश्न –

- मध्वाचार्य ने किस संप्रदाय की स्थापना की ?

5) वल्लभाचार्य – वल्लभाचार्य का जन्म दक्षिण में गोदावरी नदी के किनारे बसे काकरवाड़ ग्राम में हुआ था। 'वल्लभ दिग्विजय' नामक ग्रन्थ में इनके जीवन का पूरा वर्णन मिलता है। यह प्रचलित है कि इन्होनें 10 वर्ष की आयु में ही वेद, पुराण, उपनिषद का अध्ययन कर लिया था। इन्होनें उत्तर भारत की अनेक यात्राएं की और श्री नाथ जी का मंदिर भी बनवाया। ये वेद, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, गीता और भागवत को प्रमाणिक मानते थे। वेदान्त पर 'अनुभाष्य' और भागवत की सुबोधिनी टीका के साथ-साथ लगभग 84 ग्रंथों की रचना इन्होंने की है।

वल्लभाचार्य वैष्णव वेदांती माने जाते हैं और इनका दर्शन शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है। शुद्धाद्वैत दो शब्द से बना है शुद्ध और अद्वैत। 'शुद्धाद्वैत मार्तंड में शुद्धाद्वैत के लक्षण को बताते हुआ लिखा गया है कि –"मायासंबंधरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधै", अर्थात माया सम्बन्ध से रहित ब्रह्म शुद्ध है। इसलिए इस सिद्धांत को शुद्धाद्वैत कहा जाता है। तात्विक रूप से शुद्धाद्वैतवादी दर्शन भी अद्वैतवाद ही है। शुद्ध शब्द का प्रयोग इसके विशेषण के रूप में किया जाता है। वल्लभाचार्य मानते है कि सम्पूर्ण सृष्टि तीन प्रकार के गुणों से निर्मित है सत, चित तथा आनंद। ईश्वर तीनों गुणों की समग्रता अर्थात सच्चिदानंद है। जीव में सत और चित गुण पाए जाते हैं किन्तु आनंद का अभाव रहता है। जबकि अचित में सिर्फ सत गुण उपस्थित रहता है। इसप्रकार जिन गुणों से जीव और जगत निर्मित है उन गुणों की उपस्थिति ईश्वर में भी है। इसलिए जिस प्रकार ईश्वर शुद्ध है उसी प्रकार जीव और जगत भी शुद्ध है।

वल्लभाचार्य ने विष्णु की भक्ति को ही मुक्ति का साधन मानते हुए कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म स्वीकार किया है। यह प्रचलित है कि सूरदास पहले दास्य भक्ति से ईश्वर की आराधना किया करते थे। जिसमें भक्त खुद को दीन और निरीह मानता है। लेकिन जब सूरदास वल्लभाचार्य से मिले तब उनकी भक्ति का रूप बदल गया। वल्लभ से साक्षात्कार के बाद 'घिघियाने' वाले सूर प्रेम और माधुर्य भाव की भक्ति करते हैं। आगे चलकर शुद्धाद्वैत दर्शन के आधार पर ही भक्ति का एक विशेष मार्ग स्थापित हुआ जिसे पुष्टि मार्ग कहा जाता है। इसके अंतर्गत माना जाता है कि ईश्वर के अनुग्रह से ही भक्ति उपलब्ध होती है। इसलिए मनुष्य को इश्वर के अनुग्रह को प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए।

बोध प्रश्न –

- वल्लभाचार्य का दर्शन कौनसा हैं ?

7.4 पाठ सार

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति आन्दोलन एक अखिल भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन था। इसका उदय दक्षिण में हुआ और अपनी सर्वग्राह्य प्रवृत्ति के कारण यह पूरे भारत में फ़ैल गया। यह किसी खास वर्ग, जाति, या सम्प्रदाय का आन्दोलन नहीं बल्कि सामन्ताद और पुरोहितवाद से टकराकर भक्ति को सर्वजन सुलभ बना देना ही इसका उद्देश्य था। इसलिए भक्ति आन्दोलन में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, जुलाहे, दस्तकार, किसान और अन्य कई शामिल थे। इसलिए यह अचानक प्रकट होने वाला आन्दोलन बिलकुल नहीं था। इसे शास्त्रीय आधार प्रदान करने के लिए अनेक आचार्यो खासकर रामानुजाचार्य और वल्लाभाचार्य की विशेष

भूमिका थी। लगभग चार सौ साल तक फैले हुए इस आन्दोलन ने न केवल हिंदी साहित्य बल्कि विश्व साहित्य को कबीर, सूर, जायसी और तुलसी जैसे महान रचनाकार दिये हैं। अपने लोकोन्मुखी और मानवतावादी प्रवृत्ति के कारण वर्षों बाद आज भी भक्तिकालीन साहित्य की प्रासंगिकता बनी हुई है।

7.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच भक्ति की जिस भावना ने सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन का रूप लिया उसे भक्ति आंदोलन के नाम से जाना जाता है।
2. भक्ति काल हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग तो है ही, साथी ही इसमें भारतीय संस्कृति और जीवन पद्धति का बहुत बड़ा भगा सुरक्षित है।
3. भक्ति साहित्य का काफी हिस्सा भारत में इस्लाम के आगमन की प्रतिक्रिया की उपज है लेकिन इसका अधिक बड़ा हिस्सा भारतीय चेतना द्वारा के सहज विकास का परिणाम है।
4. भक्ति आंदोलन का उदय और उसके द्वारा घोषित 'मनुष्य सत्य' भारतीय इतिहास की अभूतपूर्व घटना है।
5. भक्ति आंदोलन के केंद्र में एक विराट समन्वय चेष्टा सक्रीय दिखाई देती है।

7.6 शब्द संपदा

1. अभिरुचि – प्रवृत्ति
2. अविनाशी –जिसका नाश न हो सके
3. पराभव – हीनता या हारी हुई मनोवृत्ति
4. प्रपत्ति भाव – भक्त द्वारा स्वयं को ईश्वर की शरण में समर्पित करने का भाव
5. मोक्ष –मुक्ति की कामना
6. संन्यासी – माया का त्यागकर मुक्ति हेतु भक्ति मार्ग पर चलने वाला संत
7. माया- अविद्या या अज्ञान
8. जीव - आत्मा का मायालिप्त रूप
9. सृष्टि-नियंता – संसार का निर्माता

7.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. भक्ति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। भक्ति आंदोलन के उदय की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
2. भक्ति आंदोलन का अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डालिए।
3. भक्ति आंदोलन के प्रमुख आचार्य एवं संप्रदाय पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. श्री संप्रदाय की पृष्टभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. ब्रह्म संप्रदाय की पृष्टभूमि पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1. भारतीय भक्ति संप्रदाय का आदि स्त्रोत है - ( )

(अ) ऋग्वेद (आ) यजुर्वेद

(इ) सामवेद (ई) अथर्वेद

2. 12 संख्या किसकी मानी जाती है ? ( )

(अ) अलवार (आ) नयनार

(इ) सिद्ध (ई) नाथों

3. तमिल का भक्ति आंदोलन किसके विरूद्ध खड़ा हुआ ? ( )

(अ) सिद्ध धर्म की प्रभु सत्ता (आ) बौद्ध धर्म की प्रभु सत्ता

(इ) जैन धर्म की प्रभु सत्ता (ई) ब्राह्मण धर्म की प्रभु सत्ता

4. गुरु नानक का जन्म कब हुआ ? ( )

(अ) 1468 (आ) 1469

(इ) 1460 (ई) 1470

5. भक्ति आंदोलन को शास्त्रीय निकष प्रदान करने का प्रयास ( )

(अ) 10वीं शताब्दी (आ) 12वीं शताब्दी

(इ) 14 वीं शताब्दी (ई) 16 वीं शताब्दी

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए.

1) भक्ति मूल रूप से _____________ के बीच रागात्मक संबंध की चेतना का नाम है।

2) श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम _____________ है।

3) वेद जैसे _____________ का उद्गम स्थल है।

4) भक्ति के उद्भव पर पहला व्यवस्थित प्रयास_____________ के यहाँ दिखाई देता है।

5) _____________ भक्ति साहित्य के विकास को न तो बाहरी आक्रमण की प्रतिक्रिया मानने पक्षधर है।

III सुमेल कीजिए।

1. श्री संप्रदाय	(अ) मध्वाचार्य
2. सनक संप्रदाय	(आ) विष्णुस्वामी
3. रूद्र संप्रदाय	(इ) निम्बार्काचार्य
4. ब्रह्म संप्रदाय	(ई) रामानुजाचार्य
5. राधावल्लाभी	(उ) हितहरिवंश

7.8 पठनीये पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहासः शुक्ल,रामचंद्र
2. हिंदी साहित्य का समेकित इतिहास : नगेन्द्र (संपादक)
3. भारतीय चिंतन परंपरा : दामोदरन, के॰
4. हिंदी साहित्य :उद्भव और विकास : द्विवेदी, हजारी प्रसाद
5. हिंदी साहित्य की भूमिका : हजारी प्रसाद द्विवेदी
6. भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य : मैनेजर पाण्डेय
7. भक्ति के आयाम : पी जयरामन
8. सूरदास : रामचंद्र शुक्ल
9.

इकाई – 8 निर्गुण भक्ति साहित्य : संत साहित्य और सूफी साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ

रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 मूल पाठ : निर्गुण भक्ति साहित्य : संत साहित्य और सूफी साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ
    8.3.1 संत साहित्य
    8.3.2 सूफी साहित्य
8.4 पाठ सार
8.5 पाठ की उपलब्धियाँ
8.6 शब्द संपदा
8.7 परीक्षार्थ प्रश्न
8.8 पठनीय पुस्तकें

81. प्रस्तावना

मध्यकाल के सामंती अँधेरे में भक्ति मानवतावादी चेतना की प्रथम प्रखर अभिव्यक्ति है जिसका मूल आधार भक्ति-आन्दोलन है। अपने उदय से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय चेतना को स्पंदित करने वाली इस काव्यधारा को अपने वैविध्य, आनुभूतिक गहराई, लोकव्यापी स्वरूप एवं अखिल भारतीय विस्तार के कारण हिंदी साहित्य का 'स्वर्णयुग' कहलाने का गौरव प्राप्त है। भक्तिकालीन साहित्य में मुख्य रूप से दो धाराएं विद्यमान थीं जिनमें से एक धारा को निर्गुण काव्य और दूसरी धारा को सगुण काव्य के नाम से जाना जाता है। दरअसल सगुण और निर्गुण का अंतर मुख्यतः लीला की दो अवधारणा को लेकर है। जिस ईश्वर को कुछ निश्चित विशेषणों से परिभाषित किया जाता है उसे सगुण कहते हैं। यहाँ ईश्वर में सर्वशक्तिमानता, दया, प्रेम, समता जैसे गुणों को ईश्वर में आरोपित किया जाता है। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य जैसों आचार्यों ने सगुण ईश्वर को ही स्वीकार किया है। यह सही है कि सगुण ईश्वर लोगो को भावनात्मक संबल एवं संतुष्टि दोनों प्रदान करता है लेकिन वह उस तरह से दार्शनिक प्रश्नों का सामना नहीं कर पाता है जिस तरह से निर्गुण करता है। उदाहरण के लिए यदि कृष्ण राधा से प्रेम करते हैं तो अन्य प्राणियों से उनका प्रेम स्वीकार नहीं किया जाता है। इसलिए निर्गुण का अर्थ गुणहीन कतई नहीं है। निर्गुण का मतलब होता है गुणातीत। अर्थात ईश्वर में गुणों कि विविधता और पूर्णता इतनी अधिक है कि उसे किसी विशिष्ट गुण से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। इसलिए उन्हें निराकार, निरंजन, अलख, परब्रहम, अनंत जैसे कई नामों से संबोधित किया जाता है।

इस इकाई से पूर्व 'भक्ति' के अर्थ एवं भक्ति-आन्दोलन के अखिल भारतीय स्वरूप के बारे

में हम जान चुके हैं। इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल की एक महत्त्वपूर्ण धारा निर्गुण धारा के साहित्य पर बात की जाएगी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया है - आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। फिर उन्होंने मध्यकाल को दो भागों में विभाजित किया- पूर्व-मध्यकाल और उत्तर-मध्यकाल। पूर्व मध्यकाल की मूल प्रवृत्ति भक्ति के आधार पर उसे भक्तिकाल कहा गया है। फिर भक्तिकाल को दो धाराओं में विभाजित किया गया है- निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा। निर्गुण धारा को भी दो शाखाओं में विभाजित किया गया- ज्ञानाश्रयी या ज्ञानमार्गी शाखा तथा प्रेमाश्रयी या प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानाश्रयी या ज्ञानमार्गी शाखा को संत काव्य एवं प्रेमाश्रयी या प्रेममार्गी शाखा को सूफी काव्य भी कहा जाता है। भक्तिकालीन साहित्य का अध्ययन करने पर हम इस बात को आसानी से समझ पाते हैं कि पूरे भक्ति साहित्य की रचना सिर्फ ईश्वर के प्रति भक्त की निष्ठा का परिणाम नहीं है बल्कि इसका केंद्र ईश्वर की भक्ति है। यही कारण है कि सभी भक्त कवियों ने ईश्वर भक्ति भावना से प्रेरित होकर ही अपने उद्गार व्यक्त किए हैं। लेकिन ईश्वर को पाने के साधन और साध्य को लेकर सभी कवियों की अलग अलग राय है। किसी के लिए ईश्वर का सगुण रूप भक्ति प्राप्ति के लिए जरुरी है तो किसी के लिए उसका निर्गुण अनुभव। किसी के लिए वह अलख, अनंत और निराकार है तो किसी के लिए दशरथ का पुत्र। कोई प्रेम से ही ईश्वर प्राप्ति को संभव मानता है तो कोई उसके लीला में विश्वास करता है।

जहाँ तक निर्गुण भक्ति का सवाल है तो कालक्रम की दृष्टि से यह भक्ति आन्दोलन का प्रवेश द्वार है। इस काव्यधारा के भक्त कवियों की दृष्टि में ईश्वर की सिर्फ अनुभूति हो सकती है, उसे किसी भी आकार में विश्लेषित नहीं किया जा सकता है। सृष्टि के कण कण में व्याप्त होने के कारण उनके रूप और गुण की महिमा इतनी अधिक अनिर्वचनीय है कि उसे किसी भी आकार में और किसी भी एक खास गुण से न तो समझा जा सकता है न ही अनुभव किया जा सकता है। इसलिए निर्गुण भक्त कवियों में ज्ञानमार्गी जहां ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अनुभव और ज्ञान पर बल देते है वहीं प्रेममार्गी उसे प्रेम से पाने का विश्वास व्यक्त करते हैं । इसलिए इस अध्याय के अंतर्गत हम भक्तिकालीन निर्गुण काव्यधारा की दोनों प्रमुख प्रवृत्तियों संत या ज्ञानाश्रयी काव्य और सूफी या प्रेमाश्रयी काव्य का अध्ययन करेंगें।

8.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भक्ति आन्दोलन के निर्माण में निर्गुण कवियों की भूमिका एवं उनके योगदान के बारे में जान सकेंगें।
- निर्गुण भक्ति धारा सगुण भक्ति धारा से किन अर्थो में अलग और किन अर्थों में एक है, इसे समझ सकेंगे।
- निर्गुण भक्ति धारा की दो शाखाएँ-ज्ञानमार्गी या ज्ञानाश्रयी शाखा (संत साहित्य) तथा प्रेमाश्रयी या प्रेममार्गी (सूफी साहित्य) शाखा एवं उनकी काव्यगत विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर संकेंगे।
- संत काव्य और सूफी काव्य के भावगत एवं शिल्पगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

8.3 मूल पाठ : निर्गुण भक्ति साहित्य : संत साहित्य और सूफी साहित्य की काव्यगत विशेषताएँ

8.3.1 संत साहित्य

संत साहित्य : अर्थ, अवधारणा और काव्यगत विशेषताएं

निर्गुण भक्ति काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य के नाम से जाना जाता है। भक्तिकालीन काव्य में संत साहित्य का आशय उन निर्गुण कवियों से है जिन्होंने अपनी उपासना का आधार अवतारी ईश्वर के स्थान पर गुणातीत ब्रह्म को बनाया। कर्म, ज्ञान और भक्ति में से ज्ञान को आधार बनाने के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी' शाखा कहा है। राम कुमार वर्मा ने इसे 'संतकाव्य' की संज्ञा से विभूषित किया। अनुभूति की वरीयता एवं सत्संगों का प्रभाव होने से विवेच्य काव्य में अनेक दार्शनिक सिद्धांतों एवं भक्ति धाराओं का समावेश हुआ। आलोचकों की मान्यता है कि संतकाव्य में औपनिषिदिक चिंतन, शंकर के अद्वैतवाद, नाथपंथियों की योग साधना और सूफियों के प्रेम तत्त्व का गहरा प्रभाव है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भी संत साहित्य पर सिद्धों एवं नाथों के प्रत्यक्ष प्रभाव को स्वीकार करते हुए इसे संतकाव्य की प्रेरणा-पृष्ठभूमि सिद्ध किया है। संतकाव्य की परंपरा का भारतीय धर्म साधना में अपना एक विकास क्रम है। भारतीय धर्म साधना में जैसा की हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट किया है कि "नाथ पंथ का उदय बौद्ध धर्म तथा तंत्रवाद के विरोध में हुआ था। इसमें योग साधना के साथ शैव धर्म की विशेषता प्रकट हुई थी, भक्ति की नहीं। नाथ पंथ के आगे की परंपरा संत परंपरा है जिसमें योग साधना को गौण एवं भक्ति को प्रधान रूप से महत्त्व मिला।" (हिंदी साहित्य की भूमिका) इस प्रकार संतकाव्य परंपरा का विकास भक्ति-भावना से सीधे जुड़ता है। आचार्य नामदेव को हिंदी का पहला संतकवि माना गया है। इस काव्य धारा के प्रमुख रचनाकारों में रैदास, गुरुनानक, मलूकदास, सुदंरदास आदि प्रमुख हैं। लेकिन स्वभाव से विद्रोही एवं 'आखिन देखी' के धरातल पर अध्यात्म, जीवन और भक्ति का एकात्म स्थापित करने वाले कबीर निर्गुण संत कवियों में अग्रगण्य हैं।

बोध प्रश्न –

- निर्गुण भक्ति काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा को किस विद्वान ने 'संत काव्य' कहा ?
- अद्वैतवाद के प्रवर्तक कौन थे ?
- संत परंपरा में प्रधान रूप से किसका महत्त्व है ?
- हिंदी का पहला संत कवि होने का श्रेय किसको जाता है?

कबीर की भक्ति ने भारतीय जनमानस को भक्ति के शास्त्रवाद से मुक्त कर उस समय अवलम्ब प्रदान किया जब वह एक ओर सिद्धों और नाथों की गुह्य साधना से ऊब रही थी तो दूसरी ओर विदेशी आक्रमणकारियों से त्रस्त थी। इसलिए यह अकारण नहीं है की आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल को पौरुष से हताश जातियाँ ही भगवद भजन के शरण में जाने को मजबूर दिखाई दीं। श्याम सुंदरदास ने भी लिखा है - "मुसलमानों के भारत में आ बसने से परिस्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। हिन्दू जनता का नैराश्य दूर करने के लिए भक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने हिन्दू और मुसलमान भक्त संतों की परंपरा विरोधी जातियों को एक करने की आवश्यकता का भी अनुभव किया। इस अनुभव के मूल में एक जैसे सामान्य भक्ति मार्ग का विकास गर्भित था जिससे परमात्मा की एकता के आधार पर मनुष्यों की एकता का प्रतिपादन हो सकता था और जिसका मूलाधार भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद के सूक्ष्म भेद की ओर ध्यान नहीं दिया गया और दोनों के एक विचित्र मिश्रण के रूप में निर्गुण भक्तिमार्ग चल पड़ा।" (श्यामसुंदर दास (संपादक) – कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 15) स्पष्ट है कि परमात्मा की एकता के आधार पर मनुष्यों की एकता का प्रतिपादन ही निर्गुण कवियों का ध्येय था। इसलिए यह भी अकारण नहीं है कि सिर्फ कबीर की भक्ति-भावना ही नहीं बल्कि पूरा संत काव्य दर्शन के धरातल पर भारतीय वेदान्त के अद्वैतवाद, साधनात्मक स्तर पर नाथपंथ, संस्कार और क्रियाशीलता के वैष्णवी स्वरूप और सूफी प्रेम तत्त्व की आनुभूतिक गहराई के मिश्रण से निर्मित हुआ है।

संतकाव्य आत्मानुभूति एवं लोकानुभूति की समरसता का काव्य है जिसमें किसी शास्त्र या सिद्धांत के प्रति आग्रह नहीं अपितु जनमानस की भावना की स्वाभाविक परिणति है। इसने एक ओर सिद्धों की योग साधना को अपनी साधना पद्धति में आधार रूप में ग्रहण किया तो दूसरी ओर सूफी प्रेमतत्त्व की महानता को आत्मसात किया। परंपरागत वैष्णव भावना का भी इस साहित्य पर अप्रत्यक्ष प्रभाव है। इसलिए संत साहित्य की समस्त प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में धर्माश्रित काव्य और एक लंबी साहित्यिक परंपरा के विकास का प्रभाव है। इसलिए संत साहित्य का समग्र अध्ययन करते हुए उसकी निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्ट होती है।

बोध प्रश्न –

- भक्ति का आश्रय ग्रहण करना क्यों आवश्यकता थी ?
- संत काव्य किस तरह का काव्य है ?
- सिद्धों की साधना पद्धति क्या है ?

निर्गुण ब्रह्म के प्रति आस्था: संत कवि ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप में आस्था रखते थे। उन्होंने अपने आराध्य को अलख, निरंजन, अनंत, शून्य, अक्षर, निराकार आदि विशेषणों से अभिहीत किया है। संत कवियों का लक्ष्य अविनाशी ब्रह्म की प्राप्ति है यद्यपि उन्होंने उसे प्राप्त करने के लिए सगुण साधनों का भी प्रयोग किया है। सगुण नामों से पुकार उनकी भक्ति का आधार तो है परंतु वे पक्षधर निर्गुण ब्रह्म के ही हैं

"दसरथ सुतु तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।"

संत कवियों ने ईश्वर के वास को घट-घट में स्वीकार कर उसे कोरे ज्ञान की शुष्कता से नहीं वरन् अनुभूति जन्य साधना से प्राप्ति पर बल दिया है। इसलिए सभी संतों ने निर्गुण ब्रह्म को

आलम्बन रूप में अपने काव्य का केंद्रिय विषय बनाकर अपना अनन्य प्रेम निवेदन अभिव्यक्त किया है-

"निर्गुण राम जपहुँ रे भाई।
अविगत की गति लखि न जाई।।"

बोध प्रश्न –

- संतों ने किसे आलंबन के रूप में स्वीकारा ?

भक्ति के लिए भगवान की कृपा तो सर्वमहत्वपूर्ण है ही उसके विकसित होने के लिए उतना ही आवश्यक है सत्संग। कबीर ने वैष्णव परंपरा के अनुसार ही सत्संग एवं संगति पर काफी बल दिया है। उनके लिए सत्संग मन को सत्य के साथ जोड़ने की एक विधि है। कबीर का मानना था कि सत्य से जुड़े बिना भक्ति मात्र दिखावा और प्रपंच बन कर रह जाती है। इसलिए उन्होने सत्संगति खासकर साधु संगति के महत्त्व का बराबर बखान किया है, सत्संग को कई स्थान पर साधु-सेवा भी कहा है तथा साधु संगति को स्वर्ग से भी अधिक महत्त्व दिया है। उदाहरण –

"राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु-संग में, सो बैकुंठ न होय।।"

बोध प्रश्न –

- सत्संग की आवश्यकता क्यों है ?

गुरु के महत्त्व की प्रतिष्ठा: भक्ति के साथ गुरुभक्ति की स्वीकृति संतकाव्य की आधारभूत विशेषता है। निर्गुण-ब्रह्म प्राप्ति के लिए प्राय: सभी संतकवियों ने गुरु की महत्ता को प्रतिपादित किया है, क्योंकि भक्ति मार्ग का प्रदर्शक गुरु ही है। इसलिए उसे सद्गुरू की संज्ञा से विभूषित कर ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया गया है -

"गुरु गोविंद दोऊ खंड़े काको लागू पाँय।
बलिहारी गुरु आपनों गोविंद दियो बताय।।"

संतकाव्य में गुरु की चर्चा ज्ञान स्वरूप ब्रह्म के समान्तर की गई है। यह गुरु साधक को मायाजनित अंधकार से बाहर निकालकर ब्रह्मानुभूति के स्निग्ध आलोक में पहुँचा देता है। इसलिए संतों ने ऐसे गुरु के प्रति अनन्य कृतज्ञता ज्ञापित की है। यथा-

"सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावनहार।।"

सामाजिक चेतना: सामाजिक चेतना संतकाव्य की रचनाशीलता का वह महत्त्वपूर्ण आयाम है जिसमें संत कवियों की साधनात्मक और रचनात्मक ऊर्जा की सशक्त अभिव्यक्ति हुई। संत कवियों की सामाजिक चेतना शास्त्र सम्मत नहीं वरन् आत्मज्ञान से अभिप्रेत है। इसलिए उनकी सामाजिक चेतना के निर्माण में पीड़ा और जागृति की निर्णायक भूमिका है।

"दिन में रोजा रखत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून वह वंदगी, कैसी खुशी खुदाय।।"

संतकाव्य लोकमानस का काव्य है। आध्यात्मिक साधना में लीन रहते हुए भी संत कवि अपने समाज के प्रति जागरूक थे। इसलिए उन्होंने अपेन युग की सामाजिक संचेतना का यथार्थ चित्रण तो किया है परंतु स्वयं का सामाजिक भेदभाव के दंश को झेलने के कारण अतार्किक सामाजिक विषमताओं का भी कड़ा विरोध किया है। जैसे-

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान।।"

कथनी और करनी की अद्वैतता संतकाव्य के सामाजिक-चेतना की विशेष प्रवृत्ति है। इसमें एक ओर जन्म के आधार पर मनुष्य की कोटि निर्धारक वर्ण व्यवस्था की अंधता का उद्घाटन है तो दूसरी ओर राजसत्ता के कोप को भी निर्भीकता से शब्दबद्ध किया गया है। उदाहरण-

"अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदूअन की हिंदूआई, देखी तुरकन की तुरकाई।।"

बोध प्रश्न –

- संत कवि सामाजिक विषमताओं का कड़ा विरोध क्यों किया ?
- संत काव्य की विशेष प्रवृत्ति क्या हैं ?

साधना पद्धति: संत साहित्य में साधना पद्धति के दो रूप अभिव्यक्त हुए हैं-सहज साधना और योग साधना। संतों ने सामान्य जन के लिए सहज साधना का विधान किया है और इसे सूरति, निरति, स्मृति स्वरूपा माना है। वैष्णव भक्ति पद्धति के नाम स्मरण, सत्संगति जैसे भक्ति मूल्यों के साथ अहिंसा और सदाचार को भी साधक के लिए अनिवार्य बताया है। जैसे-

"भगति भजन हरि नाव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मणा, कबीर सुमिरन सार।।"

संतो की साधना पद्धति पर सूफियों के प्रेमतत्त्व का प्रभाव उनकी अनुभूति प्रकता का प्रमाण उपस्थित करती है। संतों के यहाँ विरह संबंधों और ईश्वरीय अनुभूति का मापदंड है। इसलिए यहाँ विरह की पीड़ा साधक को साधना के लिए प्रेरित कर जीवन को मूल्यवान सार्थकता प्रदान करती है-

"विरहा विरहा मति कहो, विरहा है सुलतान।
जिहिं घट विरह न संचरै, सो घट सदा मसान।।"

संतों की साधना पद्धति का दूसरा महत्त्वपूर्ण आधार योग पद्धति है जिस पर नाथ पंथियों का गहरा प्रभाव है। संतकाव्य का एक बड़ा हिस्सा समाधि, शून्य इड़ा-पिंगला, सुषुम्ना, कुंडलिनी जैसे योगपरक शब्दों से निर्मित है। योग साधना पर विश्वास के कारण ही संत कवियों ने इस शरीर की कल्पना घट रूप की है और यह माना है कि योग की विशेष साधना के द्वारा कुंडलिनी जागृत करके अनहद नाद की उपलब्धि की जा सकती है।

बोध प्रश्न –

- संतों की साधना पद्धति का आधार क्या है ?

रहस्यवादी भाव : संत कवियों की काव्य साधना रहस्यवादी चेतना से स्पंदित है। संतों के रहस्यवाद का बीज सिद्ध, नाथ एवं बौद्ध साधकों के हठयोग में लक्षित होता है। उन्होंने एक तरफ ब्रह्म एवं जीव के अद्वैत संबंध को विविध प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है तो दूसरी तरफ सृष्टि के अलौकिक अज्ञात रहस्यों को ज्ञान-योग की पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से सांकेतिक अर्थ प्रदान किया है-

"जल में कुंभ है, कुंभ में जल है, बाहर-भीतर पानी
पूटा कुंभ जल जलहि समाना, इति तथ्य कह्यौ ज्ञानी।।"

संतों का रहस्यवाद साधनात्मक है। जिसमें ज्ञान योग का प्राधान्य है। उनकी साधना पद्धति पर कहीं-कहीं सूफी प्रभाव भी लक्षित होता है। इसलिए ज्ञान मार्गी होते हुए भी संतों ने आत्मा और परमात्मा के रहस्यात्मक संबंधों को भावनात्मक रूप प्रदान किया है। यथा-

"लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मै भी हो गई लाल।।"

बोध प्रश्न –

- संतों की साधना में किस प्रकार की चेतना को देखा जा सकता है ?

दार्शनिक चेतना: संत कवियों की वैचारिक चेतना संश्लेषणात्मक थी। जिस पर इस्लाम के एकेश्वरवाद का भी प्रभाव लक्षित होता है। संत कवियों की दार्शनिक चेतना नाथपंथियों की योग साधना, सूफियों का प्रेम तत्त्व एवं वैष्णवी भावना के अद्वैत चिंतन से अनुप्राणित है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि संत साधक किसी शास्त्र विशेष या सम्प्रदाय विशेष के संस्कारों से जकड़े हुए नहीं थे। इसलिए अपनी आध्यात्मिक साधना के द्वारा इन्होंने जीवन और जगत के जिस चिंरतन सत्य को ग्रहण किया उसे स्वानुभूत रूप में अभिव्यंजित किया। जैसे-

"जो उग्या सो आयवै, फुल्या सो कुमिलाई।
जे चिणियाँ जो ढहि परै, जो आया सो जाई।।"

संतों ने किसी स्वतंत्र दार्शनिक चिंतन का सूत्रपात नहीं किया लेकिन वे अपने दार्शनिक चेतना को अलग-अलग स्रोतों से ग्रहण कर उस पर अपनी अनुभूति की मुहर लगाते हैं। इसलिए उनका दर्शन पाठक को तटस्थ ज्ञान की शुष्कता में नहीं अपितु जीवन के नितांत आत्मीय प्रसंगों में ले जाता है-

"कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल।
आदि संत सब सोधिया, दूजा देखौ काल।।"

संतों की दार्शनिकता का मूलाधार माया की भर्त्सना है। उन्होंने इसे त्रिगुणात्मक मानते हुए इसे ब्रह्म उपासना का बाधक बताया है। परंतु सांसारिक संदर्भों में संतों ने नारी को माया का प्रतिरूप माना है जो साधक को सांसारिक प्रपंचों में उलझा कर पथभ्रष्ट करती है। उदाहरण-

“कबीर माया पापिनी हरि सों हरे हराम।
मुख कड़ियाली कुमति की कहन न देई राम।।”

बोध प्रश्न –

- संतों की दार्शनिकता का मूल आधार क्या है ?

बाह्याडम्बरों का विरोध: ब्राह्याडम्बरों का विरोध संतों की सामाजिकता का अभिन्न अंग था। समाज सुधार के लिए संतों ने बाह्यचारों की निरर्थकता का तर्कपूर्ण ढंग से पर्दाफाश करते हुए मूर्त्तिपूजा, तीर्थाटन, नमाज, अंधविश्वासों आदि का जबरदस्त विरोध किया है। उन्होंने हिंदू धार्मिक संप्रदायों के प्रति खंडनात्मक दृष्टिकोण को अपनाया तो इस्लामी कुरीतियों का भी उपहास उड़ाया है। जैसे-

“काकर पाथर जोरि के मसजिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरो भयो खुदाय।।”
“पाथर पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते ये चक्की भली पीस खाए संसार।।”

संतों की सामाजिक-चेतना मानवता को ह्रासोन्मुख एवं पतनशील बनाने वाली कुरीतियों से सीधे टकराती है। इसलिए वे आचरण की प्रमाणिकता पर बल देते हुए अनुभूत सत्य को ही प्रमणिक मानते हैं। तभी तो कबीर कहते हैं कि-

“पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम को पढ़ै सो पंडित होय।।”

बोध प्रश्न –

- संत काव्य की कुछ प्रवृत्तियों का नाम बताइए।

भषिक संरचना: काव्य संगठन के प्रति उदासीनता संतकाव्य में सर्वत्र दिखाई देती है। लोकमंगल की भावना से प्रेरित होने के कारण संत कवियों ने अपनी बात लोक प्रचलित जनभाषा में कहीं है जिसमें ब्रज, अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी, पंजाबी आदि भाषाओं का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। इसलिए आचार्य शुक्ल ने संतों की वाणी को ‘सधुक्कड़ी’ कहा है।

संतकाव्य में अलंकार थोपे हुए नहीं वरन् वाणी के आवेश से स्वत: ही शब्दगत एवं अर्थगत रूप में व्यक्त हो गए। अपनी वाणी को रमणीय बनाने के लिए संतों ने उपमा, अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। जैसे-

अन्योक्ति-माली आवत देखि के, कलियाँ करे पुकार।
रूपक-माया दीपक नर पतंग भ्रमि-भ्रमि मँहिं पड़ंत।
दृष्टांत-पनी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जाति।

काव्य रूप की दृष्टि से अधिकांश संतकाव्य की रचना मुक्तक शैली में हुई। है संतकवि जिस आध्यात्मिक चेतना एवं अंत: साधनात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त करना चाहते थे उसके लिए मुक्तक शैली ही उपयुक्त थी।

उलटबांसी का प्रयोग संत काव्य की शैली की एक प्रमुख विशेषता थी। उलटबांसियों में इन कवियों ने अपने आध्यात्मिक अनुभवों को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। जैसे-

नैया बीच नदिया डूबती जाए।
बरसै कम्बल भींगै पानी।

प्रतीकों एवं उपमानों का चयन संतकवियों ने नित्य जीवन से किया है। जैसे घट, तारा, कुंभ माली आदि शब्दों का प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है।

छंदों की दृष्टि से भी संत सांहित्य में विविधता देखने को मिलती है। निर्गुण संतों ने चौपाई, कवित्त, रमैनी, सवैया, सबद, फाग आदि का बहुलतापूर्वक प्रयोग किया है। दोहा संतों का प्रिय छंद है-

"अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।"

समग्रत: संतकाव्य हिंदी साहित्य के इतिहास की वह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है जिसमें अनुभव, ज्ञान, कथनी, करनी और लेखनी की एकरूपता का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। इस कविता ने जिस मानवीय और सामाजिक मूल्यों पर बल दिया वे भारतीय संस्कृति की आधारभूत पहचान बने। इतिहास के उस मोड़ पर जहाँ ब्राह्याचारों और अंधविश्वासों में धर्म की मूल चेतना लुप्त हो रही थी इन संत कवियों ने धर्म और मनुष्यता दोनों की रक्षा की। डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार-"संत साहित्य आध्यात्मिक अनुभूतियों का लेखा-जेखा मात्र नहीं वरन् वह प्रकाश स्तंभ है जो निराशा, वासना, प्रतिशोध और प्रतिहिंसा के अंधकार में भटकते हुए मानव समाज को शताब्दियों से प्रकाश दे रहा है और भविष्य में भी पथप्रदर्शित करता रहेगा।"

अत: हम कह सकते हैं कि 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के महान सिद्धांतों का अनुसरण कर संत साधकों ने समाज को जो स्वस्थ, मानसिक समतुल्यता प्रदान की है वह अन्य किसी भक्त कवि ने नहीं किया है। इसलिए संत साहित्य में लोक कल्याण और लोक संग्रह का समन्वित रूप उपलब्ध होता है।

बोध प्रश्न –

- अधिकांश संत काव्य की रचना किस शैली में हुई ?

8.3.2 सूफी साहित्य

सूफी साहित्य : अर्थ, अभिप्राय और काव्यगत विशेषताएं

आठवीं शताब्दी में इस्लामिक कट्टरता, कोरे अध्यात्म, कर्मकांड एवं निरंकुश धार्मिकता की प्रतिक्रिया से सूफी पंथ का उदय हुआ। भारत में सूफी मत का प्रवेश बारहवीं शताब्दी से माना जाता है। जिन मुख्य सूफी संप्रदायों का प्रवेश भारत में हुआ उनमें चिश्तिया, कादरिया, सोहरावर्दिया और नक्शबंदियाँ प्रमुख हैं। भारत में ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती ने चिश्तिया संप्रदाय की स्थापना की थी। इसी चिश्ती संप्रदाय (1142-1236) का मूल संबंध सूफी काव्यधारा से है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'प्रेमाश्रयी काव्यधारा' कहा है। उनके अतिरिक्त विभिन्न विद्वानों ने इसे विभिन्न नामों से पुकारा है जिनमें प्रेममार्गी शाखा, प्रेम कथानक काव्य, प्रेमाख्यान काव्य प्रमुख है। इस काव्यधारा के रचनाकारों में जायसी, मुल्ला दाउद, कुतुबन, मंझन, नूर मुहम्मद, कासिमशाह अग्रगण्य हैं।

भारतीय भक्ति आंदोलन की लोकजागरणवादी भूमिका के निर्माण में हिंदी-सूफी-संतों ने नवीन जीवन दृष्टि प्रदान की है। उदारवादी दृष्टिकोण से संबंधित होने के कारण सूफी काव्य दूसरे धर्म से भी चेतना ग्रहण करती है। इसके विकास में भारतीय वेदांत,प्लूटो का नव अफतातूनी दर्शन, इस्लाम का एकेश्वरवाद, यूनानी दर्शन, नास्तिक मत आदि का व्यापक प्रभाव है। आचार्य शुक्ल सहित अनेक विद्वानों ने भ्रांतिवश इसे विदेशी परंपरा के रूप में स्वीकार किया है। परंतु अब शोधों से यह साबित हो चुका है कि यह वस्तुत: भारतीय परंपरा का ही क्रमिक विकास है। डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार "प्रेमाख्यानक काव्य हिंदी की ऐसी काव्यधारा है जिसमें भारतीय साहित्य परंपरा की विभिन्न कथानक रूढ़ियों व काव्य प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व विद्यमान है" धर्माश्रय एवं राजाश्रय से दूर लोकाश्रय में मुक्त रूप में पोषित होने वाली यही एक परंपरा है जिसने मध्ययुगीन जनता की काव्य रूचि एवं मनोरंजन की अभिलाषा को रोमाचक आख्यानों द्वारा तुष्ट किया।

अपनी केंद्रीय प्रवृत्ति में मानवीय उदारता का पोषक होने के कारण सूफी काव्य साहित्य एवं संस्कृति के धरातल पर एक उदारता का परिचय देता है। 14वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक सूफी काव्य की रचना होती रही। संपूर्ण सूफी काव्य के अध्ययनोपरांत उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती हैं।

बोध प्रश्न –

- चिश्ती संप्रदाय का मूल संबंध किस काव्य धारा से है ?
- सूफी साहित्य की केंद्रीय प्रवृत्ति क्या है ?

प्रेम की प्रस्तावना: समूचे मध्यकालीन काव्य में सिर्फ सूफी काव्य ही ऐसा है जो ईश्वरीय प्रेम के समानान्तर मानवीय प्रेम की भूमिका को महत्त्व देता है। प्रेम सूफी काव्य की सर्जनात्मक ऊर्जा भी है और आध्यात्मिक साधना का केंद्र भी। अध्यात्म और संसारिक जीवन में अनिवार्य विरोध देखने वाली मध्यकालीन दृष्टि को सूफियों ने इसी प्रेम के आधार पर निरस्त किया और यह

बताने की कोशिश की कि प्रेमानुभव और प्रेम की साधना ही जीवन को सार्थक बनाता है। "मानुष प्रेम भएऊँ बैंकुठी। नाहिं त काह छार भरि मुठ्ठी।" (जायसी)

सूफियों ने आत्मा को पुरुष एवं परमात्मा को स्त्री मानते हुए प्रेम के दो रूपों इश्क हकीकी (अलौकिक) एवं इश्क मजाजी (लौकिक) को स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है कि लौकिक प्रेम के द्वारा ही अलौकिक प्रेम को स्वीकार किया जा सकता है। यथा-

''प्रथमहि आदि प्रेम परविस्टी। तौं पाछै भई सकल सिरिस्टी।

उत्पति सिस्टि प्रेम सों आई। सिस्टि रूप भर प्रेम सबाई।''

बोध प्रश्न –

- सूफियों के अनुसार प्रेम के कितने रूप हैं ?

सांस्कृतिक समन्वय का सूत्रपात: भारतीय इतिहास के मध्यकाल में इस्लाम का आक्रमण और उसकी सत्ता समाज के लिए अप्रत्याशित और अपमानजनक घटना थी। इस्लामी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों से उपजे तनाव को दूर करने और सांस्कृतिक भिन्नता को सूफियों ने दूर करने का प्रयास किया।

समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए सूफियों ने इस्लाम में प्रेम का समन्वय किया। भारतीय लोक कथाओं के माध्यम से सूफी दर्शन को व्यक्त किया। उर्दू लिपि में अवधी भाषा को समृद्ध किया। प्रचलित प्रबंध काव्य परंपरा को मसनवी शैली में प्रस्तुत किया।

लोक कथाओं का प्रतीकात्मक चित्रण: सभी सूफी कवियों ने हिंदू समाज में प्रचलित लोक कथाओं को अपने प्रबंध का आधार बनाया। ये लोक कथाएँ मूलत: प्रेम कथाएँ हैं। जिसमें प्रेम की त्रासदी को दर्शाया गया है। प्रेम के त्रासद पक्ष के आधार पर सूफी कवियों ने अपने काव्य की अंतर्वस्तु की रचना की है।

प्रकृति का रागात्मक रूपांतरण: सूफी काव्य ने अपने आध्यात्मिक दर्शन के आधार पर संपूर्ण प्रकृति को खुदा के नूर की अभिव्यक्ति माना है। सूफियों ने पहली बार प्रकृति को चेतन सत्ता के रूप में चित्रित किया है। वियोग के क्षणों में समूची प्रकृति दुख में डूबी है और संयोग में उल्लसित और हर्षित चित्रित की गई है। यथा-

"सखि मुख अंग मलय गिरी बासा। नागिन झॉपि लीन्ह चहूँ पासा।।"

सूफी काव्य में पहली बार प्रकृति का रागात्मक व उल्लासमय चित्रण हुआ है। उन्होंने अपने सुख-दुख की अनुभूति से प्रकृति को जोड़ा। बारहमासा और षडऋतु की अपूर्व छटा इन कवियों के काव्य में उपलब्ध होती है। जैसे-

"फिरि-फिरि रोई कोइ नहिं डोला। आधी रात बिहंगम बोला।।"

बोध प्रश्न –

- सूफियों ने प्रकृति को किस रूप में चित्रित किया है ?

विरह का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन: सूफी काव्य की मार्मिकता का आधार प्रेम का वियोग पक्ष है। आलोचकों का मानना है कि विरह-वर्णन पर ईरान के सूफियों का प्रभाव है-अतिश्योक्तिपूर्ण

वर्णन। कई जगह तो वर्णन वीभत्स, ऊहात्मक व कुरुचिपूर्ण भी है। लेकिन सामान्यत: अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए विरह की मार्मिकता का ही निर्वाह किया गया है। जैसे-

"पिय सों कहहू संदेसड़ा हे भौरा हे काग।

सो धनि विरहें जरि मुई तेहिक धुआँ हम लाग।।"

किंतु इसके बावजूद सूफी काव्य का विरह आधुनिक पाठक को विश्वस्त नहीं करता है क्योंकि अतिशयोक्ति में प्राय: मार्मिकता का उल्लंघन होता है। जैसे-गेहूँ का पेट फटना। कौवा काला हो जाना।इत्यादि

गुरु की महत्ता का प्रतिपादन: सूफियों ने गुरु को पीर मानते हुए उन्हें अज्ञानता से बाहर करने वाला स्वीकारा है जो जीवन के वास्तविक अर्थ को बताता है। सूफियों का मानना है कि गुरु के बिना आध्यात्मिक अनुभूति का स्फुरण ही संभव नहीं है। वह आध्यात्मिक साधना के मार्ग में आने वाली तमाम बाधाओं की सामना करने की शक्ति और उससे मुक्त होने का उपाय बताता है। जैसे-

"गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा,

बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।"

बोध प्रश्न –

- सूफी गुरु को क्या मानते हैं ?

शैतान की अवधारणा: शैतान सूफी काव्य का एक अनिवार्य प्रमेय है जिसकी अवधारणा भारतीय अद्वैत की माया से मिलती जुलती है। लेकिन सूफी काव्य में शैतान की भूमिका को सकारात्मक माना गया है क्योंकि शैतान द्वारा उत्पन्न की गई बाधाओं को तोड़कर पाया गया लक्ष्य साधक की उपलब्धि को अनुभूति से भर देता है। लौकिक स्तर पर भी शैतान जीवन को संघर्ष से भरकर प्रमाणिकता देता है।

बोध प्रश्न –

- सूफी काव्य में शैतान की क्या भूमिका है ?

भावनात्मक रहस्यवाद: सूफी की रहस्य भावना ने मनुष्य की एकता का प्रतिपादन किया और इस रूप में उसने प्रगतिशील भूमिका अदा की। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "भावनात्मक रहस्यवाद की जैसी सृष्टि सूफी काव्य-रचना में हुई है वैसी कबीर आदि संतों में नहीं हुई है।" इस धारा के कवियों का प्रेम अमूर्त के प्रति होने के कारण रहस्यवादी हो गया किंतु यह सरसता से युक्त है। गुरु की प्रेरणा से आत्मा में ब्रह्म के प्रति प्रेम का अंकुर उगा तभी शैतान बाधक बन गया। ऐसी स्थिति में आत्मा अपने ब्रह्म के दर्शन के लिए तड़प उठी और यह स्थिति भी भावनात्मक रहस्यवाद के तत्त्व को मुखरित करती है-

"हाड़ गए सब किंगरी, नसें भई सब तांति।

रोंव रोंव सो धुनि उठै, कहौ विथा के ही भांति।।"

रहस्यवाद के चारों सोपान (जिज्ञासा, कल्पना, विरह और मिलन) की चर्चा सूफियों ने विस्तृत रूप में की है।

बोध प्रश्न –

- रहस्यवाद के कितने सोपान हैं ?

कथानक रूढ़ियों का प्रयोग: सूफी कवि ने कथानक को गति देने तथा विशेष प्रकार के आकर्षण में बांधने के लिए परंपरा देने तथा विशेष प्रकार के आकर्षण में बांधने के लिए पंरपरा से प्राप्त भारतीय कथाओं में कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया है। जैसे- पशु पक्षी द्वारा नायिका के रूप का वर्णन, मंदिर, चित्रशाला में नायिका दर्शन, स्वप्न में नायिका को देखकर प्रेम होना। इसके साथ ही कुछ नयी कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है जो ईरानी साहित्य का प्रभाव है। इसे भी सूफी कवियों ने भारतीय वातावरण के अनुकूलन बनाने का प्रयत्न किया है। जैसे परी या देव की सहायता से कार्य संपन्न होना, राजकुमारी द्वारा प्रेमी को गिरफ्तार कर लेना।

नारी विषयक दृष्टिकोण: सूफी कवियों ने प्रेम के प्रसार के लिए नारी को नूर सिद्ध किया। जिसके बिना संसार सूना है। ईश्वर को भी नारी घोषित किया गया जिसे पाने के लिए आत्मारूपी पुरुष विकल रहता है। परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार- “सूफी कवियों ने नारी को यहाँ अपनी प्रेम साधना के साध्य रूप में स्वीकार किया है जिसके कारण वह इनके यहाँ किसी प्रेमी के लौकिक जीवन की निरी योग्य वस्तु मात्र नहीं रह जाती।” (हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा) इस प्रकार नारी के प्रति परंपरागत मध्य-युगीन दृष्टि का निषेध कर सूफी काव्य ने पहली बार ऐतिहासिक संदर्भों में नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा।

भाषिक-संरचना: हिंदी के सूफी काव्यों की काव्य भाषा ने लोक भाषा की सर्जनात्मक शक्ति को उजागर किया है। इनकी भाषा ठेठ अवधी है साथ ही मुहावरेदार भी। इन्होंने अरबी, फारसी, उर्दू, भोजपुरी एवं लोकभाषा के शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया है जो इनकी समन्वयवादी दृष्टि का परिचायक है।

‘‘तुरकी, अरबी, हिंदूई भाषा जेति आहि।
जहि महँ मारग प्रेम कर सवै सरा है ताहि।।’’

अलंकार के क्षेत्र में सूफियों ने प्रचलित परंपरा का ही अनुसरण किया है। समासोक्ति एवं अन्योक्ति सूफियों का प्रिय अलंकार है। अरबी फारसी से प्रभावित होने पर भी सूफियों की पूरी उपमान योजना भारतीय है। फारसी ढंग की वर्णन शैली में भारतीय उपमान की योजना हृदय पर एक विशेष छाप छोड़ती है।

‘‘तन जस पिथर पात भा मोरा।’’

रहस्यात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग सूफी काव्य में अनिवार्य हो जाता है। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में कुछ शब्दों का सांकेतिक प्रयोग किया है। सूफी काव्य में विरह-वर्णन का प्रतीकात्मक महत्त्व है-

“विरह के आशि सूर जरि काया।रातिऊ दिवस जरै ओहि तापा ”

सूफी कवियों ने बिम्ब योजना का भी बड़ा बारीकी से सूक्ष्म चित्रण किया है। जैसे-

"सरवर तीर पदमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई।।"

इस काव्यधारा के कवियों ने चौपाई और दोहा छंदों को अपनाया है। फारसी लिपि तथा मसनवी शैली का प्रयोग प्रस्तुत काव्यधारा की अपनी विशेषता है।

हिंदी के प्राय: सभी सूफी कवियों ने एक ही प्रकार के काव्य रूपों का उपयोग किया है- प्रबंध काव्य। सूफी काव्य लौकिक प्रेम संबंधों से निर्मित होने के कारण कथा का आश्रय लेता है। इसलिए प्रबंधात्मकता के मूल बीज सूफी साधना के दार्शनिक चेतना में ही निहित है। 'पद्मावत' इस काव्य धारा का एकमात्र महाकाव्य है।

समग्रत: कहा जा सकता है कि काव्य सौंदर्य और काव्य-मूल्य की दृष्टि से सूफी काव्य हिंदी कविता की महत्तम उपलब्धि है। भावों की मार्मिकता, आध्यात्मिक अनुभव और काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से इस कविता का महत्त्व तो है ही जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों के धरातल पर भी यह इस देश की महान सांस्कृतिक एवं समन्वयवादी परंपरा के महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं। इसमें भारतीय संस्कृति के विकास क्रम की रूपरेखा यथार्थ रूप में निहित है।

बोध प्रश्न –

- रहस्यात्मक की अभिव्यक्ति के लिए ....का प्रयोग सूफी काव्य में अनिवार्य है।

8.4 पाठ सार

कुल मिलाकर देखें तो निर्गुण काव्यधारा का सही मूल्यांकन करने के लिए परम्परागत साहित्यिक मानदंडों को बदलने की जरूरत है। निर्गुण काव्य की एक धारा संतकाव्य धारा जहाँ वंचित समुदाय के मानवाधिकार की वकालत करती है वहीं उसकी दूसरी धारा सूफी काव्य सामाजिक समरसता कायम करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाती है। इन दोनों ही काव्यधाराओं ने भक्ति को जीवन में स्थापित करने के लिए साधन और साध्य दोनों की शुद्धता पर बल दिया है, पाखण्ड और आडम्बर मुक्त भक्ति की वकालत की है और सबसे अधिक मुक्ति के लिए भक्ति को ही एकमात्र और निश्चित मार्ग बताया है। वैसे तो सभी भक्त कवियों की दृष्टि में मानुष सत्य से ऊपर कुछ भी नहीं है 'न जाति ,न धर्म,न सम्प्रदाय ,न शास्त्र का भय न लोक का भ्रम' लेकिन निर्गुण भक्त कवियों ने शास्त्र के बदले लोक और किताबी ज्ञान के बदले अनुभव को स्वीकार कर इस मानुष सत्य के निर्वाह का अक्षरशः पालन किया है। इसलिए समाज और संस्कृति के साथ-साथ मानवतावादी चेतना का संरक्षण ही इसका उद्देश्य है।

8.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए है –

1. भक्ति साहित्य को निर्गुण और सगुण दो धाराओं में बाँटा गया है। इनमें निर्गुण धारा के दो उप विभाग है – संत साहित्य और सूफी साहित्य।
2. संत कवियों और सूफी कवियों दोनों ही का आराध्य निराकार और निर्गुण ब्रह्म है लेकिन दोनों की साधना पद्धति में कुछ भेद होने के कारण उन्हें क्रमशः ज्ञान मार्गी और प्रेम

मार्गी के रूप में जाना जाता है।

3. ज्ञान मार्गी अथवा संत साहित्य में ईश्वर को घर घर वासी मानते हुए अनुभूति जन्य साधना पर बल दिया जाता है ।
4. संतों ने निर्गुण ब्रह्म को आलंबन रूप में अपने काव्य का केंद्रीय विषय बना कर उसके प्रति अनन्य प्रेम का निवेदन किया है।
5. प्रेम मार्गी सा सूफी साहित्य मुख्यतः प्रेमाख्यानक काव्यों के रूप में रचित है। इसमें ईश्वरीय प्रेम के समानांतर मानवीय प्रेम की भूमिका को महत्त्व दिया गया है।
6. सूफी साहित्य को इस्लामी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों के समन्वय का परिणाम भी कहा जा सकता है।

8.6 शब्द संपदा

1. **अद्वैतवाद -** शंकराचार्य द्वारा स्थापित दार्शनिक सिद्धांत। इसके अनुसार ब्रह्म ही केवल सत्य है बाकी सब कुछ मिथ्या या भ्रम है।
2. **ब्रह्म -** शुद्ध परमसत्ता
3. **उलटबांसी -** प्रतीकों के उपयोग द्वारा लोकव्यवहार के प्रतिकूल बातें करना।
4. **निर्गुण -** सत्, तम और रज गुणों से परे रहना वाला ब्रह्म।
5. **माया -** अविद्या या अज्ञान।
6. **जीव -** आत्मा का मायालिप्त रूप।
7. **इश्क मजाजी -** साधक की लौकिक प्रेम अवस्था
8. **इश्क हकीकी -** साधक की अलौकिक प्रेम अवस्था
9. **मसनवी -** मसनवी में कथा सर्गों या अध्यायों में विभक्त न होकर कथा को खण्डों, प्रसंगों या घटनाओं के अनुसार रूप दिया जाता है। मसनवी एक चाँद है जिसमें कथा आरंभ के पहले ईश्वर स्तुति, पैगम्बर की वंदना और उस समय के राजा 'शाहे वक्त' की प्रशंसा का उल्लेख होना चाहिए। सूफी काव्यों में मसनवी की इस परम्परा का पालन किया गया है।

8.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. निर्गुण भक्ति साहित्य से आप क्या समझते है ? इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
2. संत साहित्य पर प्रकाश डालते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं पर चर्चा करें।
3. सूफी साहित्य पर प्रकाश डालते हुए उकी काव्यगत विशेषताओं पर चर्चा करें।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. निर्गुण भक्ति से क्या अभिप्राय है और निर्गुण ब्रह्म के प्रति आस्था को लेकर संत कवियों ने क्या कहा है ?

2. 'सूफी' से क्या अभिप्राय है और सूफी कवियों की भाषिक संरकाहना पर चर्चा करें ।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1. निर्गुण का अर्थ कतई नहीं है। ( )

(अ) प्रेमहीन (आ) गुणहीन

(इ) रोगहीन (ई) देशहीन

2. किसकी भक्ति ने भारतीय जनमानस को भक्ति के शास्त्रवाद से मुक्त कर दिया।( )

(अ) रैदास (आ) कबीर

(इ) सूरदास (ई) रामानंद

3. यह कथन किसका है – "परमात्मा की एकता के आधार पर मनुष्यों की एकता का प्रतिपादन हो सकता था। " ( )

(अ) हजारी प्रसाद (आ) श्याम सुंदरदास

(इ) रामचंद्र शुक्ल (ई) गणपति चंद्र

4.अतार्किक सामाजिक विषमताओं का कड़ा विरोध किसने किया ? ( )

(अ) संत कवियों (आ) सूफ़ी कवियों

(इ) दोनों ने (ई) दोनों में से कोई नहीं

5. संतों ने किस दार्शनिक चिंतन का सूत्रपात नहीं किया ? ( )

(अ) व्यापक (आ) स्वतंत्र

(इ) संकुचित (ई) अर्ध – स्वतंत्र

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) सूफियों का प्रेम तत्व एवं वैष्णव भावना के ______________से अनुप्राणित है।

2) ______________ने आत्मा और परमात्मा के रहस्यात्मक संबंधों को भावनात्मक रूप प्रदान किया है।

3) संतों की साधना पद्धति का दूसरा महत्वपूर्ण आधार ______________है।

4) संत काव्य ______________का काव्य है।

5) संतों की सामजिक चेतना मानवता को ______________बनाने वाली कुरीतियों से सीधे टकराती है।

III सुमेल कीजिए।

1.	ब्रह्म	(अ) अविद्या या अज्ञान
2.	माया	(आ) आत्मा का माया रूप
3.	जीव	(इ) शुद्ध परमसत्ता
4.	मसनवी	(ई) साधना की लौकिक प्रेम अवस्था
5.	इश्क मजाजी	(उ) ईश्वरीय स्तुति

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास- स. डॉ.नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
3. भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य- शिव कुमार मिश्र
4. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास : हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. हिंदी साहित्य की भूमिका : हजारी प्रसाद द्विवेदी
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद- कबीर, राजकमल प्रकाशन दिल्ली
7. अकथ कहानी प्रेम की : पुरुषोत्तम अग्रवाल
8. कबीर ग्रंथावली : (संपा.) श्याम सुन्दर दास
9. जायसी : विजयदेव नारायण साही
10. हिंदी साहित्य कोश : संपा. धीरेन्द्र वर्मा

इकाई-9 सगुण भक्ति साहित्य : रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा की काव्यगत विशेषताएँ

रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मूल पाठ : सगुण भक्ति साहित्य : रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा की काव्यगत विशेषताएँ
    9.3.1 रामभक्ति काव्यधारा
    9.3.2 कृष्णभक्ति काव्यधारा
9.4 पाठ सार
9.5 पाठ की उपलब्धियाँ
9.6 शब्द संपदा
9.7 परीक्षार्थ प्रश्न
9.8 पठनीय पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

भक्तिकालीन साहित्य में साहित्य की मुख्य रूप से दो धाराएं विद्यमान थीं जिनमें से एक धारा को निर्गुण काव्य और दूसरी धारा को सगुण काव्य के नाम से जाना जाता है । दरअसल सगुण और निर्गुण का अंतर मुख्यतः लीला की दो अवधारणा को लेकर है। जिस ईश्वर को कुछ निश्चित विशेषणों से परिभाषित किया जाता है उसे सगुण कहते हैं। यहाँ ईश्वर में सर्वशक्तिमानता, दया, प्रेम, समता जैसे गुणों को ईश्वर में आरोपित किया जाता है। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य जैसों आचार्यों ने सगुण ईश्वर को ही स्वीकार किया है।

सगुण भक्ति से तात्पर्य है- ईश्वर के सगुण रूप की भक्ति है अर्थात अपने आराध्य के रूप और गुण की आराधना । सगुण भक्ति का आधार है ईश्वर के आकार की कल्पना करना और उस कल्पना के माध्यम से ईश्वर का गुणगान करना।ईश्वर के सगुण रूप को प्रतिष्ठित करने वाले मत को सगुणवाद या सगुण काव्य कहा जाता है ।सगुण भक्ति काव्य में न केवल ईश्वर के अवतारवादी रूप की प्रतिष्ठा की गयी है अपितु उसके निराकार-निर्गुण रूप का खंडन भी किया गया है । हिंदी साहित्य में भक्ति काव्य के अंतर्गत सगुण काव्यधारा की दो शाखाएं मानी गयी हैं जिसमें एक रामभक्ति शाखा और दूसरी कृष्णभक्ति शाखा है।भगवान विष्णु के एक अवतार कृष्ण एवं उनके जीवन को आधार बनाकर जो काव्य रचा गया उसे कृष्णभक्ति काव्य की संज्ञा दी गयी । इसी तरह विष्णु के ही एक और अवतार राम एवं उनके जीवन को आधार बनाकर जो काव्य रचा गया उसे रामभक्ति काव्य की संज्ञा दी गयी । रामानंद को सगुण भक्ति काव्य का प्रारंभिक कवि माना गया है ।

सगुण भक्ति कविता लोक-पक्ष को व्यापक बनाती हुई जन-मन की आकांक्षाओं की पूर्ति करती है ।इसके पुरस्कर्ताओं ने अर्जित ज्ञान एवं विवेक को जिस संवेदना और राग के साथ प्रस्तुत किया उससे भक्ति काव्य को जनजीवन में एक नयी पहचान मिली। राम-काव्य और कृष्ण-काव्य के माध्यम से सगुण भक्ति काव्य की समूची ऊर्जा स्पंदित होकर लोकमंगल की ओर प्रवृत्त होती है। ख़ासकररामभक्ति काव्यधारा और कृष्णभक्ति काव्यधारा के साहित्य में तत्कालीन समाज और परिस्थितियों की जिस राजनीतिक चेतना का परिचय मिलता है वह उस युग के साहित्य की प्रतिरोधी चेतना और सामाजिक परिस्थितियों के निर्माण में साहित्य की उपयोगिता का भी ज्वलंत प्रमाण है।इसलिए यहाँ हिंदी सगुण काव्यधारा की दोनों सर्वप्रमुख प्रवृत्तियों–रामकाव्यधारा और कृष्णकाव्यधारा की काव्यगत विशेषताओं का एक-एक करके अध्ययन करेंगें।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- भक्ति आन्दोलन के निर्माण में सगुण कवियों की भूमिका एवं उनके योगदान के बारे में जान सकेंगें।
- हिंदी साहित्य के इतिहास में सगुण भक्ति काव्य की आवश्यकता और तत्कालीन जनमानस के जागरण के रूप में इस काव्यान्दोलन की भूमिका से परिचित हो सकेंगे।
- सगुण और निर्गुण भक्ति में क्या अंतर है,यह स्पष्ट कर पाएँगे ।
- सगुण भक्ति काव्य और निर्गुण भक्ति काव्य से के बीच अंतर को समझ सकेंगे।
- सामाजिक जीवन में सगुण भक्ति काव्य धाराओं की लोकप्रियता के कारणों से भी अवगत हो सकेंगे।

9.3 मूल पाठ : सगुण भक्ति साहित्य : रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा की काव्यगत विशेषताएँ

9.3.1 रामभक्तिकाव्यधारा

रामभक्ति काव्यधारा : अर्थ, परम्परा और प्रवृत्तियाँ

राम एवं उनके जीवन को आधार बनाकर जो काव्य रचा गया उसे रामभक्ति काव्य और इस परंपरा को रामभक्ति काव्य परंपरा की संज्ञा दी गई है। सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व साहित्य में राम काव्यधारा की एक सुदीर्घ एवं सतत परंपरा देखने को मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो भारतीय वांग्मय में राम सर्वप्रथम ऋग्वेद में एक प्रतापी यज्ञकर्ता के रूप में दिखाई देते हैं । चौथी शताब्दी में कालिदास के यहाँ राम एक ऐतिहासिक पुरुष हैं । वाल्मीकि के यहाँ राम के चरित्र की बुनियादी विशेषताओं का निर्धारण होता है । मतलब हिंदी साहित्य से पूर्व संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य में पर्याप्त मात्रामें रामकाव्य की रचना हो चुकी थी। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने ऐसी अनेक पंक्तियाँ (जैसे 'रामायन सतकोटि अपारा', 'नानापुराण निगमागमसम्मत', 'रामकथा के मिति जग नाहीं') लिखी है जिससे साफ़ जाहिर होता है कि राम की कथा परंपरा और संस्कृति में कब से विद्यमान है इसका ठीक-ठीक

अनुमान लगा लेना बहुत ही दुष्कर कार्य है ।संस्कृत के साथ साथ प्राचीन बौद्ध एवं जैन साहित्य के भी अनेक ग्रंथों में रामकथा के सूत्र बिखरे पड़े हैं । पद्म पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, विष्णु पुराण, अग्निपुराण जैसी पुराणपरक रचनाओं के अलावा कालिदास के रघुवंशम, कुमारदास रचित जानकी हरण,भवभूति कृत उत्तर रामचरित,राजशेखर प्रणीत बाल रामायण,(सभी संस्कृत भाषा की रचनाएं)विमल सूरी कृत पउमचरियम (प्राकृत), स्वयंभू लिखित पउमचरिउ (अपभ्रंश), जैसी अनेक उल्लेखनीय रचनाओं में राम कथा का वर्णन मिलता है । यह एकदम सही है की लोक में प्रचलित और धर्म में समादृत राम और उनके जीवन से जुड़ी हुई कथाओं का सही सही अंदाज नहीं लगाया जा सकता है, लेकिन उपलब्ध रचनाओं के आधार पर कहें तो रामकथा का सबसे प्राचीनतम स्रोत वाल्मीकि रचित 'रामायण' है। माना जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना ई. पू. 600- ई. पू 400 के बीच हुई थी। देखें तो वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति से लेकर स्वयंभू होते भक्तिकाल के कवियों सहित आधुनिक काल तक रामकाव्य की एक समृद्ध परंपरा हमारे सामने है । लेकिन यहाँ जिस रामभक्ति काव्यधारा की विशेषताओं के बारे में हम बात कर रहे हैं उसका सम्बन्ध हिंदी साहित्य में मध्ययुगीन रामभक्ति काव्यधारा के रूप में विकसित आन्दोलन से है जिसने "विदेशी शक्तियों से आक्रांत, सामाजिक दृष्टि से वैमनस्य-पीड़ित, धार्मिक धरातल पर सिद्धों एवं तांत्रिकों के विविध मत-मतांतरों से ग्रस्त नैराश्ययुक्त हिन्दू जनता को राम के असुर-संहारक, शरणागत-प्रतिपालक अलौकिक रूप ने मधुमय संबल प्रदान किया।" इस काव्यधारा के अग्रगण्य कवियों में तुलसीदास, अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास, केशवदास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम प्रमुख हैं लेकिन भक्त शिरोमणि तुलसीदास और उनका 'रामचरितमानस' सर्वमहत्त्वपूर्ण है ।ग्रियर्सन ने तो यहाँ तक कह दिया कि बुद्ध के बाद भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास थे । (हजारी प्रसाद द्विवेदी- हिंदी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 98) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उत्तर भारत में रामभक्ति काव्य परंपरा का आरम्भ रामानंद से स्वीकार किया है । उनके अनुसार रामानंद का समय 1450 से 1550 ईस्वी के बीच है।

यह सही है कि राम को आधार बनाकर भक्ति की पवित्र मंदाकिनी प्रवाहित करने वाली काव्यधारा को रामभक्ति काव्यधारा की संज्ञा दी जाती है। लेकिन राम के शील, शक्ति और सौंदर्य से समन्वित जो रामकाव्य पंरपरा भारतीय लोकमानस में गहरे रूप में अंतर्व्याप्त है उसका वैशिष्टय मूलत:तुलसी के कृतित्व पर टिका हुआ है। ईश्वर और मनुष्य के संबंध को नए रूप में परिभाषित करते हुए उन्होंने राम के चरित्र को धर्म,अनुभव और मूल्य चेतना से जोड़कर भक्ति का सगुण–पथ निर्मित किया। उनके साहित्य में अवतारवादी उपासना एवं समन्वयवादी दृष्टिकोण दोनों विद्यमान है। उनके बाद के रामभक्त कवियों पर उनकी गहरी छाप दिखाई देती है । 'लोकवादी तुलसी' में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं- "तुलसी के यहाँ राम में मनुजत्व और ब्रह्मत्व की सहस्थिति सर्वत्र बनी है। रामचरितमानस इस सहस्थिति को समझने की शंका के निवारणार्थ रचा गया है। राम ब्रह्म है, सर्वशक्तिमान है किन्तु मानवी लीला कर रहे हैं।...तुलसी के राम में जो दिनबंधुता,शील और संकोच है वह भक्ति के आलंबन राम में ही संभव था। सामान्य लोकजीवन के जितने निकट तुलसी के राम हैं वाल्मीकि और भवभूति के नहीं। ...तुलसी के यहाँ राम का परम ब्रह्मत्व उनके सारे आग्रहों के वावजूद सगुन भक्ति भावना के

कारण ढक गया है।"(पृष्ठ 19) कुल मिलाकर देखे तो राम काव्य लोकमंगल एवं लोकधर्म की साधना व आस्था का काव्य है। इसमें राम के शील,शक्ति और सौंदर्य से समन्वित लोक रक्षक रूप को एक ओरसामाजिक मर्यादा का प्रबल पक्षधर माना गया है तो दूसरी ओर उनके लोकरंजक व्यक्तित्व को उद्घाटित करने के लिए श्रृंगार चेतना का भी कलात्मक उपयोग किया गया है।इसलिए राम काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है.

राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की स्थापना : मर्यादा मानवीय सामाजिकता की रीढ़ होती है। रामभक्तिकाव्य में राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की स्थापना उनके मानवीय आचरण, दायित्त्व निर्वाह एवं जीवन के ठोस प्रसंगों में क्रियाशील संघर्षों से निर्मित हुई है। यह मर्यादा पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी स्तरों पर दिखाई देती है। शील, सौंदर्य और मर्यादा का अधिष्ठाता होते हुए भी यह राम हमारे दैनिक जीवन के अनुभवों से उजागर हुआ है। वह केवल अनादि, अनंत और व्यापक सच्चिदानंद मात्र नहीं बल्कि नानापुराण निगमागम सम्मत भी है । तुलसीदास ने 'मानस' की रचना करके विविध मर्यादाओं को प्रमाणिकता प्रदान किया है। राम का राज्य ऐसा राज्य है जहाँ 'सुलभ पदारथ चारि,' 'राम राज विषमता खोई', और 'नहिं दरिद कोहु दुखी न दीना' जैसी स्थिति है। मानवीय बोध एवं पीड़ा राम के इस मर्यादावादी रूप को समाज के लिए अथवा मनुष्य मात्र के लिए मूल्यवान बनाती है।

लोकमंगल की साधना : रामभक्ति काव्य लोकमंगल की साधना को अपना निमित्त मानती है। इसलिए रामभक्ति और कविता का आधार यहाँ लौकिक है। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में लिखा है कि-

'कीरति, भनिति भूति भलि सोई,
सुरसरि सम सबकर हित होई।'

लोकमंगल की साधना हेतु ही रामभक्ति काव्यधारा के कवियों ने कर्म संघर्ष का चित्रण किया है। संघर्ष परंपरा में भी विवेक,लोकमंगल और मर्यादा बनाए रखना राम का आदर्श है। यही सहजता और मर्यादा रामकाव्य की विशिष्टता है। तुलसीदास 'परहित' को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं और 'परपीड़ा' को अधर्म-

'परहित सरिस धर्म भाई। परपीड़ा सम नहीं अधमाई।'

समन्वयात्मक जीवन दृष्टि : भारतीय समाज में नाना भांति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएं, जातियां, आचार निष्ठा और प्रचलित विचार पद्धतियों पर गहन चिंतन मनन करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह स्पष्ट किया है कि- "भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास,पृष्ठ 131) रामकाव्य में समन्वय की विपुल भावना मिलती है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही नहीं अपितु भाषा और संस्कृति,गार्हस्थ्य और वैराग्य, भक्ति और ज्ञान, निर्गुण और सगुण, पुराण एवं काव्य, भाव और चिंतन का भी समन्वय है। लोक और शास्त्र का व्यापक ज्ञान होने के

कारण ही राम काव्य के पर्याय माने जाने वाले गोस्वामी तुलसीदास का संपूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा से अनुप्राणित है। उदाहरण-

सगुण और निर्गुण का समन्वय–

"अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं सब संशय खेदा।"

शैव एवं वैष्णव का समन्वय -

"शिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर मोंहि सपनेहुँ नहिं भावा।।"

ज्ञान और भक्ति का समन्वय –

"भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा ।।"

समन्वय को तुलसी ने भाव के स्तर पर ही नहीं वरन शैली के स्तर पर भी संभव किया है ।

दास्य भक्ति की प्रधानता : विवेच्य काव्यधारा दास्य भक्ति भावना को अपनाते हुए भक्ति का निषेध करती है। दास्य भाव को चेतना के स्तर पर स्वीकार करने वाली यह भक्ति संपूर्ण आत्मार्पण पर आधारित है जो मनुष्य को भीतर से संपृक्त करती है।

"को जने को जैहै सुरपुर कौन नरक धन धाम को।
तुलसी बहुत भलो लागत जगजीवन राम गुलाम को।।"

इस युग के रचनाकारों ने भक्ति को जीवन की सार्थकता मानते हुए अपने को ईश्वर का सेवक स्वीकार किया है।

ब्रह्म की उभयात्मक अवधारणा : रामभक्ति काव्य में ब्रह्म की उभयात्मक अवधारणा मिलती है। वह मूर्त्त-अमूर्त्त, व्यक्त-अव्यक्त,चल-अचल आदि सर्वरूप में विद्यमान है। उसके दोनों रूप सत्य और नित्य हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास ने लिखा है कि-

"अगुन अरूप अलख अज जोई,
भगिति प्रेम बस सगुन सो होई।"

गहन राजनीतिक बोध : भक्तिकालीन रामकाव्य की यह अन्यतम विशेषता है कि इसमें तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का मूल्यांकन किया गया है। समकालीन राजनीति की प्रकृति इस काव्य में साफ दिखाई देती है जिसके कारण समाज में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हुई है। कविता एक तरह की नैतिक ढाल है जो पाठक को उसके कर्तव्यों और दायित्वों का सांस्कृतिक-राजनीतिक बोध कराती है ।

"वेद धर्म द्वरि गए भूमि चोर भूप गए।"

तुलसी ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की माँग करते हैं जिसमें कोई दरिद्र न हो, कोई दुखी न हो और जहां प्रजा रक्षणहीन न हो अर्थात ऐसे राज्य में अन्यायी से जनता की रक्षा की जा सके -

"नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।

नहिं कोई अबुध न रक्षणहीना।।"

वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन : भक्तिकाल की अन्य काव्यधाराएँ जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध करती है वहीं रामभक्ति काव्यधारा इस व्यवस्था का समर्थन करती है। तुलसी इसे सामाजिक आदर्श के रूप में देखते हैं तभी तो वे लिखते हैं कि-

"पूजहि विप्र सकल गुनहीना,
सूद्र न पूजहु वेद प्रवीणा।"

नारी के प्रति दृष्टिकोण : नारी के प्रति राम कवियों की दृष्टि अधिक अवसरों पर उदार रही किन्तु कुछ जगहों पर ये कवि अपनी युगीन सीमाओं का अतिक्रमण न कर सके । नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण उस युग का सच था। तुलसीदास अपनी स्त्री उदारता के बावजूद कई जगह पितृसत्तात्मक सोच का समर्थन करते दिखाई देते हैं -

"ढोल गंवार, शूद्र, पशु, नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी"

स्त्री की कारुणिक दशा का चित्रण करते हुए तुलसीदास 'रामचरित मानस' में लिखते हैं –"कत
बिधि सृजी नारि जग माहीं ।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ।।"

युग-जीवन का यथार्थ चित्रण : हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल राजनीतिक- सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अस्थिरता का युग था । इसलिए युगजीवन का यथार्थ चित्रण रामकाव्य की वह महत्त्वपूर्ण विशेषता है जिसमें धार्मिक अराजकता, शिक्षा-व्यवस्था, आर्थिक विपन्नता, दैविक आपदाएँ आदि का सजीव चित्रण मिलता है। धार्मिक अराजकता, आर्थिक विपन्नता, दैविक आपदाओं आदि का सजीव चित्रण तुलसी ने 'कवितावली' में करते हैं -

समाज की दयनीय स्थिति का चित्रण –

"खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज,न चाकर को चाकरी
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी ।"

सामाजिक वैषम्य-

"एक सुखी एक अति दुखी,एक भूप एक रंक।
एकन को विद्या बड़ी,एक पढ़े नही अंक।"

धार्मिक वैषम्य- "नारि मुई ग्रह सम्पत्ति नासी, मूड़ मुडाई होहिं संन्यासी।"

काव्य संगठन : कला-पक्ष के स्तर पर रामकाव्य में अनेक विविधताएं हैं । लोक-भाषाओं की दृष्टि से तुलसी का साहित्य अप्रतिम है । तुलसी के यहाँ प्रचलित अवधी तथा ब्रज दोनों लोक भाषाओं का प्रयोग हुआ है। रामचरित मानस' की भाषा अवधी है तो कवितावली, विनयपत्रिका आदि रचनाएं ब्रजभाषा में रचित हैं ।

"दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं ।

गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं।।
राम को रूप निहारति जानकी कंकण के नग की परछाहीं ।
यातैं सबै सुधि भूल गई कर टेक रही पल टारति नाहीं ।।"

अलंकार के स्तर पर इस काव्यधारा के कवियों ने शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का सरस एवं बहुलतापूर्वक प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण देखिये-

रूपक- 1.'चरण कमल बंदौ हरि राई।'
"पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहै।"
"तुलसी मन रंजन,रंजित अंजन नैन सुखंजन-जातक से।"

अतिशयोक्ति- "हनुमान की पूंछ में लगन न पाई अगि।
लंका सारि जरि गई, नग निशाचर भागि।।"

काव्य-रूप की दृष्टि से इस काव्यधारा में प्रबंध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएँ लिखी गई। 'रामचरितमानस'हिंदी का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है जो इसी काव्यधारा की देन है।

छंदों की बात की जाए तो रामकाव्यधारा के अधिकाँश कवियों ने दोहा एवं चौपाई छंद का प्रयोग किया है, परंतु भावानुरूप उन्होंने कवित्त, उल्लाला, रोला, सवैया, छप्पय, घनाक्षरी आदि छंदों को भी काव्य के सौन्दर्य प्रसार में नियोजित किया है।

इस तरह हम देखते हैं कि रामभक्ति काव्य परंपरा हमारी साहित्यिक रचनाशीलता और मूल्य-चेतना का अप्रतिम दस्तावेज है। यह काव्यधारा रामराज्य के स्वप्नको एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत करती है। इस काव्य के माध्यम से परस्पर विरोधी स्थितियों के समन्वय का ऐतिहासिक कार्य भी संपन्न हुआ।राम के रूप में मानव जाति के सामने एक ऐसा आदर्श रखा गया जिसकी प्रासंगिकता युगों युगों तक रहेगी। आगे चलकर महात्मा गांधी ने भी तुलसी की रामराज्य की परिकल्पना को समाज के लिए उपयोगी माना और इसके ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार किया।

9.3.2 कृष्ण भक्ति काव्यधारा

कृष्णभक्ति काव्य : अर्थ, अभिप्राय और प्रवृत्तियाँ

भारतीय सभ्यता,संस्कृति और साहित्य में कृष्ण का व्यक्तित्त्व विलक्षण है। कृष्ण काव्य का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में पाया जाता है। कौशितकी ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद में कृष्ण की चर्चा अंगीरस नामक एक ऋषि के शिष्य के रूप में मिलती है। महाभारत में कृष्ण के ब्रह्म होने का उल्लेख गीता-प्रसंग में है, और यहीं से कृष्ण के नायकत्व का प्रारंभ होता है। आगे चलकर पुराण काल में कृष्ण को ब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है। कृष्ण कथा के निर्माण में जिन पुराणों की भूमिका है उनमें हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण और भागवत पुराण प्रमुख है। भागवत पुराण कृष्ण कथा का मेरुदंड है, जहां कृष्ण पहली बार प्रेम के देवता के रूप में स्वीकृत हुए हैं। कालांतर में कृष्णकाव्य की साहित्यिक अभिव्यक्ति बारहवीं शताब्दी के संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत गोविन्द' में देखने का मिलती है। परंतु मध्यकालीन कृष्णभक्ति काव्य का मूलाधार वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्त्तित 'पुष्टिमार्ग' है जिसका आधार ग्रंथ 'भागवत पुराण' को स्वीकार किया गया है। है। शंकराचार्य के अद्वैतवादी दर्शन की प्रतिक्रिया में

वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत दर्शन की स्थापना कर इस बात पर बल दिया था कि अपने अव्यक्त रूप में ब्रह्म जैसा है वैसा ही व्यक्त रूप में भी । इस ब्रह्म को ज्ञान के मार्ग से नहीं बल्कि भक्ति के मार्ग से पाया जा सकता है।ब्रजेश्वर वर्मा के अनुसार-" आधुनिक भाषाओं में कृष्णभक्ति साहित्य की रचना होने से पहले प्राकृत और संस्कृत साहित्य की एक लम्बी परंपरा थी जिसका लोकगीतों तथा लोक कथाओं से घनिष्ठ संबंध था। काव्य की प्रेरणा, भावना, रूप और भाषा में आमूल परिवर्तन होने के कारण हिंदी कृष्णकाव्य का जन्म हुआ जिसकी प्रवृत्ति मूलत: धार्मिक है।" (सूरदास, पृष्ठ 89) मध्ययुगीन कृष्णभक्ति काव्य का साहित्यिक महत्त्व सर्वविदित एवं सर्वमान्य है। मध्यकाल के विद्वेष,घृणा और पारस्परिक वैमनस्य के कलुषित वातावरण में उसने धर्म, दर्शन, भक्ति और काव्य की ऐसी विमल मधुर स्रोतस्विनी बहाई जिससे सहृदय आज तक रसासिक्त और आनंदमय होते आ रहे है। दरअसल कृष्ण भक्त कवियों की रचनात्मकता का मूल उद्देश्य कृष्ण के लोकरंजक एवं लोकरक्षक रूप के प्रति जनसामान्य में भक्ति-भावना को संवलित करना था। इसलिए कृष्णभक्ति कविता में भक्ति भावना,संकल्पनात्मक आत्मानुभूति और चरम तमन्यता से समन्वित प्रेम की भारतीय परंपरा का नया रूप विकसित हुआ है। इसमें जीवन-रस और भक्ति रस का सुसामंजस्य उद्वेलित हुआ है। वैचारिक दृष्टि से भी यह काव्यधारा सामाजिक,सांस्कृतिक, राजनीतिक शक्तियों एवं गार्हस्थ्य जीवन की गतिमान विकास परंपरा को प्रस्तुत करती है । इस काव्यधारा के प्रमुख कवियों में सूरदास, नंददास, कुंभनदास, परमानंददास, चतुर्भुजदास आदि प्रमुख हैं। इस काव्य का एक बड़ा हिस्सा उन कवियों द्वारा भी रचित है जो अष्टछाप के बाहर के थे। इनमें मीरा और रसखान के नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है।

कृष्णभक्ति काव्य का यह वैशिष्ट्य है कि वह तत्कालीन सामन्ती मूल्यों और जड़ परम्पराओं और रूढ़ियों को नकारता है ।सामंती देहवाद के स्थान पर वह प्रेममय रागभाव को स्वीकृति देता है। कृष्ण भक्ति साहित्य में बाल लीलाओं के माध्यम से कृष्ण का निर्मल रूप उभरता है और गोवर्धन लीला जैसे प्रसंगों से कृष्ण के व्यक्तित्व का लोकरक्षक रूप स्थापित होता है । कृष्णकाव्य शास्त्र के स्थान पर लोक का वरण करता है और कर्मकांड आदि की यहाँ कोई अनिवार्यता नहीं है। उपास्य-उपासक के मध्य सीधा संवाद इसकी विशेषता है। कृष्ण की जो लोकछवि लीलाओं के माध्यम से उभरती है, वही उन्हें पूज्य बनाती है। मान हैऔर इस लीलावाद की अभिनवता आध्यात्मिकता और लौकिकता की समानांतर और सघन उपस्थिति में है। इस लीलावाद का मुख्य आधार पुष्टिमार्गी भक्ति है जहांइसलिए इस काव्यधारा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

लीलावाद में अखंड विश्वास : चित्त की निर्विकारिता और मानवीय आचरण की मूर्तता के समानांतर रिश्ते को ही लीला के नाम से जाना जाता है। कृष्ण काव्य परंपरा में परम ब्रह्म कृष्ण के लौकिक व्यवहारों को लीला के रूप में चित्रित किया गया है।यह लीला कृष्ण के जन्म से लेकर उनके किशोर होने तक की संपूर्ण क्रिया व्यापारों में व्याप्त है।सूरदास के अनेक पदों में बाल कृष्ण की अनेक चेष्टाओं में आध्यात्मिक संकेतों के सन्दर्भ साफ़ दिखाई देते हैं।विद्यापति से लेकर भारतेंदु तक लीलावाद की यह प्रवृति अखंड रूप से विद्य भक्ति ईश्वर के अनुग्रह से जन्म लेती है। यथा-

“जापर दीनानाथ ढरै
सोंइ कुलीन, बड़ौ सुदर सोइ जापर कृपा करै।।”

विद्यापति से लेकर भारतेंदु तक सभी कवियों ने लीला वर्णन और गायन मुक्त भाव से किया है। बालकृष्ण की वात्सल्य से पूर्ण लीलाएँ, बाल गोपियों के साथ सख्य-भाव की लीलाएँ, ब्रज की गोपियों व राधा के साथ रास लीलाएँ संपूर्ण कृष्ण भक्ति काव्य में व्याप्त है। डॉ.रामकुमार वर्मा के अनुसार- “कृष्ण काव्य के प्राय: सभी कवियों ने कृष्ण के रास और प्रकृति की शोभा का चित्रण किया है।अनेक कवियों द्वारा भ्रमरगीत भी लिखा गया अपवाद स्वरूप मीरा ने कृष्ण की भावना अपने एकांत प्रियतम के रूप में कर भक्ति की रूपरेखा निर्धारित की है।” (हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास)

वात्सल्य का विशद चित्रण : कृष्ण भक्त कवियों का मानना है कि केवल वात्सल्य ही भक्ति का सर्वशुद्ध भाव होता है जिसमें न तो विरक्ति की भावना होती है न ही किसी इन्द्रिय सुख की कामना।कृष्ण के जन्म से उनके मथुरा जाने तक के समय को चित्रित करते हुए कृष्णभक्त कवियों ने वात्सल्य-पूर्ण अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। वात्सल्य चित्रण की दृष्टि से विश्व साहित्य में सूर की कविता अद्वितीय है। सहजता और मनोवैज्ञानिकता इसके आधारबिंदु हैं। कहा तो यह भी जाता है कि वात्सल्य वर्णन से सम्बंधित अंश यदि सूर साहित्य से अलग कर दिया जाए तो सूरदास का व्यक्तित्व अपूर्ण ही रह जाएगा। इतना ही नहीं ‘पुरुष होते हुए भी माता का ह्रदय होने’ की साहित्यिक परकाया प्रवेश की शक्ति का सबसे बड़ा और ज्वलंत उदाहरण शायद ही मिले। आचार्य शुक्ल के अनुसार- “वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया है उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक आएँ।” (सूरदास,पृष्ठ 100) हजारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते है कि –“सूर के वात्सल्य वर्णन में वह सब कुछ है जो माता शब्द को इतना महिमाशाली बनाए हुए है,...यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ ह्रदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और ह्रदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है, माता संसार का ऐसा पवित्र रहस्य है जिसे कवि के अतिरिक्त और किसी को व्याख्या करने का अधिकार नहीं है।” (सूर-साहित्य,पृष्ठ 92-93)

कृष्ण भक्ति काव्य में सूर का वात्सल्य वर्णन अनूठा है । उनके वात्सल्य संबंधी कुछ उदहारण यहाँ प्रस्तुत हैं –

बाल हठ का दृश्य -

“मैया, मैं तो चंद खिलौना लै हौं।
जैहौं लोटिधर निपर अब हीं,तेरी गोदन ऐ हौं॥
सुरीकौपय पान न करि हौं, बेनी सिरन गुहै हौं।
ह्वै हौं पूतनंद बाबा कौ, सुतन कहै हौं॥
आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलदेव हिन जनै हौं।
हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दै हौं”

माखन-चोरी का दृश्य-

"मैया मैं न हिंमाख न खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुखल पटायौ॥
देखि तुहीसीं के पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जुकहतनान्हेकरअपनैमैंकैसैंकरिपायौ॥"

मातृ-स्नेह की झांकी-

"जसोदाहरिपालनैंझुलावै।
हलरावै, दुलरावैमल्हावै, जोइजोइ-कछुगावै॥
मेरेलालकौंआउनिंदरिया, काहैंनआनिसुवावै।
तूकाहैंनहिंबेगहिं आवै तोकैकान्हबुलावै॥
कबहुँपलकहरिमूँदिलेतहैं, कबहुँअधरफरकावै।
सोवतजानिमौनह्वैकैरहि, करिकरि-सैनबतावै॥"

प्रेम की विराट कल्पना: प्रेम सूर साहित्य की पूंजी है । यह बचपन के निरंतर साथ और सान्निध्य से उपजा प्रेम है ।कृष्ण भक्त कवियों ने अन्य धाराओं के भक्त कवियों की तरह प्रतीकात्मक और श्रद्धा से संयमित प्रेम को नही अपनाया। कृष्ण के प्रति उनका प्रेम जनतांत्रिक किस्म का है जहाँ पहली बार परिचय के माध्यम से प्रेम होता है।

"बूझत स्याम कौन तू गोरी
कहाँ रहित है, काकि है बेटी,देखी नहीं कहूँ ब्रजखोरी।।"

सूर साहित्य में ऐसा प्रेम है जहाँ तन्मयता का भाव है। सूर स्त्री मुक्ति में सहभागी बनते हुए शास्त्र,रूढियों और परंपराओं में से किसी की परवाह नहीं करते। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं – "सूरदास के काव्य में कृष्ण से राधा और दूसरी गोपियों का प्रेम सामंती नैतिकता के बन्धन से मुक्त प्रेम है। उन्मुक्त प्रेम की यह परिकल्पना और मानवीय संबंध के रूप में उसके विकास का चित्रण प्रेम और विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण का विरोधी है।"(भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य,पृष्ठ 184) सूरदास के काव्य में स्त्री का सहज,स्वतंत्र और तेजस्वी रूप मिलता है,जो प्रेम के अलावा लोक और वेद के किसी बन्धन को नहीं मानती। उनकी स्त्री पात्र व्यवस्था के बन्धनों को पूरी तरह नकारते हुए स्वतन्त्रता के लिए जीवन का एक नया नक्शा तैयार करती हैं। यह एक ऐसा नक्शा है जिसमें जीवन का स्वत्व है और आत्मसम्मान की भावना भी।

"ऊधो! प्रीति न मरन बिचारै।
प्रीति पतंग जरै पावक परि, जरत अंग नहिं टारै॥

प्रीति परेवा उड़त गगन चढ़ि गिरत न आप सम्हारै।
प्रीति मधुप केतकी-कुसुम बसि कंटक आपु प्रहारै॥"

कृष्ण भक्ति काव्य के प्रेम चित्रण की मार्मिकता का आधार प्रेम का वियोगात्मक पक्ष है। जैसे-

"निसि दिन बरसत नैन हमारे
सदारहतपावसऋतुहमपरजबतैस्यामसिधारे।"

कृष्ण भक्ति काव्य के कवियों ने नारी हृदय के वियोग को बोलकर या अभिव्यक्त कर उसे मार्मिकता तो प्रदान किया है परंतु पिता के माध्यम से पुरूषत्व रूपी पहाड़ के नीचे जो दुख का अवरिल झरना बह रहा है,उस मूक पीड़ा को जिस चतुराई से इन कवियों ने उभारा है वह सराहनीय है।

भ्रमरगीत की मौलिक उद्भावना : आध्यात्मिक स्तर पर ज्ञान और भक्ति की टकराहट में भक्ति को सर्वोत्कृष्ट तथा सगुणोपासना की श्रेष्ठता पर बल देता है भ्रमरजीत प्रसंग। सूरदास के अनुसार-

"अविगत की गति गुछ कहत न आवै
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुण पद गावै।"

कृष्णभक्त कवियों ने भ्रमरगीत परंपरा के द्वारा गोपी तथा उद्धव के तर्क-वितर्क के माध्यम से सगुण की निर्गुण पर तथा भक्ति की ज्ञान पर विजय स्थापित की है। भक्ति और ज्ञान के बीच का अंतर सूर ने भ्रमरगीत के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। यथा-

निगुर्ण कौन देस को बासी ।
मधुकर हसि समुझाय सॉह दे बूझति सॉच न हाँसि

सूरदास ने भ्रमरगीत के माध्यम से मध्यकालीन समय में एक ऐसा प्रति-संसार रचा जिसमें जीवन से पलायन का नकार है । यह देखा जाना जरूरी है कि आखिर वो कौन सी परिस्थितियाँ थीं जिनके कारण सूर को भागवत में भ्रमरगीत की मौलिक सृष्टि करनी पड़ी । सूरदास के अध्ययन से क्या उस समय और समाज की समस्याओं की शिनाख्त की जा सकती है आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'सूर-साहित्य' पुस्तक में यह स्थापना दी है कि इस काल में "नयी नयी जातियों के आने से नयी नयी समस्याएँ खड़ी हो रही थीं...उस समय तक हिन्दू जाति के अन्दर एक क्षीण जीवनी शक्ति वर्तमान थी ।इस जीवनी शक्ति के कारण ही नयी व्यवस्थाएं बन सकी थीं,परन्तु मुसलमानों के आने से वह शक्ति स्तंभित सी हो गयी ।ऐसे अवसर पर सूर ने प्रेम के माध्यम से जीवन में सरसता और आनंद का संचार किया।"

सूर निर्गुण और निराकार भक्ति को निरालम्ब मानते हैं । निराकार ब्रह्म की उपस्थिति को अस्वीकारते हुए सूर ने कई पद लिखे हैं ।कृष्णभक्त कवियों ने भ्रमरगीत परंपरा के द्वारा गोपी तथा उद्धव के तर्क-वितर्क के माध्यम से सगुण की निर्गुण पर तथा भक्ति की ज्ञान पर विजय स्थापित की है। वह निराकार ब्रह्म का खंडन करते हैं भागवत में यह बताया गया है कि जब उद्धव आये तो पहले नन्द यशोदा से मिले फिर अगले दिन गोपियों से मिले लेकिन सूरदास द्वारा

विरचित 'भ्रमरगीत' में गोपियों का सामना पहले ही उद्धव से ही होता है । कृष्ण का जाना ही क्या कम था कि अब इस तरह का निर्मम ज्ञानात्मक सन्देश ! यहाँ संवाद के पीछे की सब मुद्राएँ,भंगिमाएं लक्ष्य की जा सकती हैं । गोपियों के लिए कृष्ण के संदेशवाहक उद्धव ही नहीं आये हैं बल्कि उद्धव की शक्ल में कोई बड़ा व्यापारी आया है-ब्रज को मंडी समझकर | ज्ञानयोग उसके लिए माल है और उसे वह वृन्दावन में खपाना चाहते हैं जबकि इस लोभ और लाभ की दुनिया को गोपियों ने पहले ही अस्वीकार कर दिया है । जागरूक कवि अपने कवि कर्म के दौरान सतर्कता के साथ सामाजिक राजनीतिक सन्दर्भों को परिभाषित करता चलता है और सीधे-सीधे राजनीतिक विषय पर कविता न लिखते हुए जीवन की व्याख्या के बीच से राजनीतिक सत्य को पकड़ने की कोशिश करता है ।'भ्रमरगीत' में सूरदास की राजनीतिक चेतना जीवन के अनेकानेक दृश्यों के विश्लेषण में उभरती है । वह राजनीतिक व्यवस्था के आचरण को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करते हैं ।उदाहरण के लिए 'वह मथुरा काजर की कोठरि' में राजनीति की स्वार्थी और कपटी दृष्टि का परिचय मिलता है जबकि 'मधुबनिया लोगन को पतिआय' में राजनीतिक व्यक्ति के प्रति आम व्यक्ति के अविश्वास को प्रकट किया गया है । गोपियों को दुःख है कि उनके अत्यन्त प्रिय कृष्ण भी 'राजनीति पढ़ि आए' हैं, और राजनीति पढ़ा व्यक्ति लोकनीति को दरकिनार कर देता है; इसी कारण गोपियाँ राजधर्म और लोक धर्म की पारस्परिकता पर बल देती हैं- 'राजधर्म सब भए सूर जहँ प्रजा न जायँ सताए' ।

युग-जीवन की अनुपस्थिति : कृष्ण भक्त कवि कृष्ण के शृंगार एवं वात्सल्य से पूर्ण लीलाधारी पक्षों का चित्रण करने में मग्न रहे। उनकी कविताएँ सुहावनी तो है किंतु सामाजिक जीवन के प्रति गंभीरता का उनमें सर्वथा अभाव है। इसीकारण उनकी रचनाओं में सामाजिकता और लोकमंगल की भावना का अवकाश पाया जाता है। कुंभनदस के अनुसार-

"भक्तन को कहा सीकरी सों काम
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरी गयो हरिनाम।"

नारी मुक्ति की कविता:सूर का स्वर इस मायने में समूचे भक्ति आंदोलन में बिलकुल अलग तरह का है कि उसमें स्त्री के लिए न तो मर्यादा की पितृसत्तात्मक हदबंदियाँ हैं और न ही प्राण त्याग देने वाली परम्पराओं का समर्थन। मध्यकाल के जड़ परिवेश में जब महिलाएँ घर से निकल भी नहीं सकती थी ऐसे में कृष्ण और राधा के मिलन सहज दृश्य सूर अपने साहित्य में रचते हैं –

"बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति का की है बेटी देखी नहीं कहूं ब्रज खोरी॥
काहे कों हम ब्रज तन आवतिं खेलति रहहिं आपनी पौरी।
सुनत रहति स्त्रव ननिनंद ढोटा करत फिरत माखन दधि चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लै हैं खेल न चलौ संग मिलि जोरी।"

इतना ही नहीं मिलन ऐसे दृश्यों में विवाहित गोपियाँ कृष्ण से जो कि पर पुरुष है, प्रेम करती है। वे कृष्ण के साथ रास रचाती हैं,प्रेम में मस्ती है । सामाजिक नियंत्रणों की बेबसी नहीं यह पहली भक्ति परंपरा है जहाँ मीरा बाई नामक महान भक्त कवयित्री है जिनके पदों में नारी

मुक्ति के स्वर सुनाई देते हैं जिसके प्रेम में मस्ती है सामाजिक नियंत्रणों की बेबसी नहीं। उदाहरण-

"पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे
मैं तो अपने नारायण की आपही हो गई दासी रे"

जातीय सामासिकता की भाव सर्जना : कृष्ण काव्य संस्कृति की भावात्मकता और सर्जनात्मकता को एक साथ वहन करने वाला काव्य है जो सौन्दर्य और राग पर आधारित होने के कारण मनुष्य और समाज में भेद करने वाली स्थितियों का अतिक्रमण करता है। यह काव्य प्रेमभक्ति, सौंदर्य जैसे शाश्वत तत्त्वों पर लिखा गया है। अत: कृष्णकाव्य में स्वभावत: जातीय सामासिकता ढल पड़ी है और कृष्ण के माध्यम से भाव सर्जना हुई है। इसलिए कृष्ण काव्य में निहित इसका प्रभाव क्षेत्रीय न होकर अखिल भारतीय रहा है। यही कारण है कि कृष्णकाव्य इस देश की सांस्कृतिक रागधर्मिता का प्रतीत भी है और यथार्थ भी।

आत्माभिव्यक्ति: कृष्णकाव्य का आधार यद्यपि 'श्रीमद् भागवत' पुराण रहा है लेकिन कवियों ने इस कथा का काव्यात्मक रूपांतरण भर नहीं किया बल्कि इनमें अपनी अनुभूतियों की प्रगाढ़ता को भी व्यंजित किया है। कृष्णकाव्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा भागवत की कथा से मुक्त है और उसमें रचनाकार ने अपने प्रेम की पीड़ा को व्यंजित किया है।

"अब हौ नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।।
सूरदास की सब अविद्या दूरि करहूँ नंदलाल।"

पुष्टिमार्गीय भक्ति की प्रधानता : कृष्ण काव्यधारा में भक्ति के अनेक संप्रदाय हैं। वस्तुत: कृष्ण काव्यधारा का संबंध पुष्टिमार्ग पर आधारित है। जो भागे चलकर कविता के चिंतन का आधार बनता है। वल्लभाचार्य ने अपने शुद्धाद्वैत दर्शन के आधार पर 'पुष्टिमार्ग' का प्रतिपादन किया था। जो भक्तसाधन निरपेक्ष हो, भगवान के अनुग्रह से स्वत: उत्पन्न हो और जिसमें भगवान दयालु होकर स्वत: जीव पर दया करें, वह 'पुष्टिभक्ति' कहलाती है। पुष्टिमार्गी भक्ति शाखा में अष्टछाप के कवियों में कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, नंददास और चतुर्भुजदास शामिल हैं ।

कभी-कभी भक्ति मार्ग का नाम लेकर इस काव्य में नायक-नायिका भेद की सृष्टि भी हुई है। कृष्ण और राधा के रूप में सौंदर्य को लेकर नख-भिख परंपरा भी चली है और कृष्ण के रास को आधार बनाकर ऋतु वर्णन में मनमाने श्रृंगार की सृष्टि भी हुई है। उदाहरण –

"प्रेम प्रेम ते होइ प्रेम ते पारहि पइये।
प्रेम बंध्यो संसार प्रेम परमात्य लाइये।।"

काव्य-संगठन:काव्य-संगठन के स्तर पर कृष्णभक्ति काव्य में रचनाशीलता की उदासीनता दिखाई पड़ती है। फिर भी इस काव्यधारा के कवियों ने ब्रजभाषा को जो साहित्यिकता प्रदान की है वह अद्वितीय है। उन्होंने ब्रजभाषा को अमरता प्रदान कर वह अभिव्यंजनता शक्ति प्रदान

की है जिससे पदों में नवीनता, कलात्मकता एवं माधुर्य तैयार होता है। कल्पनाशीलता के स्तर पर मानवीय अनुभव को प्राथमिकता दी गई है। यथा-

"जैसे उड़ी जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै।।"

काव्य का भावना पर आधारित होने के कारण कृष्णभक्त कवियों ने प्रबंध के स्थान पर मुक्तक को प्रधानता दी है। इन कवियों के मुक्तक काव्य ने हिंदी गीतिकाव्य परंपरा को नवीन दिशा और सृष्टि दी है।कृष्णभक्त कवियों में जितनी सहृदयता है उतनी वाग्विदग्धता भी जैसे-

"उधो भली करि तुम आए।
विधि कुलाल कीने काँचे घट ते तुम आनि पकाएँ।।"

छंद के स्तर पर कृष्ण भक्त कवियों ने दोहा,कवित,सवैया आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया है। इनके पदों का यह विशिष्ट पहचान हैं कि वे विभिन्न राग-रागनियों से आबद्ध हैं जिनमें राग धनाश्री, सारंग, कल्याण, के दारो, मल्हार, काफी, नटगौरी, गूजरी, रामकली, कान्हरा, बिलावल आदि प्रमुख है।

कृष्ण भक्त कवियों का अलंकार विधान चमत्कारों के लिए न होकर भावों को अभिव्यक्त करने का अनिवार्य माध्यम है। भारतीय काव्यशास्त्र में जिन अलंकारों की चर्चा है वे सभी इन्होंने प्रयोग किए है जिनमें उपमा,रूपक, उत्प्रेक्षा रूपकातिशयोक्ति, वकोक्ति,अन्योक्ति, सांगरूपक, अतिशयोक्ति प्रमुख है। उपमा और उत्प्रेक्षा का विशेष सौंदर्य सूरदास ने प्रदान किया उसकी समानता बहुत कम कवि ही कर पाए हैं। उदाहरण-

सांगरूपक- "महामोह के नुपुर बाजत निंदा शब्द रसाल।
भरम भयो मन भयो पखावज चलत कुसंगी चाल।।"

उत्प्रेक्षा- "मनौ सुक फल बिंब कारन लेन बैठो आई।"

अतिशयोक्ति- "ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पर कोटि मदन छबि राजत।"

कृष्ण भक्त कवियों ने बिंब एवं प्रतीकों का भी सफलतापूर्वक चित्रण किया है। कृष्ण पूर्णावतार ब्रह्म के तो राधा आहलादिनी भक्ति के प्रतीक हैं। गोपियाँ आत्मा का प्रतीक हैं तो मुरली ब्रह्म की नाद शक्ति का।

बिम्ब-

"उधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं
हँससुता की सुंदर कगरी अरू कुंजन की छाहीं।"

कृष्णभक्ति काव्य की यह सर्वोपरि विशेषता है कि उनमें ग्राम्यगीतों सी सहजता का भाव भी दिखाई पड़ता है। जैसे-

"बसो मौरे नैनन में नंदलाल।
मोहनि मूरति सौवरि सूरति नैना बने रसाल।।"

समग्रत: कृष्ण भक्ति काव्यधारा ब्रह्म की रंजन शक्ति को आधार मानकर काव्य रचना में प्रबुद्ध हुई है। मध्यकालीन इतिहास में इस काव्यधारा ने भारतीय समाज के चित्र को संगीत एवं

प्रेम के संदर्भों से जोड़कर जीने की चाह की रक्षा की। गार्हस्थिक प्रसंगो और स्वच्छंद प्रेम की समानांतर व्यवस्था के साथ-साथ ज्ञान की तुलना में लौकिक जीवन के अनुभवों को महत्त्वपूर्ण बनाने की है। अत: हिंदी कविता के हज़ार वर्षों के इतिहास में कृष्ण काव्यधारा सही अर्थों में मानवीय संबंधों की दुनिया को प्रतिष्ठित करती है।

9.4 पाठ सार

सगुण भक्ति कविता हमारी जातीय परम्परा की मूल्यवान धरोहर है। इस धरोहर में एक ओर रामभक्ति का निरभ्र भाव है तो दूसरी ओर कृष्णभक्ति का मुक्त संसार । सगुण मय और भक्तिमयभावधारा के रोम-रोम में राम और कृष्ण का स्पंदन है । इसमें एक ओर लीलाधर कृष्ण की भक्ति रूपी पयस्विनी प्रवाहित है तो दूसरी ओर मर्यादा पुरुषोत्तम राम की अमृतधारा प्रवाहित है । कृष्ण भक्ति काव्य में रची-बसी ब्रजमण्डल की मिट्टी की महक आज भी हमें यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि लोकजीवन से कैसे जुड़ा जा सकता है।

मध्यकालीन अन्तर्विरोधों का अतिक्रमण करती तथा मध्यकालीन सामाजिक,सांस्कृतिक जीवन को जज्ब कर जन-जीवन को आन्दोलित करती यह कविता हमारे लिए मूल्यवान धरोहर है।सगुण कविता हमारी पूरी जातीय स्मृति में नई चमक पैदा करती है । सगुण काव्य द्वारा प्रवर्तित मानव धर्म के भीतर सीमाएँ नहीं है,वरन् खुलापन है,एक ऐसा खुलापन जिसमें न इस्लाम का विरोध है न हिन्दू धर्म की पक्षधरता। इनकी भक्ति अपने को तपाने का,अपनी क्षुद्रताओं को छोड़ने का,अपनी सीमाओं को ढहाने का और अपने अहंकार को क्षत-विक्षत करने का साधन है। सगुण भक्ति साहित्य हिंदी काव्य परम्परा को नया मोड़ देता है। सगुण काव्य भक्ति आन्दोलन का संस्कार-परिष्कार करते हुए उसे नये सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण के सरोकारों से जोड़ता है।

9.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. पूर्वमध्यकाल में सगुण भक्ति साहित्य का विशिष्ट स्थान है। इसे आराध्य के आधार पर रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा में बंटा जाता है।
2. सगुण भक्ति साहित्य में आराध्य के रूप और गुण की आराधना की जाती है।
3. स्वामी रामानंद को हिंदी सगुण भक्ति काव्य का प्रारंभिक कवि माना जाता है।
4. सगुण भक्ति काव्य लोक पक्ष को व्यापक बनाकर जन मन की आकांक्षाओं की पूर्ति करता है।
5. रामभक्ति काव्य में विष्णु के अवतार राम के 'लोक रक्षक' रूप को विशेष महत्त्व दीया गया है।
6. कृष्ण भक्ति काव्य में विष्णु के अवतार कृष्ण के 'लोक रंजक' रूप की विशेष प्रतिष्ठा है।
7. काव्य भाषा की दृष्टि से रामकाव्य मुख्यतः अवधी में और कृष्ण काव्य ब्रज भाषा में रचित है।

9.6 शब्द संपदा

1. **पर ब्रह्म -** सर्वशक्तिमान ,ईश्वर
2. **निराकार -** जिसे किसी आकार या रूप में नहीं बांधा जा सके
3. **नैराश्य्युक्त -** निराशा से युक्त या अन्धकार से युक्त
4. **समन्वय -** परस्पर विरोधी प्रवृतियों में एकता
5. **वात्सल्य -** माता पिता का अपनी संतान के प्रति और बड़ों का अपने से छोटे के प्रति प्रेम
6. **अष्टछाप -** अष्टछाप बल्लभ सम्प्रदाय का साहित्यिक रूप है। बल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने वल्लभ सम्प्रदाय को व्यवस्थित करने के लिए बल्लभाचार्य के चार प्रिय शिष्यों और अपने चार प्रमुख शिष्यों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के कवियों में सूरदास, परमानंददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, नंददास, गोविंदस्वामी और छीतस्वामी गिने जाते हैं । ये सभी कृष्ण भक्ति काव्यधारा से सम्बन्ध रखने वाले हैं ।

9.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. सगुण भक्ति से क्या अभिप्राय है ? सगुण साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. रामभक्ति काव्य की प्रवृतियों पर प्रकाश डालिए।
3. कृष्ण भक्ति काव्य की प्रवृतियों पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की चर्चा उदहारण सहित स्पष्ट कीजिए।
2. कृष्ण की लीलाओं को उदहारण सहित स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. 'रामचरित मानस' किसकी रचना है ? ( )

(अ) तुलसीदास (आ) सूरदास

(इ) मलूकदास (ई) जायसी

2. 'पउमचरिउ' किस भाषा में लिखी गई रचना है ? ( )

(अ) प्राकृत (आ) अपभ्रंश

(इ) ब्राह्मी (ई) खड़ी बोली

3. 'रामभक्ति काव्य परंपरा का प्रारंभ रामानंद से हुआ' किसका कथन है? ( )

(अ) हजारीप्रसाद द्विवेदी (आ) आचार्य रामचंद्र

(इ) ग्रियर्सन (ई) मिश्रबंधु

4. किसका कथन है –

"तुलसी के यहाँ राम में मनुजत्व और ब्रह्मत्व की सहस्थिति सर्वत्र बनी है ।" ( )

(अ) विश्वनाथ त्रिपाठी (आ) रामचंद्र शुक्ल

(इ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (ई) तुलसीदास

5. क्सिकी पंक्ति है – "कीरति, भनिति भूति भलि सोई।" ( )

(अ) सूरदास (आ) कबीरदास

(इ) तुलसीदास (ई) मूलकदास

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) कृष्ण काव्य का प्राचीनतम उल्लेख ___________में पाया जाता है।

2) 'गीत गोविंद' के रचनाकार ___________है।

3) कृष्ण भक्ति कवियों का मानना है कि केवल ___________ही भक्ति को सर्वशुद्ध भाव होता है ।

4) प्रेम सुर साहित्य की ___________ है।

5) सूर निर्गुण और निराकार भक्ति को ___________मानते हैं।

III. सुमेल कीजिए ।

1. अद्वैतवाद (अ) विष्णुस्वामी
2. विशिष्टाद्वैतवाद (आ) निम्बार्काचार्य
3. द्वैतवाद (इ) रामनुजार्य
4. द्वैताद्वैतवाद (ई) मध्वाचार्य
5. शुद्धाद्वैतवाद (उ) शंकराचार्य

9.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : स. डॉ.नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
3. भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य : मैनेजर पांडेय
4. लोकवादी तुलसी : विश्वनाथ त्रिपाठी
5. भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य : शिव कुमार मिश्र
6. सूरदास : रामचंन्द्र शुक्ल
7. तुलसीदास : रामचंन्द्र शुक्ल
8. हिंदी साहित्य :उद्भव और विकास : हजारी प्रसाद द्विवेदी
9. हिंदी साहित्य की भूमिका : हजारी प्रसाद द्विवेदी
10. सुर साहित्य : हजारी प्रसाद द्विवेदी

इकाई 10 : भक्तिकाल के प्रमुख साहित्यकार

रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मूल पाठ : भक्तिकाल के प्रमुख साहित्यकार
    10.3.1 संत कवि
    10.3.2 सूफी कवि
    10.3.3 रामभक्त कवि
    10.3.4 कृष्ण भक्त कवि
10.4 पाठ सार
10.5 पाठ की उपलब्धियाँ
10.6 शब्द संपदा
10.7 परीक्षार्थ प्रश्न
10.8 पठनीय पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

भक्ति काव्य हिंदी साहित्य की सर्वोपरि उपलब्धि है। भक्ति को काव्यमूल्य एवं जीवन मूल्य के रूप में स्थापित करने वाली इस कविता का समय मध्यकाल की चार शताब्दियों तक फैला हुआ है। भारतीय जातीय चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली इस कविता का स्वरूप लोकव्यापी रहा है और अपने इसी स्वरुप के कारण इसे अखिल भारतीय विस्तार मिला। यही कारण है कि भक्तिकाव्य को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है।

हिंदी साहित्य के पहले वैज्ञानिक इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल की समय सीमा विक्रम संवत् 1375 से 1700 तक मानी। उनका मानना है कि इस कालखंड में उपलब्ध रचनाओं में भक्तिभाव की प्रधानता है, अतः इसे भक्तिकाल कहना उचित है। भक्तिभाव की प्रधानता के सम्बन्ध में वे लिखते है- "कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को संभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह ऐसा विस्तृत और प्रबल होता गया कि उसकी लपेट में केवल हिन्दू जनता ही नहीं, देश में बसनेवाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गये। प्रेम स्वरूप ईश्वर को सामने लाकर भक्त कवियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को मनुष्य के सामान्यरूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्य को हटाकर पीछे कर दिया ।"जार्ज ग्रियर्सन भी भक्ति आन्दोलन को 15वी शताब्दी का धार्मिक पुनर्जागरण आन्दोलन मानते हुए लिखते हैं कि "इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।" इस प्रकार इस काल के लिए शुक्ल जी ने जो नाम दिया "भक्तिकाल" इस काल की प्रवृत्ति को सिद्ध करता है। भक्ति काव्य की इस परंपरा से ही हिंदी साहित्य को न केवल कई युगप्रवर्तक, कालजयी रचनाकार मिले बल्कि सामाजिक विषमता के सामाजिक ढाँचे को तोड़कर भक्ति के बहाने साहित्य उस तबके तक पहुँच गया जिसे निम्न वर्गीय जातियां कहा

जाताथा। संत काव्य के प्रतिनिधि कबीर, सूफी या प्रेममार्गी शाखा केप्रतिनिधि कवि जायसी, रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसी और कृष्णकाव्य परम्परा के प्रतिनिधि कवि सूरदास जैसे कवियों ने तो जैसे लोक और शास्त्र के द्वंद्व से आगे बढ़कर न केवल लोक-जीवन की पूरी परंपरा को ही साहित्य की विषय वस्तु बना दिया बल्कि संस्कृति और परिस्थितियों के निर्माण में साहित्य की भूमिका को भी चिंतन के केंद्र में ला दिया। इसलिए इस इकाई के अंतर्गत हम भक्ति काल के कुछ महत्त्वपूर्ण लेकिन जरुरी कवियों के बारे में एक समझ विकसित करने का प्रयास करेंगें।

10.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- भक्तिकाव्य के कवियों एवं उनकी काव्य प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।
- भक्त कवियों के बीच भक्ति के मार्ग और उन्हें पाने के लिए जिस साधना को स्वीकार किया गया, उसके बीच क्या अंतर था ? यह भी समझ सकेंगे।
- भक्तिकालीन कवियों की उपलब्ध रचनाओं के बारे में जान सकेंगे ।

10.3 मूल पाठ : भक्तिकाल के प्रमुख साहित्यकार

10.3.1 संत कवि

कबीर या कबीरदास

निर्गुण संतकाव्य धारा में कबीर का स्थान सर्वोपरि है।कबीर के जीवन को लेकर कई किम्वदंतियाँ साहित्य में मिलती हैं।उनके जन्म, जाति, माता-पिता यहाँ तक की गुरु को लेकर भी भिन्न-भिन्न विचार आलोचकों ने प्रस्तुत किए हैं। हिंदी साहित्य के इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "कबीर का जन्मकाल जेठ सुदी पूर्णिमा,सोमवार विक्रम संवत् 1456 माना जाता है" साहित्यिक कृतियों में यह भी प्रचलित है कि उनका जीवन 120 वर्ष का रहा इन सभी किंवदंतियों से परे यदि हम आचार्य शुक्ल के हिंदी साहित्य को प्रामाणिक मानते हुए देखे तो कबीर का जन्म सं.1456 और मृत्यु संवत् 1575 माना जाता है।

बोध प्रश्न –

- निर्गुण संत काव्य धारा में किसका स्थान सर्वोपरि है ?

कबीर के जन्म और मृत्यु के समान ही उनके माता-पिता के सम्बन्ध में भी कई मत प्रचलित हैं। अधिकांश आलोचक उन्हें विधवा ब्राह्मणी का पुत्र मानते हैं तो कुछ जुलाहा जाति से सम्बंधित बताते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने इतिहास में कबीर को विधवा कन्या के गर्भ से पैदा हुआ मानते हैं जिसे वह लहरतारा के ताल के पास फेंक आयी। नीरू नाम का जुलाहा ने उस बालक का पालन-पोषण किया और यही बालक कबीरदास कहलाया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी नेअपने ग्रन्थ "कबीर" में जुलाहे जाति का हिन्दू या मुसलमान से कैसा और क्यों सम्बन्ध है, क्या वयनजीवी जाति ही जुलाहा है ? ऐसे अनेकानेक प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा की है। वे लिखते हैं, "उत्तर भारत के वयनजीवियों में कोरी मुख्य है। बेन्स जुलाहों को कोरियों की

समशील जाति ही मानते हैं। कुछेक पंडितों ने यह भी अनुमान लगाया है कि मुसलमानी धर्म ग्रहण करने वाली कोरी ही जुलाहे हैं। यह उल्लेख किया जा सकता है कि कबीरदास जहाँ अपने को बार-बार जुलाहा कहते हैं वहाँ कभी-कभी अपने को कोरी भी कह गए हैं ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि कबीरदास के युग में जुलाहों ने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था पर साधारण जनता में तब भी कोरी नाम से परिचित थे।"

बोध प्रश्न –

- साधारण जनता के बीच कबीर किस नाम से परिचित थे ?

कबीर के गुरु कौन है? उन्होंने किस से शिक्षा ली इस विषय पर भी कई मत प्रचलित हैं। कुछ आलोचक परम्परा से रामानंद को ही कबीर के गुरु के रूप में मानते हैं किन्तु कुछ इसपर एक मत नहीं हैं। 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "कबीर पर भक्ति के संस्कार बाल्यावस्था से ही यदि पड़ने लगा तो कोई आश्चर्य नहीं। रामानंद जी के माहात्म्य को सुनकर कबीर के हृदय में शिष्य होने की लालसा जगी होगी। कहा जाता है कि एक दिन वे एक पहर रात रहते ही उस पंचगंगा घाट की सीढियों पर जा पड़े जहाँ से रामानंद जी स्नान करने के लिए उतरा करते थे। स्नान को जाते समय अँधेरे में रामानंद के पैर कबीर के ऊपर पड़ गया। रामानंद जी बोल उठे 'राम-राम कह' कबीर ने इसे ही अपना गुरुमंत्र मान लिया और अपने को गुरु रामानंद जी का शिष्य कहने लगे। कबीरपंथी में मुसलमान भी हैं उनका कहना है कि कबीर ने प्रसिद्ध सूफी मुसलमान फ़क़ीर शेख तकी से दीक्षा ली थी।"

कबीर जिस दौर में हुए उस दौर में उत्तर में हिन्दू और मुसलमान दो जातियां प्रधान थी दोनों के अपने अपने आचार-विचार,रीति-नीति और मान्यताएं थीं। मुसलमान जहाँ विध्वंसक शासक वर्ग के रूप में थे तो हिन्दू शासित इसलिए मुसलमान अपने बल का प्रयोग कर जजिया आदि कर लगा कर अपने बल का प्रयोग करते थे और हिन्दुओं को जबरन धर्म परिवर्तन करने के लिए बाध्य करते थे। दूसरी ओर हिन्दू जाति के धर्माडंबर जहाँ धर्म के ठेकेदार अनेक पाखंडों और कर्मकांडों में जनता को फँसा कर पाप-पुण्य का भय दिखाकर उन्हें जाति का भय से बहिष्कार कर रहेथे। ऐसे में कबीर अपने काव्य के माध्यम से इस सामाजिक विषमता, धार्मिक आडंबर को दूर करने का प्रयास करते हैं। कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म में हो रहे अत्याचार और आडम्बर का विरोध करते हैं हिन्दू समाज में पूजा-पाठ और कर्मकांड जो केवल एक दिखावा मात्र रह गया था ब्राह्मण कर्मकांड का सहारा लेकर यजमानों को ठगते थे वही मुसलमान रोजा,नमाज और अजान में फँसे थे। कबीर साफ़ कहते हैं कि इन दोनों को ही सही मार्ग नहीं मिला -

अरे इन दोउन राह न पाई
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी,मुरगा खाई।

वहीं समाज में फैले आडम्बर का भी खुलकर कबीर विरोध करते हैं-

माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर

कर का मनका डारि कै मन का मनका फेर।

बोध प्रश्न –

- कबीर किसका विरोध करते थे ?

कबीर भक्त पहले थे और कवि बाद में इन जैसे प्रश्नों में उलझे बिना उनकी उपलब्ध रचनाओं से हमें यह भी पता चलता है कि अपनी रचनाओं में वे एक समाज सुधारक की तरह भी प्रस्तुत होते हैं। उनके काव्य का उद्देश्य जनता को उपदेश देना और सही रास्ता दिखाना है। उन्हें समाज में जो भी गलत लगा उसका उन्होंने निर्भीकता से खंडन किया। अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कबीर की सबसे बड़ी विशेषता है।वे जन्म के आधार पर ऊंच-नीच की भावना और भेदभाव का विरोध करते हैं और इसका कारण वे बहुदेवोपासनाको मानते हैं।उन्होंनेमूर्तिपूजा का खंडन कर कण-कण में राम को माना है, वे सामान्य जनता को समझाते हैं कि मूर्ति पूजा से भगवान नहीं मिलते इससे तो अच्छा है कि घर की चक्की को पूजा जाये :

'पाहन पूजै हरि मिलैतो मैं पूजूं पहार
ताते या चाकी भली पीस खाय संसार'

बोध प्रश्न –

- कबीर की विशेषता क्या है ?
- बहु देवोपासना का क्या अर्थ है ?

कबीर के परमतत्त्व जिन्हें वे "राम" नाम से स्मरण कहते हैं, वे निर्गुण ब्रह्म हैं जो तुलसी के राम के समान लीला नहीं करते। वे कहते हैं-

'दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना
राम नाम का मरम है आना'

अर्थात् कबीर के राम निर्गुण निराकार हैं जिसे कोई देख नहीं सकता। वह न शून्य है न स्थूल उसका कोई रूप नहीं, वह न दृश्य है न अदृश्य, उसे न गुप्त कहा जा सकता है न उसे प्रकट ही कह सकते हैं-

अलख निरंजन लखैन कोई, निरभै निराकार है सोई
सुनि अस्थूल रूप रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं

इस अरूप निराकार तत्त्व को कबीर इस नश्वर दुनिया में एकमात्र अविनाशी मानते हैं, किन्तु इस असीम सूक्ष्म को समझ सकना सभी के बस की बात नहीं। क्योंकि उसका न रूप है न आकार। ऐसे परमब्रह्म के दर्शन हेतु गुरु के महत्त्व को कबीर प्रमुख मानते हैं।गुरु ही हमें इस परमब्रह्म का ज्ञान करा सकता है। वे मानते है इस सम्पूर्ण दृश्यमान जगत के पीछे भी वही अदृश्य रूप विद्यमान किन्तु इसको चलाने वाले अगोचर ब्रह्म को कोई नहीं देख सकता।

लीला करि- करि भेष फिरावा, ओट बहुत कुछ करत न आवा
औ खेलसब ही घट माँही, दूसर के लखै कछु नाहीं।

अतः कबीर की भक्ति निर्गुण भक्ति है वह जिस परमात्मा की परिकल्पना करते है वह अनंत अविनाशी है, रूप रंग देह रहित है।उनके राम अद्वैत रूप में सर्वव्यापी हैं।

बोध प्रश्न –

- कबीर किस परम तत्व को मानते थे ?
- ब्रह्म के दर्शन हेतु कबीर ने किसके महत्त्व को स्वीकारा है ?
- कबीर के राम किस रूप में सर्वव्यापी हैं ?

"मसि कागद छुओ नहिं कलम गह्यो नहिं हाथ"को मानने वाले कबीर ने न तो विधिवत विद्या को ग्रहण किया न ही काव्यशास्त्र की कोई जानकारी उनके पास थी और न ही वे इसके समर्थक थे। उन्होंने तो भाव-विभोर होकर जो कुछ कहा वही काव्य बन गया, किन्तु काव्य निर्माण के लिए जिस प्रतिभा की आवश्यकता होती है वह कबीर में प्रभूत मात्रा में विद्यमान थी।भाषा पर उनका जबरदस्त अधिकार था। यही कारण है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उन्हें "वाणी के डिक्टेटर" मानते हैं और कहते है जिस बात को उन्होंने जिस रूप में चाहा उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया।कबीर संत थे उन्होंने जो भी कहा आत्मानुभव से कहा। जीवन के विविध रूपों को उन्होंने देखा, भोगा और परखा था, तभी वे कहते हैं-

"तू कहता है कागद लेखि, मैं कहता हूँ आँखिन देखी
मैं कहता सुरझावन हारि, तू राख्यौ उरझाई रे"

बोध प्रश्न –

- हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को क्या कहा ?

कबीर के इन्हीं उक्तियों को उनके शिष्य धर्मदास ने "बीजक" नाम से संकलित किया जिसके तीन भाग है- 'साखी', 'सबद', 'रमैनी'।'साखी' दोहा छंद में है, 'साखी'शब्द "साक्ष्य" से बना है , जिसने किसी घटना अथवा दृश्य को अपनी आँखों से देखा है उसे 'साक्षी' कहते हैं-

"साखी आंखी ज्ञान की समुझि चेत में मांही
बिनु साखी संसार का झगरा निपटत नाहिं"

कबीर की साखियाँ ज्ञान की आँखें हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि जिस काव्य में स्वानुभूत ज्ञान का वर्णन है उसे साखी कहते हैं।"सबद" गेय पद को सबद कहा जाता है। कबीर के जिन पदों में परमात्मा को प्राप्त करने के उपाय है उन्हें सबद कहा गया है। इसी प्रकार "रमैनी" का अर्थ है रमण करने वाली। रमैनी 16 मात्राओं वाला चौपाई छन्द है। रमैनी में सृष्टि और जगत के ऊपर कबीर के विचार दृष्टव्य हैं। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म को अपना आराध्य स्वीकारा है और उसके समक्ष एक सच्चे भक्त की तरह दीनता प्रकट की है।गुरु की महिमा, आचरण, आत्मनिग्रह, माया से मुक्ति आदि विषय उसके काव्य की विशेषता है।

कबीर का काव्य प्रयत्न साध्य नहीं है, तथापि उसमें रसगत रमणीयता एवं भाव सौंदर्य का अनायास विधान हुआ है।अतः कह सकते हैं एक भक्त एक समाजसुधारक के रूप में प्रसिद्ध कबीर की कविता में काव्यत्व के सभी रूप प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है।कबीर के इन्हीं गुणों और विशेषताओं का परिणाम है कि कबीर आज के युग सन्दर्भ में भी वे उतने ही प्रासंगिक है जितने मध्यकाल में थे।

बोध प्रश्न –

- कबीर की उक्तियाँ किस नाम से संकलित हैं ?
- सबद क्या है ?
- कबीर ने किसे अपना आराध्य माना ?

रैदास या रविदास

निर्गुण भक्तिधारा में कबीर के बाद रविदास का नाम प्रमुख है। भारत के कई स्थानों में रविदास ही रैदास नाम से प्रसिद्ध हुए। कबीर की ही भाँति इनके जन्म पर भी कई आलोचकों के मत भिन्न-भिन्न हैं।'भक्तमाल'के अनुसार रैदास का जन्म 1299ई. में काशी में हुआ। रैदास निम्न जाति में उत्पन्न हुए थे इसके प्रमाण उनके कई पदों में मिलते हैं, जैसे "कह रैदास खलास चमारा"यह भी प्रसिद्ध है की रैदास मीरांबाई के गुरु थे।

कबीर की भाँति रैदास भी संत कवि थे और कबीर की ही तरह उन्होंने भी रामानंद से दीक्षा ली थी। उनके पद से यह बात प्रमाणिक प्रतीत होती है

रामानंद मोहि गुरु मिल्यों, पाया ब्रह्म विलास
रामनाम अभी रस पियौ, रविदास हि भयौ खलास

रैदास मूलतः संत थे। अतः कबीर की ही भाँति उन्होंने भी निर्गुण भक्ति को ही अपना आधार बनाया तथा समाज में फैले धर्म के ठेकेदारों को फटकारा भी वे कहते हैं कि परमब्रह्म को किसी मूर्ति में नहीं खोजा जा सकता वह तो निराकार है-

बाहर खोजत का फिरह, घट भीतर ही खोज
रविदास उनमनि साधिकर, देखहूँ पिया कूं ओज ।

बोध प्रश्न –

- रैदास ने किस भक्ति को आधार बनाया ?

ब्रह्म की सत्ता और स्वरुप की अभिव्यक्ति में वे सपनी असमर्थता स्वीकार करते हैंतो उसे एक सुनिश्चित रूप देने के लिए उन्होंने ईश्वर के समस्त रूपों में ऐक्य और अभिन्नता के दर्शन भी किए हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाह्य विधानों का विरोध करउन्होंने निर्गुण साधना पर बल दिया। अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने सरल व्यावहारिक ब्रजभाषा को अपनाया जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ीबोलो और उर्दू फारसी के शब्दों का मिश्रण है-

अब कैसे छूटै राम, नाम रटलगी
प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी ,जाकी अंग अंग बस समानी
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवन चंद चकोरा
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती,जानी जोति बरै दिन राती
प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा

इस तरह उन्होंने अपने आप को परम ब्रह्म को पूरी तरह समर्पित कर दिया था। कथित निम्न जाति में जन्म लेकर भी उनकी उत्कृष्ट साधना पद्धति ने उन्हें अपने युग का भक्त कवि बना दिया।रैदास ने अन्य निर्गुण संतों की तरह वेद का भी विरोध किया उनके लिए राम और रहीम

दोनों एक ही हैं। कबीर की तरह उन्होंने भी पूजा, कर्मकांड का विरोध तो किया किन्तु कटु स्वर में नहीं बल्कि उनके पद अत्यंत प्रबोधात्मक प्रतीत होते हैं।

बोध प्रश्न –

- रैदास ने किन चीजों का विरोध किया ?

गुरु नानक

नानक पंथ के प्रवर्तकगुरुनानक देवसमन्वयशील,उदार प्रवृत्ति के एवं इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हैं।उनमें अद्भुत संगठन शक्ति, क्षमाशीलता और दूरदर्शिता विद्यमान थी। उनका जन्मसंवत् 1526 कार्तिकी पूर्णिमा के दिन तिलवंडी ग्राम जिला लाहौर में हुआ। कबीर के समान ही उन्होंने शिक्षा ग्रहण नहीं की किन्तु आरंभ से ही आत्मचिंतन द्वाराईश्वर भक्ति और संत सेवा की ओर उन्मुख रहे। फलस्वरूप समाज और धर्म के सम्बन्ध में उनकी विचारधारा अनुभूति तथा समन्वय पर आधारित थी। धार्मिक रूढ़िवाद और जाति के संकीर्ण बन्धनों तथा अनाचारों के प्रति सदैव उन्होंने आवाज़ उठाई।उनके द्वारा संस्थापित सिख संप्रदाय ने उन्हीं के जीवन काल में व्यापक संगठन का रूप धारण कर लिया था।भले नानक पंथ या सिख पंथ की स्थापना राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हुई किन्तु इसका स्वरुप धार्मिक था।सिख सम्प्रदाय का आधार ग्रन्थ "गुरु ग्रन्थ साहिब" है। इस मुख्य ग्रन्थ में सिख संप्रदाय के 10 गुरुओं की वाणी संकलित है : गुरुनानक देव, गुरु आनन्द देव, गुरुरामदास, गुरु अर्जुन देव, गुरु तेगबहादुर, एंव दसवें गुरु गुरु गोबिंद सिंह इनके अतिरिक्त भक्ति काव्य के निर्गुण शाखा के अन्य भक्त कवि : कबीर, रविदास, नामदेव, ज्ञानेश्वर, रामानंद आदि प्रमुख संतों की वाणी भी संकलित है।

निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति का भाव उनके काव्य का मुख्य आधार है। नानक की सबसे बड़ी विशेषता थी कि उन्होंने कई स्थानों का भ्रमण किया जिससे उनके पंथ के विस्तार में सहायता मिली। भक्ति के भाव से पूर्ण होकर वे भजन गाया करते थे, सत्य के प्रति आस्था के फलस्वरूप उनकी वाणी में स्पष्टता और उद्बोधन प्रखरता मिलती है। उनके ग्रंथों की चर्चा करें तो 'रहिरास', 'सोहिला', 'जपुजी', 'असा दि वार', 'नसीहतनामा' नामक ग्रन्थ मिलते हैं।'महला' नाम से 'गुरुग्रंथ साहिब' में उनके पदों का संकलन है। "जपुजी" में नानक दर्शन का सारतत्व है। उनके काव्य में भाषा के तीन रूप मिलते हैं। अधिकाशतः हिंदी फारसी बहुल पंजाबी, इसके अतिरिक्त ब्रज शब्दावली का प्रयोग भी उनकी काव्य में दिखाई पड़ता है। कबीर की भाँति उनकी भाषा जनमानस की भाषा थी जिसमें काव्यशास्त्र से अधिक सहजता का भाव था, शांत रस की निर्बाध धारा उनके काव्य में प्रभावित हुई है।

बोध प्रश्न –

- नानक पंथ के प्रवर्तक कौन थे ?
- सिख संप्रदाय का आधार ग्रंथ क्या है ?

दादू दयाल

दादू पन्थके प्रवर्तक संत दादूदयाल धर्म सुधारक, समाज-सुधारक, निर्गुण भक्त कवि हैं। निर्गुण भक्त कवियों में दादू ऐसे कवि हुए जो जीवन पर्यन्त सामाजिक जागरण के लिए समर्पित

रहे। इस कारण उनके शिष्य भी अधिक रहे जिन्होंने उनके साथ रहकर और उनके बाद दादूपंथ का प्रचार पूरे उत्तर भारत में किया। आज भी उत्तर भारत में यह पंथ लोकप्रिय बना हुआ है।

अन्य निर्गुण संतों की ही भाँति दादू के जीवन के बारे में साहित्यकार एक मत नहीं है आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने साहित्य में उन्हें कबीर का अनुयायी मानते हैं और उनके जन्म के संबंध में लिखते हैं कि "दादूपंथी लोग इनका जन्म संवत् 1601 में गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान में मानते हैं। इनकी जाति के सम्बन्ध में भी मतभेद है।कुछ लोग गुजराती ब्राह्मण मानते हैं और कुछ लोग इन्हें मोची या धुनिया मानते हैं।"दादू के गुरु कौन थे इसपर भी मतभेद है, पर कबीर की बानियों का इनपर बहुत प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्हीं की तरह दादू ने भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना की और दादू पंथ चलाया।

दादू कबीर की भाँति ही संत परम्परा के कवि रहे किन्तु उन्होंने कभी कबीर की तरह समाज के धर्मगुरुओं को फटकारा नहीं बल्कि वे मानते हैं कि संत वह व्यक्ति है जिसे गुरु मिला है और गुरु ही वह व्यक्ति है जो परम ब्रह्म का ज्ञान करवाता है।दादू की कविता सहज है जिसमें किसी को फटकार नहीं बल्कि विवादहीन सहजता है। उनकी इसी शैली की वजह से यह पंथ बहुत प्रिय हुआ। उनके कई शिष्य हुए जिन्होंने उनके पदों का संकलन किया।उनके शिष्यों में सबसे प्रमुख रज्जब और सुन्दरदास हुए।उनके शिष्य संतदास और जगन्नाथदास ने "हरडे वाणी " शीर्षक से उनके पदों का संकलन किया। आगे चलकर परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित "दादूदयाल" में इनके पदों का संकलन है। इसके अतिरिक्त उनके शिष्य रज्जब ने "अंगवधु " नामक ग्रन्थ में इनकी वाणी को संकलित किया। उनकी भाषा ब्रज है जिसमें राजस्थानी बोली के शब्दों की बहुलता मिलती है।

बोध प्रश्न –

- 'हरडे वाणी' क्या है ?

10.3.2 सूफी कवि

मुल्ला दाऊद

अनेक विवादों और मतभेदों के उपरांत मुल्ला दाऊद को हिंदी का पहला सूफी कवि माना जा सकता है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ "चंदायन" है जिसका रचना काल 1379 माना जाता है।इसकी भाषा अवधी है।इसके पाठ पर आलोचकों के कई मत है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इस ग्रन्थ का मूल नाम "लोर कहा " या "लोर कथा" माना है किन्तु वे इसकी प्रसिद्धि "चंदायन" के रूप में ही मानते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें भारतीय प्रेमाख्यानों की विभिन्न प्रवृत्तियों की व्यंजना हुई है नायक लोर और नायिका चंदा का प्रणय प्रथम दर्शन में ही प्रेम के चरम बिंदु पर पहुँचता है, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उनके प्रेम में बाधा डालना, नायक का जोगी होकर घर से निकलना, नायिका का नाग द्वारा डसा जाना आदि। कथानक का हर बिंदु एक भारतीय प्रेम कथा जैसा प्रतीत होता है भाषा अवधी और शैली भावानुकूल प्रतीत होती है।

बोध प्रश्न –

- 'चंदायन' के रचनाकार कौन हैं ?

कुतुबन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कुतुबन का समय संवत् सोलहवीं शताब्दी के मध्य माना है।कुतुबन कृत 'मृगावती' को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी का पहला सूफी काव्य माना है।'मृगावती' में नायक राजकुमार और नायिका मृगावती का वर्णन है। प्रथम दर्शन में ही प्रेम का निरूपण अत्यंत भावनात्मक शैली में हुआ है। मृगावती की प्राप्ति के लिए नायक योगी वेश में घर से निकल जाता है और मार्ग में अनेक व्यधानों से जूझकर अंत में मृगावती को पाने में सफल हो जाता है। कथा की परिणति अपभ्रंश के जैन काव्य की परम्परा के अनुसार होती है नायक की मृत्यु के उपरांत सती होने की परम्परा को इसमें दर्शाया गया है। इस काव्य की भाषा अवधी है तथा दोहा, चौपाई छन्द का प्रयोग काव्य को सरस और सरल बनाता है।

बोध प्रश्न –

- शुक्ल जी के अनुसार हिंदी का पहला सूफी काव्य का नाम क्या है ?

मंझन

मंझन कृत 'मधुमालती' का रचनाकाल आचार्य शुक्ल के अनुसार संवत् 1550और 1595 के बीच माना गया है। इस ग्रन्थ में नायक-नायिका के प्रथम दर्शनजन्य प्रेम के साथ-साथ पूर्व जन्म के प्रणय संस्कारों की भी महत्ता दिखाई गई है। नायक के प्रेम की गंभीरता से इस बात का परिचय मिलता है कि एक ओर मधुमालती की प्राप्ति के लिए वह भाँति-भाँति के कष्टों को सहन करता है वहीं दूसरी ओर महासुंदरी प्रेमा के प्रणय को ठुकरा देती है। हालाँकि भारतीय प्रेम ग्रंथों में बहुपत्नीप्रथा को दर्शाया गया है किन्तु प्रेमाख्यान काव्य इसका अपवाद है। प्रेमाख्यान काव्य में नायक कष्टों को झेलता है। नायिका के मिलन को तड़पता है। स्पष्ट है कि प्रेमाख्यान काव्य में कवि का लक्ष्य प्रेम के उच्च एवं उद्दात्त स्वरुप की व्यंजना करना रहा है जिसमें वह सफल भी हुआ है। इस ग्रन्थ की भाषा अवधी है तथा दोहा चौपाई का प्रयोग कर कवि ने इसे हृदयगामी बनाया है।

बोध प्रश्न –

- 'मधुमालती' के रचनाकार का नाम बताइए।
- 'प्रेमाख्यानक काव्य में कवि का क्या लक्ष्य है ?

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी भक्तिकाल के सूफ़ी काव्यधारा (प्रेम मार्गी) के कवि हैं। हिंदी प्रेमाख्यानक के सर्वश्रेष्ठ कवि जायसी का जन्म सन 1492 तथा मृत्यु सन 1542 में मानी जाती है। उनके द्वारा रचित ग्रंथों को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद देखने को मिलते हैं, परंतु 'पद्मावत', 'अखरावट' तथा 'आखिरी कलाम' की रचना को लेकर विद्वानों में मत साम्य है। इतिहास ग्रंथों में जायसी के नाम से निम्नलिखित काव्य-ग्रंथों की सूची उपलब्ध होती है :- 1. पद्मावत 2. अखरावट 3. आखिरी कलाम 4. सखरावत 5. चंपावत 6. इतरावत 7. मटकावत 8. चित्रावत 9. नैनावत 10. पोस्ती नामा 11. खुर्बानामा 12. मोराईनामा 13. मुकहरानामा

14. मुहरानामा 15. कहारनामा 16. मेखरावटनामा 17. धनावते 18. सोरठ 19. परमार्थ जपजी 20. स्फुट छंद।

बोध प्रश्न –

- जायसी की कुछ रचनाओं के नाम बताइए.

'पद्मावत' के रचना वर्ष को लेकर विद्वानों में मतभेद देखने को मिलते हैं।सर्वमान्य मतों के अनुसार इस ग्रंथ का रचनाकाल 927 हिजरी यानी 1520 ई. है।यह अवधी में रचित एक प्रबंध काव्य है जिसमे 57 खंड हैं।प्रेम पर आधारित होने के कारण इस काव्य-ग्रन्थ का प्रधान रस शृंगार है, शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग दोनों का मार्मिक चित्रण हुआ है।इस ग्रंथ में नागमती का विरह वर्णन अद्‌भुत है।रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा कि 'नागमती का विरह-वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है।' मसनवी शैली का प्रभाव होने पर भी यहाँ जायसी की मौलिकता सुरक्षित है।पद्मावत की कथा राजा रतनसेन, पद्मावती तथा नागमती के प्रेम की कहानी कहती है।पद्मावत की कथा के दो भाग हैं, प्रथम भाग कल्पित है तथा द्वितीय भाग ऐतिहासिक।प्रथम भाग में रत्नसेन के सिंहल जाने पर पद्मावती का वरण करने के पश्चात् चित्तौड़ आगमन की कहानी का वर्णन है तथा द्वितीय भाग में राघव चेतन, उसके षड्यंत्रों का, अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण तथा पद्मावती के सती होने की कथा है।'पद्मावत' के संदर्भ में सदानंद शाही लिखते हैं कि "पद्मावत में जायसी भी एक बड़े स्वप्न, एक बड़े प्रति संसार की रचना करते हैं, जहाँ स्वप्न और यथार्थ, कल्पना और इतिहास, एक दूसरे से जूझते हुए दिखाई पड़ते हैं।जायसी द्वारा सृजित स्वप्न लोक में आदि से अंत तक सौन्दर्य और प्रेम की रसधारा प्रवाहित हो रही है जबकि यथार्थ लोक में शक्ति और सत्ता का वर्चस्व।पद्मावत के बड़े कैनवास पर जायसी ने मनुष्य की इन दो विरोधी वृत्तियों का द्वंद्व दिखाया है।इस द्वंद्व का अवसान एक बड़े अवसाद की सृष्टि करता है।राजसत्ता का मद, विजय का दर्प, कूटनीति की कुटिलता, वैभव, शौर्य और पराक्रम सब सारहीन हैं, इनसे राज्य तो जीते जा सकते हैं, किन्तु प्रेम नहीं।"

बोध प्रश्न –

- 'पद्मावत' का प्रधान रस क्या है ?

'पद्मावत' की अंतिम पंक्तियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, कारण कि यह संसार की नश्वरता को वाणी देती।जीवन की आपा-धापी, झूठ, कुटिलता सबकुछ व्यर्थ है और सच यह है कि-

'छार उठाई लीन्हि एक मुँठी, दिन्हि उड़ार पिरिथमी झूठी'

'पद्मावत' के अतिरिक्त अखरावट भी जायसी का एक महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ है।इस काव्य ग्रंथ में 54 दोहे, 54 सोरठे, और 371 चौपाईयाँ हैं।यह एक सिद्धांत काव्य है जिसमें देवनागरी

वर्णमाला से संबंधित चौपाईयाँ औरसूफ़ी दर्शन की प्रस्तुति मिलती है।‘आखिरी कलाम’ की रचना 936हिज़री में हुई थी।यह एक मसनवी काव्य है तथा इसमें 60दोहे और 420चौपाईयाँ हैं।‘आखिरी कलाम’ में सृष्टि के अंतिम दिन यानी क़यामत के दिन का वर्णन है।हज़रत मोहम्मद के महत्त्व का वर्णन भी यहाँ देखने को मिलता है।

कुल मिलकर देखें तो जायसी प्रेम के कवि हैं, वे स्वयं इस तथ्य को स्वीकार भी करते हैं:-

“मुहमद कवि जो प्रेम का ना तन रकत न मांसु।

जेई मुख देखा तेई हँसा सुना तो आये आंसु।।”

जायसी ने यह स्वीकार किया है कि प्रेम करना सामान्य बात नहीं होती, इसकी डगर बहुत कठिन होती है।प्रेम आग का दरिया है और उसमें डूब कर पार करना होता है।जायसी ने लिखा कि ‘प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा।सो पै चढ़े सीस सौ चढ़ा।।’ अर्थात् परमात्मा ने प्रेम के पर्वत को अति दुर्गम बनाया है, और इसको सुगम वही बना सकता है जो प्रेम में कुछ भी कर गुजरने की हिम्मत रखता हो।

बोध प्रश्न –

- ‘पद्मावत’ में जायसी ने किन विरोधी तत्वों का द्वंद दिखाया है ?
- प्रेम क्या है ?

10.3.3 रामभक्ति कवि

तुलसीदास

रामभक्ति काव्यधारा यदि हमारी साहित्यिक रचनाशीलता और मूल्य-चेतना का अप्रतिम दस्तावेज है तो इस दस्तावेज के सबसे सशक्त हस्ताक्षर तुलसीदास है। वे न केवल सगुण रामभक्ति काव्यधारा बल्कि भारतीय परंपरा और संस्कृति के सर्वाधिक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय कवियों में अग्रगण्य हैं। इतिहास इस बात का गवाह है कि उनका आविर्भाव ऐसे समय में हुआ था जब धर्म,समाज,राजनीति इत्यादि सभी क्षेत्रों में पारस्परिक वैमनस्य एवं विषमता व्याप्त थी। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी (लोकवादी तुलसी, पृष्ठ भूमिका) लिखते हैं- “तुलसी के राम जिस लोक में प्रतिष्ठित किए गए हैं वह 16वीं-17वीं शती का भारत है,जो नाना प्रकार की विषमताओं से त्रस्त है। इस विषमता-त्रस्त समाज का चित्रण तुलसी ने कलियुग के माध्यम से किया है। इसमें दैहिक, बदैविक, भौतिक ताप है गरीबी, अकाल, महामारी, नारी-पराधीनता, कपटी, कुटिल-भूप, कराल दंड नीति...आदि सब है। इस देश के लोग, वन-उपवन,नदी तालाब, सुन्दरता-कुरुपतामय जीवन और जगत मौजूद है।” बात बिलकुल साफ़ है कि वाल्मीकि के बाद वे ऐसे अकेले कवि हैं जिन्होनें अपने युग के समस्त अंतर्विरोधों को समेटते हुए रामकथा को नई अर्थवत्ता प्रदान की और अपने नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम को ‘अपने युग की विषमता से निर्मित नायक’ के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में लोकमंगल और समन्वय के विश्व-बोध से समन्वित विख्यात ‘रामचरितमानस’ लोकप्रिय तो ‘विनयपत्रिका’ भक्तप्रिय और ‘कवितावली’ कवि-प्रिय है। उनकी लोकप्रियता और काव्य-कला की विशिष्टता का अनुमान इस

बात से भी लगाया जा सकता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल उन्हें सूरदास के साथ अमर जोड़ा बताते हुए लिखते हैं- "यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिंदी का सबसे बड़ा कवि कौन है, तो उसका एकमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारतहृदय, भारतीकंठ, भक्तचूडामणि गोस्वामी तुलसीदास।"

बोध प्रश्न –

- तुलसीदास किस शाखा के कवि हैं ?
- तुलसीदास का आराध्य कौन हैं ?
- तुलसीदास पर किस संप्रदाय का प्रभाव है ?

तुलसीदास के जन्म तथा जन्मस्थान के संदर्भ में विद्वानों में मतांतर है, परन्तु सर्वमान्य मत के अनुसार तुलसीदास का जन्म राजापुर में संवत् 1589 (1532 ई.) को हुआ था तथा इनकी मृत्यु संवत् 1680 (1623 ई.) में हुई थी।विद्वानों के अनुसार इनके पिता आत्माराम दुबे, माता हुलसी, पत्नी रत्नावली तथा गुरु का नाम नरहर्यानन्द (नरहरिदास) था।हिंदी के जातीय कवि कहे जानेवाले तुलसीदास पर विशिष्टाद्वैत तथा श्री संप्रदाय (रामानुजाचार्य) का प्रभाव परिलक्षित होता है।तुलसीदास ने अपने संपूर्ण जीवनकाल में विपुल साहित्य रचा है।उनके द्वारा रचित साहित्य में 1)महाकाव्य-रामचरितमानस 2)खंडकाव्य- जानकी मंगल, पार्वती मंगल 3)एकार्थ काव्य- रामलला नहछू 4)प्रबंध मुक्तक-कवितावली, गीतावली 5)मुक्तक- विनय पत्रिका, दोहावली, वैराग्य संदीपनी 6)विभिन्न-रामाज्ञा प्रश्न, बरवै रामायण, कृष्ण गीतावली महत्त्वपूर्ण हैं।

वैराग्य संदीपनी:विद्वानों के मतानुसार तुलसीदास की प्रथम रचना वैराग्य संदीपनी है, जिसका रचनाकाल संवत् 1626-27 है।ब्रज भाषा में रचित इस मुक्तक ग्रन्थ में 64 दोहे, 2 सोरठे तथा 14 छंद हैं।इस महत्त्वपूर्ण कृति में संतों के स्वभाव, उनकी महिमा, नीति, भक्ति तथा रामनाम की महिमा का वर्णन मिलता है।तुलसीदास ने इस ग्रंथ को अखिल ज्ञान का सागर कहा है।

बोध प्रश्न –

- तुलसी ने किस ग्रंथ को 'अखिल ज्ञान का साग़र' कहा ?

रामाज्ञा प्रश्न तुलसीदास की दूसरी कृति है।इसकी भाषा अवधी है।इसका प्रमुख छंद दोहा है।इस काव्य ग्रन्थ को रामशलाका या दोहावली रामायण भी कहते हैं।इसमें शुभ-अशुभ की विचार चर्चा है।इस ग्रन्थ में सात सर्गों में रामकथा वर्णित है।

बोध प्रश्न –

- किस ग्रंथ को 'दोहावली रामायण' भी कहा जाता है ?

रामलला नहछू ठेठ अवधी भाषा का काव्य ग्रन्थ है।इस ग्रन्थ में राम विवाह तथा यज्ञोपवीत संस्कार के समय नहछू का वर्णन मिलता है।इसमें सोहर का प्रयोग मिलता है।

जानकी मंगल अवधी में रचित एक खंड-काव्य है।इस कृति में राम-सीता के विवाह का वर्णन है।इसका आधार वाल्मीकि रामायण है।इस ग्रन्थ में भी सोहर का प्रयोग द्रष्टव्य है।

रामचरितमानस तुलसीदास की कीर्ति का आधार है।संवत् 1631 में रचित इस महाकाव्य में रामकथा का वर्णन हुआ है।अवधी की मिठास लिए इस कृति में रामकथा सात काण्डों में विभाजित है, यथा- बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुंदर काण्ड, लंका काण्ड, उत्तर काण्ड।इस महाकाव्य का मुख्य छंद दोहा और चौपाई हैं परंतु अन्य छंदों की छटा भी विद्यमान है।इस महाकाव्य के अयोध्याकाण्ड को मानस का हृदयस्थल की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।रामचरितमानस के मार्मिक स्थल हैं- जनक की वाटिका में राम-सीता का परस्पर दर्शन, राम वन गमन, दशरथ मरण, भरत की आत्मग्लानि, वन के मार्ग में स्त्री-पुरुषों की सहानुभूति, युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगना आदि।रामचरितमानस की भाषा प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल है।यहाँ तुलसीदास ने शृंगार का वर्णन बड़े ही मर्यादित और शिष्ट रूप में किया है।रामचरितमानस के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा कि "जिस धूमधाम से 'मानस' की प्रस्तावना चली है उसे देखते ही ग्रंथ के महत्त्व का आभास मिल जाता है।उससे साफ़ झलकता है कि तुलसीदास जी अपने ही तक दृष्टि रखने वाले भक्त न थे, संसार को भी दृष्टि फैलाकर देखने वाले भक्त थे।जिस भक्त जगत के बीच उन्हें भगवान के रामरूप की कला का दर्शन कराना था, पहले चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसके अनेक रूपात्मक स्वरूप को उन्होंने सामने रखा है।"

बोध प्रश्न –

- तुलसी की कीर्ति का आधार क्या है ?
- रामचरित मानस की भाषा क्या है ?

पार्वती- मंगल की भाषा अवधी है।इस काव्य ग्रन्थ में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है। इसकी कथा का आधार कालिदास कृत कुमारसंभव है।इस ग्रंथ में हरिगीतिका छंद का प्रयोग हुआ है।कृष्ण- गीतावली ब्रज भाषा में रचित काव्य कृति है, इसमें भगवान के लोकरंजक रूप को तुलसीदास ने उद्घाटित किया है।कृष्ण का बालपन, गोपियों के संग प्रेमलीला, मथुरा गमन आदि घटनाओं का वर्णन यहाँ देखने को मिलता है।इस रचना में पदों का मनोहारी प्रयोग मिलता है।गीतावली का आधार रामचरित के चुने हुए प्रसंग है, इसमें सात काण्डों में राम कथा वर्णित है।यहाँ तुलसी के वात्सल्य वर्णन का सजीव चित्रण मिलता है।इस कथा के राम मर्यादा पुरुष नहीं अपितु सामान्य मानव की तरह हास्य-परिहास करते, सीता के साथ हिण्डोला झूलते राम का मनोहारी वर्णन हुआ है, साथ ही यहाँ त्रिजटा के संवादों को बड़े आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।इस ग्रंथ की भाषा ब्रज है तथा इसमें 328 पद हैं।गीतावली की सुंदरता इस तथ्य में है कि कवि यहाँ कोमल भावी रहे हैं, उनकी चेतना में कठोरता का लेशमात्र भी पुट का आभास नहीं मिलता।

बोध प्रश्न –

- 'पार्वती-मंगल' की कथा का आधार क्या है ?

विनय-पत्रिका रामभक्ति की सर्वांगीण सिद्ध रचना है।इस काव्य ग्रन्थ में भक्त का अपने अराध्य के प्रति समर्पण का भाव दिखता है।यहाँ भक्त अपने परमात्मा के समक्ष आत्मसमर्पण कर देता है

तथा स्वयं को परम सत्ता पर आश्रित और परमात्मा को अपना रक्षक मान लेता है।विनय-पत्रिका उत्तम कोटि की ब्रज भाषा में लिखी हुई रचना है, जिसमें 279 पद हैं।इस ग्रंथ में तत्सम,तद्भव,देशज और विदेशज सभी प्रकार के शब्दों के भंडार हैं।

दोहावली ब्रज भाषा में लिखित काव्य ग्रंथ है, जिसके वर्ण्य विषय भक्ति तथा नीति हैं।यहाँ दोहा तथा सोरठा छंद का प्रयोग हुआ है।

बरवै रामायण में राम कथा अवधी तथा बरवै छंद में लिखी गई है।इस ग्रंथ में 69 बरवै में रामकथा अनवरत कही गई है।महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ एक प्रसंग के लिए कहीं भी छंदों का दुहराव नहीं मिलता।इस ग्रंथ की अलंकार योजना भी बेजोड़ है।

कवितावली की भाषा ब्रज है।इसमें भी सात काण्डों में रामकथा विभाजित है।इसमें मंगलाचरण का अभाव है।इस ग्रंथ के कवित्त स्वतंत्र हैं।उत्तर काण्ड में संकलित कवित्तों में रामेतर देवी-देवताओं की स्तुतियाँ भी देखने को मिल जाती हैं।इस रचना में तुलसीदास के जीवनवृत्त से संबंधित कवित्त भी विद्यमान हैं।यहाँ कवित्त,सवैया, घनाक्षरी, छप्पय आदि छंदों का प्रयोग मिलता है।

रहीम

रहीम का पूरा नाम “अब्दुर्रहीम खानखाना” है।आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहीम की गणना अकबर के दरबार के रत्न के रूप में करते हैं।उनके अनुसार “ये अकबर बादशाह के अभिभावक प्रसिद्ध मुग़ल सरदार बैरम खानखाना के पुत्र थे। इनका जन्म संवत्1610 में हुआ। ये संस्कृत, अरबी और फारसी के पूर्ण विद्वान और हिंदी काव्य के पूर्ण मर्मज्ञ कवि थे।” रहीम मध्यकाल के उस दौर में थे जहाँ एक ओर भक्त कवि अपने आराध्य के लिए समर्पित थे, वही दूसरी ओर दरबार और दरबारी कविता को केन्द्र में रखा जाता था। रहीम को इन दोनों दिशाओं में मर्मज्ञता हासिल थी।लोक जीवन के अनुभवों को जहाँ उनके नीतिपरक दोहे व्याख्यायित करते हैं तो अनेक भाषाओं काज्ञानउन्हेंशृंगारिक रचना में भी प्रवृत्त करता है।

रहीम के रचनाओ की अगर बात करें तो ‘दोहावली’ में अधिकाशतः नीति के दोहों का संकलन है।‘नगरशोभा’ रहीम की शृंगारिक रचना है जिसमें अकबर के मीना बाज़ार में एकत्रित होने वाली महिलाओं को काव्य का केंद्र बनाया गया है।‘बरवै नायिका भेद’ रहीम की सबसे प्रसिद्ध रचना है।यह अवधी भाषा में लिखा काव्य है जिसमें नायिका भेद का वर्णन है। यह शृंगारिक रचना है। कहा जाता है कि बरवै लिखने की प्रेरणा रहीम को तुलसी से मिली।‘मदनाष्टक’ कृष्ण और गोपियों के प्रेम का काव्य माना जाता है।

बोध प्रश्न –

- रहीम की सबसे अधिक प्रसिद्ध रचना का नाम बताइए.

10.3.4 कृष्ण भक्त कवि

सूरदास

अष्टछाप के प्रतिनिधि कवि सूरदास का जन्म वैशाख शुक्ल 5, दिन मंगलवार, संवत् 1535 (सन् 1478 ई.) में हुआ था।हालांकि सूरदास के जन्म और उनके जन्मांध होने के संबंध में

विद्वानों के बीच मतांतर है।सर्वमान्य मत के अनुसार इनका जन्म संवत् 1535 में हुआ था तथा ये जन्मान्ध थे।वल्लभाचार्य के चार शिष्यों- सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास , कृष्णदास तथा विठ्ठलनाथ के चार शिष्यों- गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास, को मिलाकर अष्टछाप का निर्माण हुआ था।सूरदास इस अष्टछाप के प्रतिनिधि कवि थे।वैसे तो सूरदास की 25 रचनाओंकी चर्चा इतिहास ग्रंथों में मिलती हैं परन्तु विद्वानों ने 'सूरसागर', 'सूरसारावली' तथा 'साहित्य लहरी' को ही प्रामाणिक माना है।सूरदास की रचनाओं का सर्वप्रथम संपादन 'रागकल्पद्रुम' नाम से सन 1841 में कोलकाता से हुआ।

बोध प्रश्न –

- सूरदास की रचनाओं का संपादन किस नाम से हुआ है ?

सूरदास की तीन प्रामाणिक रचनाएँ हैं- 'साहित्य लहरी', 'सूर-सारावली' तथा 'सूरसागर'।

सूर-सारावली में सूर-सागर का परिचय मिलता है, दूसरे शब्दों में सूरसारावली सूरसागर की विषय सूची ही है।सूरसारावली में 1107 छंद हैं।इसमें संसार को होली का रूपक मानकर रचना की गई है।

साहित्य लहरी- इस ग्रन्थ में सूरदास ने पहले किसी भाव अलंकार, नायक, नायिका का उल्लेख कर फिर उसका उदाहरण देकर अपने उल्लेख को पुष्ट किया है।इस लक्षण पर इस ग्रन्थ को लक्षण ग्रन्थ भी कह सकते हैं।इसमें कुल 118 पद तथा 171 छंद हैं, जो सामान्य सामाजिक प्रसंगों पर लिखे गए हैं।इसमें अर्थगोपन शैली में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी है।साहित्य लहरी में सूरदास ने दृष्टकूट पदों की रचना भी की है, परंतु सूरसागर के कूट पदों वाली गहनता यहाँ देखने को नहीं मिलती।मिश्रबंधु, रामचन्द्र शुक्ल, नंददुलारे वाजपेयी, दीनदयालु गुप्त आदि विद्वानों ने साहित्य- लहरी को प्रामाणिक ग्रन्थ माना है तो दूसरी ओर ब्रजेश्वर शर्मा और बच्चन सिंह ने इसे अप्रामाणिक माना है।

सूरसागर- यह ग्रन्थ सूरदास का कीर्ति- स्तंभ है।इसका आधार श्रीमद्भागवत है।कुछ विद्वानों ने यह माना है कि प्रस्तुत ग्रन्थ भागवत का भाषानुवाद है क्योंकि इसमें भी भागवत के समान ही बारह स्कंध हैं।हालांकि यह कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ पर भागवत का पर्याप्त प्रभाव तो परिलक्षित होता है परंतु सूर के पदों की मौलिकता, कलात्मकता, भक्ति भावना, ब्रज के संस्कारों तथा शुद्धाद्वैतवादी दर्शन के कारण इसका अलग ही महत्त्व और अलग ही सुंदरता है।इसमें कुल 4936 पद हैं।

सूरसागर के काव्य का वर्गीकरण चार भागों में किया जा सकता है-

1.विनय के पद (पहले स्कंध में मुख्यतः विनय के पद हैं तथा दूसरे स्कंध में भक्ति संबंधी पदों की बहुलता है)

2.पौराणिक आधार पर कृष्ण-चरित्र एवं अन्य कथाएँ

3.कृष्ण-लीलाएँ

4.भक्ति, साधना एवं पुष्टि दर्शन से संबंधित पद

बोध प्रश्न –

- सूरदास की कीर्ति का आधार क्या है ?

भ्रमरगीत

सूरदास को भ्रमरगीत की प्रेरणा श्रीमद्भागवत् के दशम स्कंध के 47 वें अध्याय के 12 वें से 21वें श्लोक से मिली होगी ऐसा प्रतीत होता है।हिंदी में 'भ्रमरगीत' काव्य की परंपरा सूरदास से मानी जाती है। सूरसागर में तीन भ्रमरगीतों की योजना है।प्रथम तथा द्वितीय भ्रमरगीत आकार में लघु हैं तथा तृतीय का आकार विस्तृत है, और अपने कलेवर में काव्य-लालित्य एवं भाषा-सौष्ठव का उत्कर्ष लिए हुए है।भ्रमरगीत में भ्रमर के लिए कई अर्थ किए गए हैं, परंतु कृष्ण, उद्धव और भौंरे का अर्थ बहुप्रयुक्त है। भ्रमरगीत में उपालंभ और गेयता की प्रमुखता है।इसमें प्रेम और ज्ञान का द्वंद्व तो है ही साथ में तीक्ष्ण व्यंग्य, विनोद, हास-परिहास तथा तर्क-वितर्क का इन्द्रधनुषी रंग भी है।वियोग शृंगार की अतिशयता के कारण इसे विरह काव्य भी कहा जाता है। बलराम तिवारी ने भ्रमरगीत पर विचार करते हुए लिखा कि "भ्रमरगीत रागरंजित एक अति साहित्यिक रचना है।इसका राग तन्मय, तादात्म्य एवं विरहाकुल बनाता है। इसमें विरह के अनेकानेक चित्र हैं और नारी-मन की व्यथा की अनेकानेक परतों को खोलते हैं। कवि की कुशलता इसमें है कि वह विरह के संदर्भ में ही कई सामाजिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक सवालों से टकराता है और उनका समाधान भी ढूँढता है। इससे उसकी कथा प्रतीकात्मक कथा का रूप ले लेती है और कई अर्थ-स्तरों पर भाव-प्रसार करती है।"

बोध प्रश्न –

- हिंदी में भ्रमरगीत की काव्य परंपरा किससे शुरुआत होती है ?
- भ्रमरगीत में किसकी प्रमुखता है ?

रसखान –

कृष्ण भक्ति शाखा में रसखान का नाम अग्रणी भक्तों में लिया जाता है। रसखान के जन्म, निधन के सम्बन्ध में कोई प्रमाणिक साक्ष्य नहीं मिलते। आचार्य शुक्ल अपने साहित्य में इन्हें दिल्ली के एक पठान सरदार लिखते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ वृत्तान्त इनका 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' में मिलता है। इस से पता चलता है कि ये कृष्ण प्रेम की ओर उन्मुख हुए। इन्होने कृष्णभक्ति शाखा के पुष्टिमार्ग के गुरु विट्ठलनाथ से दीक्षा ली।

कृष्ण भक्ति काव्य पर रसखान ने "प्रेमवाटिका" नामक ग्रन्थ की रचना की जिसका रचनाकाल संवत् 1671 है। रसखान ने कृष्ण का लीलागान गेय पदों में नहीं अपितु सवैया में

किया है। उनके सवैयों की मार्मिकता का बहुत बड़ा आधार दृश्यों और बाह्यांतर स्थितियोंकी योजना में है। ब्रजभाषा का जो प्रयोग रसखान ने किया है वैसा अन्यत्र नहीं मिला। रसखान सूफियों का हृदय लेकर कृष्ण की लीला का ऐसा वर्णन करते हैं कि उसमें उल्लास मादकता और उत्कृष्टता तीनों का मिलन हो जाता है। ब्रजभूमि के प्रति जो मोह हमें रसखान के काव्य में दिखाई पड़ता है वह उनकी विशेषता है।

"मानुष हों तो वही रसखान बसौ संग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मझारन।।
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर धारन।
जौ खग हों तो बसेरो करौ मिलिकालिंदी कूल कदंब की डरान।।

प्रस्तुत सवैया में गोपियों की जिस मन स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया गया है वह पूरे कृष्ण काव्य को मनोरम बनता है।

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौ, गुंज की माल गले पहिरौंगी
ओढ़ि पीताम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वालन संग फिरौंगी
भावती सोई मेरो रसखान सो तेरे कहै सब स्वांग करौंगी
या मुरली मुरलीधर की अधरा न धरी अधरा न धरौंगी

बोध प्रश्न –

- 'प्रेमवाटिका' के रचनाकार कौन है ?

मीराँबाई

मध्यकालीन रूढ़ियों और बंधनों को तोड़कर भारतीय समाज में एक अलग पहचान बनाने वाली मीराँका जन्म 1504 ई. में मेड़ता के कुड़की ग्राम में राठौर वंश के मेड़तिया शाखा में हुआ था।मध्यकाल में स्त्रियों पर हर कदम पर पहरे थे, यहाँ तक कि उनकी चेतना भी उनके अधीन नहीं थी। मीराँ का विरोध और विद्रोह बस इसी को लेकर था।बालपन में वैधव्य, कृष्ण के प्रति लगाव, अपने को कृष्ण की सुहागिन मानने की प्रवृत्तियाँ, राजमहल में साधु-संतों का सत्संग ये सारी घटनाएँ राजमहल और वहाँ के रीतियों के विरुद्ध थी।मीराँ को मारने की चेष्टा भी हुई, आख़िरकार मीराँ ने राजमहल त्याग दिया और वृन्दावन में बस गई।

वृन्दावन में मीराँ की मुलाकात जीव गोस्वामी से हुई। मीराँ वृन्दावन से द्वारका की ओर बढ़ गई। मार्ग में सत्संग करती, भजन गाती, नाचती तथा अपने अभिजात्य की कुंठाओं को नकारती हुई द्वारकाधीश के मंदिर में पहुँच गई।द्वारका में प्रति-दिन भजन-कीर्तन का दौर चलता रहा।द्वारका में ही भजन-कीर्तन करते हुए मीराँ ने 1573 ई. में अपने प्राण त्याग दिए।मीराँबाई की अनेक रचनाएँ हैं परंतु- 'गीत गोविन्द की टीका', 'नरसी जी का मायरा', 'सत्यभामा नूं रूसण', 'मीराँ की गरबी', 'रुक्मिणी मंगल', 'नरसी मेहता की हुंडी', आदि रचनाएँ संदिग्ध हैं। मीराँबाई के 'स्फुट पद' जोकि सोरठा, मलार आदि रागों में लिखे गए हैं उनका

संपादन 'पदावली' आकार में उपलब्ध है और उसे असंदिग्ध की श्रेणी में रखा जा सकता है। मीराँबाई के काव्य में निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं के तत्त्व विद्यमान हैं, जैसे- मीराँ अनहद नाद, शून्य, सुरत, त्रिकुटी आदि की चर्चा करती हैं तो दूसरी ओर दाम्पत्य, राग, और प्रियतम के प्रवास के कारण उत्कट विरहाकुलता के दर्शन भी उनके काव्य में हो जाते हैं। मीराँबाई और उनकी कविताओं के विषय में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि "निस्संदेह मीराँ का विद्रोह एवं संघर्ष भक्ति, प्रेम, रहस्य की अनुभूति के साथ अभिव्यक्त हुआ है। इन सबका एकीकृत, अखंड रूप हमारे सामने उनकी कविता में प्रकट हुआ है।इसीलिए उनकी कविता को समझने का मतलब है कविता के इन पक्षों को समझना। साधना, भक्ति, प्रेम, विरह या रहस्य की भावनाएं काव्याभिव्यक्ति में अमूर्त रहकर ही नहीं प्रकट होतीं।वे मूर्त होती हैं, अनुभव जगत में उदित होकर। इसलिए कविता का जागतिक संदर्भ होता है।इस संदर्भ को ऐतिहासिक दृष्टि उजागर करती है।मीराँ का असीम, रहस्यमय प्रिय संकेतित है, जागतिक संदर्भों के चित्रण के माध्यम से।जो कहा गया है उसे ठीक से समझ लें तो उस काव्यार्थ या रहस्यमय प्रिय की झलक मिल जाएगी।"

बोध प्रश्न –

- मीराँ के आराध्य कौन थे ?
- मीराँ का विद्रोह और संघर्ष कैसा था ?

नंददास

नंददास भक्तिकालीन कृष्णकाव्यधारा के अग्रगण्य कवि हैं। अष्टछाप के कवियों में नंददास का स्थान सूरदास के बाद दूसरे स्थान पर आता है। काव्य-सौष्ठव तथा भाषा की प्रांजलता के लिए विख्यात कवि नंददास का जन्म 1533 ई. में उत्तर प्रदेश के सूकरक्षेत्र के रामपुर गाँव में हुआ था। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी भक्त कवि थे। इन्होंने पंद्रह ग्रंथों की रचना की है, यथा- 'अनेकार्थ मंजरी', 'मान मंजरी', 'रस मंजरी', 'रूप मंजरी', 'विरह मंजरी', 'प्रेम-बारहखड़ी', 'श्यामसगाई', 'सुदामाचरित', 'रूक्मिणीमंगल', 'भंवरगीत', 'रासपंचाध्यायी', 'सिद्धांतपंचाध्यायी', 'दशमस्कंधभाषा', 'गोवर्धन लीला', 'नंददास पदावली'। 'अनेकार्थ मंजरी' पर्याय कोश ग्रंथ है। 'मान मंजरी' भी एक प्रकार का कोश ही है जिसमें अमर कोश के आधार पर शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखे हैं। यह ग्रंथ नंददास के भाषा विषयक ज्ञान के विस्तार तथा पांडित्य को दर्शाता है। 'विरहमंजरी' एक वियोग काव्य है, इसमें एक ब्रजवासी के कृष्ण से विछोह से उत्पन्न विरह को चित्रित किया गया है।इसमें बारहमासा शैली का प्रयोग किया गया है। 'रूपमंजरी' प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा की रचना है।यह रचना अकबर की सेविका रूपमंजरी

को आधार बनाकर लिखा गया है, कहा जाता है कि रूपमंजरी से नंददास को प्रेम था। रसमंजरी नायिका भेद संबंधी रचना है। 'श्याम सगाई' में राधा-कृष्ण के विवाह का वर्णन है।

'रास पंचाध्यायी' का स्थान नंददास की श्रेष्ठ कृतियों में है। इस ग्रंथ में लौकिक तथा पारलौकिक प्रेम को समन्वित रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रंथ भाषा, विषय प्रतिपादन, शैली, कवि-कल्पना काव्य-सौन्दर्य तथा मौलिकता की बिन्दुओं पर नंददास के 'जड़िया' होने की ज़मीन को और पुख्ता कर देता है।'भंवरगीत' एक प्रबंध काव्य है।इसमें गोपियों तथा उद्धव के तर्क को दिखाया गया है।यह ग्रंथ नंददास के परिपक्व दर्शन ज्ञान, विवेक, तर्कशीलता का परिचायक है। 'सिद्धांतपंचाध्यायी' कृष्ण की रासलीला से संबंध रखनेवाली रचना है।नंददास के समस्त काव्य ग्रन्थ ब्रजभाषा की मिठास लिए हैं।

नाभादास की प्रसिद्ध रचना भक्तमाल में नंददास से संबंधित यह जानकारी प्राप्त होती है-

लीलापद रसरीतिग्रंथ रचना में आगर।
सरस उक्ति रसजुक्ति भक्तिरसगान उजागर।
प्रचुर पयधि लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुफल संबलित भक्त पद-रेणु-उपासी।
श्री चंद्रहास-अग्रज सुहृद परम प्रेम पद पगे।
श्रीनंददास आनंद निधि रसिक सु प्रभुहित रंगमगे।

बोध प्रश्न –

- 'विराहमंजरी' में नंददास ने किस शैली का प्रयोग किया है ?
- 'सिद्धांतपंचाध्यायी' में किसकी लीला का चित्रण है ?

10.4 पाठ सार

इन कवियों पर बात करते हुए आप देखेंगें कि निर्गुण ज्ञानमार्गीय कवियों ने ज्ञान और अनुभव को महत्त्वपूर्ण बताया तो सूफी कवि प्रेम से परमात्मा को पाने की प्रस्तावना देते हैं। रामभक्ति काव्य में आदर्श और मर्यादा पर बल देते हुए भी यथार्थ जीवन की जो व्यापकता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कृष्ण काव्यमें तो लगता है जैसे पूरा किसानी जीवन साकार हो उठा है। इसलिए इन भक्त कवियों पर चर्चा करते हुए आप लोक और शास्त्र के पारंपरिक टकराव के बीच भक्ति के स्थापित होने के लोकोन्मुखी कारणों से भी परिचित हो सकेंगें।

10.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. हिंदी संत साहित्य के उन्नायकों में कबीरदास, रविदास, गुरुनानक और दादूदयाल प्रमुख हैं। इन्होंने निर्गुण निराकार ब्रह्म की भक्ति और मनुष्य मात्र की समानता का उपदेश दिया।

2. हिंदी सूफ़ी काव्य उन्नायकों में मुल्लादाऊद कुतुबन मंझन और जायसी के नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने सूफी साधना पद्धति पर आधारित प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना की तथा साधक को प्रेमी और आराध्य को प्रेमिका के रूप में दर्शया है।
3. रामभक्ति काव्य के अंतर्गत तुलसी और उनके द्वारा रचित रामचरितमानस का स्थान सर्वोपरी है। उन्होंने भगवान राम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के रूप में प्रतिष्ठित किया उल्लेखनीय है कि रामभक्त कवियों में अब्दुल रहीम खान खाना जैसे मुस्लिम कवि भी सम्मिलित है।
4. कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास सिरमौर हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों में रसखान जैसे मुस्लिम कवि और मीरांबाई जैसी स्त्री रचनाकार भी शामिल है। इन सबने गोपाल कृष्ण की बाल लीलाओं और रासलीला का ह्रदय ग्राही वर्णन किया है।

10.6 शब्द संपदा

1. **निर्गुण :** निर्गुण का मतलब गुणहीन नहीं बल्कि गुणातीत होता है। अर्थात ईश्वर में गुणों की विविधता और पूर्णता इतनी अधिक है की उन्हें किसी विशिष्ट गुण से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। इसलिए उन्हें निराकार, निरंजन,अनंत जैसे नामों से संबोधित किया जाता है।
2. **सगुण:** ईश्वर को कुछ निश्चित विशेषणों से उनके गुणों की महिमा का बखान करना। यहाँ ईश्वर में दया,प्रेम,ममता जैसे अनेक गुणों का आरोपण करके उसे सर्वशक्तिमान और मनुष्य का मोक्षदाता सिद्ध किया जाता है।
3. **साखी:** साखी का अर्थ होता है गवाह या सहायक। कबीर ने अपने जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों/प्रमाणों के आधार पर कविता कही है,इसलिए उनकी कविता को साखी कहा जाता है।
4. **अलख**: जो दिखाई न दे, निर्गुण संत मानते है कि ईश्वर को सिर्फ महसूस किया जा सकता है। वह रूप, अकार से रहित होता है, इसलिए उसे अलख कहा गया है।
5. **पंथ :** एक ही विचार को मानने वाले लोग या एक ही दिखाए गए रास्तों पर चलने वाले।
6. **अष्टछाप :** अष्टछाप बल्लभ सम्प्रदाय का साहित्यिक रूप है। बल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने वल्लभ सम्प्रदाय को व्यवस्थित करने के लिए बल्लभाचार्य के चार प्रिय शिष्यों और अपने चार प्रमुख शिष्यों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के कवियों में सूरदास, परमानंददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, नंददास,

गोविंदस्वामी और छीतस्वामी गिने जाते हैं। ये सभी कृष्ण भक्ति काव्यधारा से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

7. **प्रेममार्गी :** प्रेम के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त कर इस संसार से मुक्ति की कामना करने वाले कवि। यह शब्द सूफी कवियों के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है।

10.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. भक्ति से काया अभिप्राय है ? भक्ति काल के प्रमुख साहित्यकारों की चर्चा कीजिए।
2. कबीर समाज सुधार थे। कबीर की रचनाओं के आधार पर इसे सौदाहरण स्पष्ट करें।
3. मलिक मुहम्मद जायसी कौन थे ? उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालते हुए उदाहरण सहित लिखिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. सूरदास के रचना संसार पर प्रकाश डालें।
2. मीरांबाई का परिचय देते हुए उनकी साहित्यिक रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1.कबीर का जन्म कब हुआ ? ( )

(अ) 1398 वि.सं. (आ) 1456 वि.सं.

(इ) 1400 वि.सं. (ई) 1420 वि.सं.

2.रैदास का जन्म कब हुआ ? ( )

(अ) 1299 ई. (आ) 1278 ई.

(इ) 1280 ई. (ई) 1300 ई.

3.दादू दयाल का जन्म कब हुआ ? ( )

(अ) 1601 (आ) 1602

(इ) 1603 (ई) 1604

4. जायसी का जन्म कब हुआ ? ( )

(अ) 1490 ई. (आ) 1492 ई.

(इ) 1452 ई. (ई) 1494 ई.

5. सूरदास का जन्म कब हुआ ? ( )

(इ) सं. 1535 (आ) सं. 1533

(इ) सं. 1545 (ई) सं. 1536

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) सूरसारावली में______________छंद है।

2) साहित्य लहरी में ______________छंद है।

3) हिंदी में 'भ्रमरगीत' काव्य की परंपरा ______________ने की ।

4) प्रेमवाटिका की रचना सवंत् ______________हुई।

5) गोवर्धन लीला ______________की रचना है।

III सुमेल कीजिए।

1.	सूरदास	(अ) प्रेमवाटिका
2.	कबीरदास	(आ) साहित्य लहरी
3.	नंददास	(इ) गीतगोविंद टीका
4.	मीरांबाई	(ई) रस मंजरी
5.	रसखान	(उ) सबद

10.8 पठनीय पुस्तकें

1. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास
2. रामचंद्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली (भूमिका)
3. रामचंद्र शुक्ल : त्रिवेणी
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी : कबीर
5. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य की भूमिका
6. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास
7. शिवकुमार मिश्र : भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य

इकाई-11 रीतिकाल: परिस्थितियाँ, उत्तर-मध्यकालीन काव्य-बोध और प्रवृत्तियाँ

रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मूलपाठ: रीतिकाल: परिस्थितियाँ, उत्तर-मध्यकालीन काव्य-बोध और प्रवृत्तियाँ
    11.3.1 रीतिकाल की परिस्थितियाँ
    11.3.2 उत्तर-मध्यकालीन काव्य-बोध
    11.3.3 रीतिकाल की प्रमुख-प्रवृत्तियाँ
    11.3.4 रीतिकाल की शिल्पगत-प्रवृत्तियाँ
11.4 पाठ सार
11.5 पाठ की उपलब्धियाँ
11.6 शब्द-संपदा
11.7 परीक्षार्थ प्रश्न
11.8 पठनीय पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

किसी भी युग के काव्य को समुचित ढंग से समझने के लिए तद्युगीन परिस्थितियों को जानना आवश्यक होता है। वस्तुतः साहित्यकार जिस देश-काल में अवस्थित होता है वह देश-काल उसके रचना-मानस के निर्माण में बड़ी भूमिका निभाता है। रीतिकालीन कविता में शृंगारिकता, दरबारीपन, आलंकारिता आदि प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, वे उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों का परिणाम हैं। इसलिए रीतिकाल के अध्ययन के क्रम में हम सर्वप्रथम रीतिकालीन परिस्थितियों पर विस्तार से विचार करेंगे।

किसी भी साहित्यिक युग के काव्य-बोध का प्रश्न उस युग के कवियों की काव्य-दृष्टि और काव्य-रचना-उद्देश्य से जुड़ा हुआ है। कवि के लिए ‘कविता क्या है’ और वह ‘कविता क्यों लिखना चाहता है’- यही दो चीजें उसके काव्य-बोध की ओर इंगित करती हैं। सामान्यतः रीतिकालीन कवियों के लिए कविता एक कला थी। इसलिए कविता में मार्मिकता और संवेदनात्मक गहराई के स्थान पर उसका ध्यान कलात्मक चमत्कार पर रहा। इसी वजह से रीतिकालीन काव्य सामाजिक सरोकारों से भी कटा दिखाई देता है। रीतिकालीन कवियों का रचना-उद्देश्य जीविकोपार्जन था, इसलिए उनके काव्य-विषय, काव्य-शिल्प और काव्यशास्त्र का निर्धारण दरबारी सामंती मनोवृत्ति करती हुई दिखाई देती है। आगे हम रीतिकालीन काव्यबोध को थोड़ा विस्तार में जानने का प्रयत्न करेंगे।

साहित्य में नवीन युग का आरंभ उसकी पूर्व-प्रवृत्तियों के व्यापक रूप से बदल जाने या नितान्त नई प्रवृत्तियों के उदय के कारण होता है। हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के बाद के युग को रीतिकाल की संज्ञा देने के पीछे भी यही कारण निहित है कि इस युग की अपनी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ हैं जो भक्तिकालीन काव्य-प्रवृत्तियों से नितान्त भिन्न हैं। रीतिकालीन काव्य का अनुशीलन करते हुए हम पाते हैं कि सामान्यतः अंतर्वस्तु के धरातल पर इसके केंद्र में शृंगार है, रचना-पद्धति के धरातल पर यह काव्यशास्त्र का अनुगमन करती है; यह दरबारी एवं सामंती मनोवृत्ति एवं जीवन-दृष्टि को प्रश्रय देती है, अपने काव्य क्षमता से दरबार को चमत्कृत कर देने के उद्देश्य से अतिशय आलंकारिता को प्रश्रय देती है। रीतिकाल के रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध काव्य में ऐसी प्रवृत्तियाँ व्याप्त हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के विरोध में रीतिकाल में रीतिमुक्त काव्य का उदय होता है। रीतिकाल की गौण प्रवृत्तियों के रूप में नीतिकाव्य, वीरकाव्य, भक्तिकाव्य आदि को रखा जा सकता है। आगे हम इन प्रवृत्तियों को थोड़ा विस्तार से समझने का प्रयत्न करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप -

- रीतिकाल की पृष्ठभूमि में निहित के विभिन्न परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।
- उत्तर-मध्यकालीन अर्थात् रीतिकालीन काव्य-बोध विकास के परिवेश को समझ सकेंगे।
- उत्तर-मध्यकालीन काव्य-बोध के मूल बिन्दुओं से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकालीन काव्य-बोध के फलस्वरूप विकसित कविता के स्वरुप को समझ सकेंगे।
- रीतिकाल के दौरान रची गई साहित्यिक रचनाओं की मूल प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाव्य की शिल्पगत प्रवृत्तियों को जान सकेंगे।

11.3.मूल पाठ : रीतिकाल: परिस्थितियाँ, उत्तर-मध्यकालीन काव्य-बोध और प्रवृत्तियाँ

11.3.1 रीतिकाल की परिस्थितियाँ

किसी भी काल के साहित्य के निर्माण में तत्कालीन परिस्थितियों का योगदान अनिवार्य रूप से होता है। युगीन-परिवेश उस समय की राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति के मूल्यों से निर्मित होता है। अतः रीतिकालीन कविता को समझने के लिए उस समय की परिस्थितियों का अध्ययन करना जरूरी है। रीतिकाल के दो-ढाई सौ वर्ष की लंबी अवधि में देश में अनेक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियों में परिवर्तन हुए जिसने रीतिकाव्य को विशिष्ट दिशा एवं आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। रीतिकालीन साहित्य दरबारी

संस्कृति के विशेष परिवेश में विकसित हुआ। इस काल के अधिकांश कवि अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन व कवि-कर्म का सामान्य ज्ञान देने के लिए काव्य रचना में प्रवृत्त हुए। अतः रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों को समझने से पहले हमें तद्युगीन परिस्थितियों का विश्लेषण करना होगा। रीतिकालीन परिस्थितियों को निम्न उपभागों में बाँटा जा सकता है-

- राजनीतिक-परिस्थिति
- सामाजिक-परिस्थिति
- धार्मिक-परिस्थिति
- सांस्कृतिक-परिस्थिति
- साहित्यिक-परिस्थिति

बोध प्रश्न –

- रीतिकालीन साहित्य किस परिवेश में विकसित हुआ ?

राजनीतिक-परिस्थिति

राजनीतिक दृष्टि से रीतिकाल मुगल शासन के चरम उत्कर्ष और उसके क्रमशः पतनशील होने की गाथा है। जहाँगीर के बाद मुगल साम्राज्य के सिंहासन पर शाहजहाँ आसीन हुआ। अपने शासनकाल में जहाँगीर ने मुगल शासन का जो विस्तार किया था उसे शाहजहाँ ने चरम उत्कर्ष तक पहुँचा दिया। लेकिन शाहजहाँ के समय से ही मुगल साम्राज्य अपने उत्कर्ष के बिंदु से नीचे गिरने लगा था। इस संबंध में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है- "जिस प्रकार साहित्य के इतिहास में भक्ति-काव्य के चरम वैभव के बाद संवत् 1700 के आस-पास से ही कविता क्षयग्रस्त होने लगी थी, ठीक उसी प्रकार राजनैतिक इतिहास में मुगल-साम्राज्य भी अपने संपूर्ण यौवन को प्राप्त करने के उपरांत ह्रासोन्मुख हो चला था।" सन् 1658 में शाहजहाँ के बीमार पड़ने और उसकी मृत्यु की अफवाह फैलने के कारण उसके जीवन काल में उसके पुत्रें के बीच सत्ता के लिए संघर्ष शुरू हो गया। सत्ता के लिए यह संघर्ष ही रीतिकाल के आरंभ की सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना है। शाहजहाँ के बड़े पुत्र सहिष्णु दाराशिकोह की हत्या कर औरंगजेब ने जबरन सत्ता हथिया ली। लेकिन औरंगजेब ने ज्यों ही सत्ता की बागडोर सँभाली चारों ओर उपद्रव होने शुरू हो गए। औरंगजेब की धर्मांन्धता, पक्षपातपूर्ण नीति, साम्राज्य-विस्तार लिप्सा ने देश की शान्ति को भंग कर कई तरह के विद्रोहों और निरंतर चलने वाले युद्धों को जन्म दे दिया था। सिक्खों, मराठों, जाटों आदि ने उसके प्रति विद्रोह शुरू कर दिया। औरंगजेब के पश्चात् 1707 ई. में देश की केंद्रीय सत्ता मुगल साम्राज्य का प्रभाव धीरे-धीरे कम होने लगा। चारों ओर छोटे-छोटे जागीरदार अपने को स्वतंत्र करने लगे। जगह-जगह सामंत अपनी शक्ति को बढ़ाने लगे साथ ही वे मुगल दरबार के वैभवपूर्ण जीवन-पद्धति का भी अनुकरण करने लगे। इस प्रकार सत्ता के विकेंद्रीकरण के साथ उन जीवन दृष्टियों का भी विकेंद्रीकरण हुआ, जिस जीवन दृष्टि को

सामंतवाद ने अपना लिया था। केंद्रीय शासन व्यवस्था के शिथिल होने और आंतरिक प्रदेशों के कलह की परिस्थितियों में नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली जैसे विदेशियों के आक्रमण भी शुरू हो गए और बाद में वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में चली गई। राजनीतिक अस्थिरता की इस परिस्थिति ने देश में विकृत सामंतवाद को जन्म दिया।

बोध प्रश्न –

- रीतिकाल के आरंभ में सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना क्या थी ?
- राजनीतिक अस्थिरता के कारण देश में क्या जन्म लिया ?

सामाजिक-परिस्थिति

रीतिकालीन राजनैतिक अधःपतन ने तत्कालीन सामाजिक को पतनशील बनाया। इस काल में समाज में सामंतवाद का काफी प्रभाव था जिसका प्रभाव जनसामान्य के जीवन पर भी किसी-न-किसी रूप में पड़ रहा था। 17वीं सदी तक आते-आते भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था और भी मजबूत हो गई। अब वह पुराने वर्ण-व्यवस्था को न अपनाकर पेशेवर-जातियों के रूप में विकसित होने लगी जो कि वंशानुक्रम से चलते थे। इस समय आर्थिक दृष्टि से समाज दो वर्गों में स्पष्ट रूप से बँटा था- उत्पादक वर्ग और उपभोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग के अंतर्गत श्रमजीवी, कृषक, व्यापारी, सेठ, साहूकार थे तथा उपभोक्ता वर्ग के अंतर्गत राजा से लेकर राजदरबार के भीतर सभी सदस्य शामिल थे। किंतु इन दोनों में एक शासित था दूसरा शासक, एक शोषित था दूसरा शोषक। लेकिन समाज में उत्पादक और उपभोक्ता वर्ग के बीच की खाई काफी ज्यादा थी। शासन-तंत्र की निरंकुशता ने इनके बीच की खाई बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्यः उद्भव और विकास' में रीतिकालीन इस सामाजिक व्यवस्था पर विस्तार से लिखते हैं- "इस समय आर्थिक दृष्टि से समाज में स्पष्ट रूप से दो श्रेणियाँ हो गईं- एक उत्पादक वर्ग, जिसमें प्रधान रूप से किसान और किसान से संबंध रखनेवाली जातियाँ बढ़ई, लोहार, कहार, जुलाहा इत्यादि थीं, और दूसरा दल भोक्ता (राजा, रईस, नवाब आदि) या भोक्तृत्व का मददगार था। मुगल शासन के अंतिम दिनों में भारतीय समाज के ये ही दो आर्थिक वर्ग थे- राजा, सामंत, मनसबदार आदि भोक्ता वर्ग, और कृषकों और श्रमिकों का उत्पादक वर्ग। दोनों का परस्पर संबंध क्रमशः क्षीण होता गया, और मुगल काल के अंतिम दिनों में इन दोनों की दुनिया लगभग अलग हो गई।" (पृ.161)

बोध प्रश्न –

- आर्थिक दृष्टि से समाज कितने वर्गों में बँट गया ?

रीतिकालीन समाज में उत्पादक और उपभोक्ता वर्ग के मध्य एक और वर्ग था कवियों और कलाकारों का वर्ग जो प्रायः उत्पादक वर्ग से जन्म लेता था किन्तु भोक्ता वर्ग का मनोरंजन

कर अपनी आजीविका चलाता था। कवि-कलाकारों का यह वर्ग अपने आश्रयदाताओं के जीवन-शैली के अनुकूल मनोरंजन करने तत्कालीन समय में प्रचलित कामशास्त्रीय ग्रंथों व काव्यशास्त्रीय ग्रंथों विशेषकर नायिका-भेद व अलंकारशास्त्र जैसे ग्रंथों का सहारा लिया करते थे। मुगल साम्राज्य के पतन से कवि-कलाकारों के जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। ये कवि-कलाकार स्थानीय, नवाबों, सामन्तों के यहाँ आश्रय लेने को बाध्य हुए और इनकी मनोवृत्तियों पर ध्यान देना कवि-कलाकारों का एकमात्र लक्ष्य बना। मुगल दरबार अपने वैभव के लिए प्रसिद्ध था। इसकी केंद्रीय सत्ता कमजोर होते ही स्थानीय राजाओं, नवाबों, सामंतों ने इस दरबार के वैभव का अनुकरण करना चाहा। तब वैभव का स्थान वैभव-प्रदर्शन ने ले लिया और इस वैभव-प्रदर्शन ने दरबारी संस्कृति में विलासिता को खासतौर से विकसित किया। दरबारी शिक्षा आशिकाना गज़लों, फारस की अश्लील प्रेम कथाओं, ललित क्रीड़ाएँ, चौसर का खेल तक ही सीमित रह गई। दरबारी जीवन-शैली का असर आम जन पर भी काफी पड़ा। रीतिकालीन कवि पद्माकर की निम्न कविता में रीतिकालीन समाज के विलासपूर्ण जीवन का सटीक चित्र उकेरा गया है-

"गुलगुली गिल में गलीचा है, गुनीजन हैं,
चाँदनी है चिक है चिरागन की माला है।
कहैं पद्माकर त्यों गजक गिजा है सजी,
सेज है, सुराही है सुरा है और प्याला है।
शिशिर के पाला को व्याप्त कसीला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मशाला है।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला हैं,
सुबाला है, दुशाला है, विशाल चित्रशाला है।"

बोध प्रश्न –

- दरबारी जीवन-शैली कैसी थी ?

दरबारी भोक्ता वर्ग के ठीक विपरीत स्थिति कृषक-श्रमजीवियों जैसे निम्न वर्ग की थी। यह वर्ग सभी ओर से शोषित था, अतः दयनीय जीवन-स्थिति गुजारने को बाध्य था। दरबार का वैभव, सेना, युद्ध, प्रकृति प्रकोप, सेठ-साहूकारों के ऋण आदि अनेक प्रकार के आर्थिक बोझ से वे दबे रहते थे। रीतिकालीन राजनीतिक अस्थिरता ने तत्कालीन सामाजिक जीवन को आक्रान्त कर रखा था। इस परिस्थिति में न किसान की किसानी सुरक्षित थी न श्रमिक-व्यापारी का कार्य-व्यापार। श्रमिक वर्ग आये दिन बेगार करने को बाध्य होते थे। इन परिस्थितियों ने जनता को हताश बना दिया और वे अंधविश्वासी बन गए। संभवतः इसी कारण इस युग के कुछ कवियों ने

इन विषयों (ज्योतिष, शकुन-विचार) से संबंधित कविताओं की रचना की थी। लेकिन रीतिकालीन सामाजिक स्थिति के संबंध में यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इस युग के काव्य में सामान्य जनता का सामाजिक जीवन प्रायः प्रतिबिंबित नहीं हुआ है। इसका कारण दरबारी संस्कृति के अनुरूप कवियों की काव्य रचना थी। इस अर्थ में रीतिकालीन काव्य लोक-जीवन से कटा हुआ नजर आता है।

बोध प्रश्न –

- रीतिकाल में किस संस्कृति को देखा जा सकता है ?

धार्मिक-परिस्थिति

धार्मिक स्थिति की दृष्टि से इस युग को 'पतन का काल' माना जा सकता है। भक्तिकाल में जिन उदात्त धार्मिक मूल्यों का उत्कर्ष हुआ था, कालान्तर में वही भक्ति तत्त्व-बोध से दूर हट कर स्थूल काम-लीलाओं की अभिव्यक्ति का साधन बन गई। हिंदी प्रदेशों में वैष्णव संप्रदायों का संबंध तत्त्व चिंतन से हटकर विलासिता के साथ संबद्ध हो गए। हिन्दू अपने आराध्य राम-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं में ही अपने विलासमयी जीवन की संगति ढूँढने में लग गए। श्री संप्रदाय की परंपरा में आने वाले रीतिकालीन सतनामी, लालदासी, नारायणी आदि संप्रदायों के शिष्य विलासमय आराधना में लीन हो गए। रागानुगा भक्ति में तो विलासमयी लीलाओं का पूरा अवकाश था ही अतः उस प्रकार से वैधी भक्ति के मर्यादा पुरूषोत्तम राम भी नहीं बच सकें। इसमें भी कृष्णभक्ति शाखा का तेजी से प्रसार हुआ क्योंकि यह रीतिकालीन प्रवृत्ति के अनुकूल थी। वल्लभ संप्रदाय में विट्ठलनाथ की मृत्यु के बाद अनेक गद्दियाँ देश भर में स्थापित हुईं। इन गद्दियों के गोस्वामियों ने लोभवश राजाओं और सामंतों से संपर्क कायम कर उन्हें दीक्षा देने लगे। सेवा-अर्चना की भक्ति पद्धति के नाम पर वहाँ ऐश्वर्य और विलास की तमाम तरह की लीलाएँ होने लगीं। श्री निम्बार्काचार्य ने कृष्ण भक्ति की जिस मुधर धारा की शुरूआत की उसे अधिकांश रीतिकाल के भक्त-कवियों ने बाह्य विलास की लीलाओं से हिंदी कविता को भर दिया। इसी तरह हितहरिवंश के राधावल्लभ संप्रदाय ओर चैतन्यमतानुयायी गोस्वामियों की प्रेममूला मधुरा भक्ति काममूला रति के रूप में बदल गई। रीतिकाल के कवि बौद्धिक ह्रास के कारण कृष्णभक्त कवियों की परंपरा का अनुकरण नहीं कर रहे थे वरन् उनकी शृंगार भावना को विलासमयी लीला के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। इसी का परिणाम है कि इस काल में 'सूरसागर' की जगह 'ब्रज विलास' ही लिखा जा सकता था और लक्ष्मणाचार्य की 'चंडी कुच पंचाशिका' में घोर विकृत शृंगार के उदाहरण ही दिए जा सकते थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्तों की ऐसी साधना में आंतरिक प्रेम-निवेदन की भावना के साथ ही बाह्य उपकरणों में भी सभी भाव, वेश-भूषा और हाव-भाव के अनुकरण को साधना-पक्ष के ह्रास का द्योतक माना है। भक्तिकाल में मध्वाचार्य, निम्बाकाचार्य, चैतन्य तथा वल्लभ जैसे संप्रदायों में राधा भाव से भक्ति की

प्रधानता थी लेकिन रीतिकाल में राधा भक्ति की आड़ में परकीया भाव की नायिका के रूप में सिमट कर रह गई। दरअसल रीतिकालीन कवि शृंगार-साधना के मानसिक विलास में ही डूबे रहते थे राधा एवं कृष्ण महज भक्ति व वैराग्य के बहाना भर थे-

"आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई
न तो राधिका कान्ह सुमिरन को बहानो है।"

दूसरी ओर इस्लाम धर्म पर रीतिकालीन वैभव-विलास का सीधा प्रभाव तो नहीं था किंतु रूढ़ि पालन के कारण यह भी तत्कालीन जीवन को प्रभावित करने में समर्थ न था। इस प्रकार हिन्दू और मुस्लिम धर्म अपने-अपने मूल तत्व-चिंतन से दूर होकर बाह्याचरण तक ही सिमट कर रह गया था। ऐसी स्थिति में धर्म के साथ मूल्यहीनता की स्थिति आ जाने से सामान्य जन धर्म के बाहरी विधान में ही जकड़ गए और उनके जीवन में अंधविश्वासों ने घर कर लिया। अंध परंपराओं का पालन अब सामान्य धर्म के रूप में स्वीकृत हो चुका था। हर धर्म के बिचौलिए जनता के अंधविश्वास का आये दिन लाभ उठाते थे। इस रूप में रीतिकाल में धर्म-स्थल व्यभिचार के केंद्र बन गए। इस युग में भी भक्तिकालीन परंपरा के संत और सूफी मौजूद थे किंतु उनमें पूर्ववत्ती संतों-सूफियों जैसी प्रतिभा नहीं थी जो किसी के जीवन को प्रभावित कर सकें। दरअसल रीतिकाल में धर्म मनोविनोद के एक साधन के रूप में तब्दील हो गया था। इस मायने में इस काल की धार्मिक पृष्ठभूमि में जनता के मानसिक परिष्कार की संभावना लगभग खत्म हो गई थी।

बोध प्रश्न –

- धार्मिक दृष्टि से रीतिकाल को क्या माना जाता है ?
- रीतिकाल में धार्मिक स्थितियाँ कैसी थी ?
- रीतिकाल में धर्म क्या बन गया ?

सांस्कृतिक-परिस्थिति

रीतिकाल के सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में तत्कालीन दरबारी संस्कृति का गहरा असर देखा जा सकता है। सभी कलाकारों को दरबार में ही प्रश्रय मिल रहा था चाहे वह दरबार मुगल बादशाह का, नवाबों का हो या अन्य राजा-महाराजाओं का। इस युग की कलाओं पर विलासिता का प्रभाव स्पष्ट है चाहे वह स्थापत्य कला हो, चित्रकला या संगीतकला। शाहजहाँ के शासन में स्थापत्य और चित्रकला में दरबारी परिवेश के अनुरूप अलंकरण की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत ज्यादा नजर आती है जबकि औरंगजेब को कलाओं के प्रति उतना लगाव नहीं था अतः उसके काल में कलाओं का ह्रास हुआ। मुगल दरबार में कलाएँ ईरानी शैली से प्रभावित थी जबकि हिन्दू दरबारों में पोषित कलाओं में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के प्रभाव के साथ तत्कालीन ईरानी शैली का भी असर देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न –

- मुग़ल दरबार की कलाएँ किस शैली से प्रभावित थी ?

चित्रकला :_जहाँगीर का समय चित्रकला की दृष्टि से स्वर्णकाल माना जाता है उसके बाद भी इस कला की समृद्धि में कमी नहीं आई। शाहजहाँ के काल में चित्रकला में अलंकरण की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत ज्यादा नजर आती है। औरंगजेब के बाद परवर्ती शासकों के प्रश्रय में चित्रकला महज अनुकरण मात्र होने के कारण उसमें समय के साथ जड़ता आने लगी। आरंभ में चित्रकला पर मुगल दरबार के ईरानी शैली का दबदबा रहा लेकिन बाद में इस पर भारतीय परंपराओं का भी असर देखा जा सकता है। हिन्दू रजवाड़ों विशेषतः राजस्थान और पर्वतीय क्षेत्रें में चित्रकला की एक भिन्न शैली विकसित हुई जिस पर लोक जीवन का प्रभाव था। राजस्थान तथा पर्वतीय क्षेत्रों में यह क्रमशः राजस्थानी और काँगड़ा चित्र शैली के नाम से प्रसिद्ध है। रागमाला राजस्थानी चित्र शैली का मुख्य विषय था जो ऋतुओं से संबंधित था। इसके अलावा इस शैली के चित्रों का विषय कृष्णलीला, नायिका भेद और बारहमासा भी रहा है। रीतिकाल के कई कवियों की रचनाओं में इसी प्रकार के चित्र अभिव्यक्त हुए हैं। जबकि काँगड़ा-शैली के चित्रों का विषय धर्म, पुराण, इतिहास, लोकगाथा एवं दैनिक जीवन से भी रहा है। इन चित्रों में भावमयता के साथ रहस्यात्मकता का भी पुट है। इस मायने में रीतिकाल में दरबारी वैभव एवं लोकजीवन दोनों के चित्र मिलते हैं।

बोध प्रश्न –

- चित्रकला की दृष्टि किसके समय को स्वर्ण काल कहा जाता है ?
- राजस्थानी चित्र शैली का मुख्य विषय क्या था ?

संगीत : रीतिकाल में संगीत कला का भी काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अकबर से लेकर जहाँगीर के शासन काल में संगीत कला ने जिस ऊँचाई को हासिल किया रीतिकालीन समय में शाहजहाँ के यहाँ संगीत का प्रभाव कुछ कम गया। इसका कारण यह था कि शाहजहाँ की रूचि संगीत की अपेक्षा स्थापत्य कला में ज्यादा थी। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता भी विशेषकर संगीत से अरूचि ही, संगीत कलाओं के विकास में बाधक बनी। लेकिन 18वीं सदी में मुहम्मदशाह रंगीले के शासन में दिल्ली दरबार में फिर से संगीतकारों को सम्मान मिलने लगा। दरअसल उस समय भारतीय संगीत फारसी प्रभाव से विलासवृत्ति प्रधान हो गया। इस युग में चतुरंग शैली में ख्याल, तराना, सरगम और चिवट (मृदंग के बोल) सबसे मिश्रण से संगीत की विचित्रतापूर्ण निर्मिति होती थी। डॉ. श्यामसुंदर दास ने तद्युगीन संगीत की प्रकृति को रेखांकित करते हुए लिखा है- “वाजिद अली शाह (अवध के नवाब) के समय की रंगीली ठुमरी अपने-अपने आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति की ही परिचायक नहीं लोक की प्रौढ़ रूचि में जिस क्रम से पतन हुआ उसका इतिहास भी है।”_दरअसल संगीत के क्षेत्र में इस काल में अवध, राजस्थान और ग्वालियर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ग्वालियर में शुद्ध शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ

साथ ही राजस्थान ने शास्त्रीय संगीत के भीतर स्थानीय लोक प्रभावों में विशिष्टता उत्पन्न कर दी। ग्वालियर के दरबार में संगीत की 'ध्रुपद' जैसी गंभीर शास्त्रीय शैली का विकास हुआ। अन्य कलाओं की भाँति रीतिकाल के संगीत में भी विलास वृत्ति का प्रभाव दिखाई देता है। संगीत में मौलिकता का अभाव होने के कारण यह रसिकता का पर्याय बन गई। इसके बावजूद इस युग में संगीतशास्त्र के कुछ प्रामाणिक ग्रंथों का निर्माण हुआ इससे इनकार नहीं किया जा सकता है।

बोध प्रश्न –

- रीतिकाल में संगीत किसका पर्याय बन गया ?

साहित्यिक-परिस्थिति

किसी भी काल के साहित्य पर तत्कालीन समाज और संस्कृति का प्रभाव जरूर पड़ता है। रीतिकालीन कविता भी अन्य कलाओं के समान दरबारी संस्कृति से प्रभावित है। इस काल के साहित्यिक दृष्टि के विकास में भारतीय साहित्य की ऐहिक शृंगारपरक मुक्तकों (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी) की परंपरा का काफी योगदान रहा है। इसमें प्राकृत भाषा में घोर शृंगारिक रचना हाल की 'गाथा सप्तशती' का प्रभाव रीतिकालीन कविता में ज्यादा रहा है। भक्तिकाल के अवसान होने पर भक्ति के आवरण में राधा-कृष्ण के माध्यम से रीति कवि अपने आश्रयदाताओं की विलासपरक रूग्ण मानसिकता को घोर शृंगारिक रचनाओं द्वारा पूर्ति करना तथा उनकी तत्कालीन पेशागत मजबूरी के साथ फैशन भी बन गई। रीतिकालीन इस साहित्यिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं- "हिंदी में शृंगार की काव्यधारा भक्ति से ही फूटी अतः स्वकीया-प्रेम के लिए उसमें अवकाश न रहा। प्रेम के विस्तार और वैविध्य के लिए परकीया - प्रेम ही अधिक उपयुक्त था, फिर दरबारों में फारसी प्रेम-पद्धति के निरूपण में भी परकीया-प्रेम में आवेग और तीव्रता का प्रदर्शन किया जाता था जिससे हिंदी के कवि भी अछूते न रह सकें। भारतीय मर्यादा को ध्यान में रखकर प्रेम के आलंबन कृष्ण और राधा ही रखे गए। घोर वासनापूर्ण रचना करने वालों ने भी भक्ति को शृंगारिकता का आवरण बनाए रखा। इन कृष्ण भक्त कवियों ने अपने भगवत् प्रेम की पुष्टि के लिए जिस शृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना से जनता को रासोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखने वाले विषय वासना पूर्ण जीवों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इसकी ओर उन्होंने ध्यान न दिया। फलतः रीतिकालीन कविता में राधा-कृष्ण के नाम के साथ उनकी वे सारी लीलाएँ भी आ गईं जो तदयुगीन विलासित अभिव्यक्ति में सहायक हुई।"

इस मायने में अपने आश्रयदाताओं के संरक्षण में पलने वाले रीतिकालीन कवियों की कविता विलासपूर्ण, अतिशय अंलकरण-प्रधान, चमत्कार और बाह्य प्रदर्शन की दरबारी-भावना से प्रभावित थी। लेकिन रीतिकाल में कुछ जन कवि ऐसे भी थे जो राजकीय परिवेश से मुक्त होकर सर्जन करने में लीन थे। ऐसे कवियों की कविता मार्मिक और अलंकरण से सर्वथा अछूती

रहती थी। इस युग में राजाश्रित और जनकवियों द्वारा रचित साहित्य काफी विशद है जिसका मूल्यांकन अभी भी सम्यक् रूप में नहीं हो सका है।

बोध प्रश्न –

- रीतिकाल में प्रेम के विस्तार के लिए किस तरह के प्रेम को उपयुक्त माना ?
- रीतिकाल कवियों की कविता किससे प्रभावित हुई ?

11.3.2 उत्तर-मध्यकालीन काव्य-बोध

किसी भी कवि या युग के काव्य-बोध के निर्माण में परंपरा, तत्कालीन परिस्थितियों और रचना-उद्देश्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परंपरा के धरातल पर रीतिकाल के कवियों के सामने शृंगारिकता की ओर अग्रसर भक्तिकालीन काव्य धाराएँ थीं, तत्कालीन परिस्थितियों के रूप में विलासिता और वैभव से युक्त सामंतवादी प्रकृति वाली दरबारी संस्कृति थी और रचना-उद्देश्य के धरातल पर आजीविका-निर्वाह की चिंता भी। इस कारण रीतिकालीन कवियों का काव्य-बोध अपने स्वरूप में दरबारी, काव्यशास्त्रीय और शृंगारी है तथा वह कविता मानवीय अनुभूतियों के स्थान पर शिल्प-सौंदर्य को प्रश्रय देती है। इसे थोड़ा विस्तार में हम अग्रलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत समझ सकते हैं।

बोध प्रश्न –

- रीतिकालीन कवियों का काव्य बोध कैसा था ?

भक्ति का शृंगार में रूपान्तरित काव्य-बोध

रीतिकालीन कवियों को परंपरा के प्रदेय के रूप में शृंगारोन्मुख भक्ति-चेतना मिली थी। वस्तुतः भक्तिकाल के उत्तरार्द्ध में शृंगार तत्त्व की उपस्थिति कविता में बढ़ने लगी थी। भक्तिकाव्य में जिन कवियों के यहाँ भक्ति का माध्यम शृंगार था वहाँ शृंगार आवरण के रूप में उपस्थित था जिसके भीतर सार-तत्त्व के रूप में भक्ति अवस्थित थी। लेकिन, कालान्तर में यह भक्ति-चेतना लगभग विलुप्त हो गई और शृंगार मात्र शेष रह गया। कविता में शृंगार के धीरे-धीरे बढ़ने के पीछे कृष्ण काव्यधारा की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु जैसे दार्शनिकों के प्रभाव से शृंगार-प्रधान कृष्ण भक्ति की परंपरा शुरू हुई। यूँ तो आरंभ से ही कृष्णकाव्य धारा में शृंगार की ठोस उपस्थिति थी किन्तु परवर्ती कृष्ण काव्यधारा में तो ईश्वर महज एक आवरण के रूप में रह गया और इस आवरण के पीछे मानवीय प्रेरित वृत्ति विशेषकर शृंगार के सभी रूप खुलकर व्यक्त होने लगे। रामकाव्य के उत्तरार्द्ध में भी रामचरणदास और प्रयागदास जैसे कवियों ने इस धारा में शृंगार को आरोपित कर डाला। अकारण नहीं है कि डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी सहित अन्य समीक्षकों ने संकेत किया है- 'रीतिकाल भक्तिकाल का ही उत्तरकालीन शृंगारमण्डन है।'

उत्तर मध्यकालीन काव्य-बोध को जानने के लिए तद् युगीन मनोविज्ञान को भी समझना जरूरी है। मनुष्य लम्बे समय तक एक ही भाव से अपने जीवन में संतुष्ट नहीं होता। फिर भक्ति जैसे अलौकिक आवरण जो ऐहिक संसार के सहज भाव-बोध से काफी दूर था तो कैसे कोई अपने चित्त को इसे स्थायी रूप से बाँध सकता था। इसलिए उत्तर मध्यकाल में अलौकिकता के कुहासे से निकलकर लौकिक जीवन के उल्लास को खुलकर जीने की इच्छा उस समाज के भीतर बलबती होने लगी। अतः रीतिकाल में शृंगार जैसे सहज लौकिक भाव अब भक्ति के आवरण के बिना व्यक्त होने लगे। यही कारण है रीतिकाल के काव्य-बोध में शृंगार की केंद्रीयता रही है। भिखारीदास तो स्पष्ट रूप में घोषणा करते हैं कि राधा-कृष्ण की भक्ति तो सिर्फ बहाना है मेरा असली उद्देश्य तो भक्ति की आड़ में शृंगारिक मनोवृत्ति से आश्रयदाताओं को मनोरंजन कर यश की प्राप्ति करना है।

बोध प्रश्न –

- रीतिकालीन कवियों की भक्ति का माध्यम क्या था ?

दरबारी संस्कृति से निर्मित काव्य-बोध

उत्तर मध्यकालीन अर्थात् रीतिकाल के काव्य-बोध में दो स्थितियाँ महत्त्वपूर्ण हैं- (i) रीतिकाल के आरंभ में दरबारी संस्कृति से विकसित काव्य-बोध (ii) दरबारी संस्कृति के प्रतिपक्ष से विकसित काव्य-बोध। रीतिकाल के आरंभ में भारत में केंद्रीय सत्ता के रूप में मुगल प्रतिष्ठित थे। केंद्रीय सत्ता द्वारा छोटे-छोटे रजवाड़ों पर नियंत्रण होने के कारण युद्ध प्रायः नहीं के बराबर होते थे। मुगल दरबार के वैभवयुक्त परिवेश में दो तरह की ही कविता संभव थी- वीरता और शृंगार की। युद्ध की अनुपस्थिति के परिवेश में शृंगार रीतिकालीन काव्य-बोध की केंद्रीय धुरी थी। केंद्रीय सत्ता के कमजोर होने पर स्थानीय रजवाड़ों, नवाबों, सामंतों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया और मुगलकालीन वैभव का जीवन में अनुकरण करने लगे। जीवन में सामंतवादी मूल्यों का बोलबाला होने के कारण प्रदर्शन और विलासिता को बढ़ावा मिलने लगा। इस परिवेश में रीतिकालीन कवियों में अपने आश्रयदाताओं को रिझाने की होड़ लगी रहती थी। इस मायने में रीतिकालीन काव्य-बोध दरबारी संस्कृति के परिवेश से विकसित हुआ, जिसमें शृंगारिकता, चमत्कार-प्रियता, आलंकारिता अतिश्योक्ति जैसी स्थितियाँ इसके अनिवार्य हिस्सा हैं।

दरबारी संस्कृति के प्रतिपक्ष में विकसित भाव-बोध भी उत्तर मध्यकालीन काव्य-बोध का विशिष्ट पहलू रहा है। रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में रीतिमुक्त कवियों ने तद्युगीन रीतिवादी मानसिकता व घोर शृंगारिकता के विरोध में आत्मानुभूति को कविता के लिए निर्णायक माना। ये कवि अपनी गहन प्रेम की अनुभूतियों के लिए कवि कर्म में प्रवृत्त होते थे न कि आश्रयदाताओं

को रिझाने के लिए। घनानंद, बोधा, ठाकुर जैसे कवि इस काव्य-बोध के प्रतिनिधि कवि हैं। घनानंद कविता के प्रति सजग दायित्व-बोध के कवि हैं-

"लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।"

रूढिगत परिपाटी और अलंकृति-मोह को अनावश्यक, बताते हुए ठाकुर आक्रामक तेवर में आलोचना करते हुए कहते हैं-

"डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।"

इस प्रकार रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में काव्य-बोध के विकसित होने में अनुभूति की तीव्रता और प्रेम के उदात्त पक्ष की भूमिका अहम रही है जो कवियों के जीवन अनुभूति का ही अनिवार्य हिस्सा था।

बोध प्रश्न –

- घनानंद किस प्रकार के कवि हैं ?
- ठाकुर का तेवर कैसा था ?

काव्यशास्त्रीय दबावों से विकसित काव्य-बोध

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबार पर आश्रित थे जिन्होंने आत्म-ज्ञान प्रदर्शन के साथ रसिकों को ज्ञान देने हेतु काव्यशास्त्रीय 'रीति निरूपण' की परंपरा का आरंभ किया। इस काल के रीतिबद्ध कवियों ने अपने राजाओं, सामंतों, नवाबों, जागीरदारों व धनिकों को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए लक्षण ग्रंथों की रचना की। इस काल के कवियों के आश्रयदाता साहित्य के पारखी नहीं थे बल्कि वे ऐसे विलासी रईस थे जिनमें तर्क की सूक्ष्मता को समझने का न तो विवेक था न ही उन्हें इसके लिए अवकाश था। रीतिबद्ध कवियों ने रीति-निरूपण की तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति की। साथ ही ये रचनाकार अपने काव्यशास्त्रीय ज्ञान का धौंस जमाकर अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न कर आर्थिक रूप से सहायता भी प्राप्त करते थे। रीति-निरूपण की यह प्रवृत्ति उत्तर मध्यकाल के काव्य-बोध का अनिवार्य हिस्सा था।

रीति-निरूपण का मतलब उस लक्षण ग्रंथ से जिसमें काव्यांगों का लक्षण-निरूपण करके उनके उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित पद दिए जाते थे। रीतिबद्ध धारा के कवियों ने कविता लिखने की यह प्रणाली बना ली थी कि पहले दोहे में लक्षण लिखते थे और फिर उसके उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित कविता उपस्थित करते थे। इस धारा के कवि पहले संस्कृत के लक्षण या सिद्धांत का अनुवाद ब्रजभाषा में प्रस्तुत करते थे और फिर उदाहरण के रूप में कविता लिखते

थे। इस काव्यधारा को 'लक्षण ग्रंथ परंपरा' भी कहते हैं। इस धारा के कवियों में केशवदास, कुलपति, भिखारीदास, पद्माकर चिंतामणि, देव, मतिराम आदि हैं।

रीतिग्रंथकार सहृदय और कुशल कवि थे। उनका मूल उद्देश्य काव्य की रचना करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय निरूपण करना। अतः ये काव्यांगों की परिभाषा कुछ देते हैं और उदाहरण के रूप में कुछ और प्रस्तुत करते हैं। इसलिए लक्षण एवं उदाहरण के बीच यह असंगति इनके लक्षण-ग्रंथों को संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुवाद भी नहीं बनने देती। काव्यशास्त्रीय विवेचन के लिए इन्होंने सभी काव्यांगों को नहीं चुना है। रीति, वक्रोक्ति और औचित्य की उपेक्षा करते हुए ये रस, अलंकार और ध्वनि-निरूपण को प्राथमिकता देते हैं। कारण यह है कि ये काव्यांग उक्ति-वैचित्र्य एवं शब्द-चमत्कार में सहायक हैं। रीतिकालीन कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से रस और अलंकार के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं पर इसके बावजूद यह ध्यान रखने योग्य बात है कि इस काल में कवियों ने रीति (शास्त्र) का निरूपण पहले किया है कविता बाद में। रीति निरूपण की इसी प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में रीतिकालीन कविता का काव्य-बोध विकसित होता है।

रीति-निरूपण के क्रम में ये आचार्य कवि नायिका-भेद का भी उल्लेख करते हैं। इन्होंने नायिका का वर्गीकरण दो रूपों में किया है- (i) ज्येष्ठा (जिसके प्रति नायक विशेष रूप से अनुरक्त हो) और (ii) कनिष्ठा (अन्य पत्नियाँ जिससे नायक उतना प्रेम नहीं करता)। आचार्य तोष ने नायिका के इस वर्गीकरण के बारे में लिखा है-

"पिय को जिय जासो रमै, सोई ज्येष्ठा होय
आनि कनिष्ठा जानियै, कहै समाने लोई।"

इसी प्रकार आचार्य कवि अलंकार-निरूपण की ओर भी प्रवृत्त होते हैं। सुरति मिश्र ने एक ही दोहे में लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत करते हुए असंगति अलंकार को निम्न रूप में परिभाषित किया है-

"सो असंगति, कारन अवर, कारज औरे थान।
चलि अहि श्रुति आनहिं डसत, नसत और के प्रान।।"

अर्थात् जहाँ कारण और कार्य में असंगति/विरोधाभास हो, कारण कुछ हो और संपादित कार्य भिन्न हो, वहाँ असंगति अलंकार होता है। यहाँ पर पहली पंक्ति में असंगति अलंकार की परिभाषा दी गई है और दूसरी पंक्ति में श्रुति-परंपरा के द्वारा बताया गया है कि जहाँ साँप डँसता किसी को हो और प्राण किसी और का जाता है।अतः काव्यशास्त्रीय रीति-निरूपण

नायिका भेद, अलंकार निरूपण आदि के क्रम में उत्तर-मध्यकालीन कवियों का काव्य-बोध विकसित होता है।

बोध प्रश्न –

- रीति-निरूपण क्या है ?
- रीति-निरूपण का नाम बताइए।
- रीतिकालीन कवियों का महत्वपूर्ण योगदान क्या है ?

शृंगारिक अवबोध से निर्मित काव्य-बोध

दरबारी परिवेश में उत्तर मध्यकालीन काव्य-बोध का अनिवार्य हिस्सा शृंगारिकता रहा है। कवियों के आश्रयदाता सामान्यतः दरबारी संस्कृति के सामन्त वर्ग से संबंधित थे जो जीवन में ही नहीं कलाओं में भी काम (शृंगार) के उपासक थे। इन कवियों ने अपनी शृंगारिक रचनाओं के माध्यम से अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन कर जीविकोपार्जन हासिल करना चाहा। शृंगार-चित्रण इनकी पहली प्राथमिकता नहीं है। दरअसल इनकी शृंगारिक चेतना का प्रेरक विलासी आश्रयदाताओं का रति-भाव था। अतः इस काल के कवियों के काव्य-बोध के केंद्र में शृंगारिकता अनिवार्य रूप से रही है-

"मनुज रूप है अवतर्यौ, तीन वस्तु को जोग।
द्रव्य-उपार्जन, हरि भजन अरू कामिनी-संजोग।"

रीतिकाल के काव्य-बोध में शृंगार मूल उपादान रहा है कवियों के जीविका के लिए हरि भजन तो उनके लिए बहाना भर था। रीतिकाल के काव्य-बोध में शृंगारिकता एक ओर काव्यशास्त्रीय बंधनों के निर्वाह में दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट तथा विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के फलस्वरूप अपना आकार ग्रहण करती है। इस काल के काव्य-बोध के निर्माण में संस्कृत, प्राकृत परंपरा के घोर शृंगारपरक ऐहिक रचनाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस परंपरा ने रीतिकाल के शृंगारिक काव्य दृष्टि को उन्मुक्त और मांसल रूप प्रदान किया। शृंगार वर्णन के क्रम में कवियों ने स्त्री के मांसल शरीर एवं शारीरिक क्रियाओं से अपनी कविता को भर दिया-

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात
भरे भौंन में करत हैं, नैननु ही सौं बात।"

बोध प्रश्न –

- उत्तर मध्यकालीन काव्यबोध का अनिवार्य हिस्सा क्या है ?
- इन कवियों का मुख्य उद्देश्य क्या था ?

11.3.3 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

हिंदी साहित्य के इतिहास में उत्तर मध्यकाल को सामान्य रूप से 'रीतिकाल' के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'रीतिकाल' के लिए संवत् 1700 से संवत् 1900 (1643 ई. से लेकर 1843 ई.) तक के कालखण्ड का निर्धारण किया है लेकिन हजारी प्रसाद द्विवेदी 17वीं सदी से 19वीं सदी के मध्य तक की काल सीमा रीतिकाल के लिए निर्धारित करते हैं। आचार्य शुक्ल सहित कई विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि रीतिकाल नामकरण में 'रीति' शब्द का प्रयोग रीति-संप्रदाय के संदर्भ में नहीं हुआ है बल्कि इसका अर्थ है- अनुकरण करने की प्रवृत्ति। इस काल में बहुत सी रचनाएँ काव्यशास्त्रीय या अन्य प्रकार के शास्त्रीय ग्रंथों अथवा सिद्धांतों के अनुकरण में लिखी गईं। अनुकरण की यह परंपरा या मानसिकता ही 'रीति' कहलाई। रीतिकाल नामकरण ही इस बात का संकेतक है कि इस काल में रीति-निरूपण की प्रधानता थी।

रीतिकाल के विशिष्ट काव्य-प्रणाली को 'रीतिकाव्य' कहना उचित समझा गया। इस काल के अधिकांश कवि आजीविका के लिए दरबारों में रहते थे और अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए कविता लिखते थे। यही कारण है कि विषय और प्रस्तुतीकरण दोनों ही दृष्टियों से रीतिकाल की कविता तत्कालीन दरबारी मनोवृत्ति से गहरे रूप में प्रभावित रही है।

रीति-निरूपण अथवा आचार्यत्व

रीतिकाल में काव्य जीवन-जगत् के यथार्थ के अनंत रूपों, मानव- हृदय के सहज भावों और मानव-चरित्र की विविधता से कटकर रीति-ग्रंथों में बताए रूपों, भावों और नायिका-भेद तक सीमित हो गया। अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि के रूपवादी पूर्वग्रह कला की दरबारी भूमि में महत्त्वपूर्ण हो गए। इससे रीतिकाल में रीति-निरूपण की प्रवृत्ति विकसित हुई। रीतिकाल के अंतर्गत राजाश्रित कवियों में से अधिकांश तथा राजाश्रय से बाहर जनकवियों में से कुछ ऐसे कवि थे, जिन्होंने आत्म-प्रदर्शन की भावना तथा काव्य-रसिक-समुदाय को काव्यांगों का सामान्य ज्ञान प्राप्त कराने के उद्देश्य से ब्रजभाषा में रीतिग्रंथों का निर्माण किया। रीतिग्रंथों के निर्माण की बहुलता में ही इन कवियों की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति रीति-निरूपण की ही थी।

रीतिकालीन कवि महज दरबारी होने के नाते दरबारी दायित्व का निर्वाह नहीं कर रहे थे। वे कवि-शिक्षक-आचार्य भी थे। इसलिए कवि-शिक्षक-आचार्य के दायित्व का निर्वहन करते हुए उन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्र को सहज और सरल बनाकर हिंदी के काव्यशास्त्र का निर्माण किया है और कवियों की आनेवाली पीढ़ी को काव्यशास्त्र की जानकारी और कविता करने की विधि बतलाने की कोशिश की है। रीति-निरूपण का मतलब उस लक्षण ग्रंथ से है, जिसमें

काव्यांगों का लक्षण-निरूपण करके उनके उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित पद दिए जाते थे। इस काल के कवियों ने कविता लिखने की यह प्रणाली बना ली थी कि पहले दोहे में लक्षण लिखते थे और फिर उसके उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित कविता उपस्थित करते थे। इसलिए इस काल का रचनाकार आचार्य और कवि दोनों का काम एक साथ करता था। लेकिन इस प्रवृत्ति से सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण पर गहरा असर पड़ा। किन्तु इससे लक्षण-ग्रंथों में नये सिद्धांत, नये मत सामने नहीं आये, बल्कि पुराने मतों को ही दुहराया गया।

बोध प्रश्न –

- रीति निरूपण से क्या अभिप्राय है ?

रीतिकाल में रीति-निरूपण की व्यापक प्रवृत्ति का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर इसके भीतर ही कई अंतः प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। ग्रंथकार की दृष्टि, काव्यांग विवेचन एवं निरूपण-शैली के आधार पर रीति-निरूपण के अलग-अलग भेद किए जा सकते हैं। ग्रंथकार की दृष्टि के आधार पर रीति-निरूपण के तीन भेद किए जा सकते हैं-

(i) मात्र रीति-कर्म के आधार पर

(ii) रीति कर्म एवं कवि-कर्म के आधार पर

(iii) मात्र रीतिबद्ध दृष्टिकोण के आधार पर।

काव्यांग-विवेचन की दो अंतः प्रवृत्तियाँ मिलती हैं-

(i) सर्वांग विवेचन की एवं (ii) विशिष्टांग विवेचन की। सर्वांग-विवेचन के अंतर्गत काव्य-लक्षण, काव्य हेतु, प्रयोजन, काव्य-भेद, शब्द शक्ति, काव्य की आत्मा, काव्य-गुण, दोष, रीति, अलंकार तथा छंद का निरूपण किया गया है। चिंतामणि का 'कवि कुल कल्पतरू', देव का 'शब्द रसायन', कुलपति का 'रस रहस्य', दास का 'काव्य निर्णय'- इसी तरह के ग्रंथ हैं।

विशिष्टांग विवेचन के अंतर्गत काव्यांगों में रस, अलंकार एवं छंद में से किसी एक अथवा दो अथवा तीनों को विवेचन का विषय बनाया गया है। अधिकांश ग्रंथों में रस के विवेचन में शृंगार रस की प्रधानता है। रस विलास (चिंतामणि), रसार्णव (सुखदेव मिश्र), रस प्रबोध (रसलीन), रसराज (मतिराम), शृंगार-निर्णय (दास) आदि इस कोटि के ग्रंथ हैं।

विवेचन शैली के आधार पर तीन तरह के शैली-भेद किए जा सकते हैं। पहले प्रकार की विवेचन-शैली में लक्षण-उदाहरणों के अतिरिक्त वृत्ति (व्याख्या) देकर विषयों को समझाने का प्रयत्न किया गया है। दूसरे प्रकार की विवेचन-शैली में एक ही छंद में लक्षण एवं उदाहरण दिए

गए हैं। तीसरे प्रकार की शैली में लक्षण के साथ-साथ सरस उदाहरण द्वारा विषय निरूपण किया गया है। यहाँ लक्षण उदाहरण पृथक-पृथक हैं।

रीति-निरूपण का मूल कारण इस काल की सामंती मनोवृत्ति में ढूँढा जा सकता है। यद्यपि ये रीति निरूपक आचार्य कवि-शिक्षक-आचार्य के दायित्व का निर्वाह कर रहे थे, लेकिन अर्थोपाजन इनकी सर्वोच्च प्राथमिकता थी। इसके लिए रीतिकालीन रचनाकार अपने काव्यशास्त्रीय ज्ञान का धौंस जमाकर अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न कर पुरस्कार प्राप्त करना चाहते थे। और ये आश्रयदाता साहित्य के पारखी नहीं थे बल्कि ऐसे विलासी रईस थे, जिनमें तर्क की सूक्ष्मता को समझने की न तो शक्ति थी, न ही उन्हें अवकाश था। अपने आश्रयदाताओं को काव्य समझाने के लिए रीतिकवियों ने रीति-निरूपण की तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति की। इसलिए इन कवियों में रीति निरूपण के प्रति मौलिकता का साफ अभाव दिखाई देता है।

बोध प्रश्न –

- रीति-ग्रंथों में प्रधान रस क्या है ?
- 'रस विलास' के रचनाकार का नाम बताइए.

रीतिग्रंथकार सहृदय और कुशल कवि थे। उनका मूल उद्देश्य काव्य की रचना करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय निरूपण करना। अतः ये काव्यांगों की परिभाषा कुछ देते हैं और उदाहरण के रूप में कुछ और प्रस्तुत करते हैं। इसलिए लक्षण एवं उदाहरण के बीच यह असंगति इनके लक्षण-ग्रंथों को संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुवाद भी नहीं बनने देती। काव्यशास्त्रीय विवेचन के लिए इन्होंने सभी काव्यांगों को नहीं चुना है। रीति, वक्रोक्ति और औचित्य की उपेक्षा करते हुए ये रस, अलंकार और ध्वनि-निरूपण को प्राथमिकता देते हैं। कारण यह है कि ये काव्यांग उक्ति-वैचित्र्य एवं शब्द-चमत्कार में सहायक हैं। रीतिकालीन कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से रस और अलंकार के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं पर इसके बावजूद यह ध्यान रखने योग्य बात है कि इस काल में कवियों ने रीति (शास्त्र) का निरूपण पहले किया है कविता बाद में।

रीति निरूपण की प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में रीतिकालीन कविता की विभिन्न प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं। रीतिकाल के पहले तक अभिधात्मक शैली में लिखी गई कविता को उत्तम माना जाता था। लाक्षणिक शैली में लिखी गई कविता साधारण मानी जाती थी और व्यंजनात्मक शैली की कविता निम्न कोटि की मानी जाती थी। कारण यह था कि लक्षणा और व्यंजना साधारणीकरण और रस-निष्पत्ति में रूकावट पैदा करती थी। लेकिन रीतिकालीन कवि देव इस अवधारणा को उलट देते हैं-

"अभिधा उत्तम काव्य है मध्य लक्षणा लीन।

अधम व्यंजना रस-विरस, उल्टी कहत नवीन।"

बोध प्रश्न –

- रितिग्रंथाकार का मूल उद्देश्य क्या था ?
- लक्षण- ग्रंथों में असंगति क्यों है ?

रीति-निरूपण के क्रम में ये आचार्य नायिका-भेद का भी उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार आचार्य अलंकार-निरूपण की ओर भी प्रवृत्त होते हैं। इस रूप में रीति-निरूपण की समस्त प्रवृत्तियों के विश्लेषण के फलस्वरूप कहा जा सकता है कि इस काल के समस्त रीति कवियों ने अपने ग्रंथों का निर्माण सामान्य पाठकों को काव्यशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए किया है। यद्यपि हिंदी के रीति ग्रंथकारों ने लक्षण-निरूपण में संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों को ही मूल आधार माना है, फिर भी उनमें विवेचन की वह सूक्ष्मता और गहराई नहीं आ सकी है जो संस्कृत में दिखाई पड़ती है। हिंदी के रीति ग्रंथकारों में मौलिक उद्भावनाओं का सर्वथा अभाव है। ये ग्रंथकार मूलतः कवि-शिक्षक आचार्य हैं।

काव्यत्व और आचार्यत्व का मिश्रण

शास्त्र और रचना में एक समानान्तर रूप से अलगाव रहा है। लेकिन रीतिकाल में शास्त्रीयता और रचनात्मकता का यह समानान्तर अलगाव खत्म हो जाता है और रचना (काव्य) और शास्त्र एक ही व्यक्ति में समाहित हो जाते हैं। केशवदास, चिंतामणि, भिखारीदास और पद्माकर जैसे रचनाकारों की मूल चिंता सस्कृत काव्यशास्त्र के नियमों के आधार पर रचना (काव्य) करना और उस शास्त्र को लोकभाषा में रूपान्तरित करना रहा है। इसलिए रीतिकाल के इन कवियों को आचार्य कवि भी कहा गया है। रीतिकालीन काव्यत्व और आचार्यत्व के मिश्रण का एक उदाहरण देव की उक्ति में देखा जा सकता है-"रसनि सार सिंगार रस प्रेम सार सिंगार।" आचार्य शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों की धारणा है कि ये मूलतः रचनाधर्मी थे। आचार्यत्व उनके समय और आजीविका की माँग से उत्पन्न हुआ था। अतः रीतिकाल में शास्त्र और रचनात्मकता का अपूर्व मिश्रण दिखाई देता है।

बोध प्रश्न –

- रीतिकाल के कवियों को आचार्य कवि क्यों कहा जाता है ?
- रीतिकाल में किन चीजों का मिश्रण दिखाई देता है ?

शृंगार की व्यापकता

रीतिकालीन काव्य का मूल कथ्य या प्रतिपाद्य शृंगार रहा है। रीति कवियों ने भक्ति भावना (राधा-कृष्ण) का इस्तेमाल ढाल रूप में करते हुए कालान्तर में इसी माध्यम से अपनी शृंगार-भावना की उन्मुक्त अभिव्यक्ति करने लगे।

रीतिकालीन काव्य में शृंगार की व्यापकता का कारण उस काल के सामाजिक संदर्भों, साहित्यिक परंपराओं और आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति में देखा जा सकता है। कवियों के आश्रयदाता सामान्य रूप से सामन्त वर्ग से संबंध रखता था जो काम देवता का उपासक था। शृंगार-चित्रण इनकी पहली प्राथमिकता नहीं है। दरअसल इनकी शृंगारिक चेतना का प्रेरक आश्रयदाताओं का रति-भाव था। अतः इस काल के कवियों ने शृंगार को केंद्र में रखकर कविता लिखी। रीतिकाल में शृंगारिकता एक ओर काव्यशास्त्रीय बंधनों के निर्वाह में दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट तथा विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारणस्वरूप अपना आकार ग्रहण करती है। लेकिन इन कवियों के शृंगार-चित्रण पर दरबारी संस्कृति का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। इस काल के शृंगार का आधार है- नारी का मांसल शरीर। रीतिकालीन शृंगार की महत्त्वपूर्ण विशेषता है- मादकता। रीतिकालीन कवि अपनी कविता को मादकता के तत्वों से परिपूर्ण रखना चाहता है। इसलिए कवि शृंगार वर्णन के क्रम में आडंबरपूर्ण वातावरण और स्त्री के कामुक-वेशभूषा का वर्णन करता है। रीतिकाल के शृंगार का चित्रण तीन शैलियों में हुआ है- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त।

बोध प्रश्न –

- रीतिकालीन शृंगार की क्या विशेषता है ?
- शृंगार चेतना का प्रेरक क्या था ?
- शृंगार का आधार क्या था ?

रीतिबद्ध अर्थात् आचार्य कवियों ने काव्यांग निरूपण करते हुए उदाहरण स्वरूप शृंगारिक रचनाएँ प्रस्तुत की है। संस्कृत आचार्य भी काव्यांग निरूपण के क्रम में शृंगारपरक उदाहरण ही दिया करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि काव्यशास्त्र के सभी अंगों के उदाहरण इसी एक रस में प्राप्त होने लगे। यही परंपरा हिंदी में भी चली। शृंगारिक रचनाओं से ये कवि अर्थलाभ, अपनी तथा आश्रयदाताओं की काम-वासना की तृप्ति एवं काव्यशास्त्रीय उद्देश्यों की सिद्धि करते थे। इन कवियों ने प्रेम को अतीन्द्रिय रूप देने अथवा वासना के उन्नयन का प्रयत्न नहीं किया।

रीतिसिद्ध कवियों ने शृंगार रस की दूसरी शैली का प्रणयन किया है। इनका काव्य रीति-निरूपण से दूर है, किंतु रीति की छाप लिए हुए है। इस खेमे के कवियों ने शृंगार में मोहकता का समावेश कर दिया है। अपने सीमित क्षेत्र में इनका काव्य अत्यंत व्यंजक एवं प्रभावोत्पादक है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि ‘उसमें चित्त को विश्राम देने का महान गुण है।’ बिहारी, रसनिधि आदि इस वर्ग में हैं।

शृंगार रस की तीसरी शैली रीतिमुक्त कवियों द्वारा अपनायी गई है। ये 'प्रेम की पीर' के सच्चे गायक थे। इनके शृंगार में प्रेम की तीव्रता भी है एवं आत्मा की पुकार भी। घनानंद, आलम इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं।

रीतिकाव्य का शृंगार एक चेतन व्यक्ति का दूसरे चेतन व्यक्ति के प्रति सक्रिय आकर्षण उतना नहीं, जितना कामुक व्यक्ति का उपभोग्य वस्तु के प्रति लोलुप आकर्षण है। यहाँ काम-वृत्ति की अभिव्यक्ति में पूर्ण स्वच्छंदता है। रीतिकालीन शृंगार जीवन से कोई गहरा सरोकार नहीं रखता। उसका बुनियादी आधार रसिकता है, प्रेम नहीं। केवल रीतिमुक्त कवि अपवाद हैं। उनके प्रेम-चित्रण को सच्चा एवं स्वाभाविक कहा जा सकता है।

रीतिकालीन शृंगार का स्वरूप भोगपरक होने के बावजूद गार्हस्थिक भी है। इस काल के शृंगार के स्वच्छंद व कुण्ठारहित रूप पर डॉ. नगेंद्र लिखते हैं- "रीतिकाल में काम-वृत्ति की अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण स्वच्छंदता थी। अतएव रीतिकाव्य की शृंगारिकता में अप्राकृतिक गोपन अथवा दमन से उत्पन्न ग्रंथियाँ नहीं हैं। उसमें स्वीकृत रूप से शरीर सुख की साधना है, जिसमें न आध्यात्मिकता का आरोप है न वासना के उन्नयन अथवा प्रेम को अतीन्द्रिय रूप देने का उचित-अनुचित प्रयास।"

रीतिकाल के शृंगार-चित्रण में शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का विस्तृत एवं विविध रूपों में चित्रण हुआ है। यहाँ नख-शिख, नायिका-भेद, ऋतु-वर्णन, बारहमासा आदि शृंगार का कोई भी रूप अछूता या अपूर्ण नहीं रहा है। नख-शिख वर्णन में कवि ने परंपरागत ढँग से नायिका के शरीर के विभिन्न अंगों के स्थूल सौंदर्य का वर्णन किया है जिसमें चमत्कार-प्रदर्शन पर विशेष ध्यान रखा जाता था जिससे दरबारी या आश्रयदाताओं का मनोरंजन हो सके-

"आँखें अधखुली, अधखुली खिरकी है खुली
अधखुले आनन पै अधखुली अलकैं।।" (पद्माकर)

बोध प्रश्न –

- रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध शाखाओं के प्रतिनिधि कवियों के नाम बताइए.

अतिशय अलंकरण की प्रवृत्ति

रीतिकाल में अलंकरण की प्रवृत्ति बहुत थी। इस काल के काव्य में अलंकरण की प्रधानता देखकर ही **डॉ- रसाल** ने इसे **'अलंकृत काल'** कहना अधिक उचित समझा है। रीतिकाल के सामंती तंत्र में कविता एक वस्तु के रूप में परिणत हुई इसलिए कविता की अंतर्वस्तु की तुलना में उसका रूप तत्काल महत्त्वपूर्ण हो गया। रूप का सीधा संबंध अलंकृति से है इसलिए कवियों ने अंलकार को कविता के शोभाकारक धर्म के रूप में नहीं बल्कि उसमें चमत्कार उत्पन्न करने के

लिए अपनाया। रीतिकालीन कविता दरबार में आनंद प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखी गई स्थूल देहवादी कविता थी अतः अलंकारों पर विशेषतः शब्दालंकारों पर खास ध्यान दिया गया-

"कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।" (बिहारी)

वस्तुतः अलंकरण रीतिकाव्य की एक शक्ति भी है और सीमा भी। जहाँ कवि ने अलंकारों के माध्यम से कविता में गति और चित्र उत्पन्न करने की कोशिश की है वहाँ कविता का प्रभाव बढ़ा है, लेकिन भावपूर्ण मार्मिक प्रसंगों में अलंकारों के अनावश्यक प्रयोग से कविता की प्रभावान्विति क्षतिग्रस्त भी हुई है।

बोध प्रश्न –

- रीतिकाल को अलंकृत काल क्यों कहा गया ?
- कवियों ने अलंकारों का प्रयोग क्यों किया ?

स्वच्छन्दता

रीतिकाल के भीतर स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति रीतिमुक्त कवियों की अपनी मौलिक विशेषता है। रीतिमुक्त कवियों ने खुले शब्दों में एवं सजग रूप से रीतिबद्धता एवं दरबारी मनोवृत्ति का विरोध किया। इन कवियों ने किसी रीति, परिपाटी तथा काव्यशास्त्र के नियमों में आबद्ध होकर कविता को रचना मानने से इनकार किया। रीतिकालीन कविता के पारंपरिक विधान का विरोध करते हुए ठाकुर कहते हैं-

"डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।"

रीतिमुक्त कवियों ने स्वच्छन्दता सिर्फ कविता के स्तर पर नहीं बल्कि जीवन में भी अपनाया। इन कवियों ने आंतरिक अनुभूति के रूप में स्वयं के प्रेम को कविता का विषय बनाया। इन्होंने प्रेम का संवेदनशील, गहन एवं स्वाभाविक चित्रण अपनी कविता में किया है। इनके प्रेम में कहीं भी आलंकारिता, कृत्रिमता, छल-कपट की थोड़ी सी भी गुंजाइश नहीं है-

"अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नैकु सयानप बाँक नहीं
तहाँ साँचैं चलै तजि आपुनपौ, झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।" (घनानन्द)

बोध प्रश्न –

- रीतिमुक्त कवियों ने क्या अपनाया ?

प्रकृति का उद्दीपन-रूप

रीतिकाल के कवियों की एक प्रवृत्ति प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन करने की रही है। प्रकृति यहाँ नायक-नायिका के भावों को उद्दीप्त करने के लिए वर्णित हुई है। शृंगार-वर्णन के प्रसंग में संयोग और वियोग-दोनों पक्षों के चित्रण में प्रकृति या तो आलंकारिक रूप में या भावों

को उद्दीप्त करने वाली शक्ति के रूप में चित्रित हुई है। प्रकृति के उद्दीपन-रूप का वर्णन रीतिकाल के अधिकांश कवियों में मिलता है। प्रकृति के उद्दीपन-रूप का उदाहरण निम्न रूप से देखा जा सकता है-

"फूले ना पलास ये पलास कै बसन्त आज,

फाड़ि कै करेजा डार डारन पै डारिगो।।"

अर्थात् वसन्त ऋतु में पलास फूल के फूलने से उत्पन्न शोभा से विरहिणी का कलेजा फटा जा रहा है। किन्तु इस काल के कुछ कवियों द्विजदेव, ग्वाल, गुमान और विशेष रूप से सेनापति ने प्रकृति का स्वाभाविक, हृदयग्राही एवं प्रभावोत्पदक चित्रण भी किया है।

बोध प्रश्न –

- अधिकांश रीतिकालीन कवियों में प्रकृति किस रूप में प्राप्त होती है ?

रीतिकाल की अन्य गौण प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल के भीतर ही रीतिनिरूपण व शृंगार जैसी प्रमुख प्रवृत्तियों के समानान्तर कपितय गौण प्रवृत्तियाँ भी उस समय विकसित थी। दरबार के बाहर विकसित रीतिकाल की गौण प्रवृत्तियों में नीतिकाव्य और भक्तिकाव्य महत्त्वपूर्ण है जबकि दरबार के भीतर वीरकाव्य जैसी प्रवृत्तियाँ भी अपने प्रखर रूप में मौजूद थी।

रीतिकाल की शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

दरबारी संस्कृति ने रीतिकालीन अंतर्वस्तु को ही नहीं, बल्कि शिल्पगत प्रवृत्तियों के स्वरूप निर्धारण में अहम भूमिका निभाई। आधुनिक आलोचना की शब्दावली में रीतिकाल की कविता 'शुद्ध कलात्मक कविता' है इसलिए इस कविता में कलात्मक कसाव और अभिव्यक्ति की लाघवता का अपूर्ण मिश्रण दिखाई देता है। आलोचक विजयदेव नारायण साही ने रीतिकाल के कलागत वैशिष्ट्य के बारे में ठीक ही लिखा है- "रीतिकाल की कविता आज के पाठकों को चाहे कुछ न दे लेकिन वह आज के रचनाकारों को कहने के सलीके का ज्ञान और संस्कार दे सकती है।"

काव्य-रूप

काव्य-रूप के धरातल पर रीतिकाल में काफी विविधता दिखाई देती है। प्रबंध, मुक्तक सतसई साहित्य तथा शतक आदि कई शैलियों में काव्य की रचना इस काल में होती रही। लेकिन काव्य-शैली के रूप में रीतिकालीन कवियों ने मूल रूप से मुक्तक को ही अपनाया है। कवियों द्वारा मुक्तक काव्य रूप अपनाये जाने के पीछे दो कारण रहे हैं- (i) लक्षण-ग्रंथों का निर्माण होना तथा (ii) दरबारी वातावरण का प्रभाव। लक्षण-ग्रंथ मुक्तक के अलावा अन्य काव्य रूप में लिखे नहीं जा सकते थे। साथ ही रीतिकवियों को दरबार में अपनी कला का वैभव-प्रदर्शन के लिए मुक्तक शैली सर्वथा अनुकूल थी। दरअसल रीतिकाल को मुक्तक कला के उत्कर्ष

के लिए जाना जाता है। मुक्तक की प्रधानता होने के साथ इस युग की कविता में प्रबंध काव्य-परंपरा का भी विकास होता रहा है। यह बात अलग है कि प्रबंध रचनाएँ कवित्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस युग में पूर्व प्रचलित सभी प्रकार की प्रबंध काव्यधाराओं का समावेश दिखाई देता है। सबल सिंह का 'महाभारत' (कथात्मक प्रबंध काव्य), कासिम शाह का 'हंस जवाहिर', नूरमुहम्मद की 'इंद्रावती (सूफी प्रबंध), गुरू गोविन्द सिंह की 'गोविन्द रामायण' (रामकाव्य), ब्रजवासी दास का 'ब्रजविलास' (कृष्ण काव्य) जोधराज का 'हम्मीर रासो', गोरे लाल का 'छत्रसाल प्रकाश' आदि प्रबंध रचनाएँ रीतिकाल में महत्त्वपूर्ण हैं।

बोध प्रश्न –

- काव्य शैली के रूप में रीतिकालीन कवियों ने किस रूप को अपनाया ?

काव्य-भाषा

रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक भाषा ब्रज रही है। ब्रजभाषा अपनी प्रकृति में मधुर, कोमल और सरस होने के साथ मध्य देश की भाषा होने के कारण उस काल की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का बेहतरीन माध्यम बन गई। कोमल भावों की अभिव्यक्ति के साथ ब्रज में अलंकरण की अपार क्षमता थी। यही कारण है रीतिकाव्य के कवि इस भाषा के प्रति न केवल आकृष्ट हुए बल्कि इनके यहाँ ब्रजभाषा का परिष्कृत रूप भी देखने को मिलता है। इस काल में ब्रजभाषा का इतना व्यापक प्रयोग साहित्य में हुआ कि यह ब्रजमण्डल की सीमा से बाहर भी प्रयुक्त होने लगी। ब्रजभाषा की इसी व्यापकता के संदर्भ में भिखारीदास कवि ने ठीक ही कहा है- "ब्रजभाषा हेत ब्रजभाषा ही न अनुमानौ।"

रीतिकाल की भाषा में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अरबी, फारसी और देशज शब्दों का भी भरपूर इस्तेमाल हुआ है। दरबारों की शिष्ट भाषा में अरबी, फारसी के शब्दों का प्रचलन उस समय बढ़ गया था अतः स्वाभाविक है कि ये कवि अपने परिवेश में तत्कालीन प्रचलित शब्दों का इस्तेमाल कविता में करें। ब्रजभाषा में देशज शब्दों के रूप में अवधी, राजस्थानी, बुंदेलखण्डी आदि शब्दों का भी सहज रूप में प्रयोग हुआ है। तुकबंदी और चमत्कार उत्पन्न करने के मोह के कारण कवियों ने शब्दों के मनमाने प्रयोग भी किए। रीतिकवियों ने व्याकरण की परवाह न करते हुए शब्दों को तुकबंदी के लिए शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने में रूचि लेने लगे जिससे कविता में कारक चिह्नों की गड़बड़ी और लिंगगत दोषों की भरमार होने लगी। लेकिन रीतिमुक्त कवियों ने भाषा के साथ काफी संयम के साथ प्रयोग किया जिससे उनके यहाँ भाषागत दोष नहीं मिलता है। इस धारा के कवियों ने परिनिष्ठित ब्रज का बेहतरीन प्रयोग किया है जिससे आचार्य शुक्ल भी मुग्ध हो उठे।

बोध प्रश्न –

- रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक भाषा क्या थी ?

- ब्रजभाषा को काव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए क्यों उपयुक्त माना गया ?

रीतिकालीन कवियों ने शब्द की लक्षणा शक्ति का प्रयोग करके ब्रजभाषा को सशक्त एवं सर्जनशील बनाया है। घनानन्द ने अपनी कविता में लक्षणा का बेहतरीन प्रयोग किया है। ब्रजभाषा के कवियों ने अपनी भाषा को जीवंत बनाने के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है जैसे- **'नैन नचाइ कही मुसुकाई', 'नैनन को कजरा करि राख्यौ', 'तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला'** आदि। वर्णन-विन्यास-वक्रता द्वारा भाषिक सौष्ठवता प्रदान करने की कोशिश की है। इसके अलावा नाद-सौन्दर्य और चित्रात्मकता रीतिकालीन भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषता है जो इस कविता को सहज ग्राह्य और लोकप्रिय बनाने में मदद करती है।

बोध प्रश्न –

- कुछ भाषिक विशेषताएँ बताइए ।

अलंकार

रीति कवियों को अलंकृति का मोह था। इस काल में अलंकारों का विवेचन और काव्य में इनका प्रयोग विशेष रूप से प्रसिद्ध है। अकारण नहीं है कि मिश्रबंधुओं ने रीतिकाल का नाम ही **'अलंकृतिकाल'** रखा था। दरबार में काव्य रचने के लिए अलंकार शास्त्र का ज्ञान होना उस समय के कवियों की तत्कालीन जरूरत थी। रीतिकवियों की स्पष्ट मान्यता थी कि अलंकार के बिना काव्य में सौंदर्य संभव नहीं। केशवदास ने लिखा है-

"यदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त
भूषण बिनु न बिराजई, कविता, बनिता, मित्त।।"

रीतिकवि अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए अक्सर कविता में अलंकार के प्रयोग से चमत्कार उत्पन्न करना चाहते थे। रीतिकवियों ने शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों दोनों का सफल प्रयोग किया है। अनुप्रास आदि अलंकारों के प्रयोग में नादात्मक सौंदर्य रीतिकाव्य में लक्षित होता है-

"गोरी गरबीली तेरे गात की गुराई आगे.........."

छन्द

छन्दों के प्रयोग में भी रीतिकाल के कवि निपुण हैं। शृंगार भाव की अभिव्यक्ति के लिए इस काल के कवियों ने सवैया छन्द का प्रयोग किया वहीं वीर रस के लिए अधिकतर कवित्त छन्द को चुना है। लेकिन दरबारी मनोवृत्ति के अनुरूप दोहा छन्द रीतिकाव्य का सबसे लोकप्रिय छन्द था। भक्ति और नीति का सम्पूर्ण साहित्य दोहा छन्द में ही रचा गया। कोमल भावों, भाषा की माधुर्य एवं चारूता की दृष्टि से सवैया रीतिकाल का सर्वश्रेष्ठ मधुरतम छन्द माना गया। देव, पद्माकर, घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि के सवैया की सरस काव्य-सर्जना रीतिकाव्य की अनूठी

एवं विशिष्ट उपलब्धि रही है। रीतिकालीन काव्य की प्रकृति के अनुकूल कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा, बरवै और रोला जैसे छन्द इस युग में काफी प्रचलित हुए।

बोध प्रश्न –

- शृंगार भाव की अभिव्यक्ति के लिए रीतिकालीन कवियों ने किन छंदों को प्रयोग किया है ?
- वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए किस छंद को चुना गया ?

11.4 पाठ सार

रीतिकाल की परिस्थिति के निर्माण में दरबारी परिवेश की भूमिका अहम रही है। दरबारी संस्कृति से ही उस काल की राजनीति, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक परिस्थिति अपना स्वरूप ग्रहण करती है। केन्द्रीय शासन के विघटन का असर तत्कालीन सभी परिस्थितियों पर पड़ा। लोक जीवन की व्यापकता का अभाव, सामंती परिवेश, दरबारी मानसिकता ने रीतिकालीन विभिन्न परिस्थितियों को मूल्यहीनता, रूढ़िवादिता, मौलिकता के ह्रास आदि से ढँक दिया। इन परिस्थितियों ने ही समाज, संस्कृति और कलाओं में विलासिता, प्रदर्शनप्रियता, अलंकरण आदि को जन्म दिया। रीतिकाल के दरबारी परिवेश ने ही रीतिकाव्य के विकास में उल्लेखनीय भूमिका अदा की। हम देखते हैं कि रीतिकालीन काव्य-बोध के निर्माण में परवर्ती भक्तिकाव्य से प्राप्त शृंगारिकता और तद्युगीन दरबारी एवं सामंती जीवन मूल्यों की अहम भूमिका रही है। इसलिए सामान्यतः रीतिकवियों के लिए कविता कला एवं मनोरंजन का साधन मात्र है जो उनके आश्रयदाताओं एवं उनके दरबारियों को संतुष्ट कर सके और कवियों की आजीविका का माध्यम बन सके। यही कारण है कि लगभग संपूर्ण रीतिकालीन कविता अनुभूतियों की जगह काव्यशास्त्र को प्रश्रय देती है तथा आमजन की तमाम समस्याओं से परहेज करते हुए शृंगार को काव्य-वस्तु के रूप में ग्रहण करती हुई दिखाई देती है। रीतिकाल भक्तिकाल के बाद विकसित हिंदी साहित्य के इतिहास का एक स्वाभाविक विकसित चरण था। इस काल की कविता ने सामंती समाज के दरबारी परिवेश के बीच अपना आकार ग्रहण किया। विषय वस्तु की व्यापकता से लेकर समाज के जीवंत प्रश्नों से रीतिकाल की कविता के कटे होने के कारण इस पर आलोचकों ने अक्सर प्रश्न उठाया है। लेकिन कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रतिमानों तथा ऐहिक जीवन के मूल सरोकारों से रीतिकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ बारंबार मुठभेड़ करती हैं। इस मायने में रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्तियाँ अपने समय व समाज की सहज व स्वाभाविक गति थीं अतः इसमें नये सिरे से शोध की संभावना लगातार बनी हुई है।

11.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल कहा जाता है क्योंकि इसमें काव्यशास्त्रीय रीति निरूपण की प्रमुखता दिखाई देती है ।
2. रीतिकाल मुग़ल शासन के चरम उत्कर्ष और क्रमशः पतन का समय है।
3. धार्मिक दृष्टि से भी यह काल भक्तिकाल के उद्दात धार्मिक मूल्यों के स्थान पर स्थूल शृंगारिक लीलाओं की अभिव्यक्ति का काल है।
4. रीतिकाल की कविता बड़ी हद तक राज्याश्रय में रची गई। इसलिए उसमें विलासीता, आलंकारिकता, चमत्कार और प्रदर्शन अधिक है।
5. रीतिकाल की रीतिमुक्त धारा के कवि दरबारी संस्कृति के प्रतिपक्ष के प्रतीक हैं।

11.6 शब्द-संपदा

1. विभाव : भाव का कारण।
2. अनुभव : स्थायी भावों को व्यक्त करने वाली चेष्टाएँ ।
3. आलंबन : जिसके प्रति भाव उत्पन्न हो।
4. आश्रय : जिसके मन में भाव उत्पन्न हो।
5. विशिष्टांग विवेचन : जब किसी एक काव्यांग (रस, छंद, अलंकार) को विवेचन का विषय बनाया जाए।

11.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न
निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए.

4. रीतिकाल के नामकरण पर चर्चा करते हुए रीतिकालीन परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
5. रीति का अर्थ स्पष्ट करते हुए उत्तर-मद्यकालीन काव्य बोध पर प्रकाश डालिए।
6. रीतिकाव्य की अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए रीतिकाल की प्रमुख-प्रवृतियों को विस्तार पूर्वक समझाइए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न
निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1.रीतिकाल की शिल्पगतप्रवृति को संक्षिप्त में लिखिए।-
2. रीतिकाल की धार्मिक परिस्थिति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1. दरबार में काव्य शिल्प और काव्यशास्त्र का निर्धारण कौन करता था ?(   )

(अ) महामंत्री	(आ) सामंत
(इ) कवि	(ई) पुरोहित

2. रीतिकाल की गौण प्रवृति नहीं है (   )

(अ) शक्ति काव्य	(आ) भक्ति काव्य
(इ) वीरकाव्य	(ई) नीतिकाव्य

3. रीतिकाव्य की रचनाओं का केंद्र माना जाता है। (   )

(अ) शृंगार	(आ) भक्ति
(इ) विरह	(ई) रति

4. किस सदी में भारतीय समाज में जाति व्यवस्था और भी मजबूत हो गई ?(   )

(अ) 16वीं	(आ) 17वीं
(इ) 18वीं	(ई) 19वीं

5. हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचना है। (   )

(इ) हिंदी साहित्य अभ्युदय	(आ) हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
(इ) हिंदी साहित्य का सबोध इतिहास	(ई) हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) आर्थिक दृष्टि में समाज स्पष्ट रूप से ______________श्रेणियों में बंट गया।
2) रीतिकालीन समाज में उत्पादक और उपभोक्ता वर्ग के अलावा तीसरा वर्ग ______________का था ।
3) धार्मिक स्थिति की दृष्टि से रीतिकाल को ______________माना जाता है।
4) इस्लामी धर्म पर ______________वैभव-विलास का सीधा प्रभाव नहीं था।
5) जहाँगीर का समय ______________की दृष्टि से स्वर्ण काल माना जाता है।

III सुमेल कीजिए।

1.	डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी	(अ) वाजिद अली शाह के समय की रंगीली ठुमरी अपने-अपने आश्रयदाताओं की मनोवृति की ही परिचायक नहीं है।
2.	डॉ. श्यामसुंदर दास	(आ) तितिकाल भक्तिकाल का ही उत्तरकालीन शृंगार मंडल है ।
3.	रामचंद्र शुक्ल	(इ) हिंदी में शृंगार की काव्यधारा भक्ति से ही फूटी।
4.	घनानंद	(ई) रसनि सार सिंगार रस प्रेम सार सिंगार
5.	देव	(उ) लोग हैं लागि कवित बनावत

11.8 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकाव्य की भूमिका: डॉ. नगेन्द्र
2. हिंदी रीति साहित्य: भगीरथ मिश्र
3. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन: रामकुमार वर्मा
4. हिंदी साहित्य का इतिहास: आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. हिंदी साहित्य का इतिहास: (सं.) डॉ. नगेन्द्र/डॉ. हरदयाल
6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास: बच्चन सिह
7. हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास: हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास: विश्वनाथ त्रिपाठी

इकाई – 12 रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराएँ

रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मूल पाठ : रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराएँ
    12.3.1 रीतिबद्ध काव्यधारा
    12.3.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा
    12.3.3 रीतिमुक्त काव्यधारा
    12.3.4 रीतिकाल की अन्य काव्य धाराएँ
    12.3.5 रीतिकालीन गद्य
    12.3.6 रीतिकालीन प्रमुख कवि
12.4 सारांश
12.5 पाठ की उपलब्धियाँ
12.6 शब्द-संपदा
12.7 परीक्षार्थ प्रश्न
12.8 पठनीय पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास के उत्तर मध्यकाल का नामकरण 'रीतिकाल' किया है। यह नामकरण इस मान्यता से प्रेरित है कि इस काल मेंकाव्य रीति अथवा काव्य परिपाटी में रचना करना साहित्यकारों की प्रधान प्रवृत्ति हो गई थी। काव्यरीति अथवा काव्य परिपाटी से रचना करने का अर्थ है, संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा स्थापित सिद्धांतों का अनुसरणकरते हुए रचनाएँ करना। यह अनुसरण भी रीतिकाल में कई तरीकों से हुआ। कुछ कवियों नेसंस्कृत काव्यशास्त्र के विभिन्न आचार्यों के काव्यांग विवेचना को सरल ब्रज भाषा में बताकर उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए अपनी रचनाएँ रची तो कुछ कवियों ने काव्यशास्त्र के नियमों का पालन करते हुए अपनी रचनाएँ रची।कुछ कवियों ने इस तरह की परिपाटी से स्वयं को मुक्त रखते हुए भी रचनाएँ कीं।साहित्य के इतिहासकारों और आलोचकों ने मुख्यतः रीतिकाल में मौजूद इसी तरह की काव्य-प्रवृत्तियों और कुछ अतिरिक्त काव्य प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए इस काल की रचनाओं को विभिन्न श्रेणियों में रखकर चर्चा की है।रीतिकाल की विभिन्न काव्यधाराओं के कुछ प्रतिनिधि रचनाकारों और उनकी रचनाओं पर इस इकाई में चर्चा की जाएगी। इस इकाई में विभिन्न काव्यधाराओं के रचनाकारों को काव्यधाराओं के आधार पर बाँट कर नहीं बल्कि उनके जन्म के वर्ष को वरीयता का आधार बनाकर एक ही क्रम में रख कर उन पर चर्चा की जाएगी।

12.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- रीतिकाल की विभिन काव्य धाराओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे.
- काव्यधाराओं के इस विभाजन के आधारों से परिचित हो सकेंगे.
- इन काव्य धाराओं के मुख्य रचनाकारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे.
- रीतिकाल में मुख्य धाराओं के अतिरिक्त गौण धाराओं के बारे में भी जान सकेंगे.
- रीतिकाल के प्रमुख कवियों के जीवन परिचय से अवगत हो सकेंगे.
- उन कवियों की प्रमुख कृतियों और मुख्य रचनात्मक विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

12.3 मूल पाठ : रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराएँ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में रीतिकाल की काव्यधाराओं का कोई बहुत स्पष्ट विभाजन नहीं किया है। उन्होंने चर्चा के लिए रीति ग्रंथकार कवियों के अतिरिक्त एक श्रेणी इस काल के अन्य कवियों की बनायी है।उन्होंने अन्य कवियों की श्रेणी की भूमिका में कुल 6 प्रधान वर्गोंकाउल्लेख अवश्य किया है, लेकिन उन्होंने कवियों को इनवर्गों में विभाजित कर के उनपरचर्चा करना उचित नहीं समझा है। इससे स्पष्ट होता है कि 'रीतिकाल के अन्य कवियों' के प्रधान वर्गों के उल्लेख का उनका उद्देश्य उन कवियों की रचनात्मक विविधता को उजागर करना रहा होगा।परवर्ती साहित्य इतिहासकार आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल की रचनाओं को मुख्यतः तीन धाराओं में विभाजित किया है। आचार्य मिश्र ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का अतीत' में उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहने के बजाय 'शृंगार काल' कहना उचित समझा है, लेकिन इसके बावजूद काव्यधाराओं का उनका विभाजन 'रीति' केन्द्रित ही है। इसका अर्थ यह हुआ कि उत्तर मध्यकाल में काव्यशास्त्र की परिपाटी अथवा रीति के अनुसरण की प्रवृत्ति को ही मुख्य मानकर उन्होंने इस काल की मुख्य काव्यधाराओं का नामकरण किया है। कुछ अपवादों के अतिरिक्त उनके बाद के साहित्य इतिहासकारों ने भी थोड़े-बहुत मतभेद के साथ इसी विभाजन को स्वीकार किया है। ये तीन मुख्य काव्य धाराएँ निम्नलिखित हैं :

- रीतिबद्ध काव्यधारा
- रीतिसिद्ध काव्यधारा
- रीतिमुक्त काव्यधारा

बोध प्रश्न –

- उत्तर मध्यकाल को शृंगार काल कहना क्यों उचित समझा गया ?
- रीतिकाल की कितनी धाराएँ हैं ?

12.2.1 रीतिबद्ध काव्यधारा

इस नाम से ही स्पष्ट है कि इस काव्यधारा को 'रीति' से बंधी हुई काव्यधारा माना गया है।आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार इस धारा के अंतर्गत वे कवि आते हैं, जिन्होंने प्रकट रूप से काव्यांग निरूपण के लिए रचनाएँ कीं।'काव्यांग-निरूपण' का सरल अर्थ है – काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कविता के विविध अंगों को उदाहरण सहित प्रस्तुत करना।विभिन्न रसों, अलंकारों, छंदों आदि के लक्षण बताकर उनके उदाहरण स्वरूप जो रचनाएँ रची गई, वे रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत आती हैं।इन कवियों को 'लक्षण-ग्रंथकार' भी कहा जाता है।इन कवियों ने काव्यांग निरूपण के लिए संस्कृत काव्यशास्त्र से सम्बंधित जिन ग्रंथों का अनुसरण किया, उनमें से प्रमुख माने जाने वाले ग्रंथ हैं - जयदेव की कृति 'चंद्रालोक', अप्पय दीक्षित की कृति 'कुवलयानंद', मम्मट कृत 'काव्यप्रकाश' और विश्वनाथ की कृति 'साहित्य दर्पण'।

बोध प्रश्न –

- काव्यांग-निरूपण से आपने क्या समझा बताइए।

रामचंद्र शुक्ल ने इनकवियों को 'रीतिग्रंथकार कवियों' की संज्ञा दी है। डॉ. नगेन्द्र इन कवियों को रीतिबद्ध कवि कहने के पक्ष में नहीं हैं, बल्कि वे इन्हें 'रीतिकार' या'आचार्य कवि' कहना उचित मानते हैं। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि रीतिबद्ध धारा को लेकर जो विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की मान्यता रही है,वही अधिकांश विद्वानों के लिएस्वीकृत मान्यता रही है।इस काव्यधारा के सभी प्रमुख रचनाकारों के बारे में एक सामान्य बात यह रही है कि लगभग ये सभी कवि राज्याश्रित रहे हैं। इसलिए यह माना जाता है कि इन कवियों की रचनाओं का उद्देश्य अपने आश्रयदाता राजाओं के समक्ष अपने काव्यशास्त्रीय ज्ञान से युक्त कवित्तशक्ति का प्रदर्शन करना था।इसके अलावा उनकी रचनाओं का उद्देश्य आश्रयदाता की रूचियों को ध्यान में रखकर उन्हें मनोरंजन उपलब्ध करवाना भी होता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई बार इन कवियों को अपने कौशल का उपयोगकाव्य प्रशिक्षण देने के लिए भी करना पड़ता था। उदाहरण के लिए केशवदास के ग्रन्थ 'कविप्रिया' का उल्लेख किया जासकता है। केशवदास ओरछा नरेश इन्द्रजीत के दरबार में रहते थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने अपने इस ग्रन्थ की रचना दरबार की प्रधान नर्तकी प्रवीण राय को कविता की शिक्षा देने के उद्देश्य से की थी। यह कहा जा सकता है कि काव्यांग निरूपण (जिसमें विभिन्न रसों, छंदों, अलंकारों आदि के विषय में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय विद्वानों के मतों को पहले कवित्त में बताया जाता था और फिर उसके उदाहरण दिये जाते थे) का एक उद्देश्य सरल लोक भाषा में संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी अथवा रीति कविता की शिक्षा देना भी था।उदाहरण के लिए इस तरह का एक पदकेशवदास की कृति 'छंदमाला' से उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें सुप्रिय छंद का लक्षण उन्होंने इस तरह बताया है –

"चौदह लघु गुरू एक अरू सुप्रिय छंदप्रकास।

अक्षर प्रतिपद पंचदस आनहु केसवदास।।"

बोध प्रश्न –

- कविप्रिया के रचनाकार कौन हैं ?

लक्षण निरूपण की प्रक्रिया को समझने के लिए महाराज जसवंत सिंह की कृति 'भाषाभूषण' का यह एक दोहा देखें- **"अलंकार अत्युक्ति यह, बरनत अतिसय रूप।/ आचक तेरे दान तें, भए कल्पतरू भूप।।"**इस दोहे में अत्युक्ति अलंकार को उदाहरण सहित समझाया गया है। पहली पंक्ति में लक्षण और दूसरी पंक्ति में उदाहरण आया है। पहली पंक्ति में यह बताया गया है कि अत्युक्ति अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी बात को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाए। दूसरी पंक्ति में इसका उदाहरण इस तरह दिया गया है कि याचक को देने के लिए राजा कल्पतरू हो गए हैं। कल्पतरू एक लोक**रूढ़ी** है, जिसका आशय एक ऐसे वृक्ष से है, जिससे जो भी कामना की जाए वह तत्काल पूरी हो जाती है। एक राजा को कल्पतरू कहना उसकी बहुत बढ़ा चढ़ाकर की गई प्रशंसा है, क्योंकि ऐसा वास्तव में हो सकना संभव नहीं हैं। एक ही पंक्ति में लक्षण उदाहरण का यह अनोखा संयोजन कुछ ही कवियों की रचनाओं में मिलता है। लक्षण ग्रंथकार कवियों ने सामान्यतः पहले स्वतंत्र रूप से लक्षण कहे हैं, और फिर उदाहरण के लिए अलग से पद रचना की है।

बोध प्रश्न –

- कल्पतरू क्या है ?

रामचंद्र शुक्ल ने रीति ग्रंथकार कवियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इन कवियों ने कविता लिखने की एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना फिर उसके उदाहरण के रूप में कविता का सवैया लिखना। शुक्ल जी ने इसे अनूठा दृश्य कहा है। उन्होंने लिखा है कि संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य दो भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लोग रहे जबकि**हिंदी** काव्य क्षेत्र में यह भेद लुप्त सा हो गया।

हिंदी साहित्य के अधिकांश इतिहासकारों का यह मानना रहा है कि काव्यांग निरूपण के उदाहरण के लिए मौलिक रचनाएँ रचने के कारण ये रचनाकार मूलत: कवि ही थे, जिन्होंने काव्यांग निरूपण को अपनी काव्य रचना के आलम्बन के रूप में उपयोग किया। इस पद्धति से रीतिकाल में प्रचुर मात्रा में रचनाएँ हुईं। यह कहा जा सकता है कि इस धारा के कवियों में जो आचार्यत्व था, वह एक तरह से उनकी मौलिक काव्यप्रतिभा की अभिव्यक्ति में सहायक ही सिद्ध हुआ। इन कवियों ने अपने आचार्यत्व के बल पर कोई नवीन स्थापना की हो अथवा पूर्व के उपलब्ध ज्ञान में कोई विस्तार किया हो इसके प्रमाण नहीं मिलते लेकिन रस, अलंकार, छंद आदि के लक्षण निरूपण के क्रम में इन कवियों ने अनेक ऐसी रचनाएँ की जिन्हें पर्याप्त

लोकप्रियता और सराहना मिली।इस धारा के कुछ प्रमुख कविऔर उनकी कुछ कृतियों के नाम निम्नलिखित हैं:

- **केशव**:'रसिकप्रिया', 'रामचंद्रिका', 'कविप्रिया', 'जहाँगीरजसचन्द्रिका' आदि।
- **चिंतामणि**: 'काव्य विवेक', 'कविकुलकल्पतरू', 'काव्यप्रकाश' आदि।
- **पद्माकर**:'हिम्मतबहादुर विरूदावली', 'जगद्विनोद','पद्माभरण' 'गंगालहरी' आदि।
- **देव**:'भावविलास', 'अष्टयाम', 'भवानीविलास', 'काव्यरसायन'आदि।
- **मतिराम**:'ललितललाम' 'छंदसार','साहित्यसार','लक्षणशृंगार'आदि।
- **जसवंत सिंह**: 'भाषाभूषण', 'अनुभवप्रकाश','आनंदविलास', 'प्रबोधचंद्रोदय नाटक' आदि।
- **भिखारी दास**: **'**रससारांश', 'काव्यनिर्णय', 'नामप्रकाश कोश', 'छंदप्रकाश' आदि।
- **दूलह**: 'कविकुलकंठाभरण'।
- **ग्वाल कवि**: 'यमुनालहरी', 'भक्तभावना', 'रसिकानंद', 'रसरंग', 'दूषणदर्पण' आदि।
- **प्रतापसाहि**:'व्यंग्यार्थकौमुदी', 'काव्यविलास', 'काव्यविनोद', 'शृंगारशिरोमणि' आदि।

12.2.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार रीतिसिद्ध काव्यधारा के अंतर्गत वे कवि आते हैं जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी का अनुसरण करते हुए ही रचनाएँ कीं लेकिन जिन्होंने किसी लक्षण-ग्रन्थ की रचना नहीं की। यानी इन कवियों ने रीति का पालन करते हुए भी काव्यांग निरूपण के उदाहरण के लिए अपनी रचनाएँ नहीं रचीं बल्कि इनकी रचनाएँ स्वतंत्र थीं। आचार्य मिश्र ने इस काव्यधारा को रीतिसिद्ध कहने का आशय इस तरह स्पष्ट किया है कि इस धारा के कवियों ने रीति परम्परा सिद्ध कर ली थी। इसका अर्थ यह हुआ कि वे रीति के मर्मज्ञ थे उसके अनुसरण को भी अपना दायित्व समझते थे,लेकिन अपनी कविताओं के अतिरिक्त अलग से इनका प्रदर्शन करना उनका ध्येय नहीं था।आचार्य मिश्र ने इस धारा के एकमात्र कवि के रूप में **बिहारी**(कृति : 'बिहारी सतसई') का उल्लेख किया है।कुछ साहित्य इतिहासकार इस धारा में **सेनापति** ('कवित्त रत्नाकर', 'काव्य कल्पद्रुम') और **द्विजदेव** ('शृंगारबत्तीसी', 'शृंगारलतिका') सहित कुछ अन्य कवियोंको भी सम्मिलित करते हैं।इन कवियों को इस धारा में रखने के विषय में साहित्य इतिहासकारों में पर्याप्त मतांतर है, लेकिन **बिहारी** इस धारा के निर्विवाद कवि माने जाते हैं।

रीतिसिद्ध कवियों की यह विशेषता मानी जाती है कि इनकी रचनाओं में भावपक्ष और कलापक्ष में एक ऐसा संतुलन दिखाई देता है, जो रीतिबद्ध कवियों के यहाँ नहीं मिलता। रीतिसिद्ध कवियों का प्राथमिक ध्येय आचार्यत्व के तत्वों का निरूपण नहीं होता, बल्कि सफल अभिव्यक्ति उनकी प्राथमिकता होती है। इसके अतिरिक्त काव्य की शास्त्रीय परंपरा का भी वे पर्याप्त ध्यान रखते हैं, इसलिए स्वाभाविक रूप से उनकी कविताओं में भाव और पारंपरिक काव्यशास्त्रीय शिल्प का सुंदर संतुलनदिखाई देता है। इस बात की पुष्टि के लिए बिहारी की

रचनाओं में से एक उदाहरण देखिए :**"कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।/ वह खाए बौराय नर, यह पाए बौराय।"** इस दोहे में यमक अलंकार का बहुत ही प्रभावी प्रयोग किया गया है। इसमें 'कनक' शब्द लगातार दो बार प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पहले कनक का अर्थ है 'धतूरा' और दूसरे कनक का अर्थ है 'सोना'। इस कविता का भाव अथवा आशय यह है कि धतूरे से सोने की मादकता सौ गुना अधिक है। धतूरे को तो मनुष्य खाने के बाद बौराता है, लेकिन सोना तो सिर्फ प्राप्त कर लेने भर से मनुष्य बौरा जाता है।

बोध प्रश्न –

- रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि का नाम बताइए।
- रीतिसिद्ध कवियों की क्या विशेषता है ?

12.2.3 रीतिमुक्त काव्यधारा

उत्तर मध्यकाल में जब रीति का अनुसरण करते हुए प्रचुर मात्रा में रचनाएँ की जा रही थीं,तबउसी दौर में कई कवियों ने रीति के अनुसरण की बाध्यता से खुद को मुक्त रखा और अपनी कविताओं का उद्देश्य उसके भावपक्ष की सफलता को ही माना।इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने सफल अभिव्यक्ति मात्र को ही अपना ध्येय माना और इसके मार्ग में यदि काव्य कला के बने-बनाये मानक उन्हें बाधा स्वरूप दिखाई पड़े, तो उन्हें उनका त्याग करनेमें भी हिचक नहीं हुई। इसी स्वच्छंद वृत्ति के कारण रीतिमुक्त काव्यधारा को कुछ साहित्य इतिहासकार 'स्वच्छंद काव्यधारा' की भी संज्ञा देते हैं। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने कविता के विषय में इस पूर्वाग्रह को खंडित करते हुएयह स्थापित किया कि कविता मूलत: शास्त्रीय कर्म नहीं है, बल्कि उसका सम्बन्ध भाव और संवेदना से अधिक है। इस धारा के प्रमुख कवियों में **आलम**(कृति: 'आलमकेलि')**, ठाकुर**(प्रमुख कृतियाँ : 'ठाकुरशतक', 'ठाकुर ठसक')**, घनानंद** (प्रमुख कृतियाँ : 'सुजानसागर', 'विरहलीला', 'रसकेलिवल्ली' आदि)**, बोधा** (प्रमुख कृतियाँ : "विरहवारीश", 'इश्कनामा') आदि के नाम लिए जाते हैं।

इस धारा के कवियों में घनानंद सर्वाधिक सजक और सचेष्ट कवि माने जाते हैं। रीतिबद्धता अथवा रीतिसिद्धता के प्रति उनके प्रतिकार को उनकी एक प्रसिद्ध पंक्ति में स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है, जिसमें उन्होंने लिखा है –

'लोग तो लागि कवित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत' ।

इसी तरह इस धारा के एक अन्य कवि ठाकुर ने एक पंक्ति में कविता को बनावट भर और सभा में सुनाकर वाहवाही लूटने का विषय समझने पर एक तीक्ष्ण व्यंग्य करते हुए लिखा है कि ऐसे लोगों ने कविता को खेल समझ रखा है-

'ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीन्हों खेल करि जान्यो है।'

भावपक्ष पर केन्द्रित होने के कारण रीतिमुक्त कवियों को इस बात का अधिक अवसर मिला कि वे कविताओं में मानवता और जीवन के कोमल पक्षों के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त कर सकें। इन कवियों के यहाँ इसलिए एक तरह की उदात्ततालक्षित की जाती है। यह उदात्तताभी मानवीय है, इसे अलौकिक नहीं कहा जा सकता। इस धारा के कवियों ने स्त्री-देह का वस्तुकरण नहीं किया है, लेकिनइन्होंने प्रेम में देह-पक्ष का निषेध भी नहीं किया है। इसी प्रवृत्ति के कारण इनकी कविताओं में स्त्री महज़ एक देह बनकर नहीं रह जाती है, बल्कि अपनी सम्पूर्ण गरिमा के साथ उपस्थितहोती है।इन कवियों में प्रेम और अन्य मानवीय मूल्यों के प्रति अनन्य निष्ठा दिखाई देती है। उदाहरण के लिए घनानंद की एक पंक्ति ली जा सकती है, जिसमें वे कहते हैं कि प्रेम का मार्ग बहुत ही सीधा है जिसपर सिर्फ सच्चे लोग अपना अहंकार त्याग कर चलते हैं, लेकिन इस मार्ग पर कपटी और शंकालु लोगों को चलने में बहुत ही झिझक होती हैं :

"अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।"

बोध प्रश्न –

- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि का नाम बताइए।
- 'सुजानसागर' के रचनाकार कौन हैं ?
- रीतिमुक्त काव्यों में किस प्रकार के मूल्यों को देखा जा सकता है ?

12.2.4 रीतिकाल की अन्य काव्य धाराएँ

रीतिकाल में 'रीति' केन्द्रित मुख्यतः तीन धाराओं के अतिरिक्त तात्विक विशेषताओं के कारण कुछ अन्य काव्य धाराएँ भी लक्षित की जाती हैं। इन काव्यधाराओं को विभिन्न इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न रूपोंमें लक्षित किया है।इस कारण से रीतिकाल की अन्य काव्य धाराओं में कई धाराओं की चर्चा मिलती है।इनमें से तीन मुख्य काव्यधाराओं की यहाँ चर्चा की जा रही है।

प्रशस्ति या वीरकाव्य

हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने हिंदी साहित्य के आदिकाल में जिस वीरकाव्य की परम्परा, रासो ग्रन्थ अथवा प्रशस्ति काव्य का उल्लेख किया है, उस परम्परा का अनुसरण उत्तर मध्यकाल के दरबारी कवियों में भी दिखाई देता है। भूषण, श्रीधर, लाल, सूदन और पद्माकर सहित कुछ अन्य कवियों ने वीरकाव्य अथवा प्रशस्तिकाव्य की रचना की। भूषण ने अपने आश्रयदाता शिवाजी और छत्रसाल को अपने प्रशस्ति ग्रन्थ का नायक बनाया।उन्होंने 'शिवराजभूषण' नाम का ग्रन्थ शिवाजी की प्रशस्ति में लिखा। इसमें शिवाजी की प्रशंसा और बादशाह औरंगज़ेब की निंदा की गई है।इसी तरह श्रीधर ने अपने ग्रन्थ 'जंगनामा' में फर्रुखशियर और जहाँदार शाह के युद्ध का वर्णन किया है, यह एक युद्धकाव्य है। लाल कवि ने महाराज छत्रसाल की वीरता का बखान करने के लिए 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ की खासियत यह है कि लाल कवि ने दोहा और चौपाई जैसे जिन छंदों का उपयोग किया है, वे वीर

रस के पारंपरिक छंद नहीं माने जाते। तुलसीदास ने दोहे और चौपाई के आधिक्य वाले 'रामचरितमानस' में वीर रस का अधिकतर वर्णन अन्य छंदों में किया है। सूदन ने अपने ग्रन्थ 'सुजानचरित्र' में भरतपुर के महाराजा बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह (सूरजमल) के द्वारा लड़े गये युद्धों का विस्तृत वर्णन किया है। पद्माकर ने 'हिम्मतबहादुर-विरूदावली' में बांदा के नवाब के सरदार हिम्मतबहादुर के वीर कृत्यों का वर्णन किया है।इस काव्यपरम्परा के अन्य कवियों में घनश्याम शुक्ल, मोहनलाल भट्ट, हरिकेश, भगवंत राय, शम्भुनाथ, मल्ल, मून, भूधर, नाथ, भानकवि, पंडित प्रवीण, लछिराम आदि हैं।

इस विषय में कोई मतभेद नहीं हो सकता कि प्रशस्तिकाव्य अथवा वीरकाव्य की इस परम्परा का मूल कारण कवियों का राजाओं के प्रश्रय में रहना था। इस तरह की कविताओं का मुख्य ध्येय आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा कर उन्हें प्रसन्न करना था। इसी तरह ओज गुण की कविताएँ लिखकर वे कवि युद्ध की स्थिति को ध्यान में रखकरराजाओं का मनोबल बढ़ाने का काम करते थे।कुछ स्थितियों में यह भी कहा जा सकता है कि वे आश्रयदाता राजाओं की युद्धलिप्सा को प्रोत्साहित भी किया करते थे ।रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इन कविताओं में युद्धवीरता और दानवीरता दोनों की बड़ी अतियुक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी। आगे उन्होंने लिखा है कि इस तरह की कविताओं में वही कविताएँ बच सकीं जो उन आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में लिखी गई जो वास्तव में प्रजा की श्रद्धा के पात्र थे।

बोध प्रश्न –

- भूषण ने किसे अपने ग्रंथ का नायक बनाया ?
- 'जंगनामा' के रचनाकार कौन हैं ?
- 'छत्रप्रकाश' ग्रंथ की क्या विशेषता है ?

नीतिकाव्य

रीतिकाल में नीति के पद्य लिखने वाले कवि भी हुए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इन्हें कवि कहने की बजाय 'सूक्तिकार' कहनाअधिक उचित मानते हैं। तुलसीदास के समकालीन कवि अब्दुर्रहीम खानखाना जो रहीम के नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके नीतिकाव्य बहुत लोकप्रिय रहे और वे अबतक लोगों की ज़ुबान पर हैं। तुलसीदास की रचनाओं में भी नीति के पद दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए 'रामचरितमानस' की यह पंक्ति देखी जा सकती है –

"सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति ।सहज कृपन सन सुंदर नीति।।
ममता रत सन ज्ञान कहानी ।अति लोभी सन बिरती बखानी ।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा ।उसर बिज बए फल जथा ।"

कहा जा सकता है कि रीतिकाल में जो नीतिकाव्य की परम्परा दिखाई देती है, उसकी जड़ें भक्तिकाल में और संस्कृत काव्यपरम्परा में भी रही हैं।नीति के पद्य सामान्यत: जीवन के अनुभवों से जुड़े हुए होते हैं और वे सांसारिक व्यवहार को लेकर सिद्धांत स्थापित करने वाले

होते हैं।रीतिकाल के नीतिकाव्य इस कसौटी पर कितने खरे उतरते हैं, यह अवश्य विचार का विषय है। रामचंद्र शुक्ल ने रहीम के ऐसे दोहों पर बात करते हुए लिखा है कि रहीम के दोहे कोरी नीति के पद्य नहीं हैं, उनमें मार्मिकता है, उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झाँकता है। लेकिन इसी प्रसंग में उन्होंने रीतिकाल के नीतिकवियों वृन्द और गिरिधर के नीतिपद्यों को कोरी नीति के पद्य कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि रीतिकाल में सामान्यत: नीति के पद्य औपचारिकता के निर्वाह के लिए लिखे गये न कि जीवन के मर्म को पर्याप्त संवेदनशीलता के साथ स्थापित करने के लिए।यह बात सही है कि रीतिकाल के नीतिकवियों की कविताओं की कोटि बहुत उच्च नहीं मानी जा सकती, लेकिन ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि ये कविताएँ पूरी तरह से महत्त्वहीन हैं। कहीं-कहीं इन रचनाओं में भी जीवनानुभव के निचोड़ दिखते हैं।उदाहरण के लिए गिरिधर कविराय की इन पंक्तियों को देखिए –

“पानी बाढो नाव में, घर में बाढो दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥”

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि रीतिकाल के अधिकांश नीतिकाव्यों पर सामंती मूल्यबोध हावी है। इन कवियों का दरबारी कवि होने के कारण भी यह स्वाभाविक है । उदाहरण के लिए बैताल कवि का एक छप्पय देखिये जो स्त्री विरोधी नज़रिए से लिखा गया है, और स्त्रियों के लिएबेहद अपमानजनक है-

“राजा चंचल होय, मुलुक को सर करि लावै।
पंडित चंचल होय, सभा उत्तर दै आवै।।
हाथी चंचल होय, समर में सड़िउठावै।
घोड़ा चंचल होय, झपट मैदान देखावै
ये चारों चंचल भले, राजा पंडित गज तुरी।
ये ‘बैताल’ कहै विक्रम सुनो, तिरिया चंचल अति बुरी।”

बोध प्रश्न –

- इस काल में नीति के पद क्यों लिखे गए ?

भक्तिकाव्य

ऐसा नहीं हैकि रीतिकाल में भक्तिकाव्य की परम्परा लुप्त हो गई हो। इस काल में कुछ कवियों ने विशुद्ध रूप से भक्ति रचनाएँ भी कीं। यहाँ यह स्पष्ट करना बहुत ज़रूरी है कि राधा और कृष्ण को अवलंब बनाकर जो शृंगार काव्य रीतिकालीन कवियों ने लिखे उन्हें भक्तिकाव्य की श्रेणी में नहीं रखा जाता, क्योंकि ऐसी मान्यता रही है कि अधिकांश कवियों ने अपने आश्रयदाता के जीवन चरित को दर्शाने अथवा अपनी शृंगार भावना को अभिव्यक्त करने के लिए कृष्ण-राधा के अवलंब का उपयोग भर किया।रीतिकाल में जो भक्तिकाव्य की परम्परा रही उसे पृथक रूप में देखना ज़रूरी है।रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इन कवियों ने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद पुराने भक्तों के ढंगपर गाये हैं। भक्तिकालीन परम्परा इस काल में भी संतकाव्य,

सूफीकाव्य, रामकाव्य और कृष्णकाव्य के रूप में सुरक्षित रही।इस धारा के प्रमुख कवियों में यारी साहब, दरिया साहब, पलटू साहब, गुरू तेगबहादुर, संत चरनदास, प्राणनाथ, कासिमशाह, नूरमोहम्मद, शेख़निसार, गुरू गोविन्द सिंह, जानकी रसिकशरण, भगवंतराय खीची, जनकराजकिशोरीशरण, नवल सिंह, विश्वनाथसिंह, रामप्रियाशरण, रसिकअली, गुमान मिश्र, ब्रजवासीदास, मंचित, नागरीदास, अलबेली, हितवृन्दावनदास, वृन्दावनदेव, सुंदरी कुंवरीबाई, बक्षी हंसराज श्रीवास्तव 'प्रेमसखी', कृष्णदास, रत्नकुंवरी आदि का उल्लेख किया जाता है।

12.3.4 रीतिकालीन गद्य

यह गलत धारणा है कि गद्य-लेखन का प्रारंभ आधुनिक काल में हुआ। छिटपुट गद्य रचनाएँ भक्तिकाल में भी लिखी गई और रीतिकाल में भी। यह ज़रूर कहा जा सकता है कि परिपक्व गद्य रचनाएँ मुख्यत: आधुनिक काल से ही मिलनी शुरू हुईं, और भक्तिकाल और रीतिकाल में अधिकांश कच्ची गद्य रचनाएँ ही देखने को मिलती हैं, लेकिन अपवाद स्वरूप रामप्रसाद निरंजनी के 'भाषा योगवशिष्ठ' का उल्लेख किया जा सकता है, जिसके गद्य को आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी परिमार्जित गद्य मानते हैं।इस काल में कुछ नाटक, कुछ कथा-कहानियाँ, कुछ टीकाएँ और कुछ वार्ताएँ आदि गद्य विधा में मिलती हैं। ब्रज-भाषा के अतिरिक्त खड़ीबोलीमें लिखे गये गद्य भी इस युग से मिलने प्रारंभ हो जाते हैं।

12.3.5 रीतिकालीन प्रमुख कवि

केशवदास (1555-1617)

केशवदास का जन्म 1555 ई. में और मृत्यु 1617 ई. में हुई थी। अपने ग्रंथ 'कविप्रिया' में केशव ने अपने निजी जीवन का परिचय दिया है। इनके पितामह का नाम कृष्णदत्त और पिता का नाम काशीनाथ था। इनके पूर्वज ग्वालियर नरेश तथा बुंदेलखंड के शासकों के आश्रय में रहते थे। ये सभी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित माने जाते थे। उनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र भाषा केअच्छे कवि थे। अपनी इसी पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण केशव को सहज ही काव्यशास्त्र का ज्ञान अर्जित करने का अवसर मिला। केशव ओरछा के नरेश महाराज राम के भाई इन्द्रजीत सिंह की सभा में रहते थे। यहाँ उनका बहुत ही मान सम्मान था। अपने जीवनकाल के हिसाब से केशव भक्तिकाल के कवि कहे जा सकते हैं। संभवत: इसीलिए रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें भक्तिकाल के फुटकल कवियों के अंतर्गत रखा है।लेकिन केशवदास अपने रचनात्मक अवदानों से रीतिकाल के प्रवर्तक लगते हैं।साहित्य इतिहास में कोई भी काल अचानक से ख़त्म नहीं हो जाता और न ही कोई नया काल अचानक से आता है।बल्कि इनके बीच में एक संक्रमण काल होता है।केशवदास वस्तुत: इसी संक्रमण काल के कवि हैं।इसलिए अधिकांश साहित्य इतिहासकारों के द्वारा रीतिकाल के लिए निर्धारित कालखंड का अतिक्रमण करते हुए केशवदासको रीतिकाल के कवि के रूप में गिनना उचित ही प्रतीत होता है।

केशव के जन्म से कुछ दिन पूर्व ही कृपाराम, करनेस आदि कुछ कवियों का ध्यान रस, अलंकार आदि काव्यांग निरूपण की ओर जा चुका था,लेकिन उन लोगों का काम बहुत व्यवस्थित नहीं माना जाता है।काव्यांगों के सम्पूर्ण परिचय को व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करने की शुरूआत केशवदास से मानी जा सकती है।केशवदास द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथ हैं : रसिकप्रिया (1591), रामचंद्रिका (1601), कविप्रिया (1601), रतनबावनी (1607), वीरसिंहदेवचरित (1607), विज्ञानगीता (1610), जहाँगीरजसचन्द्रिका (1612)। रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि इस बात में कोई संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया। उन्होंने यह भी लिखा है कि केशवदास काव्य में अलंकार का स्थान प्रमुख समझने वाले चमत्कारवादी कवि भी थे। केशवदास ने स्वयं भी लिखा है –

“जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त । .
भूषन बिनु न विराजहीं कविता बनिता भित्त।।”

अपने इसी विचार के कारण उन्होंने **भामह, उद्भट** और **दंडी** आदि प्राचीन आचार्यों का अनुसरण किया जो रस, रीति आदि सब कुछ को अलंकार के अंतर्गत ही मानते थे। केशव ने अलंकार शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। अलंकारों के लक्षण बताने के लिए उन्होंने मूलत: दंडी के ‘काव्यादर्श’ का उपयोग किया है। केशव की मृत्यु के पचास-साठ वर्ष बाद रीतिकाल में जो लक्षण ग्रंथों की परम्परा चली वह केशव के लक्षणग्रंथों की परंपरा से इस रूप में पृथकत्व रखती हैं कि बाद के प्रायः लक्षण ग्रंथकारों ने केशव के अनुकरणीय आचार्यों के ग्रंथों के बजाय मुख्यतः**जयदेव** के‘चंद्रालोक’, **अप्पय दीक्षित**के‘कुवलयानंद’ मम्मट के ‘काव्यप्रकाश’ और **आचार्य विश्वनाथ** के ‘साहित्यदर्पण’ को आधार ग्रंथ मानकर रचनाएँ की। इस तरह से केशव लक्षणग्रंथ की परम्परा में अपना एक पृथक अस्तित्व रखते हैं। उनके अलंकार लक्षण बाद के प्रचलित अलंकारों से मेल नहीं खाते हैं।

बोध प्रश्न –

- केशवदास की कुछ रचनाओं के नाम बताइए.
- ‘चंद्रलोक’ के रचनाकार का नाम बताइए।

जिस तरह अन्य रीतिग्रंथकार कवियों के लिए यह कहा जाता है कि वे मूलत: आचार्य नहीं बल्कि कवि हैं, इसके विपरीत केशवदास पर कवित्व की अपेक्षा आचार्यत्व का अधिक आरोप लगाया जाता है। प्रचलित है कि उनके काव्य को दुरूह मानकर उन्हें ‘कठिन काव्य का प्रेत’ भी कहा जाता है। रामचंद्र शुक्ल ने तो उनके विषय में यहाँ तक लिखा है कि सहृदयता और भावुकता का उनमें सख्त अभाव था और वे कवि ह्रदय नहीं थे। इसके अलावा शुक्ल जी ने लिखा है कि संस्कृत साहित्य की सामग्री लेकर वे अपने पांडित्य और रचना कौशल की धाक जमाना चाहते थे। साथ ही उन्होंने यह भी जोड़ दिया है कि भाषा पर भी उनका अधिकार उतना नहीं है, जितना इस तरह के सामग्री संयोजन के लिए अपेक्षित होता है। रामचंद्र शुक्ल की जो धारणा

केशवदास के प्रति है उससे सभी सहमत हों यह आवश्यक नहीं है। केशव के कई परवर्ती कवियों और काव्य मर्मज्ञों ने तो केशवदास को सूर और तुलसी की परम्परा में स्थान देने के योग्य समझा है। इस मान्यता को लेकर एक उक्ति भी प्रसिद्ध है –

'सूर- सूर, तुलसी ससी उड़गन केसवदास।'

बोध प्रश्न –

- किस कवि को कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है ?

केशवदास की प्रमुख कृति 'रामचंद्रिका' को हिंदी साहित्य के इतिहासकार रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'छंदों का अजायबघर' कहा है।वे कहते हैं इस कृति में छंद-प्रयोग भाषा में प्रवाह एवं जीवंतता उत्पन्न नहीं करते अपितु उसे नष्ट करते हैं। लेकिन इस ग्रंथ की संवाद योजना की प्रशंसा प्राय: आलोचकों ने की है। रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है कि इन संवादों में क्रोध, उत्साह आदि की व्यंजना भी सुन्दर है। (जैसे लक्ष्मण राम परशुराम संवाद तथा लवकुश प्रसंग के संवाद) तथा वाकपटुता और राजनीति के दांवपेंच का आभास भी प्रभावपूर्ण है। उनकी कृति 'रसिकप्रिया' उनकी परिपक्क रचना मानी जाती है और इसके पदविन्यास और सरसता की भी प्रशंसा की जाती है। इनकी कृति 'वीरसिंहदेव चरित' प्रशस्ति काव्य की श्रेणी में आती है और उनकी एक अन्य कृति 'रतनबावनी' रत्नसिंह की वीरता पर छप्पय छंद में रचा गया एक अच्छा काव्य माना जाता है। उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं -

'कौन के सुत?' बालि कें' 'वह कौन बलि' न जानिए?
'काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए'।।
'है कहाँ वह वीर?' अंगद 'देवलोक बताइयो'
'क्यों गयो?' 'रघुनाथ वान-बिमान बैठि सिधाइयो'।।
'लंकनायक को?' 'विभीषण, देव-दूषण को दहै'?
'मोहि जीवत होहि क्यों?' 'जग तोहि जीवत को कहै'?
'मोहिं को जग मारिहै?' दुर्बुद्धि तेरिय जानिए'।
'कौन बात पठाइयो कहि वीर बेगि बखानिए'।
('रामचंद्रिका' के रावण-अंगद संवाद से उदाहरण)

एक अन्य उदाहरण देखें-

'केशव सूधो विलोचन सूधी, विलोकनि कों अवलोकै सदाई।
सूधिये बात सुनै समुझे, कहि आवत सूधियै बात सुहाई॥

सूधी सी हाँसी सुधाकर, मुख सोधि लई वसुधा की सुधाई।
सूधे सुभाइ सबै सजनी, बस कैसे किए अति टेढे कन्हाई॥'

बोध प्रश्न –

- केशवदास की प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

बिहारी (1595-1663)

बिहारी का जन्म 1595 ई. (लगभग) में ग्वालियर में हुआ था और इनकी मृत्यु 1663 ई. में हुई थी। इनके पिता का नाम केशवराय था, जो निम्बार्क सम्प्रदाय के महंत नरहरि दास के शिष्य थे। बिहारी ने नरहरि दास के यहाँ संस्कृत, प्राकृत के काव्य ग्रंथों का अध्ययन किया था। बाद के दिनों में वे वृन्दावन आकर बस गये। यहीं उन्होंने फ़ारसी काव्य का भी अभ्यास किया। कहा जाता है कि 1645 ई. के लगभग वे जयपुर दरबार गये हुए थे, उन्हें पता चला कि वहाँ के महाराज अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में इस कदर लिप्त हो गये थे कि उन्होंने राजकाज पर ध्यान देना बंद कर दिया था और अक्सर महल में ही रहा करते थे। इससे राज्य के अधिकारी और प्रजा बहुत व्यथित थे। किम्वदंती के अनुसार बिहारी ने एक दोहा लिखकर महाराज को भिजवा दिया। जो इस प्रकार से था–

'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल
अली कली ही सों बिंध्यो, आगे कौन हवाल।'

बिहारी के इस दोहे का अद्‌भुत प्रभाव हुआ और महाराज जयसिंह को अपने दायित्व का बोध हो गया। इसके बाद बिहारी जयपुर राजदरबार में सम्मान के पात्र हो गये और उनसे वहीं रहने का आग्रह किया गया।

बिहारी ने दोहा छंद में अपनी रचनाएँ लिखीं और उनके इन्हीं दोहों को ही **'बिहारी सतसई'** के रूप में संकलित किया गया। शृंगाररस के ग्रंथों में जितनी ख्याति 'बिहारी सतसई' की है उतनी किसी अन्य ग्रंथ की नहीं है। इस ग्रंथ की पचास से भी अधिक टीकाएँ रची जा चुकी हैं। बिहारी के दोहों का सबसे प्रामाणिक संस्करण उसकी सटीक व्याख्या के साथ बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर के संपादन में 'बिहारी रत्नाकर' के नाम से प्रकाशित हुआ है। बिहारी ने सतसई के अतिरिक्त कोई अन्य ग्रंथ नहीं लिखा, लेकिन इनके इसी ग्रंथ की इतनी प्रसिद्धि है कि किसी अन्य ग्रंथ के न होने से इनकी प्रतिष्ठा और ख्याति में कोई फर्क नहीं पड़ता। सतसैया के प्रत्येक दोहे को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सतसैया के बारे में एक उक्ति प्रसिद्ध है :

'सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर
देखन में छोटे लगैं, बेधैं सकल शरीर'।

सतसई के दोहों में विविधता दिखाई देती है। मुख्यत: शृंगार के मुक्तक इस संकलन में शामिल हैं, लेकिन इसमें भक्ति और नीति के दोहे भी मिलते हैं। बिहारी के दोहे अपनी सरसता और जीवंत चित्रण के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी रचनाओं में राजसी विलास ही नहीं, सामान्य

गृहस्थों के जीवन के भी चित्र मिलते हैं। बाग़ और सरोवर ही नहीं वैद्य औरज्योतिषी तक इनके शृंगारिक पदों में एक घटक बनकर उपस्थित होते हैं। बिहारी विभिन्न विषयों के ज्ञाता थे और इसलिए उनकी विस्तृत जानकारी का उनकी रचनाओं में खूब उपयोग हुआ है। बिहारी के शृंगारिक पदों की सफलता में सिर्फ प्रस्तुत भावों का ही नहीं उनकी काव्यकला मर्मज्ञता का भी योगदान है। भाषा के अनुशासित प्रयोग, विविध अलंकारों, शब्द शक्तियों आदि के प्रयोग में भी वे बहुत अधिक सफल माने जाते हैं। बिहारी के कुछ दोहों पर अत्योक्ति का आरोप लगाया जाता है, लेकिन कई आलोचक ऐसा मानते हैं कि बिहारी की अत्योक्ति सम्प्रेषण को अधिक सफल बनाने के उद्देश्य से सुविचारित प्रयोग है। उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं-

[1.]मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित दुति होइ।।

[2.] कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन हीं सों बात।।

[3.] दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥

[4.] पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौ ही रहै, आनन-ओप उजास॥

बोध प्रश्न –

- बिहारी ने किस छंद में रचनाएँ लिखीं।

भूषण (1613-1715)

रीतिकाल में वीर रस की कविता लिखने वाले कवियों में भूषण का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। रीतिकाल के अग्रणी कवियों चिंतामणि और मतिराम के भाई के रूप में भी इन्हें चिन्हित किया जाता है। माना जाता है कि इनका जन्म1613 ई में हुआ था। चित्रकूट के सोलंकी राजा रूद्र ने इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि दी थी तभी से ये भूषण के नाम से जाने जाने लगे। इनके वास्तविक नाम के बारे में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। भूषण के विषय में कहा जाता है कि वे कई राजाओं के आश्रय में रहे लेकिन जिस आश्रयदाता से सर्वाधिक प्रभावित होकर उन्होंने वीर काव्य की रचना की, वे छत्रपति शिवाजी महाराज थे। पन्ना के महाराज छत्रसाल के सम्मान और विनम्रता से भी वे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने महाराज छत्रसाल को भी अपनी कविता का नायक बनाया। ऐसा कहा जाता है कि इनके एक-एक छंद पर शिवाजी ने प्रसन्न होकर इन्हें लाखों रूपए दिए। यह मान्यता है कि लगभग 1715 ई में इनकी मृत्यु हो गई थी।

भूषण के 'शिवराज भूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल दशक' ग्रंथ उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त 'भूषणउल्लास', 'दूषणउल्लास' और 'भूषणहजारा' नामक ग्रंथ भी इन्हीं के द्वारा

रचित माने जाते हैं।भूषण मूलत: वीर रस के ही कवि थे, इनके कुछ कवित्त शृंगार में भी मिलते हैं लेकिन वे नगण्य हैं। रीतिबद्ध परम्परा से आने के कारण भूषण ने अपने प्रतिनिधि ग्रंथ 'शिवराज भूषण' की रचना एक अलंकार ग्रंथ के रूप में की लेकिन रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि रीति ग्रंथ की दृष्टि से और अलंकार निरूपण के विचार से इस ग्रंथ को उत्तम कोटि का नहीं माना जा सकता,लेकिन शुक्ल जी ने यह भी लिखा है कि इस ग्रंथ के कई कवित्त बड़े ही सशक्त और प्रभावशाली हैं। उदाहरण के लिए यह पद देखें

'इन्द्र जिमि जंभ पर, बाडब सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज हैं।
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्रबाह पर राम-द्विजराज हैं॥
दावा द्रुम दंड पर, चीता मृगझुंड पर,
'भूषन वितुंड पर, जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यौं मलिच्छ बंस पर, सेर शिवराज हैं॥

बोध प्रश्न –

- रीतिकाल में वीर रस के कवि कौन है ?
- भूषण की रचनाओं का नाम बताइए।

भूषण ने अपने कवित्त में कई ऐतिहासिक तथ्यों का भी उल्लेख किया : जैसे अफ़ज़ल खां का शिवाजी के द्वारा मारा जाना, दारा की औरंगज़ेब द्वारा हत्या, शिवाजी का सूरत पर अधिकार और उनका औरंगज़ेब के दरबार में जाना आदि। भूषण की कविताओं की विशेषता यह मानी जाती है कि उनके यहाँ एकसाथ ओज, व्यंग्य, हास्य सभी दिखाई देते हैं। इनकी भाषा की विशेषता यह है कि इसमें अरबी-फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। भूषण की कविता का एक अन्य उदाहरण देखें -

'साजि चतुरंग सैन अंग में उमंग धरि
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है
भूषण भनत नाद बिहद नगारन के
नदी-नद मद गैबरन के रलत है
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल गैल
गजन की ठैल –पैल सैल उसलत है
तारा सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि

थारा पर पारा पारावार यों हलत है’

बोध प्रश्न –

- भूषण की कविताओं की क्या विशेषता है ?

मतिराम (1617-1693)

माना जाता है कि मतिराम का जन्म कानपुर जिले के तिक्वांपुर नामक स्थान पर 1617 ई के लगभग हुआ था। इनकी मृत्यु 1693के लगभग मानी जाती है। रीतिकाल के प्रसिद्ध तीन कविबंधुओं में से ये एक हैं। शेष दो भाई चिंतामणि और भूषण के नाम से जाने जाते हैं। बूंदी के महाराज भावसिंह के आश्रय में ये लम्बे समय तक रहे और **‘ललितललाम**’ नामक अपना अलंकार ग्रंथ इन्होंने वहीं पर लिखा। पिंगल भाषा में लिखा गया इनका **‘छंदसार’** नामक ग्रंथ महाराज शम्भुनाथ सोलंकी को समर्पित किया गया है। इसके अतिरिक्त इनके ग्रंथों में **‘साहित्यसार’** और **‘लक्षणशृंगार’** भी शामिल हैं। रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ ‘हिंदी साहित्य का इतिहास’ में उल्लेख किया है कि ग्रंथों की खोज के क्रम में **‘मतिराम सतसई’** नामक इनका एक अन्य ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है, जो ‘बिहारी सतसई’ के ढंग पर लिखा गया है और इसकी सरसता भी बिहारी के दोहों के समान है। मतिराम की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह मानी जाती है कि वह सहज और स्वाभाविक होती हैं। भाषा और शब्दों के आडम्बर से इनकी कविताएँ मुक्त हैं और केवल आलंकारिक चमत्कार के लिए इन्होंने शब्दों को विरूपित करने से परहेज़ किया है। शुक्ल जी के अनुसार रीतिग्रंथकार कवियों में मतिराम जैसी रसस्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा रीति का अनुसरण करने वाले बहुत कम हुए हैं। सामाजिक जीवन से उन्होंने जो मर्मस्पर्शी दृश्य चुने हैं और उनको जिस तरह से प्रस्तुत किया है वह उनके सहृदय कवि व्यक्तित्व का परिचय देता है। मतिराम के दो ग्रंथों ‘रसराज’ और ‘ललितललाम’ की प्रसिद्धि इस बात के लिए भी है कि रस और अलंकार की शिक्षा में इनका उपयोग बराबर होता रहा है। इन ग्रंथों में जो उदाहरण दिए गए हैं वे बहुत ही सरस और स्पष्ट हैं। मतिराम की कविताओं के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं-

[1.]‘कुंदन को रँगु फीको लगै, झलकै अति अंगन चारू गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौन में, मंजु बिलासन की सरसाई॥
को बिन मोल बिकात नहीं, 'मतिराम कहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यौं-त्यौं खरी निकसै सी निकाई॥’

[2] ‘सुबन को मेट दिल्ली देस दलिबे को चूम,
सुभट समूह निसि वाकी उमहति है।
कहै मतिराम ताहि रोकिबे को संगर में,

काहू के हिम्मत हिए में उलहति है।
सत्रुसाल नन्द के प्रताप की लपट सब,
जरब गनीम बरगीन को दहति है।
पति पातसाह की,इजति उमरावन की,
राखी रैया राव भावसिंह की रहति है।’

बोध प्रश्न –

- मतिराम के ग्रंथों के नाम बताइए।
- मतिराम की रचनाओं की क्या विशेषता है ?

वृन्द (1643-1723)

वृन्द का जन्म 1643 ई. हुआ था। इनके पूर्वज बीकानेर के रहने वाले थे, लेकिन इनके पिता मेड़ते में आकर बस गये थे, वहीं इनका जन्म हुआ था। इनका पूरा नाम **वृन्दावन** था। बचपन से ही वे कुशाग्र बुद्धि के थे। दस वर्ष की आयु में विद्याध्ययन के लिए उन्हें काशी भेजा गया। यहाँ उन्होंने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, गणित, दर्शनशास्त्र आदि का ज्ञान हासिल करने के साथ-साथ काव्यरचना में भी निपुणता हासिल की। काशी से लौटने पर उनका बहुत सम्मान हुआ और जोधपुर नरेश महाराज जसवंत सिंह ने उन्हें सम्मान में ज़मीनें दे दीं। राजदरबार से वृन्द संपर्क की बदौलत औरंगज़ेब के वज़ीर नवाब मोहम्मद खां से इनका परिचय हुआ और इनका प्रवेश बादशाह के दरबार में हुआ। यहाँ इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर बादशाह ने इन्हें अपना दरबारी कवि बना लिया। यहीं इन्हें शहज़ादा मुअज्ज़म को शिक्षित करने का दायित्व भी दिया गया। बाद में इन्होंने बादशाह के पौत्र को भी पढ़ाया और इस दरम्यान ये निरंतर काव्य रचना भी करते रहे। 1707 के लगभग किशनगढ़ के महाराज राजसिंह के आग्रह पर वृन्द किशनगढ़ में बस गये। इनके जीवन के अंतिम लगभग पन्द्रह-सोलह वर्ष यहीं बीते और यहीं 1723 ई. में इनकी मृत्यु हो गई। वृन्द की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं : ‘बारहमासा’ (1668), ‘भावपंचाशिका’ (1686), ‘नयनपच्चीसी’ (1686) ‘पवनपच्चीसी’ (1691), ‘शृंगारशिक्षा’ (1691), ‘यमक सतसई’ (1706)

वृन्द की प्रसिद्धि उनकी नीति सम्बन्धी रचनाओं को लेकर है। इनके नीति के दोहों के बारे में कहा जाता है कि इनपर संस्कृत साहित्य का प्रभाव रहा है। इसलिए इनकी नीति सूक्तियों को संस्कृत नीति श्लोक की परंपरा से प्रेरित माना जा सकता है। इस बात में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि स्वाभाविक रूप से इनके अपने जीवनानुभव भी इनकी नीति सूक्तियों में शामिल रहे होंगे। इनकी नीति सूक्तियों का एक उदाहरण देखिए :

“भले-बुरे सब एक सम, जौं लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काग-पिक, ऋतु बसंत के माहिं।।”

वृन्द की रचनाओं में सिर्फ नीति सूक्तियाँ ही नहीं मिलतीं, बल्कि उनकी रचनाओं में विविधता और अन्य विशेषताएँ भी मिलती हैं। जैसे **'भावपंचाशिका'** नामक ग्रंथ के प्रत्येक सवैये में कोई न कोई गुप्त स्थिति रखी गई है, जिसे उसके अंत में एक दोहा लिखकर प्रकट किया गया है। एक उदाहरण देखें-

जानकीनाथ अनाथ के नाथ भुजा भुवमंडल भार गाहे तैं।
बैठे हैं राजसभा महि आई मिले पुरलोक बिलोक सहे तैं।
बृंद कहै सबही या कही यह बात बिबेक बिचार लहे तैं।
आजु ही तैं मेरो नाम पृथिपति कोऊ कहो जिन मेरे कहे तैं।।

दोहा : सीता पृथ्वी की सुता सासु भई इहि हेत।
तातैं युक्त न पतिपनौ समुझहु भाव सचेत।

वृन्द ने अपनी **'शृंगारशिक्षा'** नामक पुस्तक में शृंगार रस का वर्णन किया है। इन्होंने पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर लौकिक यथार्थ को प्रकट करने वाली अनूठी रचनाएँ भी की हैं। जैसे वृन्द यह बतलाने के लिए कि पेट भरना एक कठिन समस्या है, लिखते हैं –

'करि उदर दुई भरन भय हर अरधंगी दार
जौ न होय तौ क्यों रहै अब लौं तनय कुमार'

इसका अर्थ यह हुआ कि दो पेटों को न भरना पड़े इस भय से शिव ने अपनी पत्नी को अपने अर्धांग में स्थापित कर लिया। इसके बाद भी उन्होंने इसी भय से अपने पुत्र कार्तिकेय का विवाह तक नहीं होने दिया।

बोध प्रश्न –

- 'शृंगारशिक्षा' में कौनसा रस प्रधान है ?

देव (1673-1767)

रीतिकाल में अधिकाधिक रचनाएँ रचने वालों में अग्रणी देव के जन्म के विषय में माना जाता है कि वे इटावा में लगभग 1673 ई. पैदा हुए थे। इनका पूरा नाम देवदत्त था।**'भावविलास'** नामक ग्रंथ में इन्होंने अपने बारे में लिखा है कि ग्रंथ निर्माण के समय मेरी अवस्था सोलह वर्ष है। इसी आधार पर इनके जन्म का वर्ष निश्चित करने का प्रयास किया जाता है। इनके विषय में बहुत जानकारी नहीं मिलती। रामचंद्र शुक्ल का यह अनुमान है कि उन्हें कोई उदार आश्रयदाता नहीं मिला होगा जहाँ ठहरकर वे लगातार सुखपूर्वक रचना करते रहते। इसलिए वे लगातार अनेक रईसों के यहाँ एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहे। कहीं वे स्थायी रूप से नहीं रूक सके। शुक्ल जी ने लिखा है कि इसका कारण या तो देव की प्रकृति की विचित्रता माने या इनकी कविता के साथ उस कला की रूचि का असामंजस्य। विभिन्न प्रदेशों के अपने लगातार भ्रमण का देव को निश्चित रूप से यह लाभ मिला कि वे अपने अनुभवों को अपने ग्रंथों में संजो सके।देव ने प्रचुर मात्रा में रचनाएँ की हैं और इनके रचे हुए ग्रंथों की संख्या बावन

से बहत्तर तक मानी जाती है। उनमें से उपलब्ध ग्रंथों के नाम हैं : 'भावविलास', 'अष्टयाम', 'भवानीविलास', 'सुजानविनोद', 'प्रेमतरंग', 'रागरत्नाकर', 'कुशलविलास', 'देवचरित', 'प्रेमचन्द्रिका', 'जातिविलास', 'रसविलास', 'काव्यरसायन', 'सुखसागर तरंग', 'वृक्षविलास', 'पावनविलास', 'ब्रह्मदर्शन पचीसी', तत्त्वदर्शन पचीसी', 'आत्मदर्शन पचीसी', 'जगद्दर्शन पचीसी', 'रसानंद लहरी', 'प्रेमदीपिका', 'नखशिख', 'प्रेमदर्शन'।

बोध प्रश्न –

- देव की कुछ रचनाओं के नाम बताइए।

देव ने भवानीदत्त नामक वैश्य को समर्पित 'भवानीविलास' और कुशल सिंह के नाम पर 'कुशलविलास' की रचना की, राजा उद्योत सिंह के लिए इन्होंने 'प्रेमकाव्य' की रचना की और अपने ग्रंथ 'रसविलास' में इन्होंने अपने आश्रयदाताओं में से एक मोतीलाल की पर्याप्त प्रशंसा की है। जैसे : 'भूपलाल पोखर लेवैया जिन्ह लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं'।इनके ग्रंथ 'रागरत्नाकर' में राग-रागनियों के स्वरूप का वर्णन हुआ है। 'अष्टयाम' में दिनरात के भोगविलास की दिनचर्या का चित्रण है। 'ब्रह्मदर्शन पच्चीसी' और 'तत्वदर्शन पच्चीसी' में जो वैराग्य का भाव है उसके बार में शुक्ल जी का अनुमान है कि संभवत: अपनी कविता के प्रति लोक की उदासीनता देखते-देखते इनमें यह भाव उत्पन्न हुआ हो। इनकी मृत्यु 1767 ई के आसपास हुई थी। देव ने प्रचुर मात्रा में जो रचनाएँ की हैं, उन सबको महत्त्वपूर्ण कहना उचित नहीं होगा लेकिन उनकी बहुत सारी रचनाएँ अपने अर्थ सौष्ठव और नवोन्मेष के कारण विशिष्ट मानी जाती हैं। साहित्य इतिहासकारों ने इन्हें प्रतिभा संपन्न कवि की संज्ञा दी है और इनकी मौलिकता एवं काव्यशक्ति की सराहना की है। इनकी कल्पना की सूक्ष्मता की भी सराहना की जाती है। जहाँ-जहाँ अपने आचार्यत्व के प्रदर्शन के दबाव से मुक्त होकर इन्होंने रचनाएँ की हैं, इनकी रचनाएँ प्रभावी हुई हैं। इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं-

[1.]'डारि द्रुम-पालन बिछौना नव-पल्लव के
सुमन झिगूला सोहै तन छवि भारि दै
पवन झुलावै केकी-कीर बहरावे देव
कोयल हलावे-हुलसावे कर तारि दै
पूरित पराग सौं उतारौं करै राई-नोन
कंजकली नायिका लतानि सिर-सारि दै
मदन-महीपजू को बालक बसंत ताहि
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारि दै।'

[2.]'देव मैं सीस बसायो सनेह सों, भाल मृगम्मद-बिन्दु कै भाख्यौ।
कंचुकि में चुपरयो करि चोवा, लगाय लियो उरसों अभिलाख्यौ॥
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यौ।

सॉंवरे लाल को सॉंवरो रूप मैं, नैननि को कजरा करि राख्यौ॥'

बोध प्रश्न –

- 'ब्रह्मदर्शन पच्चीसी' में कौनसा भाव है ?
- साहित्य इतिहासकारों ने दे को क्या मानते थे ?

घनानंद (1689-1739)

उदात्त प्रेम के अनन्य कवि घनानंद का जन्म 1689 ई. के लगभग हुआ था। ये दिल्ली के बादशाह मोहम्मद शाह के दरबार में मीर मुंशी के पद पर कार्यरत थे। घनानंद के विषय में एक महत्त्वपूर्ण किंवदंती का ज़िक्र किया जाता है। कहते हैं कि घनानंद के प्रति ईर्ष्या रखने वाले कुछ दरबारियों ने बादशाह को बताया कि घनानंद बहुत अच्छा गाते हैं, लेकिन वे किसी के कहने पर नहीं गाते सिवाय सुजान नाम की उस नर्तकी के जिससे वे प्रेम करते हैं। राजा ने इस बात का परीक्षण करना चाहा और घनानंद से गाने के लिए कहा। घनानंद ने जब टालमटोल की तब सुजान को बुलाया गया और सुजान से गाने का आग्रह करवाया गया। कहते हैं कि तब घनानंद ने सुजान की ओर मुंह किया, जिससे उनकी पीठ बादशाह की ओर हो गई और वे गाने लगे। उनके गायन का प्रभाव ऐसा था कि सब लोग तन्मय होकर सुनते रहे। बादशाह भी उनके गायन से बहुत प्रभावित हुए, लेकिन उनकी ओर पीठ करके गाने को उन्होंने अपनी बेअदबी समझा और इस कारण वे बहुत नाराज़ भी हुए। घनानंद को नगर निकाले की सजा दी गई। जब वे चलने लगे तो उन्होंने सुजान से भी अपने साथ चलने का आग्रह किया लेकिन सुजान ने मना कर दिया। इससे उनमें वैराग्य भाव जागृत हुआ और वे वृन्दावन जाकर रहने लगे। यहाँ उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ली और भक्ति एवं कविताकर्म में रत रहने लगे।

सुजान के प्रति उनका प्रेम वैराग्य के दिनों में और उदात्तहोकर प्रकट होने लगा। अपनी प्राय: कविताएँ वे सुजान को संबोधित करते हुए लिखने लगे। उनकी प्राय: रचनाओं के अवलंब कृष्ण और राधा रहे। ऐसा कहा जा सकता है कि सुजान के प्रति जो उनका प्रगाढ़ प्रेम था, वह रूपांतरित होकर कृष्ण और राधा के प्रेम के रूप में अभिव्यक्त होने लगा। प्रेम की व्यंजना ही घनानंद की कविताओं का मुख्य ध्येय रहा। घनानंद की कविताओं में संयोग और वियोग दोनों ही पक्ष दिखाई देते हैं, लेकिन वियोग की अंतर्दशाओं को लेकर उनकी दृष्टि अत्यंत मार्मिक कही जा सकती है। उनके यहाँ वियोग वर्णन भी अंत:व्यथा के रूप में प्रकट हुआ है, बाहरी दशाओं के निरूपण के रूप में नहीं। इसका भी कारण यह हो सकता है कि घनानंद अपने व्यक्तिगत अनुभव में भी वियोग की दशा के अधिक निकट रहे। वियोग-शृंगार की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति के कारण घनानंद को 'प्रेम की पीर' का कवि भी कहा जाता है। प्रेम के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण होने के कारण इनकी कविताओं में एक प्रकार की कोमलता के साथ ही भावनाओं के सहज आवेग को लक्षित किया जा सकता है लेकिन इस कोमलता और सहजता में कोई कच्चापन नहीं है बल्कि परिपक्वता दिखाई देती है। जिसका अर्थ यह है कि घनानंद की कविताओं के पीछे एक सुदृढ़ वैचारिकी भी रही होगी। कविताओं के भावपक्ष ही नहीं शिल्पपक्ष में भी उन्हें पर्याप्त

सफल माना जाता है। उनकी तरह शुद्ध, सरस और प्रभावी ब्रजभाषा का उपयोग कर पाने में कम ही कवि समर्थ हो पाए। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए वे भाषा का अचूक प्रयोग करना जानते थे। इसी तरह शब्दशक्ति और वक्रोक्ति आदि का भी इन्होंने सफलतापूर्वक निर्वहन किया। घनानंद के जो प्रमुख ग्रंथ उपलब्ध हो सके हैं, वे हैं 'सुजानसागर', 'विरहलीला', 'कोकसागर', 'रसकेलिवल्ली' और 'कृपाकंद' इसके अलावा उनके कुछ अन्य ग्रंथों का उल्लेख भी किया जाता है।

घनानंद की मृत्यु के सम्बन्ध में भी एक कथा प्रचलित है। 1739 में नादिरशाह के सिपाही मथुरा तक भी आ पहुंचे थे। कुछ लोगों ने इन सिपाहियों को गलत जानकारी दे दी कि बादशाह का मीरमुंशी वृन्दावन में रहता है और उसने बहुत सारा धन छुपा रखा है। सिपाहियों ने घनानंद को घेर लिया और उनसे **जर जर जर** (अर्थात धन धन धन लाओ) कहने लगे, घनानंद ने जर को उलट कर **रज रज रज** कहते हुए तीन मुट्ठी धूल उनकी ओर फेंक दी। इसे सिपाहियों ने अपना अपमान समझा और क्रोधित होकर उनका हाथ काट डाला, जो उनकी मृत्यु का कारण बना। कहा जाता है कि मरने से पहले उन्होंने अपने रक्त से एक कवित्त लिखा था, उस कवित्त में भी सुजान का नाम था। घनानंद की कविताओं के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं-

[1.] "रावरे रूप की रीति अनूप,नयौ नयौ लागत जैतौ निहारियै।
त्यौं इन आंखिन बानि अनौखी,अघानि कहूं नहिं आन तिहारियैं।
एक ही जीव हुतौ सुतौ वारयौ,सुजान संकोच औ सोच सहरियै।
रोकी रहै न, दहै घन आनंद, बाबरी रीझ के हाथनि हारियै।"

[2.] "अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।"

बोध प्रश्न –

- उदात्त प्रेम के अनन्य कवि कौन हैं ?
- घनानंद ने किस संप्रदाय में दीक्षा ली ?
- घनानंद की कविताओं का मुख्य ध्येय क्या रहा ?

पद्माकर (1753-1833)

सामान्य मान्यता के अनुसार पद्माकर का जन्म 1753 ई में बांदा में हुआ था। पद्माकर के पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। वे प्रकांड पंडित होने के साथ-साथ अच्छे कवि भी थे, इस कारण से विभिन्न राजधानियों में उनका सम्मान हुआ करता था। यह कह सकते हैं कि पांडित्य और कवित्व पद्माकर को बहुत कुछ अपने परिवेश की वजह से मिला होगा। पद्माकर कई जगहों

पर रहे। 1792 ई के लगभग पद्माकर हिम्मत बहादुर के यहाँ गये जो एक प्रतिष्ठित योद्धा थे और बांदा के नवाब के यहाँ काम करने के बाद अवध के बादशाह के यहाँ सेना के एक बड़े अधिकारी के रूप में काम कर रहे थे। इन्हीं को समर्पित करते हुए पद्माकर ने 'हिम्मतबहादुर विरूदावली' नाम का प्रशस्ति ग्रंथ लिखा जो वीर रस की रचना है। जयपुर के राजा प्रतापसिंह के आश्रय में वे बहुत दिनों तक रहे और उसके बाद उनके पुत्र महाराज जगतसिंह के आश्रय में भी वे रहे। उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'जगद्विनोद' महाराज जगतसिंह के नाम पर लिखा। संभवत: यहीं रहते हुए उन्होंने अपने अलंकार ग्रंथ 'पद्माभरण' की भी रचना की जो दोहा छंद में है।

1803 ई में महाराज जगतसिंह के निधन के बाद वे ग्वालियर के महाराज दौलतराव सिंधिया के दरबार में रहने लगे। यहीं उन्होंने 'हितोपदेश' का भाषानुवाद किया था। इसके बाद वे बूंदी आ गये और फिर वहां से अपने घर बांदा आकर रहने लगे। यहीं उन्होंने 'प्रबोधपचासा' नामक भक्ति और वैराग्य का ग्रंथ लिखा। अपना अंतिम समय गंगा के तट पर बिताने के विचार से वे कानपुर में आकर रहने लगे और वहीं इनके जीवन के अंतिम सात वर्ष बीते। अपनी प्रसिद्ध रचना 'गंगालहरी' इन्होंने इसी अवधि में पूरी की थी। इनकी मृत्यु 1833 ई में हुई।पद्माकर की रचनाएँ पर्याप्त लोकप्रिय हुईं। सरस प्रवाह और जीवंत वर्णन इनकी रचनाओं की विशेषता मानी जाती है। इनकी रचना 'जगद्विनोद' भी काव्यरसिकों और काव्याभ्यास करने वाले लोगों के लिए एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ रहा। शुक्ल जी ने कहा है कि यह ग्रंथ शृंगार रस का सार ग्रंथ-सा प्रतीत होता है। पद्माकर की रचनाओं में भाव और कला का सुन्दर संतुलन दिखाई देता है। शब्दशक्तियों का सटीक प्रयोग भी इनकी विशेषता कही जाती है। इसके अलावा प्रकृति और लोक-संस्कृति के वर्णन में भी इन्हें बहुत सफल माना जाता है। इनके पदों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं:

[1.] "फागु के भीर अभीरन तें गहि, गोविंदै लै गई भीतर गोरी।
भाय करी मन की पदमाकर, ऊपर नाय अबीर की झोरी ॥
छीन पितंबर कमर तें, सु बिदा दई मोड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाई, कह्यौ मुसक्याइ, लला ! फिर खेलन आइयो होरी ॥"

[2.]'कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन में कलीन किलकंत है।
कहे पद्माकर परागन में पौनहू में
पानन में पीक में पलासन पगंत है
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में

बनन में बागन में बगरयो बसंत है।'

बोध प्रश्न –

- 'पद्माभरण' कैसी रचना है ?
- 'प्रबोध पचास' के रचनाकार कौन है ?

पाठ सार

रीतिग्रंथकार कवि या रीतिबद्ध कवि उत्तर मध्यकाल के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं और इन्हीं रचनाकारों की रचनाओं की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए इस काल को रीतिकाल की संज्ञा दी गई है। इसी प्रवृत्ति को केंद्र में रखकर रीतिबद्ध काव्यधारा के अतिरिक्त रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्यधारा का नामकरण किया गया।इस नामकरण को लेकर साहित्य इतिहासकारों में थोड़ा-बहुत मतान्तर देखा जा सकता है, लेकिन सामान्यत: उपरोक्त नामकरण व विभाजन ही स्वीकृत है।रीतिकाल की मुख्य काव्यधाराओं के लिए सामान्यत: यही नाम स्वीकृत हैं, लेकिन रीतिकाल में तत्वत: कुछ अन्य धाराएँ भी गौण रूप से विद्यमान रहीं जिनमें नीतिकाव्य, प्रशस्ति या वीरकाव्य और भक्तिकाव्य की धारा प्रधान है। कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं जो इन धाराओं में से एकाधिक धाराओं में अपना स्थान रखते हैं।

इस पाठ में रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में से कुछ कवियों के जीवन और कृतित्व पर चर्चा की गई है। इन कवियों में प्रमुखत: रीतिकाल की मुख्य तीन काव्यधाराओं रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त के अतिरिक्त अन्य काव्यधाराओं जैसे वीर और नीति काव्यधारा के कवि भूषण और वृन्द आदि भी शामिल हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि रीतिकाल के अधिकांश कवि राज्याश्रय में रहकर अथवा सामंतों के आश्रय में रहकर अपनी रचनाएँ किया करते थे। आश्रय में रहने के कारण इन कवियों की रचनाओं में आश्रयदाताओं की रूचियों का समावेश अधिक हुआ है। इसलिए माना जाता है कि इन कवियों के यहाँ लोकजीवन और मानवीय मूल्यों से अधिक सामंती जीवन और सामंती मूल्यों का पोषण हुआ। लेकिन इसी काल में कुछ ऐसे भी रचनाकार हुए, जिन्होंने राज्याश्रय में रहकर रचनाएँ नहीं की अथवा राज्याश्रय को त्याग कर रचनाएँ कीं, जिससे उनकी अभिव्यक्ति सामंती मूल्यों के प्रभाव से बहुत हद तक मुक्त रही। इसके एक उदाहरण के रूप में घनानंद का नाम लिया जा सकता है। लेकिन एक बात निर्विवाद है कि इस काल के रचनाकारों ने विभिन्न कारकों से प्रभावित होकर प्रचुर मात्रा में रचनाएँ की जिससे साहित्य और कला का भंडार समृद्ध हुआ। इस काल में रची गई अच्छी-बुरी रचनाओं के उचित मूल्यांकन ने निस्संदेह बाद के रचनाकारों को बेहतर रचनाएँ रचने के लिए प्रेरित किया।

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. रीतिकाल को तीन काव्यधाराओं में बाँटा जाता है – रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्य धारा।
2. जिन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुकरण करते हुए लक्षण ग्रंथों की रचना की उन्हें आचार्य कवि या रीतिबद्ध कवि कहा जाता है।
3. रीतिसिद्ध कवि वे हैं जिन्होंने लक्षण ग्रंथों की रचना तो नहीं की लेकिन काव्य रीतियों का पूरी तरह पालन करते हुए साहित्य रचा।
4. रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के अलावा एक तीसरा वर्ग उन कवियों का है जिन्होंने रीति की परवाह न करते हुए स्वछन्द काव्य की रचना की इन्हें रीतिमुक्त कवि कहा जाता है।
5. रीतिकाल में लिखित रामप्रसाद निरंजनी के भाषा योग वैशिष्ठ्य को उस काल की परिमार्जित गद्य कृति माना जाता है।
6. रीतिकाल में वीर काव्य, नीति काव्य और भक्ति काव्य भी रचे गए लेकिन ये उसकाल की गौण प्रवृतियाँ है।

12.6 शब्द-संपदा

1. **नायिका भेद :** नायिकाओं के प्रकार जैसे स्वकीया, परकीया।
2. **सर्वांग निरूपण :** जब काव्य-लक्षण, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य भेद, काव्य गुण –दोष, रस, छंद, अलंकार आदि का निरूपण किया जाये।

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिकाल की प्रमुख काव्य धाराओं को विस्तार पूर्वक लिखें।
2. रीतिकाल के प्रमुख रचनाओं के काव्य को उदहारण साहित लिखें।
3. रीतिकाल के प्रमुख कवियों की रचना पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1.रीतिकाल की अन्य काव्य धाराओं पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

2.रीतिमुक्त काव्यधारा से आप क्या समझते हैं के कवियों का संक् और इस धारा ?षिप्त वर्णन करें।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1. काव्य शास्त्र के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कविता कहलाती है ( )

(अ) व्यंग काव्य (आ) रस- निरूपण

(इ) काव्यांग निरूपण (ई) हास्य काव्य

2. किसने 'रीतिग्रंथ कवियों' की संज्ञा दी ? ( )

(अ) हजारीप्रसाद द्विवेदी (आ) आचार्य रामचंद्र शुक्ल

(इ) ग्रियर्सन (ई)मिश्रबंधु

3. रीतिकाल को शृंगार काल किसने कहा ? ( )

(अ) मिश्रबंधु (आ) त्रिलोचन

(इ) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (ई) रामचंद्र शुक्ल

4. ग्वाल कवि किस काव्य धारा के कवि है ? ( )

(अ) रीतिबद्ध (आ) रीतिमुक्त

(इ) रीति सिद्ध (ई) इनमें से कोई नहीं

5. रीतिबद्ध कवि नहीं है। ( )

(इ) देव (आ) केशव

(इ) दूलह (ई) बिहारी

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी का अनुसरण करने वाले को कहते हैं।__________

2)भावपक्ष और कलापक्ष में संतुलन __________काव्यधारा में दिखाई देता है।

3)__________रीतिमुक्त काव्य धारा में सर्वाधिक सजक और सचेष्ट कवि माने जाते हैं।

4)__________ ने अपने ग्रंथ 'जंगनामा' में फर्रुखशियर और जहाँदार शाह के युद्ध का वर्णन किया है।

5)__________ युद्ध काव्य पर आधारित ग्रंथ है।

III सुमेल कीजिए।

1.	केशवदास	(अ) छत्रसाल दशक
2.	चितामणि	(आ) रस राज
3.	देव	(इ) शब्द रसायन
4.	मतिराम	(ई) रसविलास

5. भूषण (उ) कवि प्रिया

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का अतीत : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : (सं.) डॉ. नगेन्द्र व डॉ. हरदयाल
4. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह
5. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास : विश्वनाथ त्रिपाठी
6. हिंदी रीति साहित्य : भगीरथ मिश्र
7. रीतिकाल की भूमिका : नगेन्द्र
8. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन : रामकुमार वर्मा
9. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
10. हिंदी साहित्य का अतीत : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
11. हिंदी साहित्य का इतिहास : (सं) डॉ. नगेन्द्र व डॉ. हरदयाल
12. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास : विश्वनाथ त्रिपाठी
13. हिंदी रीति साहित्य : भगीरथ मिश्र
14. केशव और उनका साहित्य : विजयपालसिंह
15. बिहारी रत्नाकर : जगन्नाथदास रत्नाकर (सं.- बलराम तिवारी)
16. भूषण ग्रंथावली : संपादन- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
17. मतिराम ग्रंथावली : संपादन – कृष्ण बिहारी मिश्र, बृजकिशोर मिश्र
18. वृंद सतसई में समाज-बोध : अवधेश कुमार
19. देव की दीपशिखा (चयनित छंदों की व्याख्या) : संपादन- विद्यानिवास मिश्र, शिवदत्त चतुर्वेदी
20. घनानंद ग्रंथावली : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
21. पद्माकर ग्रंथावली : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

इकाई 13. आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास –लेखन की समस्याएँ और स्वत्रंता - पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य

रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 मूल पाठ : आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की समस्याएँ और स्वतंत्रता-पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य

13.3.1 आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की समस्याएँ

13.3.2 स्वतंत्रता-पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य

13.4 पाठ सार

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

13.6 शब्द-संपदा

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

13.8 पठनीय पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

आधुनिकहिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की समस्याएँ अनेक हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि आधुनिक काल से पूर्व हिंदी में कविता ही एक मात्र प्रमुख विधा थी। आधुनिक काल में अनेक विधाओं का उदय और विकास हुआ है। विधावार साहित्य इतिहास लेखन की आवश्यकता है।आधुनिकहिंदी साहित्य केसमग्र साहित्य का अभीतक समेकित रूप से मूल्यांकन नहीं हो पाया है। औपनिवेशिक, मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी और निम्नवर्गीय (सबाल्टर्न) इतिहास दृष्टियों से साहित्य के इतिहास का मूल्यांकन संभव नहीं है। साहित्य, समाज और इतिहास के मध्य एक रिश्ता बनना चाहिए, जिसमें रचनाकार की रचनाशीलता का सम्यक्विवेचन हो सके।

13.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की समस्याओं से परिचित हो सकेंगे।
- आजादी से पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य की विकास यात्रा से अवगत हो सकेंगे ।

13.3 मूल पाठ – आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास : लेखन की समस्याएँ और स्वतंत्रता—पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य

13.3.1 आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की समस्याएँ

आधुनिक हिंदी साहित्य भारतेन्दु युग से लेकर आज तक है।इसकी इतनी बड़ी सीमा को साहित्य के इतिहास में कालगत, प्रवृत्तिगत और युगबोध के अनुरूप समेटना मुश्किल काम है। आधुनिक हिंदी साहित्य सीमित विषयों एवं प्रवृत्तियों का साहित्य न होकर इनके विषयों एवं प्रवृत्तियों में व्यापकता है।साथ ही इनके स्वरूप में भी विविधता है।साथ ही आधुनिक हिंदी साहित्य कई विवादों एवं बहसों को अपने भीतर समाहित किये हुए है।स्वतंत्रता-पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन का ढाँचा कमोबेश विकसित हो चुका है। मुख्य समस्या स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के व्यापक साहित्य को साहित्येतिहास में उस साहित्यिक प्रवृत्तियों, विशेषताओं के नामकरण, उनके सीमांकन का है।समकालीन हिंदी साहित्य की सीमा कहाँ तक तय की जाये, आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की बड़ी समस्या है। आजादी के बाद देश में कई तरह के सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलन हुए हैं। इन आन्दोलनों से ओत-प्रोत हिंदी साहित्य का विशाल भंडार है। इस समय के साहित्य को सामाजिक एवं ऐतिहासिक विकास-प्रक्रिया में दिखलाना साहित्येतिहास के लिए चुनौती का काम है। बेरोजगारी, शहरों की ओर पलायन और इससे बने सामाजिक संबंध स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य को प्रभावित करते हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक आते-आते भूमंडलीकरण और साम्प्रदायिकता भारतीय समाज के ढाँचे में बदलाव लाते हैं। इस ढाँचे में बदलाव को इस युग के साहित्य में बखूबी देखा जा सकता है। हिंदी साहित्य में इनके प्रभावों एवं बदलावों को साहित्येतिहास में व्यवस्थित ढाँचे के साथ इस तरह रेखांकित करना कि वह अपने युग का साक्षात्कार करा सके, यह साहित्येतिहासकार से इतिहास-लेखन की नई पद्धति एवं ढाँचों की माँग करता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल के ढाँचे नाकाफी साबित होंगे।

आधुनिक हिंदी साहित्य के स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक अस्मितावादी चिंतन विकसित हुए हैं जो साहित्य के सरोकारों का विस्तार करते हैं। ये चिंतन भारत के परम्परागत सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों एवं ढाँचों में बदलाव के स्वर को साहित्य के माध्यम से आकार देते हैं। यह चिंतन साहित्यिक सृजन एवं संघर्ष के साथ-साथ एक सामाजिक संघर्ष भी है। इसलिए इस साहित्य का तेवर और स्वरूप परम्परागत साहित्य से अलग है। अस्मितामूलक साहित्य चिंतन की धारा को साहित्य के इतिहास में समाहित करने का नया तरीका ढूँढना होगा जिससे इस साहित्य की प्रवृत्तियाँ और सृजन की विकास-प्रक्रिया स्पष्ट हो सके।

बोध प्रश्न –

- आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएँ कौन-कौन सी है ?

13.3.2 स्वतंत्रता-पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है। पहला - स्वतंत्रता-पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य और दूसरा - स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक हिंदी साहित्य। स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी साहित्य में भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद शामिल हैं। भारतेन्दु-युग का आरंभ सामान्यतः 1850 ई. से माना जाता है। स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी साहित्य अपने पूर्ववर्ती आदिकालीन, भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन साहित्य से अलग है। इसका कारण साहित्य और समाज में बदले सम्बन्ध, स्वाधीनता आन्दोलन, छापेखाने का आविष्कार, हिंदी गद्य का विकास और साहित्य के पाठक समुदाय का बदलना है।

भारतेन्दु-युग (1850-1900)

भारतेन्दु-युग की समय-सीमा साहित्येतिहासकारों ने मोटे तौर पर 1850 से 1900 ई. तक तय की है।इस युग के साहित्य में कई नई विधाओं के साथ-साथ हिंदी गद्य भी धीरे-धीरे अपना रूप अख्तियार करता है। इन विधाओं में निबंध, नाटक, पत्रकारिता, उपन्यास, कहानी, समालोचना आदि हैं।इस युग का साहित्य जहाँ एक ओर रीतिबद्धता से मुक्त होने का संघर्ष करता है, वहीं दूसरी ओर आधुनिकता की जमीन तैयार करने का श्रम करता है। इस युग के साहित्य में राजभक्ति बनाम देशभक्ति के द्वंद्व भी तलाशने की कोशिश हुई है लेकिन इस युग के साहित्य का मूल स्वर 'समाज-संस्कार'और 'देश-वत्सलता'ही है।आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चंद्र को माना जाता है। इस युग के प्रमुख रचनाकारों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रीधर पाठक, अयोध्याप्रसाद खत्री, लाला श्रीनिवास दास, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं. राधाचरण गोस्वामी, बालमुकुंद गुप्त आदि प्रमुख हैं।भारतेन्दु युग हिंदी गद्य के विकास का युग है। इस विकास के साथ-साथ कविता की भाषा के विवाद भी इस युग में हुए। कविता की भाषा ब्रजभाषा हो या खड़ी बोली हिंदी, इससे संबंधित वाद-विवाद-संवाद अनेक भारतेन्दुयुगीन लेखकों के बीच होता है। कविता की भाषा और गद्य की भाषा अलग-अलग हो, इससे अयोध्याप्रसाद खत्री, श्रीधर पाठक असहमति दर्ज करते हैं। कविता की भाषा खड़ी बोली हिंदी बनाने में इन दो लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

बोध प्रश्न –

- भारतेंदु युगीन साहित्यकारों के नाम बताइए.

भारतेन्दुयुगीन कविता : भावगत विशेषताएँ

1. अन्तर्विरोधों का साहित्य : भारतेन्दु काल की कविता अन्तर्विरोधी मूल्यों की कविता है और यह अन्तर्विरोध समाज की संरचना के भीतर से आया है। उस समय अंग्रेजी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के दो विरोधी मूल्यों का मिलन हो रहा था जिसने तनाव की स्थिति पैदा की। यह तनाव कविता में भी कई स्तरों पर व्यक्त होता है जैसे राजभक्ति बनाम

राजविरोध, राजभक्ति बनाम राष्ट्रभक्ति, भक्ति-शृंगार बनाम जन सामान्य की समस्याएँ, ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली इत्यादि।

2. राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति: भारतेन्दु युग के प्रारंभ के कवियों में ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति के भाव थे। इसका कारण यह था कि प्रारंभ में वे साम्राज्यवादी सरकार के स्वार्थ को स्पष्ट रूप से समझ नहीं सके। इसीलिए इस युग में जहाँ महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा के भाव मिलते हैं, वहीं राष्ट्र प्रेम भी मिलता है-

''पूरी अमी की कटोरिया सी, चिरजीओ सदा विक्टोरिया रानी।''

''अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।''(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

3. समस्यापूर्ति: समस्यापूर्ति इस समय की प्रमुख प्रवृत्ति रही। स्वयं भारतेंदु ने अपनी 'कविता वर्द्धिनी सभा' के माध्यम से समस्यापूर्तियों को प्रोत्साहित किया।

4. सामाजिक समस्याओं का चित्रण : इस युग का काव्य जन जीवन से जुड़ा है अत: इसमें नारी शिक्षा, विधवा समस्या, बाल विवाह, धार्मिक संकीर्णता जैसे विषयों की ओर कवियों की दृष्टि गई। इन कवियों ने समाज में पैली विकृतियों पर चोट करके समाज में नई चेतना पैदा की है।

''कौन करेजो नहिं कसकत, सुनि बिपति बाल बिधावन की।''

शिल्पगत विशेषताएं : इस युग में मूल रूप से मुक्तक काव्य की रचना हुई। कुछ प्रबंध काव्य भी मिलते हैं जैसे 'प्रेमघन' कृत 'जीर्ण जनपद'। इसके अतिरिक्त प्रगीत मुक्तक, लोकगीत तथा मुकरियाँ भी मिलती हैं। भारतेन्दु युग के कवियों की अधिकतर रचनाएँ ब्रज भाषा में हैं। ब्रज भाषा में कोमलकान्त पदावली होने के कारण इस काल के कवि उसका मोह छोड़ नहीं सके। इस समय के गद्य साहित्य में खड़ी बोली का सफल प्रयोग हुआ किन्तु काव्य में उसे विशेष सफलता नहीं मिली। भारतेन्दु युग की कविता में दोहा, चौपाई, हरिगीतिका, कवित्त आदि परम्परागत छन्दों के अतिरिक्त लावनी, कजली व होली छन्दों का प्रयोग हुआ है।

उपन्यास : भारतेन्दु युग के उपन्यासों में रोमांच एवं उपदेश का तत्व प्रधान था। इनमें यथार्थवादी शैली के स्थान पर आख्यानपरक शैली का उपयोग किया गया था। इनके लेखक, उपन्यास के माध्यम से कोई शिक्षा या उपदेश देना चाहते थे। 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870), 'वामा शिक्षक' (1872), 'भाग्यवती' (1877), 'परीक्षागुरु' (1882) आदि ऐसे ही उपन्यास हैं।

नाटक : 'आनंद रघुनंदन' को हिंदी साहित्य का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। खड़ी बोली में प्रथम आधुनिक नाटक लिखने का श्रेय भारतेन्दु को है। यह दौर सामाजिक, सांस्कृतिक,

राजनीतिक परिवर्तनों का दौर था। भारतेंदु के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ जनसामान्य को जागृत करना तथा उनमें आत्मविश्वास जगाना था। प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था बनाए रखने तथा पश्चिम के गलत प्रभावों से समाज को बचाये रखने का प्रयास इस दौर के नाटकों में हुआ है। इस दौर के प्रसिद्ध नाटक हैं- देवकीनंदन खत्री का 'सीताहरण', भारतेंदु का 'भारत दुर्दशा' व 'अंधेर नगरी' तथा प्रताप नारायण मिश्र का 'शिक्षादान' आदि। इस काल में अनूदित नाटक भी लिखे गये। भवभूति व कालिदास के संस्कृत नाटकों के हिंदी अनुवाद अधिक हुए।

बोध प्रश्न –

- भारतेंदु युगीन कविता : भागवत किन्हीं चार विशेषता के बारे में बताइए।

भारतेंदुयुगीन आलोचना

हिंदी आलोचना का वास्तविक आरंभ भारतेंदु युग से ही माना जा सकता है। भारतेंदुयुगीन आलोचना में कई सैद्धांतिक आलोचनाएँ की गई, जैसे भारतेंदु का 'नाटक' निबंध इस काल की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस काल में आलोचना मुख्यत: पत्रकारिता के माध्यम से हुई। इस दृष्टि से भारतेन्दु के पत्र 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', 'कविवचनसुधा' के साथ-साथ बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप', प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' और चौधरी बद्रीनारायण प्रेमघन का 'आनंद कादंबिनी' इस काल के प्रमुख पत्र हैं। इस काल में व्यावहारिक समीक्षाओं का भी चलन था जिसकी शुरुआत 'हिंदीप्रदीप' में' सच्ची समालोचना' नामक स्तंभ से हुई। इस स्तंभ में लाला श्रीनिवास दास के नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की समीक्षा हुई, जो हिंदी की पहली व्यावहारिक समीक्षा मानी जाती है।

बोध प्रश्न –

- भारतेंदु युगीन पत्रिकाओं के नाम बताइए।

द्विवेदी-युग (1900-1918)

द्विवेदी-युग की समय-सीमा साहित्येतिहासकारों ने मोटे तौर पर 1900 से 1918 ई. तक तय की है। इस अवधि में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक के रूप में हिंदी साहित्य को प्रभावित किया। उन्होंने न केवल हिंदी गद्य की भाषा को सुधारने का प्रयास किया, बल्कि अपने युग के साहित्यकारों को खड़ी बोली हिंदी में कविता लिखने की प्रेरणा भी दी। उनकी प्रेरणा से खड़ी बोली हिंदी में अनेक विषयों पर ग्रंथ लिखे गए। भारतेन्दु युग में जहाँ गद्य के लिए खड़ी बोली एवं पद्य के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग होता रहा, वहीं द्विवेदी-युग में यह द्वन्द्व समाप्त हो गया और पद्य के लिए भी खड़ी बोली का प्रयोग होने लगा। इस युग के प्रमुख साहित्यकारों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', बालमुकुन्द गुप्त, लाला

भगवान 'दीन', जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', सत्यनारायण 'कविरत्न', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', रूपनारायण पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, सियाराम शरण गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी-युग हिंदी साहित्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा का युग है।इस युग में हिंदी साहित्य को आधुनिक बनाने की दिशा में संवेदनात्मक और भाषिक, दोनों स्तर पर काम होता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक संघर्ष हिंदी साहित्य के 'ज्ञान-राशि' को विकसित करने की दिशा में ज्यादा है।इस युग में गद्य एवं पद्य के विषयों का विस्तार हुआ एवं खड़ी बोली पद्य में नए-नए छंद रचे गए। इस युग में उपदेशात्मक काव्य अधिक लिखे गए। इस युग के काव्य में इतिवृत्तात्मकता एवं वर्णनात्मकता की झलक मिलती है। इस युग में अनेक संस्कृत एवं अंग्रेजी महाकाव्यों के काव्यानुवाद भी किये गए।

बोध प्रश्न –

- द्विवेदी युगीन साहित्यकारों के नाम बताइए।

द्विवेदीयुगीन कविता: भावगत विशेषताएँ

1. समाज के नए प्रतिमानों की स्थापना : द्विवेदी युग विवेकशील चिंतन का युग है। अपनी संस्कृति को परखने की कोशिश की गई है। नये के प्रति जोश और अन्धापन नहीं है, यह विवेक के साथ तय करता है कि आधुनिक समय में क्या प्रासंगिक है।

2. साहित्य के उद्देश्य पर बल: इस युग में पहली बार साहित्योद्देश्य पर बल दिया गया। रीतिवादी मानसिकता को खारिज करते हुए यह तय किया गया कि कविता का उद्देश्य मनोरंजन मात्र नहीं है, उसे अपनी गंभीर सामाजिक ज़िम्मेदारियों का निर्वाह भी करना चाहिए-

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"(मैथिलीशरण गुप्त)

3. राष्ट्रीयता की नवीन धारणा : भारतेन्दु युग की राष्ट्रीयता का स्वरूप बहुत निश्चित नहीं था। द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक व्याख्या हुई। 'भारत-भारती' की रचना भी इसी दौर में हुई जिसने हमारी राष्ट्रीयता को स्पष्ट चेहरा प्रदान किया।

4. विषयों का वैविध्य : द्विवेदी युग में विषयों का अत्यधिक विस्तार हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत था कि "कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशपरक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिंदु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनंत आकाश, अनंत पृथ्वी, अनंत पर्वत सभी पर कविता हो सकती है।"

इसलिए यह कविता कृषक, राजा, मजदूर, साधु, बालक आदि विषयों को समेटती है।इस युग में पहली बार प्रकृति भी स्वतंत्र विषय बनकर आई। 'प्रिय प्रवास' खड़ी बोली का पहलामहाकाव्य है जिसकी शुरुआत प्रकृति-चित्रण से होती है

5. आधुनिकता बोध : हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भारतेंदु युग के साथ ही शुरू हो गया था किंतु अब आधुनिकता का स्वरूप गंभीर होने लगा था।इस युग में पहली बार ईश्वर को मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। उदाहरण के लिए 'प्रिय प्रवास' में कृष्ण ब्रह्म नहीं है और न ही राधा वियोगिनी; कृष्ण महापुरुष हैं और राधा समाज सेवा का व्रत धारण करती हैं।ये कवि अपनी संस्कृति का गहन मंथन करते हैं। अपने अतीत पर अंधविश्वास या अंधमोह न रखते हुए अपनी गलतियाँ ढूंढ कर उनका परिष्कार करने का प्रयास करते हैं-

''हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ मिलकर आज विचारें ये समस्याएँ सभी।''(गुप्त- भारत भारती)

ये आधुनिक नवजागरण से प्रेरित कवि हैं इसलिए नारी के प्रति प्रगतिशील दृष्टि रखते हैं ये नारी की स्थिति पर द्रवित भी होते हैं -

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'

इतिहास ने जिन नारी पात्रों के त्याग को उपेक्षित कर दिया था, द्विवेदी युग के कवियों ने उन्हें अपने काव्यों में नायिका को स्थान देकर अन्धेरे से बाहर निकाला और नए सिरे से उनका मूल्यांकन किया। लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला, कृष्ण की प्रेयसी राधा और बुद्ध की पत्नी यशोधरा ऐसी प्रमुख नारियाँ हैं।

शिल्पगत विशेषताएँ : द्विवेदी युग आते-आते भाषा का द्वैत समाप्त हो गया था। इस युग में गद्य व पद्य दोनों की भाषा खड़ी बोली हो गई। पण्डित गौरी दत्त, बाबू श्याम सुन्दर दास, अयोध्या प्रसाद खत्री इस आन्दोलन में प्रमुख रहे। 'प्रिय-प्रवास' खड़ी बोली का पहला महाकाव्य है। यहाँ मध्यकालीन छन्दों के स्थान पर संस्कृत के वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ। यहाँ दोहे भी लिखे गए। मैथिलीशरण गुप्त का प्रिय छन्द हरिगीतिका है। तुकान्तता पर बल दिया गया है। काव्यरूप के धरातल पर प्राय: प्रबन्ध काव्य लिखे गए हैं। मुक्तक कम लिखे गए हैं। द्विवेदीयुगीन काव्य अभिधात्मक है। बातों को सीधे-सीधेव्यक्तकिया गया है , इस कारण इस काव्य पर इतिवृत्तात्मक होने का दोष लगाया जाता है। इस कविता का सांस्कृतिक महत्त्व है। इसमें काव्य सौन्दर्य को पुष्ट करने पर ध्यान नहीं दिया गया। भारतेन्दु युग में आधुनिकता के जिस चिंतन का आरंभ हुआ था उसे कुल मिला कर द्विवेदी युग में तार्किकता व गंभीरता मिलती है।

बोध प्रश्न –

- खड़ी बोली का पहला महाकाव्य कौनसा है ?

उपन्यास : द्विवेदी युग में तीन प्रकार के उपन्यास लिखे गए (i) सुधारवादी उपन्यास, (ii) मनोरंजनपरक उपन्यास, तथा (iii) ऐतिहासिक उपन्यास।

1. सुधारवादी या नैतिक उपदेशात्मक उपन्यास- ये उपन्यास मूलत: धर्म सुधार तथा नवजागरण आंदोलन की प्रेरणा से लिखे गए हैं।

2. मनोरंजनपरक उपन्यास : इस काल में दूसरे प्रकार के उपन्यास मनोरंजनपरक हैं जिनमें दो प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं- (i) तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास तथा (ii) जासूसी उपन्यास।

इस प्रकार के कुछ उपन्यास इस प्रकार हैं -

देवकीनन्दन खत्री- चन्द्रकांता, चन्द्रकांता संतति

गोपालराम गहमरी- सरकटी लाश, जासूस पर जासूसी

3. ऐतिहासिक उपन्यास :

मिश्र बन्धु- वीरमणि

बाबू बृजनन्दन सहाय-लालचीन

कहानी : अंग्रेज़ी के 'शॉर्ट स्टोरी मूवमेंट' (Short Story Movement) से प्रभावित होकर हिंदी में आधुनिक कहानियों की शुरुआत हुई। सामान्यत: माना जाता है कि माधवराव सप्रे द्वारा 1901 ई. में रचित 'एकटोकरी भर मिट्टी' हिंदी की पहली कहानी है , हिंदी कहानी का पहला चरण 1901 से 1915 ई. तक विस्तृत है। इस समय कहानी परंपरा जन्म ले रही थी इसलिए उसमें पश्चिमी कहानी परंपरा के तत्वों के साथ-साथ भारतीय कथा परंपरा में निहित आदर्शवाद और नैतिकतावाद की झलक साफ़ दिखती है। चूँकि इस समय देश नवजागरण के दौर से गुज़र रहा था, इसलिए राष्ट्रवादी और सुधारवादी मानसिकता भी यहाँ स्पष्ट झलकती है।इस काल की प्रमुख कहानियाँ हैं- 'ग्यारह वर्ष का समय'- रामचंद्र शुक्ल (1903), 'दुलाई वाली'-बंगमहिला (राजेन्द्र बाला घोष-1907),'इन्दुमती'-किशोरी लाल गोस्वामी (1900), 'एक टोकरी भर मिट्टी'-माधवराव सप्रे (1901), 'उसने कहा था'-चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (1915)।इस काल की कहानियाँ कहानी कला की दृष्टि से शैशवावस्था में ही हैं, उनमें प्रौढ़ता नहीं दिखाई पड़ती। इस काल की एक मात्र उपलब्धि 'उसने कहा था' कहानी है जिसमें पहली बार पूर्वदीप्ति (Flash Back) पद्धति का प्रयोग किया गया था। इसके अतिरिक्त, इसमें शिल्प की प्रयोगशीलता तथा परिवेश की जीवन्तता भी प्रशंसनीय है।

नाटक: द्विवेदी युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं रोमांचकारी नाटक लिखे गये। कुछ प्रहसन भी लिखे गये। इन नाटकों में नाट्यकला का विकास नहीं मिलता और अभिनय तत्व भी नहीं के बराबर है। इस युग के नाटक हैं-

जयशंकर प्रसाद-करुणालय
प्रताप नारायण मिश्र - भारत दुर्दशा
द्विवेदी युग क नाटकों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव रहा। इन नाटकों का महत्व न तो शिल्प की दृष्टि से है और न ही सुरुचि-संस्कार की दृष्टि से।

बोध प्रश्न –

- 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी किसने और कब लिखा ?

द्विवेदीयुगीन आलोचना

महावीर प्रसाद द्विवेदी इस युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध आलोचक रहे जिनकी आलोचनाओं का संग्रह "आलोचना समुच्चय" के नाम से प्रकाशित हुआ। उन्होंने सैद्धांतिक पक्ष में इतिवृत्तात्मकता और नैतिक आदर्शवादी मान्यताओं को अत्यधिक महत्व दिया और रीतिवादी कवियों को गौण सिद्ध करते हुए कालिदास, भवभूति, सूर, तुलसी, भारतेंदु और मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं के महत्व को प्रकाशित किया। उनकी भाषाई आलोचनाओं ने खड़ी बोली और ब्रज के भाषाई द्वैत को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तुलनात्मक आलोचना इस काल की एक महत्वपूर्ण शैली है जिसकी शुरुआत पंडित पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी' और 'सादी' की तुलना से की। इसके बाद मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक 'हिंदी नवरत्न' में तुलनात्मक आलोचनाको महत्व दिया। आगे चलकर लाला भगवानदीन और कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'देव' और 'बिहारी' को एक-दूसरे से बड़ा कवि सिद्ध करने का प्रयास किया।

द्विवेदी युगीन निबंध : हिंदी निबंध का द्वितीय उत्थान द्विवेदी युग में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' तथा 'सरस्वती' के प्रकाशन से प्रारंभ होता है। द्विवेदी युग में उन सभी भावनाओं, विचारों, शैलियों और साहित्य-विधाओं का विकास और प्रसार हुआ जिनका सूत्रपात भारतेंदु युग में हो गया था। इस युग में विषय, शैली और विचारधारा की दृष्टि से विकास परिलक्षित होता है। पूर्ववर्ती युग की तरह इस युग में भी भाषा, पुरातत्व इतिहास, आध्यात्म, विज्ञान आदि पर निबंध लिखे गए। भाषा और व्याकरण से संबद्ध विषयों पर सबसे अधिक निबंध रचे गए। भारतेंदु युग में निबंध-लेखन की जिन वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक और विचारात्मक शैलियों का सूत्रपात हो चुका था, इस युग में उनके सूक्ष्म रूपों का विकास हुआ किंतु इस युग में भारतेंदु युग की आत्मव्यंजक शैली का क्रमश: ह्रास हो गया। विचारात्मक निबंधों का सर्वाधिक विकास हुआ। द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार हैं- महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्त, श्यामसुंदर दास, सरदार पूर्ण सिंह, माधव प्रसाद मिश्र, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', इत्यादि।

बोध प्रश्न –

- द्विवेदी युगीन निबंध को किन-किन शैलियों में लिखा गया था ?

छायावाद(1918-1936)

छायावाद हिंदी साहित्य का एक प्रमुख काव्य-आन्दोलन है जिसकी अवधि साहित्येतिहासकारों ने मोटे तौर पर 1918 से 1936 ई. तक तय की है। इस काव्यान्दोलन का आरम्भ द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता एवं वर्णनात्मकता के प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। इस काव्यान्दोलन में इतिवृत्तात्मकता की जगह व्यंजकता एवं विवरणात्मकता की जगह सूक्ष्म संकेतात्मकता का समावेश दिखाई देता है। छायावाद युग में खड़ी बोली हिंदी में अनेक कविताओं की रचना की गई। छायावाद युग में अनेक कवि हुए लेकिन चार कवियों को इस काव्यान्दोलन का आधार-स्तम्भ माना जाता है। वे कवि हैं – जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत एवं महादेवी वर्मा। सुमित्रानंदन पंत के काव्य-संग्रह 'पल्लव' की भूमिका को 'छायावाद का घोषणा-पत्र' माना जाता है। इस युग में काव्य की परम्परागत रूढ़ियाँ टूटीं और मुक्त छंद में भी काव्य-रचना की शुरुआत हुई। इसी युग में 'कामायनी' जैसे महाकाव्य की भी रचना हुई।

जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में 'चित्राधार', 'कानन कुसुम', 'प्रेमपथिक', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्त्व', 'झरना', 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' प्रमुख हैं।'कामायनी' प्रसाद के यश का आधार है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचनाओं में 'जूही की कली', 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'अणिमा', 'कुकुरमुत्ता', 'बेला और नए पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' आदि शामिल हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' निराला के यश का आधार है। निराला अपनी मुक्त छंद की कविताओं के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। सुमित्रानंदन पंत को 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है। पंत की रचनाओं में 'पल्लव', 'ज्योत्स्ना', 'गुंजन', 'उच्छवास', 'वीणा', 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्णधूलि', 'युगांत' आदि प्रमुख हैं। महादेवी वर्मा को 'आधुनिक काल की मीरा' कहा जाता है। इनकी रचनाओं में विरह-वेदना की प्रधानता है। इनकी रचनाओं में प्रमुख हैं-'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' एवं 'दीपशिखा'। छायावाद युग के अन्य कवियों में रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, उदय शंकर भट्ट, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गोपाल सिंह 'नेपाली', ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न –

- छायावाद का समय बताइए।
- छायावाद के चार स्तंभ कौन-कौन हैं ?

छायावाद युग के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ -

छायावाद काव्य में 'वैयक्तिकता' की भावना दिखाई देती है। द्विवेदी-युग तक जहाँ कवि केवल अन्य व्यक्ति या वस्तुओं का वर्णन करता था, वहीं छायावाद युग में कवि ने पहली

बार अपने निजी जीवन, और अपनी निजी भावनाओं को काव्य का विषय बनाया। निराला के शब्दों में- 'मैंने मैं शैली अपनाई। 'महादेवी के शब्दों में-'मैं नीर भरी दुःख की बदली।'

छायावादी कवि प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण करते हैं। वे प्रकृति का मानवीकरण करते हैं। इस युग में कवि द्वारा अपनी निजी भावनाओं का प्रकटीकरण स्वच्छंद रूप से किया गया। अर्थात् इस युग के काव्य में जनमानस की प्रतिक्रिया की चिंता किये बिना कवियों ने अपनी निजी प्रेम-भावनाओं को अभिव्यक्ति दी। इस युग के काव्य में भाषा एवं छंद का प्रयोग भी कवि ने उन्मुक्तता से किया। भाषा एवं छंद की दृष्टि से इस युग में नए प्रयोग आरंभ हुए।छायावाद युग में कवि ने अपने भावों की अभिव्यक्ति खुलकर की। छायावाद युग के कवियों में भावुकता के दर्शन होते हैं। छायावादी कवि में यह भावुकता निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति के कारण परिलक्षित होती है। स्त्री के प्रति बदले दृष्टिकोण, राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना छायावादी कविता में मिलती हैं।

इस युग के कवि कल्पना के सहारे कविता की नई भूमि तैयार करते हैं। छायावादी कवि की कल्पना के बारे में नामवर सिंह ने लिखा है - "कल्पना छायावादी कवि के मन की पाँख थी, वह उसकी स्वतंत्रता, मुक्ति, विद्रोह, आनन्द आदि आकांक्षाओं की प्रतीक थी।" (छायावाद - नामवर सिंह)। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता एवं वर्णनात्मकता के विरोध में इस युग के कवियों ने काल्पनिकता को महत्त्व दिया। कल्पना का सम्बन्ध मौलिकता से भी है।काल्पनिकता के कारण इस युग के काव्य में माधुर्य का समावेश भी हुआ है।

छायावादी कविता मुक्त छंद को अपनाती है। इस युग के काव्य में नवीन बिम्बों एवं प्रतीकों का प्रयोग हुआ। इस युग में कवि सभी बातें खुलकर कहने के बजाय बिम्बों एवं प्रतीकों में कहते हैं। जयशंकर प्रसाद ने 'आँसू' को प्रतीक के रूप में प्रयोग किया तो निराला ने 'जूही की कली' को। महादेवी के लिए 'दीपक' और 'बादल' प्रतीक हैं –'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।' और 'मैं नीर भरी दुःख की बदली'।

बोध प्रश्न –

- छायावाद युग के काव्य की प्रमुख विशेषताओं पर विचार कीजिए।

छायावादयुगीन हिंदी उपन्यास

प्रेमचंद ने 1916 से 1936 ई. तक लेखन कार्य किया। प्रारंभिक समय में वे 'नवाब राय' के नाम से लिखते रहे। 'प्रेमा' व 'वरदान' इसी काल के उपन्यास हैं। इसके बाद उन्होंने बहुत से प्रसिद्ध उपन्यास लिखे, जैसे-'सेवासदन', 'निर्मला', 'कायाकल्प', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान'। 'गोदान' उनका अंतिम पूर्ण उपन्यास है जो 1936 ई. में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने 'मंगलसूत्र' लिखना शुरु किया किन्तु उसे पूरा करने के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। प्रेमचंद से पहले के उपन्यास या तो आदर्शवाद में डूबे होते थे या फिर रोमांचक,

जादुई और सनसनीखेज कल्पनाओं में। प्रेमचंद ने घोषित तौर पर 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' को चुना। इसके अंतर्गत वे सामाजिक समस्या को पूरे यथार्थ में प्रस्तुत करते हैं पर अंत में आदर्शवाद का सहारा लेकर समाधान भी कर देते हैं। यह समाधानप्रियता उनके दृष्टिकोण में गांधी के 'हृदय परिवर्तन' के विचार से प्रभावित होने के कारण पैदा हुई थी जिसे वे अंतिम उपन्यास 'गोदान' में ही छोड़ पाए। 'गोदान' में होरी की त्रासद मृत्यु हिंदी उपन्यास की दृष्टि से शुद्ध यथार्थवाद का पहला चरण है जिसे स्थापित करने का श्रेय प्रेमचंद को ही है।प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास की परंपरा को कई स्तरों पर संशोधित व परिमार्जित किया। प्रेमचंद के महत्त्व या योगदान का आकलन केसम्बन्ध में रामविलास शर्मा ने कहा है कि "यदि 1916 से 1936 ई. तक का भारतीय इतिहास नष्ट हो जाए तो उसे प्रेमचंद की रचनाओं के आधार पर ज्यादा प्रमाणिक तरीके से लिखा जा सकता है।"

प्रेमचंद युग के अन्य उपन्यासकार

शिवपूजन सहाय -	देहाती दुनिया
जयशंकर प्रसाद -	कंकाल, तितली, इरावती
निराला -	अप्सरा, अलका, प्रभावती

बोध प्रश्न –

- प्रेमचंद का लेखन कार्य कब से कब तक रहा ?

छायावाद युगीन हिंदी कहानी : इस युग में प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद ने कहानी की दो विभिन्न शैलियों का विकास किया। प्रेमचंद ने 'सामाजिक यथार्थ' की परंपरा को विस्तार दिया जबकि प्रसाद ने व्यक्ति की अनुभूतियों और उसके मनोवैज्ञानिक सत्यों को कहानियों का विषय बनाया। गांधी युगीन विचारधारा का प्रभाव इस युग की कहानियों पर अलग-अलग रूप में व्यक्त हुआ है। प्रेमचंद तो लंबे समय तक गांधी के अहिंसा, सत्याग्रह तथा हृदय परिवर्तन जैसे सिद्धांतों से प्रभावित रहे और उनकी कहानियों में यह प्रभाव पर्याप्त मात्रा में दिखता है। जयशंकर प्रसाद पर यह प्रभाव उतने सीधे रूप में नहीं है। प्रेमचंद-प्रसाद युग के अन्य कहानीकारों में सुदर्शन और विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रेमचंद ने अपने 30 वर्षों के रचनाकाल (1907-1936) में लगभग 300 कहानियाँ लिखीं, जिन्हें बाद में मानसरोवर के 8 खंडों में संकलित किया गया। प्रेमचंद की कहानी यात्रा को दो चरणों में बाँटा जा सकता है। मोटे तौर पर, पहला चरण लगभग 1907 से 1925 तक दिखाई पड़ता है जबकि 1925 से 1936 के दौर की कहानियाँ दूसरे चरण में शामिल की जाती हैं। पहले चरण को 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' का चरण कहा जाता है। इस चरण में उन पर आदर्शवाद, भारतीय परंपरा, हृदय परिवर्तन तथा अन्य गांधीवादी मान्यताओं का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस

चरण में 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी' और 'बूढ़ी काकी' जैसी कहानियाँ इसी दौर की हैं। दूसरे चरण को 'यथार्थवाद का चरण कहा जाता है। 'सद्गति', 'पूस की रात' तथा 'कफ़न' जैसी कहानियाँ इस दौर की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

बोध प्रश्न –

- प्रेमचंद ने कुल कितनी कहानियाँ लिखी ?

छायावाद युगीन हिंदी नाटक : जयशंकर प्रसाद के आगमन से नाटक के विकास को नयी दिशा मिली। इस समय देश में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन विकसित हो रहा था। व्यापक सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना की लहर ने इस समय साहित्य को प्रभावित किया। इसलिए भारत के अतीत की खोज एवं वर्तमान समस्याओं व दुर्बलताओं से लड़ने का साहस प्रसाद के नाटकों की प्रेरणा बने। ध्यातव्य है कि इसी काल में पारसी थियेटर अपने चरम विकास पर था तथा अत्यंत लोक-प्रचलित भी था। इसलिए, इस काल की नाट्य प्रवृत्तियों पर उसका प्रभाव भी अत्यंत व्यापक रूप में नज़र आता है।इस युग के प्रमुख नाटककार हैं - जयशंकर प्रसाद, आगा हश्र 'कशमीरी', नारायण प्रसाद 'बेताब', सुदर्शन और जी.पी. श्रीवास्तव। इस युग के प्रमुख नाटक हैं-

जयशंकर प्रसाद - 'कल्याणी', 'करुणालय', 'राज्यश्री', 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'अजातशत्रु, 'ध्रुवस्वामिनी',।

आगा हश्र - 'सूरदास', 'श्रवण कुमार', 'सीता वनवास'।

नारायण प्रसाद 'बेताब' -'महाभारत', 'रामायण', 'कृष्ण सुदामा'।

छायावाद युगीन आलोचना : इस युग में आचार्य शुक्लके साथ-साथ बाबू गुलाब राय, बाबू श्याम सुंदर दास आदि समीक्षक भी आलोचना क्षेत्र में सक्रिय रहे हैं।आचार्य शुक्ल ने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों समीक्षाओं पर बल दिया। शुक्ल जी की सैद्धांतिक समीक्षा में रसवाद और लोकमंगलवाद साथ-साथ शामिल हैं। उन्होंने रसवाद की नयी दृष्टि से व्याख्या अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रस-मीमांसा' में की और कहा "लोकहृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।" इसके अतिरिक्त, उन्होंने रस विवेचन में साधारणीकरण के सिद्धांत को अत्यधिक महत्व दिया। उन्होंने अपनी अन्य सैद्धांतिक मान्यताओं को 'कविता क्या है' तथा 'काव्य में रहस्यवाद' जैसे निबंधों में व्यक्त किया।आचार्य शुक्ल की व्यावहारिक आलोचना जिन ग्रंथों में व्यक्त हुई, उसमें प्रमुख हैं- 'जायसी ग्रंथावली', 'भ्रमरगीत', 'गोस्वामी तुलसीदास' और 'हिंदी साहित्य का इतिहास'।

बोध प्रश्न –

- अपने नाटकों के जरिए राष्ट्रीय चेतना की लहर किसके द्वारा प्रभावित हुई ?

छायावाद युगीन निबंध : शुक्ल जी के निबंध 'चिंतामणि' के तीन भागों में संकलित हैं। उन्होंने प्राय: विचारपूर्ण विषयों को ही निबंध का विषय बनाया है। उनके निबंधों में सूत्र या निगमन-शैली का प्रयोग हुआ है। वे प्रारंभ में ही किसी सिद्धांत को उपस्थित कर देते हैं और अंत तक उसकी विवेचना में लीन रहते हैं। 'श्रद्धा और भक्ति', 'उत्साह', 'कविता क्या है' आदि शुक्ल जी के महत्त्वपूर्ण निबंध है। इस युग के निबंधकारों में देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम की भावनाओं के साथ व्यापक मानवीय दृष्टिकोण भी रहा है। छायावाद युग में रचना विन्यास की दृष्टि से एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है। निबंध को जिस प्रकार उपयोगी विषयों पर लिखे गए लेखों से अलग किया गया, उसी प्रकार रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रावृत्तान्त आदि अन्य साहित्यिक विधाओं से भी। वस्तुत: "द्विवेदी युग की अपेक्षा इस युग में सृजनात्मक दृष्टि से निबंध के अधिक स्पष्ट लक्षण निर्मित हुए। शुक्ल युग के निबंधकारों में रामचंद्र शुक्ल, गुलाबराय, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंद पंत, निराला, महादेवी वर्मा, प्रेमचंद, शांतिप्रिय द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न –

- चिंतामणि किस विधा की रचना है ? और इसे किसने लिखा ?

प्रगतिवाद

छायावाद-युग के काव्य में कल्पना एवं व्यक्तिवाद की प्रधानता हो गई थी। इसी के विरोध में हिंदी साहित्य में नया काव्यान्दोलन आरंभ हुआ जिसे प्रगतिवाद का नाम दिया गया। इस काव्य आन्दोलन का मूल उद्देश्य साहित्य में जनता के सरोकारों को स्थान दिलाना था। इस काव्यान्दोलन की अवधि साहित्येतिहासकारों ने मोटे तौर पर 1935 से 1942 ई. तक निर्धारित की है। 1935 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई और 1936 ई. में उसके प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता प्रेमचंद ने की। इस काव्यान्दोलन में मार्क्सवादी विचारधारा की प्रधानता थी। छायावाद युग के अनेक कवि भी इस विचारधारा से प्रभावित हुए जिनमें निराला और पंत भी शामिल थे। इस युग के प्रमुख कवियों में रांगेय राघव, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, प्रकाश चंद्र गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', शिवमंगल सिंह 'सुमन', गजानन माधव 'मुक्तिबोध', त्रिलोचन शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।इस काव्यान्दोलन में व्यक्तिवाद का स्थान समाजवाद ने ले लिया। साथ ही काल्पनिकता के स्थान पर यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति बढ़ी। इस युग के काव्य में शिल्प की दृष्टि से कोई खास प्रगति नहीं हुई, हालाँकि कथ्य की दृष्टि से इस युग का काव्य अत्यंत उच्च कोटि का रहा। प्रगतिवादी कविता आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों के संघात से निर्मित जीवन-यथार्थ और विशेषकर किसान और मजदूर-जीवन के चित्रण को कविता के लिए अनिवार्य मानती है।वर्ग-संघर्ष को रेखांकित करते हुए शोषण की अमानवीयता का चित्रण प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्ति है। इस संदर्भ में

दिनकर की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-श्वानों को मिलना दूध-भात/भूखे बच्चे चिल्लाते हैं/माँ की गोदी से चिपक-चिपक/जाड़े की रात बिताते हैं।जनपक्षधर राजनीतिक चेतना, पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति तीव्र घृणा, शोषितों के प्रति सहानुभूति, व्यवस्था परिवर्तन हेतु क्रांति-चेतना तथा शोषितों की संघर्ष-क्षमता एवं शक्ति में विश्वास इस काव्यधारा की महत्त्वपूर्ण संवेदनागत प्रवृत्तियाँ हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-मैंने उसको जब-जब देखा लोहा देखा/लोहा जैसे तपते देखा, गलते देखा, ढलते देखा/मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा।ग्राम्य-प्रकृति का चित्रण तथा प्रेम के गार्हस्थिक रूप की अभिव्यक्ति भी इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।शिल्प के धरातल पर सामान्य एवं सहज भाषा का प्रयोग, छन्द-विधान में लोकधुनों को महत्त्व, लोकजीवन से बिंबों का चयन, प्रतीकात्मकता का अभाव आदि प्रगतिवादी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।कुल मिलाकर 'प्रगतिवादी कविता' मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप कविता में आम मनुष्य की प्रतिष्ठा आम बोलचाल की भाषा में करने वाली काव्यधारा है।

बोध प्रश्न –

- छायावाद : युग के काव्य में किसकी प्रधानता देखने को मिलती है ?

उपन्यास : उपन्यास की विकास यात्रा में इस युग को प्रेमचंदोत्तर युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में मनोवैज्ञानिक तथा प्रगतिवादी धारा के उपन्यास लिखे गए। फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित प्रेमचंदोतर उपन्यास धारा को 'मनोवैज्ञानिक उपन्यास' की संज्ञा दी जाती है। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति के यथार्थ की पहचान उसके चेतन मन से नहीं बल्कि अचेतन व अवचेतन से होती है। व्यक्ति की सब से मूल प्रवृत्ति है 'लिविडो' अर्थात्' काम चेतना' जिससे व्यक्ति का मूल व्यक्तित्व निर्मित होता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

जैनेन्द्र - त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी

अज्ञेय - शेखर: एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी

इलाचन्द्र जोशी- जिप्सी, जहाज का पंछी, संन्यासी

समाजवादी या प्रगतिवादी उपन्यास मार्क्सवादी विचारधारा को आधार बनाकर लिखे गए हैं। यशपाल इस धारा के केन्द्रीय लेखक हैं व नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त तथा रांगेय राघव अन्य प्रमुख रचनाकार हैं। इन उपन्यासों में आर्थिक समस्याओं विशेषत: गरीबी व शोषण को कथावस्तु का आधार बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त, धर्म व सांप्रदायिकता जैसी मिथ्या चेतनाओं पर भी चोट की जाती है।यशपाल-पार्टी कॉमरेड, दादा कॉमरेड, झूठा सच, दिव्या। भैरवप्रसाद गुप्त- मशाल, गंगा मैया।

कहानी: इस युग में मनोवैज्ञानिक तथा प्रगतिवादी धारा की कहानियाँलिखी गईं।मनोवैज्ञानिक कहानी धारा फ्रॉयड के मनोविश्लेषणवाद से वैचारिक प्रभाव ग्रहण करती है। इसमें मुख्यत: तीन कहानीकार शामिल हैं- जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय। प्रगतिवादी धारा के सबसे समर्थ लेखक यशपाल हैं।यशपाल के अलावा, इस धारा के अन्य लेखकों में राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन तथा रांगेय राघव प्रसिद्ध हैं।

नाटक : इस काल में प्रमुखत: दो प्रकार के नाटक लिखे गए-

1. राष्ट्रीय चेतना पर आधारित नाटक: राष्ट्रीय चेतना पर नाटक लिखने वालों में थे - हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविंददास तथा उदयशंकर भट्ट। इन्होंने सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना से युक्त अपने नाटकों में समन्वयवादी दृष्टि व नैतिक मूल्यों पर बल दिया।

हरिकृष्ण प्रेमी - 'रक्षाबन्धन', 'आहुति'।

गोविंद वल्लभ पंत - 'राजमुकुट'

2. यथार्थपरक समस्या प्रधान नाटक: समस्या प्रधान नाटकों में व्यक्ति-मन केद्वन्द्व,स्वच्छन्द प्रेम, विवाह समस्या, मूल्यों के विघटन आदि विषय प्रमुख रहे। इस कोटि के नाटक हैं :-

उपेन्द्र नाथ अश्क - 'अंजोदीदी'

लक्ष्मीनारायण मिश्र - 'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य'।

वस्तुत: समस्या नाटकों की प्रवृत्ति स्वतंत्रता के बाद ज़्यादा प्रभावशाली तौर पर दिखती है। स्वतंत्रता के बाद के नाटककारों में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने प्रतीकात्मक ढंग से आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उद्घाटित किया है। 'मादा कैक्टस' तथा 'मिस्टर अभिमन्यु' उनके महत्वपूर्ण नाटक हैं।

बोध प्रश्न –

- प्रगतिवाद धारा के प्रमुख उपन्यासकार कौन हैं ?
- प्रगतिवाद धारा के प्रमुख नाटककार कौन हैं ?
- प्रगतिवाद धारा के प्रमुख कहानीकार कौन हैं ?

प्रयोगवाद

प्रयोगवाद का आरंभ मोटे तौर पर 1943 ई. से माना जाता है। सन् 1943 में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने 'तार सप्तक' का सम्पादन किया। तब से अनेक कवि प्रगतिवाद की सपाटबयानी से अलग होकर नए प्रयोगों की ओर उन्मुख हुए। 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' का प्रकाशन क्रमशः 1951 एवं 1959 ई. में हुआ। जहाँ प्रगतिवादी कवियों पर कार्ल मार्क्स का प्रभाव दिखाई देता है, वहीं प्रयोगवाद युग के कवियों पर सिग्मंड फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। इस युग के काव्य में मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव अधिक होने

से यौन वर्जनाओं का चित्रण भी मिलता है। प्रगतिवादी काव्य जहाँ यथार्थवाद पर आधारित है, वहीं प्रयोगवादी काव्य अतियथार्थवाद पर। धर्मवीर भारती प्रयोगवादी काव्य के संबंध में लिखते हैं –"प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्न-चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं।" (भगीरथ मिश्र – हिंदी साहित्य का परिचयात्मक इतिहास, उद्धृत)। प्रयोगवादी कवियों ने सामाजिक, राजनीतिक एवं समसामयिक विद्रूपताओं के प्रति व्यंग्य भी किया है। इन विद्रूपताओं में पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित भारतीय समाज, महानगरों में पनपती वेश्यावृत्ति, राजनीतिक अस्थिरता आदि शामिल हैं। इस युग के कवियों में'अज्ञेय',गिरिजाकुमार माथुर, मदन वात्स्यायन, शमशेर बहादुर सिंह, आदि प्रमुख हैं।कविता के केंद्रीय चेतना के रूप में स्वानुभूति की प्रामाणिकता की चिन्ता प्रयोगवाद की आधारभूत विशिष्टता है। इस संदर्भ में अज्ञेय द्वारा रचित कविता ''जितना तुम्हारा सच है'' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

मौन भी अभिव्यंजना है
जितना तुम्हारा सच है
उतना ही कहो।

समूह की तुलना में ईकाई पर बल प्रयोगवाद का वैशिष्ट्य है। समाज और व्यक्ति के संदर्भ में प्रयोगवादी कविता व्यक्ति की अस्मिता पर बल देती है-

किन्तु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं हैं

भाषा के संदर्भ में प्रयोगवादी कविता शब्द पर बल देती है। 'भवन्ती' में अज्ञेय ने लिखा है- 'कविता शब्द से शुरू होती है और शब्द पर ही खत्म हो जाती है।'प्रयोगवादी कविता विराट समय और क्षण की तुलना में क्षण पर बल देती है-

और सब समय पराया है
सिर्फ उतना ही क्षण अपना
तुम्हारी पलकों का कँपना

प्रयोगवादी कविता में यौन कुंठा का प्राबल्य है। प्रयोगवाद कविता और बौद्धिकता के अन्र्तसंबंधों की प्रस्तावना करता है। कवि बौद्धिक ढंग से ही अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है।

भाषा: प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को काफी महत्त्व दिया। अज्ञेय कहते हैं- ''भाषा सिर्फ़ अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, जानने का माध्यम भी है। जितनी हमारी भाषा होती है, हम उतना ही सोच सकते हैं।'' इन कवियों ने शब्दों को खुला आमंत्रण दिया। तत्सम, तद्भव, अंग्रेज़ी आदि विविध स्रोतों से शब्दों का चयन किया। इनके यहाँ उपमान बहुत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि कविता की ताजगी या बासीपन उपमानों पर ही निर्भर है। अज्ञेय की कविता 'कलगी बाजरे की'

नवीन उपमानों की ज़रूरत पर ही रची गई है। प्रयोगवाद में बड़े पैमाने पर प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। यथार्थ की जटिलता व सूक्ष्मता को अभिव्यक्त करने के प्रयास में ये प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। सर्वाधिक प्रतीक यौन प्रसंगों से संबंधित हैं। व्यक्ति व समाज के जटिल संबंधों को भी बूंद व समुद्र, द्वीप व नदी, दीप व दीपमाला आदि प्रतीक-युग्मों से व्यंजित किया गया है। प्रयोगवादी कविता का बिंबों पर काफी ज़ोर है। अपने अनुभव से जुड़े ताज़े और नए बिंबों को कविता में शामिल करना इन कवियों की प्राथमिकता रही है।

मूल्यांकन: हिंदी कविता के इतिहास में प्रयोगवाद कई कारणों से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। एक तरफ, इस आंदोलन ने नई कविता की पृष्ठभूमि तैयार की तो दूसरी तरफ व्यक्ति के निजी जीवन की अकुंठ अभिव्यक्तियों का मार्ग प्रशस्त किया। विचारधाराओं को खारिज करते हुए इस कविता ने जिस स्वानुभूति की प्रतिष्ठा की, वह आज भी हिंदी कविता को बड़ा योगदान मानी जाती है। यह कविता व्यक्ति के निजी प्रसंगों में ही विचरण करती रही, समाज से नहीं जुड़ सकी।

बोध प्रश्न –

- प्रयोगवाद की शुरुआत कब हुई ?
- प्रयोगवादी कविता में किसका प्राबल्य है ?

नाटक: इस युग में लिखे गए एब्सर्ड नाटक को 'विसंगत' अथवा 'असंगत' नाटक कहा जाता है। एब्सर्ड नाटक की शुरुआत मूलत: पश्चिम में प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की परिस्थितियों एवं उनसे उपजे जीवन बोध एवं दर्शन से प्रेरित मानी गई है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूरोप में अस्तित्ववादी दर्शन का विकास हुआ। इसी अस्तित्ववाद ने नाटक के क्षेत्र में विसंगतिवाद (एब्सर्डिज़म) को प्रश्रय दिया। ऐसे नाटकों में व्यर्थता, निरर्थकता, अतार्किकता एवं अनिश्चयता को नाट्यवस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। किंतु, इन नाटकों का अंतिम लक्ष्य इन सबके भीतर से मनुष्य के मौलिक अस्तित्व को परिभाषित करना ही होता है।पश्चिम में एब्सर्ड नाट्य धारा के आरंभ होने से भी पहले हिंदी में भुवनेश्वर ने उससे मिलते-जुलते हुए से प्रयोग किए। उन्होंने विश्व मानव की पीड़ा, भय और निराशा, टूटते मानवीय रिश्तों के दर्द को अनुभव किया और अपने नाटक 'तांबे के कीड़े' में अभिव्यक्त किया। भुवनेश्वर के बाद हिंदी में एब्सर्ड का सबसे सटीक प्रभाव विपिन कुमार अग्रवाल के नाटकों में मिलता है। उनके 'तीन अपाहिज', 'लोटन', 'खोए हुए की तलाश' नाटकों से हिंदी के विसंगत नाटकों की धारा पुष्ट होती है। इसके पश्चात् लक्ष्मीकांत वर्मा का 'रोशनी एक नदी है' विसंगत नाट्यधारा को विकसित करता है।

आलोचना : इस युग की आलोचनाकी शुरुआत स्वच्छंदतावादी समीक्षा से हुई जो मोटे तौर पर शुक्ल जी की धारणाओं का प्रतिपक्ष है। इसके बाद, विभिन्न विचारधाराओं के आगमन के साथ-साथ नई समीक्षा पद्धतियाँ प्रचलित होती गईं जिनमें प्रगतिवादी समीक्षा, मनोविश्लेषणवादी

समीक्षा और नई समीक्षा प्रमुख हैं। हिंदी स्वच्छंदतावादी समीक्षा में मुख्यत: तीन आलोचक शामिल हैं- पं. नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र तथा पं. शान्तिप्रिय द्विवेदी।पं. नंददुलारे वाजपेयी स्वच्छंदतावादी समीक्षा धारा के पहले समर्थ आलोचक हैं, जिन्होंने आचार्य शुक्ल के प्रबंधकाव्यवाद, मर्यादावाद और नैतिकतावाद जैसे आग्रहों से हिंदी समीक्षा को मुक्त किया। इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं- 'हिंदी साहित्य-बीसवीं शताब्दी', 'महाकवि सूरदास', 'नया साहित्य: नये प्रश्न'।डॉ. नगेन्द्र स्वच्छंदतावादी समीक्षा के दूसरे बड़े आलोचक हैं। 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' उनकी अपनी दृष्टि में उनकी व्यावहारिक समीक्षा का सर्वोच्च स्तर है। शांतिप्रिय द्विवेदी को 'प्रभाववादी समीक्षक' भी कहा जाता है। इन्होंने अपनी पुस्तकों जैसे 'साहित्यिकी' तथा 'हमारे साहित्य निर्माता' में मुख्यत: छायावाद पर विचार किया। हिंदी की प्रगतिवादी समीक्षा 1936 ई. में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के बाद अस्तित्व में आई। इसका सैद्धांतिक पक्ष मार्क्सवाद पर आधारित है । साहित्य स्वायत्त वस्तु नहीं है वरन्वह अपने सामाजिक दायित्वों से बंधा है। उसका सामाजिक दायित्व शोषित वर्ग की मुक्ति की प्रक्रिया में सहायक होना है। साहित्य का उद्देश्य आनंद या रस की उद्भावना नहीं है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज को आनंदित नहीं, आंदोलित करने की आवश्यकता है। साहित्य में महत्त्व वस्तु (content) काहै, रूप (form) का नहीं। प्रगतिवादी समीक्षा कई समीक्षकों के माध्यम से विकसित हुई जिनमें प्रमुख हैं- शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चंद्र गुप्त, रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध और नामवर सिंह। इनके अतिरिक्त, समकालीन समीक्षकों में मलयज, नंद किशोर नवल, निर्मला जैन, नित्यानंद तिवारी, मैनेजर पांडेय और विश्वनाथ त्रिपाठी भी इस धारा में शामिल हैं।

मनोविश्लेषणवादी समीक्षा यह मानती है कि कोई भी रचना रचनाकार के व्यक्तित्व का प्रक्षेपण होती है और व्यक्तित्व की पहचान अव चेतनया अचेतन मन से होती है। समीक्षाका दायित्व है कि वह रचना की व्याख्या रचनाकार के व्यक्तित्व के माध्यम से करे। चूँकि साहित्य का मूल संबंध बहिर्जगत से नहीं अन्तर्जगत से है, इसलिये प्रतीकों का प्रयोग साहित्य में आवश्यक है। बिंब और मिथक जैसे तत्त्व भी अन्तर्मन की ग्रंथियों को सुलझाने में या व्यक्त करने में सक्षम हो सकते हैं मुख्य रूप से अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, डॉ देवराज की समीक्षा में यह पद्धति दिखती है.

बोध प्रश्न –

- इस युग के प्रभाववादी समीक्षक कौन थे ?

निबंध:इस युग में निबंध-लेखन की कई शैलियों ने अपनी अलग पहचान बनाई। इस युग में तीन प्रमुख शैलियों ने निबंध लेखन को उत्कर्ष पर पहुँचाया ललित निबंध, व्यंग्य निबंध और वैचारिक निबंध कीशैलियाँ।शुक्ल जी के बाद भी हिंदी में वैचारिक निबंधों की परंपरा बनी रही। इस युग के वैचारिक निबंधों में विचार की स्पष्टता और तर्कपूर्ण चिंतन के साथ विचारात्मक आग्रह भी व्यक्त हुए। जैनेन्द्र कुमार, डॉ. संपूर्णानंद,रामवृक्ष बेनीपुरी, नगेंद्र आदि के निबंधों से उनकी वैचारिक दृष्टि का परिचय मिलता है। इन निबंधकारों ने अपने निबंधों के लिए समसामयिक विषय चुने।

स्वतन्त्रतापूर्व हिंदी गद्य की अन्य विधाएँ : रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रा-वृत्तान्त

हिंदी में रेखाचित्र की शुरुआत प्रधानत: छायावाद युग से मानी जाती है। श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा महादेवी वर्मा ने रेखाचित्र के प्रारंभ एवं विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। हिंदी में रेखाचित्र को एक स्पष्ट व पृथक् पहचान देने में महादेवी वर्मा की भूमिका ऐतिहासिक रही है। महादेवी वर्मा के प्रतिनिधि रेखाचित्र हैं- 'बिन्दा' (1934), 'सबिया' (1934), 'घीसा' (1936)। रेखाचित्र साहित्य के विकास एवं उन्नयन की दिशा में 'हंस' का 'रेखाचित्र विशेषांक' (मार्च, 1939) उल्लेखनीय है। हिंदी के अप्रतिम गद्यकार रामवृक्ष बेनीपुरी का हिंदी रेखा चित्र के विकास में अतुलनीय योगदानहै। अपने रेखाचित्र-संग्रहों 'लाल तारा' (1938), 'माटी की मूरतें' (1946), 'गेहूँ और गुलाब' (1950), 'मील के पत्थर' (1957)आदि के माध्यम से उन्होंने हिंदी रेखाचित्र को संवेदनात्मक एवं वैचारिक गहराई तथा शिल्पगत उत्कर्ष प्रदान करने का काम किया।

संस्मरण की शुरुआत द्विवेदी युग में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुई। इसके विभिन्न अंकों में समय-समय पर अनेक रोचक संस्मरण प्रकाशित होते रहे। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदीने 'अनुमोदन का अंत', 'सभा की सभ्यता', 'विज्ञानाचार्य बसु का विज्ञान मंदिर' आदि की रचना करके संस्मरण के विकास में योगदान दिया। द्विवेदीजी के अतिरिक्त रामकुमार खेमका, जगत बिहारी सेठ, काशीप्रसाद जायसवाल आदि ने महत्त्वपूर्ण संस्मरण लिखे। छायावाद युग में भी सरस्वती, विशाल भारत, सुधा और माधुरी पत्रिकाओं में संस्मरण प्रकाशित होते रहे। आचार्य रामदेव, अमृतलाल चक्रवर्ती, मंगलदेव शर्मा जैसे लेखकों ने इन पत्रिकाओं के लिए क्रमश: स्वामी श्रद्धानंद, बालमुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक और पद्मसिंह शर्मा से संबद्ध जीवनीपरक संस्मरणों की रचना की। 'सुधा' (1921) में प्रकाशित इलाचंद्र जोशी कृत 'मेरी प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ' तथा वृंदावन लाल वर्मा कृत 'कुछ संस्मरण' भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। हिंदी के संस्मरणात्मक रेखाचित्र साहित्य की श्री वृद्धि में महादेवी वर्मा ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

‘अतीत के चलचित्र’, ‘स्मृति की रेखाएँ’, ‘पथ के साथी’ और मेरा परिवार’ उनके उल्लेखनीय रेखाचित्र संग्रह हैं।

हिंदी साहित्य में यात्रा वृत्तांत की उपस्थिति द्विवेदी युग में ही दर्ज हुई। श्रीधर पाठक, उमा नेहरू और लोचन प्रसाद पांडेय द्वारा महत्त्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत लिखे गए। सत्यदेव परिव्राजक इस युग के प्रमुख यात्रा-साहित्य के लेखक हैं। ‘मेरी जर्मन यात्रा’, ‘यात्री मित्र’ , ‘यूरोप की सुखद स्मृतियाँ’ इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। यात्रा-वृत्त लेखन में राहुल सांकृत्यायन का अन्यतम स्थान है। उन्होंने असंख्य यात्राएँ कीं एवं उसी अनुपात में यात्रा साहित्य रचा। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ ‘तिब्बत में सवा वर्ष’ (1933), ‘मेरी यूरोप यात्रा’ (1935), ‘अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा’, ‘ वोल्गा से गंगा’ आदि हैं।

बोध प्रश्न –

- निबंध की कौन-कौन सी शैलियों का उल्लेख हुआ है ?
- संस्मरण की शुरुआत कब और कैसे हुई ?

13.4 पाठ सार

आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास बहुलतावादी स्वरों को आत्मसात् किये हुए है। स्वतंत्रता-पूर्व का आधुनिक हिंदी साहित्य विविध विधाओं की प्रयोगशाला है। कविता के समानांतर पत्रकारिता आधुनिक चेतना को अग्रसरित करती है। निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी और अन्य विधाएँ इस काल खंड में अपना आकार ग्रहण करती है और विकास के नये प्रतिमानों की अपेक्षा भी करती है।

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं –

1. प्रथम स्वाधीनता संग्राम के साथ आरंभ हुए नवजागरण के समानांतर हिंदी साहित्य में भी नए युग और प्रवृतियों का उदय हुआ इसे आधुनिक काल कहा जाता है।

2. आधुनिक काल में देश दुनिया के तमाम परिवर्तन बहुत तेजी से घटित हुए हैं यही कारण है कि आधुनिक हिंदी साहित्य अनेक विषयों और प्रवृतियों का व्यापक साहित्य है।

3. स्वातंत्र पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य को भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के रूप में विभाजित किया जाता है।

4. भारतेंदु युग के साहित्यकार राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति की दुविधा से ग्रस्त दिखाई देते हैं जबकि द्विवेदी युग के साहित्यकार अंग्रेज शाशन से मुक्ति की राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित है।

6. छायावाद युग में साहित्य की विभिन्न विधाओं का विकास भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान से प्रेरित दिखाई देता है। जबकि प्रगति-प्रयोग काल के रचनाकार क्रमशः साम्यवाद और मनोविश्लेषणवाद से प्रेरित दिखाई पड़ते हैं।

6. भारतेंदु युग से लेकर स्वंत्रतता प्राप्ति तक का समय खड़ी बोली के अत्यंत तीव्रता के साथ साहित्य की भाषा बनने का इतिहास है।
7. इस काल में गद्य की प्रमुखता के कारण इस गद्य काल कहा जाता है। उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना, एकांकी, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी आदि विधाओं में लेखन ने हिंदी गद्य को लगातार धार-दार बनाया।
8. आधुनिक हिंदी साहित्य को पुष्ट करने में पत्रकारिता का योगदान अविस्मरणीय हैं।

13.6 शब्द संपदा

1. समस्या पूर्ति: इसपरंपरा में एक विषय तय किया जाता था और उसकी अंतिम पंक्ति तय होती थी और कवि अपनी प्रतिभा से उससे पहले की कविता लिखते थे। इसे ही समस्यापूर्ति कहा गया।
2. इतिवृत्तात्मकता: स्थूल सौंदर्य दृष्टि, सीधी सपाट अभिव्यक्ति।
3.सांस्कृतिक पुनरुत्थान : प्राचीन संस्कृति को फिर से जानने की चेष्टा।

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न
निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
2. स्वतंत्रता- पूर्व आधुनिक हिंदी साहित्य पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें।
3. भारतेंदु युगीन कविता : भागवत विशेषताएँ कौन-कौन सी हैं ?

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न
निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।
1.द्विवेदी युगीन काव्यगत विशेषताओं को संक्षिप्त में लिखें।
2.छायावाद युग के काव्य की प्रमुख विशेताओं को संक्षिप्त में लिखें।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. गोदान उपन्यास कब प्रकाशित हुआ ? ( )

(अ)1935 (आ) 1936 (इ) 1930 (ई)1934

2. 'मंगलसूत्र' किसका अधूरा उपन्यास है ? ( )

(अ) प्रेमचंद (आ) निराला
(इ)महादेवी वर्मा (ई) सुमित्रानंदन पंत

3. 'कृष्ण सुदामा' रचना किसकी है ? ( )

(अ) नारायण प्रसाद 'बेताब' (आ) सूरदास
(इ) आगा हश्र (ई)जयशंकर प्रसाद

4. 'त्यागपत्र' के रचनाकार कौन हैं ? ( )

(अ)उपेन्द्रनाथ अश्क (आ) जैनेन्द्र
(इ)अज्ञेय (ई)इलाचंद्र जोशी

5. 'आहुति' रचना किसकी हैं ? ( )

(इ)हरिकृष्ण प्रेमी (आ) लक्ष्मीनारायण मिश्र
(इ)अज्ञेय (ई)जैनेन्द्र

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. प्रयोगवाद का आरंभ____________ ई. से माना जाता है।
2. तीसरा सप्तक का प्रकाशन कमशः____________ में हुआ।
3. समूह की तुलना में ईकाई पर बल ___________का वैशिष्ट्य है।
4. 'भवन्ती' में अज्ञेय ने लिखा है____________
5. __________ कहते हैं – "भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, जानने का माध्यम भी हैं।"

III. सुमेल कीजिए।

1.	बिंदा	(अ) 1957
2.	सबिया	(आ) 1950
3.	घीसा	(इ) 1934
4.	गेहूँ और गुलाब	(ई) 1936
5.	मिल के पत्थर	(उ) 1934

13.8 पठनीय पुस्तकें

1. रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास
2. विश्वनाथ त्रिपाठी - हिंदी साहित्य का सरल इतिहास
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास
4. बच्चन सिंह - हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास
5. रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ
6. रामविलास शर्मा - महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
7. नामवर सिंह - छायावाद
8. नामवर सिंह - आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

इकाई 14 : स्वतान्त्रात्तर आधुनिक हिंदी साहित्य

रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 मूल पाठ : स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक हिंदी साहित्य
14.3.1 नयी कविता
14.3.2 नयी कहानी
14.3.3 साठोत्तरी हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
14.4 पाठ सार
14.5 पाठ की उपलब्धियाँ
14.6 शब्द-संपदा
14.7 परीक्षार्थ प्रश्न
14.8 पठनीय पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

आजादी से पहले का हिंदुस्तान, विभाजन का दंश झेलते हुए दो मुल्कों में बँट गया। विभाजन का दंश दोनों ओर था। आजादी का राजनीतिक आधार तो हमने प्राप्त कर लिया लेकिन आर्थिक और सामाजिक आधारों पर हम विफल रहे।इसका व्यापक असर भारतीय जन मानस पर पड़ा। आजादी से उसका मोह भंग भी हुआ और नयी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के निर्माण की ओर उसकी चेतना का विकास हुआ। भारत के मध्यवर्ग ने अपना विस्तार किया। इस वर्ग ने साहित्य की विविध विधाओं में अपनी भूमिका सुनिश्चित की।इसी वर्ग के एक हिस्से और संभ्रांत वर्ग ने मिलकर सामाजिक प्रतिबध्दता से अपना नाता तोड़ लिया।इसके कारण अनेक सामाजिक आन्दोलन विफलहुए।आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्न साहित्य को सामाजिक न्याय की ओर उन्मुख करने में सफल हुए। लोकतंत्र मेंराजनीतिक पार्टियों का वर्चस्व प्राथमिक हो गया और राजनीति, मूल्य की जगह समीकरणों से पैबस्तहो गई।इन सब स्थितियों, घटनाओं और परिवेश के समुच्चय से आजादी के बाद का हिंदी साहित्य निर्मित होता है।

14.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई को पढ़कर आप -

- स्वतंत्रता के बाद के हिंदी साहित्य के स्वरुप से परिचित हो सकेंगे।
- नयी कविता की प्रवृत्तियों और उसके रचनाकारों के बारे में जान सकेंगे।
- हिंदी कहानी के विकास में नयी कहानी की भूमिका और विशिष्टता से परिचित हो सकेंगे।

- साठोत्तरी हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।

14.3 मूल पाठ :स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक हिंदी साहित्य

14.3.1 नई कविता

नयी कविता का आरंभ आम तौर से 'दूसरा सप्तक' (1951 ई.) के बाद की कविता से माना जाता है। यह कविता आधुनिकता-बोध के साथ-साथ नए प्रयोगों की कविता है।इस कविता की भाषा, शैली सहज है पर यहाँ प्रतीकात्मकता है। साथ ही छंद और गीत का बहिष्कार नयी कविता उद्घोषित करती है।नयी कविता की कुछ विशेषताओं को इन बिंदुओं में देखा जा सकता है –

1. आधुनिकता का बोध,
2. आत्मानुभूति,
3. लोकजीवन से जुड़ाव,
4. लघु मानव का वर्णन,
5. यथार्थ जीवन का चित्रण,
6. बौद्धिकता,
7. प्रयोगधर्मिता,
8. प्रकृति-वर्णन आदि।

नयी कविता का मूल आधार अपने युग-सत्य और उसके यथार्थ से जुड़ा हुआ है। इस कविता में नयी भाव-भूमि का आग्रह है और मानवीय आत्मविश्वास और उसके अस्तित्व के लिए संघर्ष है। "नयी कविता की मूल स्थापनाओं में चार तत्त्व मुख्य हैं। सर्वप्रथम तो यह कि नयी कविता का विश्वास आधुनिकता में है। दूसरे, नयी कविता जिस आधुनिकता को स्वीकार करती है, उसमें वर्जनाओं और कुण्ठाओं की अपेक्षा मुक्त यथार्थ का समर्थन है। तीसरे, इस मुक्त यथार्थ का साक्षात्कार वह विवेक के आधार पर करना अधिक न्यायोचित मानती है। और चौथा, यह कि इन तीनों के साथ-साथ वह क्षण के दायित्व और नितान्त समसामयिकता के दायित्व को स्वीकार करती है। आधुनिकता का अर्थ विकृतियों से न होकर उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थन में है, जो विवेचना और विवेक के बल पर हमें प्रत्येक वस्तु के प्रति एक मानवीय दृष्टि, यथार्थ की दृष्टि देती है।" (हिंदी साहित्य कोश, भाग- 1, सं.- धीरेन्द्र वर्मा) इस काव्यान्दोलन के प्रमुख कवि हैं - 'अज्ञेय', शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती, वीरेन्द्र कुमार जैन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, जगदीश गुप्त, नरेश मेहता, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', हरिनारायण व्यास, कुँवर नारायण, सुदामा प्रसाद पांडेय 'धूमिल' आदि।

छायावादोत्तर हिंदी कविता में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बाद विकसित होने वाली ‘नयी कविता’ धारा प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के अतिवादी और इकहरी जीवन-दृष्टियों का परित्याग करते हुए दोनों के बीच सामंजस्य का प्रयत्न करती है और जीवन-यथार्थ के प्रति उन्मुक्त दृष्टि की प्रस्तावना करती है-

‘जिन्दगी में जो कुछ है, जो भी है सहर्ष स्वीकारा है।’

अत: ‘यथार्थ के प्रति खुली दृष्टि’ नई कविता की केंद्रीय प्रवृत्ति है।

‘आधुनिक भावबोध’ नई कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। आधुनिक भावबोध से युक्त होने के कारण ही नई कविता में अहं के प्रति सजगता (किन्तु हम हैं द्वीप/हम धारा नहीं हैं) के साथ-साथ वेदना, संशय, निरर्थकता-बोध, मूल्यों का संकट आदि दिखायी देते हैं। उदाहरण स्वरूप मूल्यों के संकट के संदर्भ में ‘अंधायुग’ में गांधारी का एक कथन देखा जा सकता है-

जिसको तुम कहते हो प्रभु उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया वंचक है वो।

इसके साथ ही नई कविता में राजनीतिक बोध भी प्रबल स्तर पर मौजूद है।

शिल्प के धरातल पर नई कविता सामान्य बोलचाल की भाषा के ग्रहण पर बल देती है। उसमें विभिन्न भाषाओं और विभिन्न अनुशासनों के शब्दों का निस्संकोच प्रयोग हुआ है। नए उपमानों, नए बिंबों और नए प्रतीकों का प्रयोग नयी कविता का वैशिष्टय है। छंद के धरातल पर नई कविता छंद की समूची अवधारणा को निरस्त करते हुए स्वाधीन लय पर बल देती है। यह अर्थ-लय की अवधारणा को भी स्थापित करती है। इस दृष्टि से अज्ञेय की निम्नांकित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

तुम क्या जानो कितनी लंबी होती है रात अकेली सिसकी की

समग्रत: नयी कविता सिर्फ कविता के विषय को ही नहीं बदलती, बल्कि काव्य अभिरूचि को भी बदलती है। उसकी रचना चेतना का आधार भावात्मक न होकर बौद्धिक है।

बोध प्रश्न –

- नई कविता की किन्हीं चार प्रवृतियों के बारे में बताइए।

14.3.2 नई कहानी

नयी कहानी का आरंभ 1954 से 1962 के बीच माना जाता है। नयी कहानी आन्दोलन कहानी के पुराने प्रतिमानों को नकारकर नए प्रतिमानों की स्थापना को लेकर विकसित हुआ।भारत की आजादी के बाद जनता में नयी चेतना, नयी आस्था और विश्वास, और नई आशा-आकांक्षा का संचार हुआ जिससे भारतीय समाज का सामाजिक यथार्थ नए तरीके से परिभाषित हुआ और इससे सम्पोषित होकर हिंदी कहानी नयी कहानी के रूप में सामने आयी।1960 ई. से 'नयी कहानियाँ' नामक पत्रिका का इस आन्दोलन में बड़ा योगदान था।इस

पत्रिका के सम्पादक भैरव प्रसाद गुप्त थे। इस पत्रिका में राजेन्द्र यादव का 'आज की कहानी : परिभाषा के नए सूत्र'शीर्षक से लेख प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने लिखा कि "कथाकार व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करता है। व्यक्ति को उसकी समग्रता में उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अंतर्द्वंद्वों तथा व्यावहारिक जीवन के तकाजों और आवश्यकताओं की एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के रूप में पाना उसका लक्ष्य है।" (डॉ. अमरनाथ - हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली) इस दिशा में नामवर सिंह ने 'कहानी : नई कहानी'पुस्तक लिखकर नई कहानी आन्दोलन के संवेदनात्मक एवं वैचारिक आधार की व्याख्या की।नई कहानी आन्दोलन ने आजादी के बाद भारत के बदले हुए यथार्थ, नए अनुभव और सामाजिक संबंध को प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त करने पर बल दिया। इस आन्दोलन ने परिवेश की विश्वसनीयता, अनुभूति की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति की ईमानदारी के प्रश्न उठाते हुए हिंदी कहानी की सर्जन-प्रक्रिया से जोड़ने का काम किया।

नयी कहानी आन्दोलन के प्रमुख लेखकों में फणीश्वरनाथ 'रेणु', धर्मवीर भारती, मार्कण्डेय, अमरकान्त, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियम्वदा एवं हरिशंकर परसाई प्रमुख हैं। इस आन्दोलन को दिशा देने में राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वरके नाम उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न –

- नई कहानी का प्रारंभ कब हुआ ?

नई कहानी के विशेषताएँ या प्रवृतियाँ

1. नई कहानी की सबसे महत्वपूर्ण घोषणा है- ‘अनुभूति की प्रामाणिकता’ या ‘भोगे हुए यथार्थ’पर बल। ये कहानीकार मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद या किसी भी अन्य विचारधारा को जीवन का अंतिम सत्य मानने को तैयार नहीं हैं। इनकी स्पष्ट मान्यता है कि कहानी जीवन के वास्तविक अनुभवों के प्रति जवाब देह होनी चाहिए। मोहन राकेश तथा निर्मल वर्मा की कहानियों में भोगे हुए यथार्थ की छटपटाहट सबसे प्रबल रूप में दिखती है।

2. नयी कहानी के केंद्र में शहरी मध्यवर्ग का जीवन है। बड़े शहरों में मध्यवर्ग की कुछ विशिष्ट समस्याएँ होती हैं, जैसे अपनी जड़ों से उखड़ ने की त्रासदी और सामाजिक संबंधों के अभाव से उत्पन्न होने वाला अकेलापन, संत्रास, अजनबीपन व निरर्थकताबोध आदि। नयी कहानी ने शहरी मध्यवर्ग की इन पीड़ाओं को विस्तारपूर्वक व्यक्त किया है। ऐसी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं- ‘अकेली’ (मन्नूभंडारी), ‘टूटना’ (राजेंद्रयादव), ‘मिसपॉल’ (मोहनराकेश)।

3. नई कहानी का सबसे प्रमुख विषय मानवीय संबंधों में विद्यमान बिखराव की समस्या है। नयी कहानी में रिश्तों की यह टूटन अत्यंत मुखर रूप में उपस्थित है। उषाप्रियंवदा

की कहानी 'वापसी' इसका प्रतिनिधि उदाहरण है, भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत'भी ऐसा ही उदाहरण है जिसमें एक वृद्धा के अनुपयोगी तथा अप्रस्तुति योग्य होने का दर्द व्यक्त हुआ है।

4. नई कहानी का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय है नारी और पुरुष के संबंधों में आया हुआ महत्वपूर्ण बदलाव। इस दौर में तलाक और विवाहेतर संबंध जैसी प्रवृत्तियाँ तेजीसे उभरने लगीं। नई कहानी में व्यापक स्तर पर यह तनाव परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ- 'सावित्री नंबर दो' (धर्मवीर भारती), 'लंदन की एकरात' (निर्मल वर्मा), 'यही सच है' (मन्नू भंडारी), 'एक और ज़िदगी' (मोहन राकेश)।

5. नयी कहानी यौन नैतिकता की पुनर्व्याख्या करती है। उनका दावा है कि नैतिकता इस बात से तय होती है कि व्यक्ति समाज के प्रति कितने कर्त्तव्य निभाता है। व्यक्ति की यौन इच्छाएँ तो भूख, नींद और भय की तरह स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें नैतिकता से नहीं जोड़ा जा सकता। धर्मवीर भारती और मोहन राकेश की कहानियों में यह बात प्रखर रूप में दिखती है। कृष्णा सोबती की लम्बी कहानी 'मित्रो मरजानी'स्त्री के संबंध में यौन नैतिकता के नए प्रतिमान गढ़तीहै।

6. नयी कहानी में कुछ कहानियाँ ऐसी भी मिलती हैं जो शहरी यथार्थ और संबंधों के टूटने जैसे विषयों से भिन्न हैं। ये वे कहानियाँ हैं जिनमें अपने समय की सामाजिक समस्याओंका दंश नज़र आता है। ऐसी प्रसिद्ध कहानियो में अमरकांत की 'ज़िन्दगी और जोंक' (वंचित वर्ग के शोषण की समस्या), मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' (विभाजन की त्रासदी), धर्मवीर भारती की 'गुल की बन्नो' (स्त्री के सामाजिक वंचन की समस्या) तथा हरिशंकर परसाई की 'भोला राम का जीव' (व्यवस्था में निहित भ्रष्टाचार की समस्या) प्रमुख हैं।

7. नयी कहानी की एक महत्वपूर्ण विशेषता शिल्प के स्तर पर नज़र आती है। पहले की कहानियों में भी शिल्पगत परिवर्तन होते रहे किन्तु जितनी प्रयोगशीलता नयी कहानी में दिखती है, उतनी और कहीं नहीं। शिल्प के स्तर पर नयी कहानी ने निम्नांकि तमहत्वपूर्ण बदलाव किए-

(क) पहले की कहानियों में कथानक की एक निश्चित संरचना ज़रूर उपस्थित होती थी जिसमें घटनाओं की शृंखला आदि, मध्य, अंत, द्वंद्व तथा चरम सीमा आदि के माध्यम से निश्चित क्रमानुसार बढ़ती थी। किंतु, नई कहानी में घटनाओं की शृंखला नज़र नहीं आती, किसी छोटी सी घटना या क्षणिक अनुभूति पर ही पूरी कहानी लिख दी जाती है। एकाध कहानी में तो दोहरे या समानांतर कथानक का प्रयोग भी है, जैसे- कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया', जिसमें राजा-रानी की लोक कथा के समानांतर जगपति और चन्दा की वर्तमान जीवन कथा चलती है।

(ख) नयी कहानी की दूसरी शिल्पगत विशिष्टता भाषा के स्तर पर दिखती है। यह भाषा प्रेमचंद की परंपरा की नहीं बल्कि प्रसाद, जैनेन्द्र और अज्ञेय की भाषिक परंपरा के परिमार्जन से निर्मित हुई भाषा है। इस भाषा में प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता और लयात्मकता के तत्व इतनी गहराई से घुले-मिले हैं कि यह कविता की भाषा जैसा असर छोड़ती है। इस भाषा की पहचान कई कहानियों के शीर्षकों से ही हो जाती है, जैसे- 'उलझते धागे', 'फौलाद का आकाश', 'इंसान के खण्डहर', 'मलबे का मालिक', 'छोटे-छोटे ताजमहल', 'ज़िन्दगी और गुलाब के पूल' इत्यादि।

(ग) इस काल में कहानी लेखन की नई-नई शैलियाँ विकसित हुईं। पत्र-शैली, चेतना-प्रवाह तथा प्रत्यावलोकन शैली तो सीमित मात्रा में पहले भी दिखती थीं; नयी कहानी ने इनके अतिरिक्त डायरी शैली और फैन्टेसी (फन्तासी) शैली का भी पर्याप्त प्रयोग किया।

बोध प्रश्न –

- नई कहानी की किन्हीं चार विशेताओं के बारे में बताइए.
- कहानी लेख की शैलियाँ कौन-कौन सी हैं ?

14.3.3 साठोत्तरी हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

नयी कविता एवं नयी कहानी आन्दोलन के बाद हिंदी साहित्य की दिशा बदलती है। 1960 के आस-पास हिंदी में अनेक साहित्यिक आन्दोलन अपने युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए विकसित हुए। आजादी के प्रथम दशक के बाद ही जिस आशा, उत्साह और उम्मीद को भारतीय समाज सँजोये हुए था, वे बेमानी साबित होने लगे।आर्थिक स्थिति बदतर होने लगी और बेरोजगारी बढ़ने लगी। अराजकता, भ्रष्टाचार, मानवीय मूल्यों का ह्रास से उत्पन्न असंतोष, विद्रोह, निराशा, अस्वीकृति आदि प्रवृत्तियाँ साठोत्तरी हिंदी साहित्य में मुखरित होने लगीं।इस काल में साहित्यिक आन्दोलन के कई नाम सामने आए जिसमें अकविता, अकहानी, सचेतन कहानी प्रमुख हैं।

नई कविता आन्दोलन के बाद अकविता को व्यापक स्वीकृति मिली। अकविता अस्वीकृति की कविता है। गिरिजाकुमार माथुर ने अकविता की विशेषता को दर्शाते हुए लिखा है - "यह अस्वीकृति एक ओर स्त्री-पुरुष के दैहिक संबंध, आपसी अंतरंग आचरण और सेक्स संबंधी नैतिक मूल्य के खोखलेपन पर आक्रमण के रूप में आयी है, जिसमें यौन-शब्दावली द्वारा नग्नता भी प्रदर्शित हुई है। दूसरी ओर सामाजिक-राजनीतिक विकृतियों और सार्वजनिक जीवन में व्याप्त पाखंड, बेईमानी, मुखौटे, भ्रष्ट आचरण का पर्दाफाश करते हुए तीखे व्यंग्य के रूप में प्रकट हुआ है। दोनों ही में 'व्यवस्था' के वर्तमान रूप से असहमति एवं विरोध रहा है। दोनों ही में बेझिझक

बात कहने का खुलापन है। लेकिन पहली प्रवृत्ति में एक निषेध है, दूसरी में नैतिक, सामाजिक प्रतिबद्धता है। व्यवस्था की विकृतियों या विरोधाभासों से पीड़ित आदमी के त्रास को वाणी देती इन रचनाओं को मैं सामाजिक या नवप्रगतिशील कविता कहना उचित समझता हूँ।" (डॉ. अमरनाथ - हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली)

बोध प्रश्न –

- साठोत्तरी साहित्य की शुरुआत कब हुई ?

इस काव्यान्दोलन के रचनाकारों में प्रमुख हैं - श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, गंगाप्रसाद विमल, श्रीराम वर्मा, सौमित्र मोहन, सुदामा प्रसाद पांडेय 'धूमिल', राजकुमार कुम्भज, राजकमल चौधरी, चन्द्रकान्त देवताले, लीलाधर जगूड़ी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, 'मुक्तिबोध', विजय देवनारायण साही, प्रयाग शुक्ल, मलयज, केदारनाथ सिंह।

अकहानी आन्दोलन, नई कहानी आन्दोलन की कई मान्यताओं से असहमति का आन्दोलन है। इस कहानी आन्दोलन पर अस्तित्ववादी विचार-दर्शन का प्रभाव था।यह आन्दोलन किसी तरह की मूल्य-स्थापना को अस्वीकार कर विकसित हुआ। आजादी के बाद के भारत में पुराने मूल्यों का ह्रास, आजाद भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों से निराशा और मोहभंग की स्थिति से क्षुब्ध एवं निराश मानसिकता को अकहानी आन्दोलन अभिव्यक्त करता है। यह आन्दोलन आजादी के बाद के मनुष्य की पीड़ा, हताशा, निराशा, घुटन, परेशानी, संत्रास, कुंठा, व्यर्थता-बोध, अजनबीपन, नगण्यता-बोध आदि का यथार्थ चित्रण करता है। इस आन्दोलन से संबंधित लेखकों में प्रमुख हैं - जगदीश चतुर्वेदी, श्रीकांत वर्मा, दूधनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल, महेन्द्र भल्ला, मुद्राराक्षस, गंगाप्रसाद विमल, रवीन्द्र कालिया।

नयी कहानी, अकहानी की कथा-दृष्टि से अलगाव, सचेतन कहानी आन्दोलन की भूमि तय करता है। इस आन्दोलन को दिशा देने में डॉ. महीप सिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह कहानी सक्रिय भाव-बोध की कहानी है। इस आन्दोलन ने पाश्चात्य भाव-बोध, जीवन-मूल्य, अकेलापन, कुण्ठा, निराशा, अनास्था आदि के बरक्स भारतीय संदर्भ एवं स्थितियों के अनुरूप कहानी-लेखन पर बल दिया।सचेतन कहानी आन्दोलन को दिशा देने वाले प्रमुख कहानीकारों में महीप सिंह, मनहर चौहान, कुलदीप बग्गा, नरेन्द्र कोहली, वेदराही, मधुकर सिंह, हिमांशु जोशी, श्रवण कुमार, योगेश गुप्त, हेतु भारद्वाज, रामदरश मिश्र एवं जगदीश चतुर्वेदी शामिल हैं।

विगत दो-तीन दशकों से हिंदी कहानी परिवर्तन के दौर से गुजरती रही है। यह परिवर्तित युग-परिवेश का परिणाम है। आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण का तीव्र प्रसार,

सांप्रदायिकता का नवउभार तथा व्यक्तिवादिता के चरम उफान ने हिंदी कहानी को कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर प्रभावित किया है।

कहानी -	लेखक
पीली छतरी वाली लड़की-	उदयप्रकाश
पापा का चेहरा -	मो. आरिफ
जलडमरूमध्य -	अखिलेश
अतिथि देवो भव -	अब्दुल बिस्मिल्लाह

स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श की सशक्त उपस्थिति वर्तमान कहानी में दिखाई दे रही है। स्त्री-विमर्श की दृष्टि से अल्पना मिश्र, मनीषा कुलश्रेष्ठ, जयश्री राय, नीलाक्षी सिंह, प्रत्यक्षा आदि कहानीकार तथा दलित-विमर्श की दृष्टि से अजय नावरिया, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, कँवल भारती आदि उल्लेखनीय हैं। दलित-लेखन में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'शवयात्रा' एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में इस तथ्य को उभारा गया है कि सवर्ण जातियों और दलितों के बीच ही नहीं, दलित जातियों के बीच भी भेदभाव मौजूद है।

शिल्प के धरातल पर वर्तमान कहानी में कई नए प्रयोग दिखाई देते हैं। फंतासी, किस्सागोई, आत्मकथा, संस्मरण, रिपोर्ताज, व्यंग्य आदि कई कथा-युक्तियों का प्रयोग वर्तमान कहानी में हो रहा है।

बोध प्रश्न –

- साठोत्तरी हिंदी साहित्यकारों के नाम बताइए.

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास

प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल'का प्रकाशन एक क्रांतिकारी घटना है क्योंकि यहीं से एक नई व मौलिक प्रवृत्ति 'आंचलिक उपन्यास'की शुरुआत हुई। आंचलिक उपन्यास अपनी संरचना में अन्य उपन्यासों से काफी अलग होता है। इसमें कोई भी पात्र नायक नहीं होता बल्कि 'अंचल' ही नायक होता है। इसका उद्देश्य न तो किसी विचार धारा की स्थापना करना होता है और नही समस्याओं के समाधान की प्रस्तुति करना। इसका उद्देश्य होता है अंचल का बहु आयामी व जीवंत चित्र प्रस्तुत कर देना। इसमें अंचल की देशज भाषा का अत्यधिक प्रयोग होता है जिसके कारण कभी-कभी अन्य क्षेत्रों के लोगों के लिए इसे समझना कठिन हो जाता है। 1950 ई. के बाद आंचलिक उपन्यासों का तेजी से प्रसार होने के पीछे कुछ निश्चित सामाजिक-आर्थिक कारण काम कर रहे थे। आज़ादी के तुरंत बाद लोकतांत्रिक प्रणाली की शुरुआत हुई धीरे-धीरे राजनीति में गाँवों की भूमिका केन्द्रीय होती जाए। इस कारण ग्रामीण जीवन की ओर राजनेताओं और मीडिया के साथ-साथ बुद्धिजीवियों व साहित्यकारों का भी ध्यान गया। तीव्र शहरीकरण के कारण बहुत बड़े पैमाने पर ग्रामीण

जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन हुआ। ये लोग शहर के जटिल ढाँचे में रहते तो थे किन्तु इनके संस्कार इन्हें ग्रामीण जीवन की सरलता की ओर खींचते थे। ग्रामीण जीवन के प्रति 'नोस्टाल्जिक' होने के कारण ऐसे लोगों ने आंचलिक उपन्यासों की ओर रुझान प्रदर्शित किया। हिंदी के प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास इस प्रकार हैं-

फणीश्वरनाथ रेणु -	मैला आँचल, परती परिकथा
राही मासूम रजा -	आधा गाँव
उदयशंकर भट्ट -	सागर, लहरें और मनुष्य
रामदरश मिश्र -	जल टूटता हुआ

बोध प्रश्न –

- पाँच स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों के नाम बताइए .

ऐतिहासिक पौराणिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यास प्रेमचंद पूर्व युग में भी थे किन्तु उनमें इतिहास बोध कमज़ोर किस्म का था। आज़ादी के बाद कुछ उपन्यासकारों ने अंग्रेज़ों के साम्राज्यवादी इतिहास बोध को खारिज करते हुए नई इतिहास दृष्टि के साथ कुछ उपन्यास लिखे जो इस परम्परा में शामिल हैं। इनका एक उद्देश्य यह भी था कि इतिहास व पुराणों के कुछ प्रसंगों के माध्यम से वर्तमान समाज को प्रेरणा व ऊर्जा दे सकें। ऐसे मुख्य उपन्यास हैं

भगवतीचरण वर्मा -	चित्रलेखा
चतुरसेन शास्त्री -	वैशाली की नगरवधू

नया उपन्यास

नए उपन्यास को कुछ वर्गों में बाँटकर विश्लेषण किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं-

1. आधुनिक भावबोध की धारा/महानगरीय उपन्यास की धारा: छठे दशक में कुछ उपन्यासकारों ने नगरीय जीवन को केन्द्र बनाते हुए उपन्यास लिखे। महानगरीय उपन्यासों के लेखक वे व्यक्ति हैं जो महानगरीय जीवन शैली में रच बस गए हैं और महानगरीय तनावों (जैसे अकेलेपन) इत्यादि से निरंतर जूझ रहे हैं। मोहन राकेश का प्रसिद्ध उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है। निर्मल वर्मा का दिल्ली पर आधारित उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' शहरी जीवन में व्याप्त विवाहेतर संबंधों की सूक्ष्म पड़ताल करता है।

2. यौन चेतना के उपन्यास: महानगरीय उपन्यासों में एक ऐसी धारा विकसित हुई जिसमें यौन जीवन के पक्षों को मनोवैज्ञानिक आयाम से जोड़कर प्रस्तुत किया गया। यौन चेतना के प्रसिद्ध उपन्यास इस प्रकार हैं-

राजकमल चौधरी -	मछली मरी हुई
कृष्णा सोबती -	सूरजमुखी अँधेरे के
मृदुला गर्ग -	चितकोबरा

3. महिला लेखन के उपन्यास: महिला लेखन की धारा का संबंध आधुनिक काल की स्थितियों और नारीवादी विचारधारा से है। स्त्रियों की आत्मनिर्भरता जैसे-जैसे बढ़ती गई, वैसे-वैसे विवाह व परिवार के सामाजिक नियंत्रण कमज़ोर होते गए। उन्होंने इन संरचनाओं के भीतर अपने स्वत्व की मांग उठाई किन्तु यह उपलब्धि इतनी सरल नहीं थी। सामान्य पुरुष इस बदलते हुए शक्ति संतुलन को स्वीकार नहीं कर पा रहा था, जिसका परिणाम था- नारी-पुरुष संबंधों में तनाव। इसके अतिरिक्त, कामकाजी महिलाओं ने देखा कि हर स्तर पर पुरुष वर्ग उनके शोषण का प्रयास करता है। इसलिए कार्यालय में होने वाला यौन शोषण व मानसिक तनाव भी इन उपन्यासों का हिस्सा बन गया। नारीवादी विचारधारा के इस विचार के प्रति इस धारा में सहमति दिखती है कि नारी की समस्याओं को प्रामाणिक रूप से नारी ही समझ सकती है क्योंकि प्रामाणिक साहित्य 'संवेदना' से नहीं, 'स्वयंवेदना से लिखा जाता है। इस धारा के प्रमुख उपन्यास इस प्रकार हैं-

प्रभा खेतान -	छिन्नमस्ता
कृष्णा सोबती -	मित्रो मरजानी
मन्नू भण्डारी -	आपका बंटी

बोध प्रश्न –

- यौन चेतना पर आधारित उपन्यासों के नाम बताइए.
- आधुनिक भावबोध की धारा पर आधारित उपन्यासों के नाम बताइए.

समकालीन उपन्यास

1980 से शुरू हुई सूचना-क्रांति से समाज में व्यापक बदलाव होने शुरू हुए, जिसे 1991 से आरंभ हुई आर्थिक उदारीकरण की नीति और परिणामस्वरूप भूमंडलीकरण के तीव्र प्रभावों ने और गति दी। अत: अब 1980 के बाद के उपन्यासों को ही 'समकालीन उपन्यास' की संज्ञा देना उचित जान पड़ता है।

समकालीन हिंदी उपन्यासों को निम्नलिखित विषयों में बाँटकर समझा जा सकता है-

सूचना क्रांति से संबद्ध उपन्यास

निर्मल वर्मा -	रात का रिपोर्टर
पंकज बिष्ट -	लेकिन दरवाजा

उत्तर आधुनिकता से संबद्ध उपन्यास

हिंदी के सर्वाधिक चर्चित उत्तरआधुनिकतावादी उपन्यासकार मनोहर श्याम जोशी हैं। 'हरिया हरक्यूलीज़ की हैरानी', 'हमजाद', 'कसप', 'क्याप', 'मैं कौन हूँ' आदि मनोहर श्याम जोशी के प्रमुख उपन्यास हैं जो उत्तर आधुनिक स्थितियों को प्रस्तुत करते हैं। विनोद कुमार शुक्ल के 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' और 'खिलेगा तो देखेंगे' तथा सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे

चाँद चाहिए' और 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' भी महत्त्वपूर्ण उत्तरआधुनिकतावादी उपन्यास माने गए हैं।

भूमंडलीकरण से संबद्ध उपन्यास

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने समकालीन हिंदी उपन्यास को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। स्वयं प्रकाश के उपन्यास 'ईंधन'(2004), काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'रेहन पर रग्घू'(2008) और 'काशी का अस्सी'(2002), अलका सरावगी के उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद'(2008), राजू शर्मा के उपन्यास 'विसर्जन'(2009), संजीव के उपन्यास 'रह गयी दिशाएँ इसी पार'(2011) आदि कई उपन्यासों में हम इस प्रतिरोध को देख सकते हैं।

सांप्रदायिकता से संबद्ध उपन्यास

दूधनाथ सिंह का 'आखिरी कलाम'(2003) हिन्दू फासीवादी खतरे की पृष्ठभूमि में लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसकी कथा वस्तु धर्म, धर्मनिरपेक्षता, जनतंत्र, मीडिया, मुसलमान, वामपन्थ से लेकर लोहियावादी राजनीति तक विस्तृत है। तेजिन्दर ने अपने उपन्यास 'काला पादरी' (2002) में सांप्रदायिकता और धार्मिक कट्टरता के इस विमर्श को ईसाईयत तक विस्तृत किया है।

दलित-विमर्श से संबद्ध उपन्यास

दलितवादी विमर्श के अनुसार दलित लेखक ही दलित-जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति कर सकता है। ध्यातव्य है कि दलित विमर्श सहानुभूति के स्थान पर स्वानुभूति को प्रश्रय देता है। जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व', हरनोट का 'हिडिम्ब' आदि महत्त्वपूर्ण दलित हिंदी उपन्यास है।

आदिवासी-विमर्श से संबद्ध उपन्यास

हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर', रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'गायब होता देश', राकेश कुमार सिंह का ' जो इतिहास में नहीं है', पुन्नी सिंह का 'सहराना' श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस पूलते है' आदि आदिवासी- विमर्श से संबद्ध महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।

स्त्री-विमर्श से संबद्ध उपन्यास

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में 'कठ गुलाब', 'चित कोबरा' एवं 'मिलजुल मन' (2009) में स्त्री-मुक्ति चेतना का रचनात्मक अंकन हुआ है। प्रभा खेतान का उपन्यास 'छिन्नमस्ता'नारी जीवन की छुपी सच्चाईयों का उद्घाटन करता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों 'इदन्नम', 'अल्मा कबूतरी', 'चा' आदि में स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को उठाया है। चित्रा मुद्गल का 'आंवा', मंजुल भगत का 'अनारो', नासिरा शर्मा का 'शाल्मली', गीतांजलि श्री का 'तिरोहित' आदि उपन्यासों में अपने-अपने ढंग से स्त्री-मुक्ति चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

बोध प्रश्न –

- सूचना क्रांति की शुरुआत कब हुई ?
- भुमंदालिकरण से संबंधित उपन्यासों के नाम बताइए।
- प्रथम दलित उपन्यास कौन सा है ?

स्वातंत्र्योत्तर नाटक

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हिंदी नाटक साहित्य में कई नई प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं जो इस प्रकार हैं-

1. आधुनिकता बोध एवं विसंगति बोध: इन्हें 'नवलेखन' के दौर के नाटक या 'नया नाटक' नाम से भी जाना जाता है। जिस प्रकार की प्रवृत्तियाँ 'नई कहानी', 'नई कविता' में मिलती हैं, वैसी ही 'नये नाटक' में।

आधुनिकता बोध को स्थापित करने की दृष्टि से धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' एवं मोहन राकेश के 'आधे-अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन' व 'लहरों के राजहंस' उल्लेखनीय हैं। धर्मवीर भारती कृत 'अंधा युग' में महाभारत युद्ध के उपरान्त की जिन परिस्थितियों एवं घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है, वे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की घटनाओं का प्रतीकात्मक चित्रण करती हैं।

मोहन राकेश ने मूलत: आधुनिक मानव के द्वन्द्व और तनाव को अपने नाटकों का विषय बनाया है। रंगमंच के स्तर पर मोहन राकेश प्रसाद की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं। इनकी भाषा चरम रचनात्मकता तथा नाटकीय संभावनाओं से युक्त है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक सत्ता और सर्जनात्मकता के द्वन्द्व एवं जटिल सम्बन्धों को व्यक्त करता है। 'लहरों के राजहंस'में राग-विराग, मोह-त्याग, सांसारिकता-आध्यात्मिकता के द्वन्द्व को सफलतापूर्वक उभारा गया है। 'आधे अधूरे' यथार्थ की सीधी अभिव्यक्ति करने वाला एक आडम्बरहीन नाटक है जो आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के टूटने-बिखरने की कथा है। लक्ष्मीनारायण लाल इसी समय के एक अन्य महत्वपूर्ण नाटककार हैं जिन्होंने 'मादा कैक्टस' नाटक में कला और प्रणय के अंतर्विरोध को प्रस्तुत किया है। मोहन राकेश की परम्परा में ही अन्य एक नाम है- 'सुरेन्द्र वर्मा'। इन्होंने खासतौर पर आधुनिक जीवन के तनाव और तल्खी को व्यक्त करने की कोशिश की है। 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'आठवाँ सर्ग' इनके प्रमुख नाटक हैं। इस काल में भ्रष्टाचार, पीढ़ियों के संघर्ष, संबंधों की अर्थहीनता, समसामयिक व्यंग्य, राजनीतिक संदर्भ आदि विषयों पर नाटक लिखे गये।

2. पाश्चात्य शिल्प: इस समय पाश्चात्य रंगशिल्प पर आधारित कई नाटक आए। इनमें सूत्रधार, कथाविहीनता, नायकहीनता का प्रचलन बढ़ा। हिंदी नाटक को नवीनता की ओर

उन्मुख करने में रमेश बक्षी का योगदान महत्वपूर्ण रहा। इन्होंने नाटकों में भाषा, परिवेश व संदर्भ में 'बोल्डनेस' का मुहावरा चलाया।

सत्तर के दशक तक हिंदी नाटक की रंगमंचीयता काफी खुली और कथ्य के स्तर पर उसमें विस्तार एवं सूक्ष्मता आ गई। सत्तर के बाद की नाट्य रचना अपने समय के जटिल यथार्थ से टकराती है एवं रंगचेतना की भी पूरी रक्षा करती है। इन नाटकों की अंतर्वस्तु काफी व्यापक है। प्रमुख नाटककार हैं -

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - 'बकरी'

ज्ञानदेव अग्निहोत्री - 'शुतुरमुर्ग'

भीष्म साहनी - 'कबिरा खड़ा बाजार में', 'मुआवजे'

इसके साथ ही कई महत्वपूर्ण निर्देशकों ने भी अपनी कल्पना से नाटकों को समृद्ध किया। इनमें प्रमुख हैं - इब्राहिम अल्काज़ी, श्यामानंद जालान, ब.व. कांरत, सत्यदेव दुबे, हबीब तनवीर, सत्यव्रत सिन्हा आदि।

समग्रत: हिंदी नाटक के क्षेत्र में स्वातंत्र्योत्तर-काल भारतेंदु-काल के बाद सर्वाधिक सक्रियता का काल रहा है। इस दौर में कथ्य और शिल्प के स्तर पर तीव्र परिवर्तनों ने हिंदी नाटक को एक नयी दिशा दी। इलैक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों के दबाव के बावजूद ये परिवर्तन हिंदी नाटक के विकास के प्रति आश्वस्त करते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना

'नई समीक्षा' अंग्रेज़ी शब्द 'New Criticism' का अनुवाद है और यह 20वीं शताब्दी के आरंभ में अमेरिका व यूरोप में विकसित हुए नई समीक्षा (New Criticism) आंदोलन से प्रभावित भी है। हिंदी में नयी समीक्षा आंदोलन मुख्यत: प्रगतिवादी व स्वच्छंदतावादी दृष्टियों के विरुद्ध विकसित हुआ। यह प्रगतिवाद के विरुद्ध इसलिये है क्योंकि उसकी विचारधारात्मक यांत्रिकता के स्थान पर इसमें व्यक्ति की स्वानुभूति और भोगे हुए यथार्थ तथा भाषिक संरचना को महत्त्व दिया जाता है। यह स्वच्छंदतावाद के विरुद्ध इसलिए है क्योंकि इसमें जीवन की व्याख्या रोमानियत से नहीं बल्कि गैर रोमांटिक व बौद्धिक मानसिकता से की जाती है। नई समीक्षा आंदोलन के विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समीक्षक अज्ञेय हैं जिनकी कई पुस्तकों जैसे 'त्रिशंकु', 'भवंती', 'अंतरा' और 'आधुनिक साहित्य' में यह पद्धति दिखाई देती है। इसी समय इलाहाबाद में 'परिमल' नामक संस्था सक्रिय हुई जिसके कई सदस्य जैसे लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, रघुवंश तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी इस समीक्षा धारा के विकास में सक्रिय हुए। 'परिमल' समूह से बाहर के जो समीक्षक इसमें सक्रिय रहे, वे हैं- निर्मल वर्मा तथा रमेश चंद्र शाह। इन आलोचकों की कुछ प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार हैं-

लक्ष्मीकांत वर्मा - 'नयी कविता के प्रतिमान'

धर्मवीर भारती - 'मानव मूल्य और साहित्य'

बोध प्रश्न –

- मोहन राकेश की परंपरा में और अन्य एक नाम किस का है ?
- बकरी किसकी रचना है ?

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी निबंध

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद व्यंग्य निबंध के नए युग की शुरुआत हुई। हिंदी व्यंग्य लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, प्रभाकर माचवे, गोपाल प्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं इनके निबंधों में व्यंग्य-विनोद का भाव दिखाई पड़ता है। डॉ. नामवर सिंह का 'बकलम खुद' इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है।

ललित निबंध

ललित निबन्धों में निबंधकार अपने भावात्मक व्यक्तित्व को इस रूप में प्रस्तुत करना चाहता है कि वह सरस, अनुभूति-जन्य, आत्मीय और रोचक लगे। इसमें बल सरस शैली पर दिया जाता है। इसकी भाषा में शुष्कता नहीं बल्कि कल्पनाशीलता, सहजता व सरसता होती है। ललित निबन्धकार गहरे विश्लेषण, उबाऊ वर्णन, जटिल वाक्य रचना से बचता है। ललित निबन्धों में निबन्धकार के भावात्मक व्यक्तित्व की छाप रहती है। सामाजिक यथार्थ का सजीव रेखांकन करते हैं। ये व्यंग्य को साधन मानते हैं, साध्य तो स्वस्थ समाज का नव निर्माण ही है। हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय प्रसिद्ध ललित निबंधकार हैं।

बोध प्रश्न –

- ललित निबंध में निबंधकार किसकी छाप छोड़ते हैं ?

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गद्य की अन्य विधाएँ

प्रतिष्ठित कथाकार तथा नाटककार उपेन्द्रनाथ अश्क ने महत्त्वपूर्ण रेखाचित्र लिखें - 'रेखाएँ और चित्र' (1955), 'मंटो मेरा दुश्मन' (1956) और 'ज्यादा अपनी कम परायी' (1959) उनके महत्त्वपूर्ण रेखाचित्र संकलन हैं। विष्णु प्रभाकर का रेखाचित्र संग्रह 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ' (1965) है जिसमें सामाजिक स्थितियों तथा उनके मूल में छिपी विसंगतियों का सटीक विश्लेषण किया गया है।

हिंदी के प्रख्यात रसवादी आलोचक एवं निबंधकार डॉ. नगेन्द्र ने भी कुछ भावभीने स्मृति चित्र लिखे हैं। 'चेतना के बिंब' (1967) में संकलित ऐसी रचनाओं में विश्लेषण की गंभीरता तथा तटस्थता पर अधिक बल रहा है। जगदीशचंद्र माथुर की कृतियों 'दस तस्वीरें' में मानव मन के भीतरी भावों को प्रांजल भाषा शैली में अभिव्यक्त किया गया है।

बोध प्रश्न -

- हिंदी के प्रख्यात रसवादी आलोचक एवं निबंधकार कौन है ?

संस्मरण साहित्य को अलंकृत करने वाले कवियों में माखन लाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर तथा हरिवंश राय बच्चन उल्लेखनीय हैं। माखनलाल चतुर्वेदी ने 'समय के पाँव' (1962) में अनेक भावपूर्ण संस्मरण लिखे हैं। दिनकर ने 'लोकदेव नेहरू' (1965) में नेहरू से संबंधित अपने संस्मरण लिखे हैं। दिनकर की पारदर्शी भाषा में यह संस्मरण नेहरू की स्मृतियों के साथ-साथ अपने युग का इतिहास भी बन गया है। हरिवंश राय बच्चन की उल्लेखनीय कृति है- 'नए पुराने झरोखे' (1962)। परवर्ती समय में, कृष्णा सोबती की 'हम हशमत' (1977), भारत भूषण अग्रवाल की 'लीक-अलीक' (1980), रामकुमार वर्मा की 'संस्मरणों के सुमन' (1982), विष्णु प्रभाकर की 'मेरे अग्रज मेरे मीत' (1983), फणीश्वरनाथ रेणु की 'वन तुलसी की गंध' (1984) हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक संस्मरण कृतियाँ हैं।

समकालीन संस्मरणों में अज्ञेय की 'स्मृतियों के गलियारों से' एक ऐसी संस्मरण पुस्तक है जो अज्ञेय के व्यक्तित्व को भी निकट से जानने का अवसर प्रदान करती है। रवीन्द्र कालिया का संस्मरण 'गालिब छुटी शराब' अपनी रोचकता के कारण बहुपठित संस्मरण है। 'वे देवता नहीं हैं' हिंदी के महत्त्वपूर्ण कथाकार राजेन्द्र यादव की संस्मरण-पुस्तक है,कांति कुमार जैन समकालीन हिंदी साहित्य के सर्वाधिक चर्चित एवं सक्रिय संस्मरणकार रहे हैं। उन पर अश्लीलता के भी आरोप लगे। लौटकर आना नहीं होगा, तुम्हारा परसाई, जो कहूँगा सच कहूँगा, बैकुंठपुर में बचपन आदि उनके प्रमुख संस्मरण-संग्रह हैं। सुमन केशरी द्वारा संपादित 'जे.एन.यू. में नामवर सिंह' संस्मरण की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

हिंदी के वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी का संस्मरण 'नंगातलाई का गाँव' बहुचर्चित संस्मरण है और यह गद्य की नई भंगिमा प्रस्तुत करता है। अन्य समकालीन संस्मरणों में पद्मा सचदेव का 'अमराई', मनोहर श्याम जोशी का 'लखनऊ मेरा लखनऊ', अजित कुमार का 'अंधेरे में जुगनू', ममता कालिया का 'कितने शहरों में कितनी बार', शेखर जोशी का 'स्मृति में रहें वे' आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

विषय वैविध्य, रचना शिल्प तथा परिमाण- तीनों दृष्टियों से इस युग के यात्रा-वृत्त अपने पूर्ववर्ती युगों से अधिक संपन्न हैं।जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखित 'आँखों देखा रूस' (1953), यशपाल द्वारा लिखित 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' (1953), बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'रूस की साहित्यिक यात्रा' (1962) आदि अत्यंत उल्लेखनीय हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'पैरों में पंख बांधकर' तथा 'उड़ते चलो उड़ते चलो' नामक रचनाओं में डायरी शैली के माध्यम

से इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, स्विट्ज़रलैंड, फ्राँस, इटली आदि देशों के ग्रामीण इलाकों एवं अन्य दर्शनीय स्थलों के विस्तृत विवरण प्रस्तुत किए हैं।

अज्ञेय ने 'एक बूंद सहसा उछली' (1960) में रोम, पेरिस, बर्लिन आदि स्थलों का अत्यंत सृजनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने वेल्स की काव्यगायन परंपरा एवं राष्ट्रीय नाट्योत्सव आदि का रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक वर्णन प्रस्तुत किया है। निर्मल वर्मा ने 'चीड़ों पर चांदनी' (1964) में अपने यूरोप प्रवास की लंबी अवधि में समय-समय पर मन में संजोये गए जिन अनुभव खंडों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

विदेशी यात्राओं से संबद्ध यात्रा वृत्तांतों के अतिरिक्त स्वदेश यात्रा संबंधी वृत्तांत भी हिंदी में प्रचुर मात्रा में लिखे गए हैं। राहुल सांकृत्यायन का 'किन्नर देश में', अज्ञेय का 'अरे यायावर रहेगा याद' (1953) आदि ऐसे यात्रा वृत्तांत हैं जो भारत की नैसर्गिक प्राकृतिक सुषमा के चित्रण के साथ-साथ भारत के विविध प्रदेशों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं।

समकालीन समय में हिंदी का यात्रा-साहित्य और समृद्ध हुआ है। समकालीन यात्रा-वृत्तांत साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृतियों में 'कश्मीर की रात'-कमलेश्वर; 'दरख्तों के पार शाम'-गोविन्द मिश्र; 'हमसफर मिलते रहे'-विष्णु प्रभाकर; 'सफरी झोले में'-अजित कुमार, 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा'-अमृतलाल बेगड़; 'एक बार आयोबर'-मंगलेश डबराल, 'आँखों देखा पाकिस्तान'-कमलेश्वर; 'वह भी कोई देश है महराज'-अनिल कुमार यादव, 'आजादी मेरा ब्रांड'-अनुराधा बेनीबाल आदि शामिल हैं। इन कृतियों के आधार पर हम कह सकते हैं कि यात्रा-वृत्तान्त में वस्तु वर्णन, दृश्यांकन, बिम्ब-विधान और मन: स्थितियों के सूक्ष्म रेखांकन की क्षमता बढ़ गई है।

बोध प्रश्न –

- गद्य की कौन-कौन सी विधाएँ हैं ?
- प्रमुख यात्रा विदों के नाम बताइए।

14.4 पाठ सार

स्वाधीनता के बाद का हिंदी साहित्य, मध्यवर्ग से प्रारंभ में अत्यधिक जुड़ा रहा। विभिन्न सामाजिक आंदोलनों ने किसानों, भूमिहीन मजदूरों और युवाओं को प्रभावित किया। इसका व्यापक असर तत्कालीन रचनाकारों के मानस पर पड़ा। उन्होंने आर्थिक और सामाजिक सवालों को साहित्य के प्राथमिक विमर्श में शामिल किया। आजादी के बाद का आधुनिक हिंदी साहित्य बहुलतावादी यथार्थ के निकट गया। व्यक्ति, समाज और व्यवस्था से टकराते हुए लोकतान्त्रिक सामाजिक समावेशन को लेकर इस दौर का साहित्य प्रस्फुटित हुआ।

14.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं –

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बदली हुई जनता की मानसिकता के अनुरूप हिंदी साहित्य में नवलेखन का सूत्रपात हुआ।

2. नई कविता और नई कहानी ने साहित्य में 'लघु मानव' के रूप में आधुनिक मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित किया।

3. साथ के दशक तक आते-आते स्वतंत्रता प्राप्ति का उल्लास स्वतंत्र भारत के संघर्षों के परिप्रेक्ष्य में हलका पड़ने लगा और राम राज्य के सपने के टूटने से मोहभंग की स्थितियां पैदा होने लगी।

4. सामजिक, राजनीतिक क्षेत्र के मोहभंग ने साठोत्तरी हिंदी साहित्य में नगरीय जीवन के असंतोष और अकेले पक्ष को प्रश्रय दीया। वहीँ दूसरी ओर आम आदमी की संघर्ष चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान की।

5. जनसंचार माध्यमों के व्यापक प्रसार के कारण साहित्य की विविध विधाओं को विकसित होने का भरपूर अवसर मिला।

14.6 शब्द-संपदा

1. आधुनिकता बोध : पूंजीवादी विकास से पूर्व के विचारों, मान्यताओं से भिन्न जीवनमूल्य जो आधुनिक जीवन से उत्पन्न हुए थे।

2. व्यक्तिवाद: व्यक्तिवाद समाज की तुलना में व्यक्ति को महत्त्व देता है। व्यक्तिवाद व्यक्ति के जीवन में राज्य और समाज के हस्तक्षेप का विरोध करता है।

3. फंतासी: फंतासी एक स्वप्न है जो चेतन की अनुभूतियों को पूरा करता है। इसका प्रयोग नयी कविता में हुआ है।

4. अस्तित्ववाद : सार्त्र द्वारा प्रतिपादित दर्शन जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्य के अनुभव महत्त्वपूर्ण होते हैं और वह अपने कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है।

14.7 परिक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. हिंदी कहानी के विकास में नई कहानी की भूमिका और विशिष्टता पर प्रकाश डाले।
2. नई कविता की प्रवृतियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
3. स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक हिंदी साहित्य पर संक्षिप्त विचार प्रस्तुत करें।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. साठोत्तरी हिंदी साहित्य की प्रवृतियों पर चर्चा करें।

2 . नई कविता में 'तार सप्तक' की भूमिका पर प्रकाश डालें।

खंड (स)

I. बहु विकल्पीय प्रश्न

1. 'दूसरा सप्तक' का समय - ( )

(अ) 1952 (आ) 1951 (इ) 1950 (ई) 1954

2. नई कविता की विशेषता नहीं हैं। ( )

(अ) आत्मानुभूति (आ) प्रयोगधर्मिता

(इ) बौद्धिकता (ई) लोक जीवन से अलगाव

3. काव्य आंदोलन के प्रमुख कवि नहीं है। ( )

(अ) अज्ञेय (आ) शमशेर बहादुर सिंह

(इ) केशवचंद्र (ई) धर्मवीर भारती

4. नई कहानी का आरंभ - ( )

(अ) 1955 (आ) 1954

(इ) 1953 (ई) 1950

5. साठोत्तरी हिंदी साहित्य का आरंभ - ( )

(अ) 1961 (आ) 1962

(इ) 1960 (ई)1964

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. 'चित्रलेखा'____________का उपन्यास है।

2. 'वैशाली की नगरवधू' ____________ विधा की रचना है।

3. 'चितकोबरा'____________की रचान है।

4. 'सूरजमुखी अँधेरे के____________की रचना है

5. 'मछली मरी हुई'____________की रचना है।

III. सुमेल कीजिए

1. उदयप्रकाश (अ) अतिथि देवों भवः

2. मो. आरिफ (आ) जलडमरू मध्य

3. अखिलेश (इ) पाप का चहेरा

4. अब्दुल बिस्मिल्लाह (ई) पीली छतरी वाली लड़की

14.8 पठनीय पुस्तकें

1. विश्वनाथ त्रिपाठी - हिंदी साहित्य का सरल इतिहास
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास
3. बच्चन सिंह - हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास
4. नामवर सिंह - आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
5. नामवर सिंह - कहानी : नई कहानी
6. लक्ष्मीकांत वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान
7. देवीशंकर अवस्थी - नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति
8. डॉ. अमरनाथ –हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली

इकाई-15 समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्श- 1

रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मूल पाठ : समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्श- 1
    15.3.1 स्त्री-विमर्श
    15.3.2 दलित-विमर्श
    15.3.3 आदिवासी-विमर्श
    15.3.4 अल्पसंख्यक-विमर्श
15.4 पाठ सार
15.5 पाठ की उपलब्धियाँ
15.6 शब्द-संपदा
15.7 परीक्षार्थ प्रश्न
15.8 पठनीय पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

समकालीनहिंदी साहित्य केविमर्शों को ऐतिहासिक विकास क्रम में हमहिंदी साहित्य के आरंभ से ही देख सकते हैं।हिंदी साहित्य का सिद्ध-साहित्य वर्णाश्रम और जाति व्यवस्था का मुखर विरोधी था। इस रूप में दलित चिंतन केप्रारंभिक सूत्र इससाहित्य के अंतर्गत देखे जा सकते हैं। सिध्द साहित्य में ही सिद्ध योगिनियोंकोसिध्दि के लिए अवसर प्राप्त हुआ था। इस रूप में पहली बार स्त्री स्वाधीन चिंतन और ज्ञानमार्ग की ओर अग्रसर हुई थी। भक्तिकालीन साहित्य में सामंतवाद को खुली चुनौती प्राप्त हुई। भक्तिकालीन साहित्य को आधुनिक विमर्शों की पृष्ठभूमि के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक काल में आधुनिकता और नवजागरण के फलस्वरूप समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े और वंचित तबकों के लिएमुक्ति की संभावनाएं बनी। आजादी के बाद लोकतंत्र और भारतीय संविधान ने सभी वर्गों के समावेशन से राष्ट्र निर्माण की संभावनाओं कोपल्लवित और पोषित किया।इसने समकालीन विमर्शों की धार को तेज किया।इन विमर्शों में स्त्री, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक-विमर्श प्रमुख हैं।

15.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई को पढ़कर आप -

- समकालीन हिंदी साहित्य के मुख्य विमर्शों कापरिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- स्त्री-विमर्श के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- दलित-विमर्श के संबंध में हिंदी में विभिन्न विधाओं में लेखन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- सभ्यता और विकास की दौड़ से महरूम आदिवासी वर्ग पर केंद्रित साहित्य से परिचित हो सकेंगे।

- हिंदी साहित्य में अल्पसंख्यक-विमर्श के मुद्दों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।

15.3 समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्श- 1

15.3.1 स्त्री-विमर्श

क) पृष्ठभूमि

स्त्रियों के शोषण, उनके प्रति भेदभाव और अमानवीय व्यवहार का लम्बा इतिहास रहा है। अधिकांश धर्मशास्त्रों में स्त्रियों के प्रति भेदभावपूर्ण मत तो प्रतिपादित किये ही गये साथ ही क़ानूनी रूप से भी स्त्रियों को लम्बे समय तक दोयम दर्जे का बनाकर रखा गया। शिक्षा का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, व्यवसाय, स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय के अधिकार सहित कई बुनियादी अधिकारों से स्त्रियों को विभिन्न देशों में लम्बे समय तक वंचित रखा गया। यहाँ तक कि आधुनिक और उदार विचारों के लिए जाने, जाने वाले लोकतांत्रिक राष्ट्रों में भी स्त्रियों को मताधिकार तक हासिल करने के लिए भी संघर्ष करना पड़ा और पुरुषों की तुलना में उन्हें यह अधिकार बहुत बाद में मिला।

समान मानवीय अधिकारों को हासिल करने के लिए स्त्रियों के आन्दोलन दुनियाभर के देशों में चले। इस तरह के आन्दोलन शुरूआती दौर में यूरोप और अमेरिका में हुए। फ्रांसिसी क्रान्ति के दौरान 1792 ई. में महिला समूहों ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांत के प्रति यह मांग की थी कि यह बिना किसी लैंगिक भेदभाव के लागू होने चाहिए। यह आन्दोलन भले ही बहुत सफल न रहा हो लेकिन स्त्री अधिकारों के मसले पर यह पहली मुक्कमल सामूहिक पहल थी। इसका स्वाभाविक रूप से बहुत अधिक महत्त्व है। 1848 ई. में न्यूयार्क में महिलाओं का एक सम्मलेन आयोजित किया गया। इस सम्मलेन में स्त्री स्वतंत्रता का एक घोषणापत्र जारी किया गया, जिसमें पूर्ण कानूनी समानता, समान शैक्षिक और व्यावसायिक अवसर, समान मजदूरी, मुआवज़ा और मताधिकार की मांग की गयी थी। इस सम्मलेन ने एक आन्दोलन का स्वरुप ग्रहण कर लिया और तीव्र गति से वह पूरे यूरोप में फ़ैल गया। धीरे-धीरे इस तरह की मांग पूरी दुनिया भर में उठने लगी। 1920 में अमेरिका में जब स्त्रियों को मतदान का अधिकार हासिल हुआ तो यह स्त्री आन्दोलन की वाकई एक बड़ी जीत थी। 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक आयोग का गठन किया, जिसका दायित्व दुनिया भर में स्त्रियों के लिए समान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व अन्य अधिकार उपलब्ध करवाना था।

बोध प्रश्न –

- सिद्ध साहित्य किस व्यवस्था का विरोध करता था ?
- स्त्री विमर्श की अवधारणा बताइए।

भारत में स्त्रियों की दशा बहुत ही बदतर रही है। धर्म-ग्रंथों के द्वारा प्रस्तावित और समाज में स्वीकृत नियमों के कारण स्त्रियाँ न सिर्फ बुनियादी अधिकारों से वंचित रहीं बल्कि सती प्रथा, बाल विवाह और पर्दा प्रथा जैसी भारी अमानवीय प्रताड़नाओं का भी उन्हें शिकार होना पड़ा। इसके अलावा विधवा पुनर्विवाह का निषेध, पुरुषों में बहुविवाह का प्रचलन और घरेलूहिंसा भारतीय महिलाओं के लिए आम बात है।

भारत में स्त्री अधिकारों के लिए प्रारंभिक आन्दोलनकर्त्ताओं में पंडिता रमाबाई और सावित्रीबाई फुले का नाम लिया जाता है। इन दोनों की ही सक्रियता का समय 19वीं सदी का उत्तरार्ध रहा है। पंडिता रमाबाई ने स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए हिन्दू धर्म के रूढ़िवादी संस्कारों पर चोट की और स्त्रियों की स्वाधीनता के लिए आवाज़ उठाई। सावित्रीबाई फुले ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण काम किया। अपने पति ज्योतिबा फुले के साथ मिलकर उन्होंने स्त्री शिक्षा को समर्पित देश का पहला विद्यालय स्थापित किया और तमाम सामाजिक विरोधों के बावजूद स्वयं उस विद्यालय में शिक्षिका के रूप में कार्य भी किया।

समय के साथ-साथ दुनिया भर में स्त्री-अधिकारों को लेकर सजगता में वृद्धि हुई और भारत में भी इस प्रसंग में चेतना का विकास हुआ। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान देश के आतंरिक हालातों को लेकर जो मंथन हुआ करता था, उसमें स्त्रियों की उन्नति के प्रश्न भी शामिल किये जाने लगे। स्वाधीनता आन्दोलन के अगुवा माने जाने वाले संगठन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और इस संगठन में नेतृत्वकारी भूमिका निभाने वाले नेता महात्मा गांधी ने इस विषय को गंभीरतापूर्वक अपनी चिंता में शामिल किया। देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में कई महिला कार्यकर्त्ताओं ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। भारतीय महिलाओं के हितों को सुनिश्चित करने वाला जो सबसे महत्त्वपूर्ण पड़ाव रहा वह देश की आज़ादी के बाद देश के अपने संविधान का लागू होना था। जिसके माध्यम से बहुत हद तक स्त्रियों के लिए समान राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और अन्य अधिकारों को सुनिश्चित करने वाले विधान स्थापित किये गये। संविधान के लागू होने के बाद से स्थितियाँक्रमश: सुधरी ज़रूर हैं, लेकिन आज भी इस तरह के संवैधानिक अधिकारों से स्त्रियों की एक बड़ी आबादी वंचित है और इसलिए यहाँ स्त्रीअधिकारों के आन्दोलनों की आवश्यकता लगातार बनी हुई है।

बोध प्रश्न –

- स्त्री विमर्श की शुरुआत कब और कहाँ से हुई ?

ख) साहित्य में समायोजन

लैंगिक भेदभाव का विरोध करनेवाली और स्त्री के लिए सभी मसलों पर समान अधिकारों को सुनिश्चित करवाने के लिए समर्पित वैचारिकी का किसी भी अन्य तरह की परिवर्तनकामी अथवा क्रान्तिकारी वैचारिकी की तरह साहित्य और कला के क्षेत्र में भी आगमन और समायोजन हुआ है। इस वैचारिकी से प्रेरित होकर दुनियाभर में सृजनात्मक और वैचारिक साहित्य-लेखन शुरू हुए। कई पुरुष साहित्यकारों ने भी ऐसी स्त्री संवेदी रचनाएँ लिखीं, जिसने स्त्रियों की मुक्तिकामी भावनाओं को स्वर दिया। इस तरह की रचनाओं का नि:संदेह अपना महत्त्व है और इसने स्त्री संवेदी चेतना के विस्तार में अपनी भूमिका निभाई है, इसके बावज़ूद भी इन्हें **'स्त्री- विमर्श'** के अन्तर्गत नहीं रखा जाता है। इसका कारण यह है कि 'स्त्री-विमर्श' स्त्री-अस्मिता से जुड़ा हुआ विमर्श है। अस्मितामूलक विमर्शों की यह अवधारणा रही है कि किसी अस्मिता के अन्तर्गत आने वाले लोग ही अस्मिता विमर्श के भागीदार हो सकते हैं। यह सहानुभूति में लिखे गये साहित्य के बनाम स्वानुभूति के साहित्य के बहस से भी जुड़ा हुआ है।

किसी अन्य अस्मितामूलक विमर्श की तरह स्त्री-विमर्श भी स्वानुभूत रचनाओं को ही प्रामाणिक मानता है।

'स्त्री-विमर्श' को इस तरह परिभाषित किया जा सकता है कि स्त्री लेखिकाओं के द्वारा, स्त्रियों के लिए भेदभाव से रहित और समान मानवीय अधिकारों को सुनिश्चित करने की भावना से प्रेरित होकर किये गये लेखन कार्य स्त्री-विमर्श के अन्तर्गत आते हैं।

स्त्री अधिकारों के लिए आंदोलन की शुरूआत मुख्यतः यूरोपीय देशों और अमेरिका में हुई थी इसलिए स्वाभाविक रूप से लेखन में स्त्री-विमर्श की जो गूँज शुरूआती दौर में पूरी दुनिया को सुनाई दी वह भी इन्हीं देशों से आयी। 1929 में प्रकाशित वर्जीनिया वूल्फ की किताब 'अ रूम ऑफ वन्स ओन' और 1949 में प्रकाशित सिमोन द बोउआ की'द सेकेंड सेक्स' सहित कई किताबों ने दुनिया भर का ध्यान खींचा और दुनिया भर के स्त्री साहित्यकारों को प्रभावित भी किया।

बोध प्रश्न –

- स्त्री अधिकारों पर आंदोलन कहाँ शुरू हुआ ?

ग) हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में हिंदी साहित्य लेखन के क्षेत्र में अस्मितामूलक विमर्शों की आहट सुनाई देने लगी थी। इन विमर्शों के भीतर पारंपरिक साहित्य के प्रति एक तरह के असंतोष का भाव था, यथास्थिति को लेकर एक तरह की बेचैनी थी। इस बात का पहले भी उल्लेख हो चुका है कि इन विमर्शों की केन्द्रीय मान्यता यह रही है कि किसी भी अस्मिता का वास्तविक विमर्श तभी शुरू हो सकता है जब इस विमर्श को खुद उस अस्मिता से जुड़े लोग चलाएँ। हिंदी साहित्य का स्त्री-विमर्श भी इसका अपवाद नहीं है।

स्त्री-विमर्श नामक शब्द का हिंदी आलोचना में प्रवेश भले ही बहुत बाद में हुआ हो लेकिन हिंदी साहित्य में क्षीण ही सही स्त्री-लेखन की एक पुरानी परंपरा रही है। स्त्री-लेखन में सायास या अनायास ही स्त्री मुक्ति चेतना को भी स्वर मिलता रहा है। भक्तिकाल में मीराबाई इसकी उदाहरण हैं। मीराबाई के जीवन ही नहीं रचनाओं में भी परंपरा और पितृसत्ता के प्रति विद्रोह लक्षित किया जाता है। आधुनिक साहित्य में बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा जैसी रचनाकार हिंदी साहित्यकारों के बीच अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इन दोनों ही रचनाकारों की रचनाओं में परिवर्तनकामी विद्रोही चेतना की प्रखर उपस्थिति भले ही नहीं दिखती हों, लेकिन स्त्रियों की दशा का मार्मिक चित्रण अवश्य मिलता है। उदाहरण के लिए महादेवी वर्मा की कविता **'मैं नीर भरी दुःख की बदली'**की इन पक्तियों को उद्धृतकिया जा सकता है : 'विस्तृत नभ का कोई कोना/ मेरा न कभी अपना होना/ परिचय इतना इतिहास यही/ उमड़ी कल थी मिट आज चली।'

हिंदी साहित्य में स्त्रियों की बढ़ती उपस्थिति और मुखर अभिव्यक्ति का दौर बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जाकर शुरू हुआ। महिला लेखिकाओं की एक कतार सामने आयी जिसने स्त्री की मुक्तिकामी चेतना को स्वर देने का काम किया। शिवानी, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा

प्रियंवदा, ममता कालिया , चन्द्रकिरण सोनेरेक्सा, चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, राजी सेठ आदि ने अपनी अनेक कृतियों में स्त्री-लेखन के पारंपरिक ढाँचे को तोड़ने की कोशिश की। इस परम्परा का विस्तार चन्द्रकान्ता, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा,अलका सरावगी, सूर्यबाला, मधु कांकरिया आदि के लेखन में भी दिखता है।

इन स्त्री रचनाकारों की अनेक कृतियाँ ऐसी हैं जो स्त्री-विमर्श के लिए महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। उदाहरण के लिए कृष्णा सोबती के उपन्यास **'मित्रो मरजानी'**का ज़िक्र किया जा सकता है, जिसकी केन्द्रीय पात्र 'मित्रो' अपनी यौन इच्छाओं पर बेबाकी से बात करती है और इस तरह वह समाज के पारंपरिक ढाँचे को तोड़ने का काम करती हैं, जहाँ पर स्त्रियों के लिए इस तरह की इच्छाओं को प्रकट करना वर्जित होता है।

स्त्री-विमर्श अपने मुखर रूप में तब प्रकट होना शुरू हुआ जब लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाएँ लिखनी शुरू कीं। एक स्त्री की आत्मकथा में स्वाभाविक रुप से उसके जीवन में झेले लैंगिक भेदभाव, शिक्षा, स्वतंत्रता और सपनों को पूरा करने के लिए किये गये संघर्ष, और झेली गयी यातनाएँ अभिव्यक्त होती हैं, इसलिए दलित विमर्श की तरह स्त्री-विमर्श के भी सबसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ आत्मकथाएँ ही हैं।

मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी), मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुंडल बसे और गुड़िया भीतर गुड़िया), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या), चन्द्रकिरण सोनरेक्सा (पिंजरे की मैना), प्रतिभा अग्रवाल (मोड़ ज़िन्दगी का), कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं है दिल मेरा), रमणिका गुप्ता (हादसे)इन सभी आत्मकथाओं में जो एक बात समान है, वो यह कि ये सभी आत्मकथाएँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसी बात को व्यंजित करती हैं कि स्त्री-पुरुष के बीच की गैरबराबरी और लैंगिक आधार पर दी जाने वाली अमानवीय यातनाएं सिर्फ स्त्रियों के लिए ही नहीं बल्कि पूरे मानवीय समाज की उन्नति में भयंकर रूप से बाधक हैं।

इन आत्मकथाओं की परम्परा से अलग भी स्त्री आत्मकथाओं की एक परम्परा है, जिन्हें उन स्त्रियों ने लिखा है जो उन पृष्ठभूमियों से आती हैं, जो समाज के हाशिये पर रही हैं। दलित - विमर्श पर गौर करें तो वह पूरे दलित समुदाय के विमर्श होनेका दावा करते हुए भी दलित पुरुषों के वर्चस्व का ही विमर्श है, जबकि जो दलित स्त्रियाँ हैं वह अपनी दलित पहचान के कारण तो प्रताड़ित होती ही हैं, स्त्री होने के कारण भी उन्हें प्रताड़ित होना पड़ता है। कौशल्या बैसंत्रीकी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' इसी बात को उद्घाटित करती है। दलित लेखिका सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' भी इसी श्रेणी की आत्मकथा है। बिहार के एक गाँव की पिछड़ी जाति की महिला सुशीला राय की आत्मकथा 'एक अनपढ़ की आत्मकथा' भी उल्लेखनीय है। सुशीला ने बहुत बाद में बहुत यत्नपूर्वक पढ़ना-लिखना सीखा और फिर अपनी आत्मकथा में उन्होंने अपनी ही नहीं अपने परिवेश की स्त्रियों की दयनीय स्थिति को भी व्यक्त किया है।

स्त्री लेखिकाओं की परवर्ती पीढ़ी भी बहुत समृद्ध है और वेनए दौर के कई नए सवालों से टकराते हुए स्त्री अस्मिता से जुड़े मुद्दों पर लगातार लिख रही हैं। इन लेखिकाओं में अनामिका,

कात्यायनी, नीलाक्षी सिंह, महुआ माजी, नीलेश रघुवंशी, गीतांजलि श्री, गीताश्री, जया जादवानी, वंदना राग, निर्मला पुतुल सहित कई अन्य नाम उल्लेखनीय हैं।

पुरुषों की लिखी हुई स्त्री संवेदी रचनाएँ स्त्री-विमर्श के अंतर्गत नहीं आती, इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्रियों की लिखी हुई कोई भी रचना स्त्री-विमर्श के अंतर्गत आ जाएगी। स्त्री-विमर्श के अंतर्गत स्त्रियों की लिखी मात्र वही रचनाएँ आती हैं, जिनका सम्बन्ध स्त्रियों की मुक्तिकामी और परिवर्तनकामी इच्छाओं-आकांक्षाओं से है। यानी उन इच्छाओं-आकांक्षाओं से है जो पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्रियों पर लादी गयी तमाम पाबंदियों को तोड़कर अपने लिए बराबर के मानवाधिकार चाहती हों। इसके साथ ही इस बात को भी रेखांकित किये जाने की ज़रूरत है कि हिंदी में स्त्री-विमर्श की वैचारिक धार मजबूत की जाए और इसके लिए ज़रूरी है कि हिंदी की लेखिकाएँ खुद को स्त्री की जमीनी समस्याओं से जोड़ें और स्त्री अधिकारों से जुड़े सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों को आकार देने में अपनी भूमिका निभाएं और उन आन्दोलनों से लगातार खुद को सम्बद्ध भी रखे।

बोध प्रश्न –

- स्त्री विमर्श पर लिखने वाले साहित्यकारों के नाम बताइए।

15.3.2दलित-विमर्श

अ) दलित-साहित्य : अर्थ और परिभाषा

संस्कृत शब्द कोश में ‘दलित’ शब्द का अर्थ है - “टूटा हुआ, कटा हुआ, पिसा हुआ, चीरा हुआ, फैला हुआ।” ‘दलित’ शब्द का अर्थ है- जिसका दलन हुआ, दबाया गया, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, वंचित आदि। भारतीय समाज व्यवस्था में ‘दलित’ वह है जो सदियों से ‘विषमतावादी जाति-व्यवस्था’ के शिकार रहे हैं।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने अंग्रेजी के ‘Depressed classes’, के लिए ‘दलित’ शब्द को अंगीकार किया था। मराठी में ‘बहिष्कृत’ तथा ‘अस्पृश्य’ जिनके लिए व्यक्त किया गया, उन्हें आज मराठी और हिंदी में ‘दलित’ कहा जाता है। ‘दलित’ वर्ग के लिए भारतीय संविधान में ‘अनुसूचित जाति’ शब्द का व्यवहार होता है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की तरह विविध दलित साहित्यकारों ने समय-समय पर ‘दलित’ शब्द व साहित्य को परिभाषित किया है।

1) दलित पैंथर के संस्थापक नामदेव ढसाल के अनुसार- “दलित अर्थात अ.जाति, जन-जाति, बौद्ध, कामगार, खेतिहर मजदूर, गरीब किसान, घुमंतू जातियाँ, आदिवासी आदि।”

2) कमलेश्वर के अनुसार- "दलित वह पूरा वर्ग जो शोषित, प्रताड़ित, बाधित और वंचित है, जो अपने जीवन और सपनों का नियन्ता नहीं है। हाँ जिन्होंने इनजातियों में जन्म लिया है वे सामाजिक रूप से और भी ज्यादा शोषित है।"

3) डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं- "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।"

4) इस संदर्भ में लक्ष्मण शास्त्री जोशी कहते हैं कि- "दलित मानवीय प्रगति से सबसे पीछे पड़ा हुआ अथवा पीछे ढकेला गया सामाजिक वर्ग है। महाराष्ट्र के हिंदू समाज में महार, चमार, डोम इत्यादि, जन जातियों को गांव के बाहर रहने के लिए बाध्य किया गया और जिनसे समाज विशेषत: सवर्ण समाज शारीरिक सेवाएँ तो लेता रहा, लेकिन जीवनावश्यक प्राथमिक जरूरतों से भी जिन्हें जानबूझकर वंचित रखा गया और पशुओं के स्तर पर घृणित जीवन के लिए बाध्य किया गया उनको 'दलित' या 'अछूत' कहा गया है।"

5) अर्जुन डांगले के अनुसार- "दलित शब्द का अर्थ साहित्य के संदर्भ में नए अर्थ देता है। दलित यानी शोषित, पीड़ित समाज, धर्म व अन्य कारणों से जिसका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शोषण किया जाता है, वह मनुष्य और वही मनुष्य क्रान्ति कर सकता है। यह दलित साहित्य का विश्वास है।"

6) बाबुराव बागुल के अनुसार- "मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करनेवाला, मनुष्य को महान माननेवाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है।"

7) कंवल भारती की धारणा है कि- "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रुपायित किया है अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।"

बोध प्रश्न –

- दलित साहित्य के 'दलित वर्ग' हेतु भारतीय संविधान में किस नाम से व्यवस्था की गई है ?

आ) दलित साहित्य के प्रेरणा-स्रोत

'दलित' साहित्य के प्रेरणा स्रोत आजीवक, गौतम बुद्ध, सिद्ध, निर्गुण संत, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, नारायण गुरू और डॉ. बी. आर. आंबेडकरप्रमुख हैं। इन्होंनेवर्णाश्रम आधारित जाति-व्यवस्था को नकारा, जन्मना श्रेष्ठता को अस्वीकार किया और योग्यता को स्वीकारा। भारतीय विषमतावादी समाज व्यवस्था में सामाजिक न्याय के प्रश्न को

प्राथमिक बनाया। साहित्य और समाज के मध्य सेतु बनाने को स्वीकार किया। शिक्षा, संगठन बध्दता और संघर्ष को जीवन का आवश्यक सूत्र बताया। विवेकशीलता के आधार पर मानवतावाद को अपनाया। वर्णगत, वर्गगत, लिंगगत भेदभाव को अस्वीकार किया। इस क्रम में साहित्य को समाज के परिवर्तन और बदलाव के लिए आवश्यक हथियार के रूप में रणनीति के तहत इस्तेमाल किया।सन् 1967 में 'अस्मितादर्श' मराठी की त्रैमासिक पत्रिका ने दलित साहित्य को दलित आन्दोलन के साथ जोड़कर महाराष्ट्र में नवीन चेतना का वातावरण तैयार किया। मराठी केदलित साहित्य में पहली पीढ़ी केरचनाकारों में प्रमुख हैं- बाबुराव बागुल, दया पवार, अर्जुन डांगले, वामन निंबालकर, नामदेव ढसाल, केशव मेश्राम, ज.वि. पवार, यशवंत मनोहर आदि।

बोध प्रश्न –

- दलित साहित्य के प्रेरणास्त्रोत कौन-कौन है ?

ई) हिंदी में दलित-साहित्य की परंपरा और लेखन

हिंदी में दलित साहित्य का जन्म 1980 के बाद ही क्रम से देख सकते हैं। पहले दलित साहित्य का जन्म मराठी में हुआ, बाद में हिंदी में। हिंदी में दलित लेखन की परंपरा को भक्तिकाल तथा उससे भी पूर्व सिद्ध और नाथ साहित्य, बौद्ध साहित्य तक खोजा जा सकता है। सर्वप्रथम दलित एवं निम्न जातियों की अभिव्यक्ति सिद्ध साहित्य में हुई है। सिद्ध साहित्य में चौरासी सिद्ध हुए उनमें डोम, चमार, धोबी, लोहार, बढ़ई, मछुआरे आदि का उल्लेख मिलता है। जिन्होंने सबसे पहले वर्ण, जाति और धार्मिक आडंबर का विरोध किया। इनकी रचनाओं में दलित परंपरा का बीजारोपण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, साथ ही दलित अस्मिता की तलाश भी। इस संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन की सूची के अनुसार कुल 'चौरासी' सिद्धों में तीस शूद्र थे।

भक्तिकाल में संतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही जिनमें से अधिकांशतः निम्न जातियों के थे। भक्ति आंदोलन निम्न जातियों के संतों और कवियों द्वारा चलाया गया आंदोलन था। जिसका मुख्य स्वर जातिवाद-विरोध और अपनी अस्मिता की छटपटाहट थी। इस संदर्भ को डॉ. मैनेजर पाण्डेय व्यक्त करते हैं- "मुक्तिबोध की यह मान्यता रही है कि भक्ति आंदोलन का मूल स्वर जातिवाद- विरोधी और उस आंदोलन के आंरभ का श्रेय निम्न जातियों से आए संतों और भक्तों को है।"

डॉ. एन. सिंह ने रैदास को दलित कविता का आदि कवि कहा है, इस संदर्भ में उनके विचार दृष्टव्य है- "रैदास पहले दलित कवि ही नहीं है, वह दलित चेतना के प्रथम कवि भी है।" आधुनिक युग में दलितों का चित्रण करने वाली रचना कुछ अंश में प्राप्त होती है। इसी क्रम में महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'सरस्वती' में सितंबर, 1914 में हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' छपी थी, जो मूलत: भोजपुरी बोली में थी, जो विषमतामूलक समाज पर चोट भी करती है। जिसे हिंदी की पहली दलित कविता माना जा सकता है। हिंदी नवजागरण के समय प्रेमचंद, निराला, राहुल सांकृत्यायन ऐसे साहित्यकार हुए

हैं, जिन्होंने अपने लेखन और चिंतन में हिंदी क्षेत्र की दलित समस्या को चित्रित करने की कोशिश की है। लेकिन उसे हम सहानुभूति का ही साहित्य मानते हैं।

इस प्रकार दलित साहित्य परंपरा का इतिहास काफी पुराना है। आरंभिक दशा में यह अस्पष्ट जरूर था। बुद्ध और कबीर के समय इसका बीजारोपण हुआ है। आगे चलकर फुले-अम्बेडकर के योगदान से यह अधिक समृद्ध होता गया। इसका स्वरूप हिंदी में आठवें दशक में स्पष्ट हुआ है। दलित साहित्य की परंपरा हाल ही की बात नहीं बल्कि इससे पीछे लंबा इतिहास है।

बोध प्रश्न –

- दलित साहित्य का जन्म कब और कहाँ हुआ ?

आत्मकथा

हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथाओं की संख्या बहुत कम है। सर्वप्रथम हिंदी में भगवान दास की आत्मकथा “मैं भंगी हूँ” 1981 में प्रकाशित हुई। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में दलित लेखकों की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई। मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा ‘अपने-अपने पिंजरे’ भाग-1, सन् 1995 में प्रकाशित हुई तथा दूसरा भाग सन् 2000 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। सन् 1997 में ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा ‘जूठन’ का पहला पुस्तकालय संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित है। कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा ‘दोहरा अभिशाप’ 1999 में प्रकाशित हुई। डॉ. डी. आर जाटव कृत ‘मेरा सफर मेरी मंजिल’ आत्मकथा 2000 में प्रकाशित हुई। के. नाथ की आत्मकथा ‘तिरस्कार’ 2000 में प्रकाशित हुई। सूरजपाल चौहान कृत आत्मकथा ‘तिरस्कृत’ का 2002 में प्रकाशन हुआ है। पूर्व राज्यपाल माता प्रसाद जी की आत्मकथा ‘झोपड़ी से राजभवन’ का 2002 में प्रकाशन हुआ। प्रो. श्यामलाल की ‘एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी’ का प्रकाशन 2008 में हुआ। रूपनारायण सोनकर की आत्मकथा ‘नागफनी’ का प्रकाशन 2009 में हुआ है। प्रो. श्यौराज सिंहबेचैन की आत्मकथा ‘मेरा बचपन मेरे कन्धों पर’ नाम से प्रकाशित हुई है। प्रो. तुलसीराम की आत्मकथा ‘मुर्दहिया’ का प्रकाशन 2010 में हुआ। दूसरा भाग ‘मणिकर्णिका’ का प्रकाशन 2015 में हुआ। डॉ. धर्मवीर की आत्मकथा ‘मेंरी पत्नी और भेडिया’ 2011 में प्रकाशित हुई। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा ‘शिकंजे का दर्द’2011 में प्रकाशित हुई। रजनी तिलक की आत्मकथा ‘मेरी जमीं मेरा आसमाँ’ का प्रकाशन 2017 में हुआ है।

बोध प्रश्न –

- आत्मकथा से क्या अभिप्राय है ?

उपन्यास

हिंदी दलित साहित्य में उपन्यास विधा की भी रचना होने लगी। देवी दयाल सेन द्वारा लिखित‘मानव की परख’ उपन्यास 1954 में प्रकाशित हुआ।डॉ. रामजीलाल सहायक द्वारा लिखित उपन्यास ‘बंधन मुक्त’ प्रकाशित हुआ। डी.पी. वरूण का उपन्यास ‘अमर ज्योति’ 1982 में प्रकाशित हुआ। डॉ. जयप्रकाश कर्दम का ‘करूणा’ उपन्यास सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। दूसरा चर्चित उपन्यास ‘छप्पर’ है जिसका प्रकाशन सन् 1994 में हुआ है। मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखित छह उपन्यास हैं- ‘क्या मुझे खरीदोगे’ (1990), मुक्ति पर्व (1999), ‘वीरांगना झलकारीबाई’ (2003), ‘आज बाजार बंद है’ (2004), ‘जख्म हमारे’ (2011), और ‘महानायक बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर’ (2012)। ये सभी उपन्यास महत्त्वपूर्ण, ऐतिहासिक और चेतनाशील हैं। डॉ. धर्मवीर का ‘पहला खत’, प्रेम कपाडिया का ‘मिट्टी की सौगंध’, सत्यप्रकाश का ‘जसतसभई सवेर’, डॉ. शत्रुघ्न का ‘हिस्से की रोटी’, के. नाथ का ‘पलायन’, ‘संपूर्ण क्रांति’, अजय नावरिया का ‘उधर के लोग’ बहुत चर्चित उपन्यास हैं। रूपनारायण सोनकर के तीन उपन्यास हैं-‘सूअरदान’, ‘डंक’ और ‘गटर का आदमी’।

बोध प्रश्न –

- प्रथम हिंदी दलित उपन्यास कौन सा है ?

कविता

डॉ. बाबासाहैब आंबेडकर के आंदोलन से प्रभावित होकर कुछ कवियो ने कविताओं का सृजन किया जिसमें प्रमुख बिहारीलाल ‘हरित’ रहे। डॉ. बाबसाहेब आंबेडकर के जन्म दिवस समारोह दिल्ली में उनकी उपस्थिति में एक गीत गाया और ‘जय भीम’ का उद्घोष किया।

“नवयुवक कौम के जुट जावै सब मिलकर कौम परस्ती में
जय भीम का नारा लगा करे भारत की बस्ती-बस्ती में।।”

उत्तर भारत में ‘जय भीम’ नारे का सृजन का श्रेय बिहारीलाल हरित को जाता है।दलित कविता वर्ण-जाति आधारितविषम व्यवस्था का निर्मूलन चाहती है और दलितों के लिए मानवीय अधिकारों की मांग करते हुए संवैधानिक अधिकारों से परिचित कराती है। हिंदी दलित कविता के कुछ प्रसिद्ध कविता-संग्रह की सूची प्रस्तुत है-

कविता संग्रह	कवि	प्रकाशन वर्ष
1) अछूतों का पैगम्बर	बिहारीलाल हरित	1946
2) अछूतों का बिगुल	स्वामीभगत सिंह	1952
3) वीरो की ललकार	मा. नत्थूराम ताम्रमैली	1954
4) नई चेतना नये राग	कंवल भारती	1971
5) भीमायण	बिहारीलाल हरित	1973

6)	भीमचरित मानस	अनंगदास सिंह	1978
7)	जय जय भीम महान	रमेशचंद्र बौद्ध	1980
8)	शंबूक ऋषि बारहमासी	ए.आर. अकेला	1980
9)	एकलव्य (खण्ड-काव्य)	माता प्रसाद	1981
10)	बौद्ध महिला गीत	'श्रीमती शोभा बौद्ध	1981
11)	उत्थान के स्वर	डॉ. कुसुम वियोगी	1983
12)	शोषितनामा	मनोज सोनकर	1983
13)	भीमज्ञान गीतांजली	ए.आर. अकेला	1984
14)	अंधा समाज और बहरे लोग	डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर	1984
15)	भीममंजरी	प्रेमलता	1985
16)	भीम सागर	लक्ष्मीनारायण सुधाकर	1985
17)	बयान बाहर	सुखबीर सिंह	1985
18)	यातना की आँखें	दयानंद बटोही	1986
19)	भीम शतक	माता प्रसाद मित्र	1986
20)	हीरामन	डॉ. धर्मवीर	1987
21)	सफदर एक बयान	मोहनदास नौमिशराय	1989
22)	सदियों का संताप	ओमप्रकाश वाल्मीकि	1989
23)	नई फसल	श्यौराज सिंह 'बेचैन'	1989
24)	सतह से उठते हुए	डॉ. एन. सिंह	1991
25)	अंबेडकर शतक	लक्ष्मीनारायण सुधाकर	1994
26)	प्रयास	सूरजपाल चौहान	1994
27)	चलो भीम की राह	लक्ष्मीनारायण संखवार	1995
28)	व्यवस्था के विषधर	डॉ. कुसुम वियोगी	1995
29)	जब तुम्हारी निष्ठा क्या होती	कंवल भारती	1996
30)	सुनो ब्राह्मण	मलखान सिंह	1996
31)	दलित आक्रोश	डॉ. सी.बी. भारती	1996
32)	बस्स बहुत हो चुक्का	ओमप्रकाश वाल्मीकि	1997
33)	चेतना के स्वर	डॉ. एन. सिंह	1998
34)	टुकडे-टुकडे दंश	कुसुम वियोगी	1998
35)	दिग्विजयी रावण	माता प्रसाद	1998
36)	स्मृति दीप डॉ. अंबेडकर	बिहारीलील हरित	1999
37)	नियति नहीं यह मेरी	सुदेश तनवर	1999
38)	हार नहीं मानूँगा	ईश कुमार गंगानिया	2000
39)	पदचाप	रजी तिलक	2000
40)	कलम को दर्द कहने दो	कर्मशील भारतीय	2000

41) आज का समय	डॉ. तेज सिंह	2002
42) तिनका-तिनका	जयप्रकाश कर्दम	2004
43) क्यों विश्वास करूँ	सूरजपाल चौहान	2004
44) मेरा गाँव	सूरजपाल चौहान	2004
45) हम गवाही देंगे	असंग घोष	2007
46) गूंगा नहीं था मैं	जयप्रकाश कर्दम	
47) आग और आंदोलन	मोहनदास नैमिशराय	

बोध प्रश्न –

- प्रथम दलित कविता संग्रह कौन सा है ?

नाटक

हिंदी दलित लेखक स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' ने अपना लेखन शुरू किया, दलितों में जागृति निर्माण करने के लिए। उन्होंने 'मायानंद बलिदान' और 'रामराज्य न्याय' नाटक की रचना की। 'हिंदू ऑल इण्डिया महासभा कानपुर' से, ये नाटक जुलाई 1926 में प्रकाशित हुये।

अछूतानंद के बाद नाटककार रत्नाकर बंधु त्रिशरण ने 1956 में 'अपना देश' नाम से एकांकी नाटक की रचना की। उन्होंने 'डॉ.अम्बेडकर' नामक नाटक लिखा जिसका प्रकाशन 1979 में हुआ। 'हीरे की पहचान' 1983 में दूसरा नाटकलिखा।'हमारा समाज' 1984 में लिखा जिसका प्रकाशन 'समाज सुंदर समिति' उत्तर प्रदेश ने किया। बिहारीलाल 'हरित' ने 'गुरूदक्षिणा' 1959 और 'देवासुर संग्राम' नाटक की रचना की। बिहारीलाल 'हरित' ने इतिहास को देखने की नई दृष्टि पैदा की। हिंदी दलित नाटक रचना में माताप्रसाद जी का नाम अग्रणीय है। उनके 16 नाटक प्रकाशित हैं। उनका पहला नाटक 'अछूत का बेटा' 1973 में लिखा गया है। 'धर्म के नाम पर धोखा' 1977, 'वीरांगना झलकारी बाई' 1997, 'वीरांगना उदा देवी पासी' 1997, 'तड़प मुक्ति की' 1999, 'प्रतिशोध' 2000, 'अन्तहीन बेड़ियाँ' 2000 आदि उनकेमहत्त्वपूर्ण नाटक हैं। नत्थूराम सागर जी ने भी कई नाटकों का सृजन किया है। उनके प्रकाशित नाटक 'अंतिम अवरोध' 1984, 'लाजवती' 1985, और'दूसरा पक्ष' महत्त्वपूर्ण नाटक हैं। कर्मशील भारती के नाटक 'मंदिर प्रवेश' 1989, 'श्रेष्ठ कौन' 1990, 'मानसम्मान' 1991, 'फांसी' 1992, 'गुनाहों की सजा' 1993, 'जूता अफसर का' 1994, 'आजादी किसकी' 1995, आदि नाटकों का उन्होंने सृजन किया। दलित आंदोलन कर्मी के.नाथ ने भी दलित नाटकों की रचना की है, जिसमें से प्रमुख हैं-'आंचल' 1976, 'भारत लीला', 1982, 'जागो' 1985, 'आम्रपाली' 2002। मोहनदास नैमिशराय का पहला नाटक 'अदालतनामा' 1989, में और दूसरा नाटक 'हैलो कामरेड' 2001 में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा डॉ. सुशीला टाकभौरे के दो नाटक है, 'रंग और व्यंग्य' 2006,

में और 'नंगा सत्य' नाटक 2007 में प्रकाशित हुए हैं। रूपनारायण सोनकर के नाटक 'एक दलित डिप्टी कलेक्टर', 'कलेक्टर साहब की भैंस', 'समाज द्रोही', शीलबोधि के नाटक 'बहुभोज' और 'पंछी की कैद', बुद्ध शरण हंस के नाटक- 'बुद्धम् शरणम् गच्छामी', 'दो पण्डे', 'सिर्फ एक कदम', भद्रशील रावत के नाटक 'महाड सत्याग्रह' और 'भगवान बुद्ध' प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न –

- दलित नाटक संघ के प्रारंभ कर्ता कौन है ?

पत्र-पत्रिकाएँ

1. दलित अस्मिता
2. अपेक्षा
3. सम्यक भारत
4. दलित दस्तक
5. युध्दरत आम आदमी
6. बहुरि नहिं आवना
7. हाशिये पर

निष्कर्ष

दलित आन्दोलन, भारत का एकमात्र ऐसा जन आंदोलन है जिसके मूल में यहाँ की वर्ण तथा जाति व्यवस्था है। संपूर्ण दलित साहित्य के मूल में अस्मिता की खोज होती है। दलित साहित्य के मूल में जाति कानिर्मूलन है। मनुष्य को शोषण से मुक्त करना ही इसका उद्देश्य है। दलित साहित्य मानव मुक्ति का साहित्य है।

15.3.3 आदिवासी-विमर्श

1) 'आदिवासी' शब्द की संकल्पना

'आदिवासी' शब्द अंग्रेजी के 'एबोरिजिनल' शब्द का हिंदी अनुवाद है। किसी भौगोलिक क्षेत्र में मानव सभ्यता के प्रारंभिक चरण में निवास करने वाले समुदाय को आदिवासी कहा जाता है अर्थात् उस विशिष्ट क्षेत्र के मूल निवासी। विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में उपजी मानव सभ्यता जिसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति, सामाजिक मानदंड एवं जीवन मूल्य होते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में निवासित मूलवासियों को वास्तव में आदिवासी शब्द से संबोधित करना उचित है किन्तु इन विभिन्न समुदायों को उनके नामों से संबोधित किया जाता है। जैसे- देशज, मूलनिवासी, जनजाति, वनवासी, जंगली, गिरिजन, बर्बर आदि। इन शब्दों में कुछ शब्द आदिवासी समुदायों की विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं किन्तु कुछ शब्द इन समुदायों के प्रति अनादर का भाव भी व्यक्त करते हैं।भारतीय आदिवासी समुदाय को 'आदिवासी' शब्द से संबोधित करें अथवा नहीं इस पर विद्वानों के अनेक मत हैं। आदिवासी विचारक हरिराम मीणा स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि- "क्षमा करें ट्राइब का हिंदी अनुवाद जनजाति गलत है क्योंकि

आदिवासी समाज में जाति की कोई अवधारणा नहीं रही। आदिवासियों के भिन्न-भिन्न नाम या संज्ञाएँ उनके अंचल, गणचिन्ह तथा गोत्र पर आधारित रहे हैं। यह एकमात्र समाज है जो जाति की अवधारणा को अपने यहाँ स्थान नहीं देता।" उसी प्रकार रामदयाल मुंडा आदिवासियों के भिन्न-भिन्न नामों से संबोधन को अस्तित्त्व पर खतरा समझते हैं। वे लिखते हैं कि- "जब यह पता है कि कुछ लोग उन्हें गिरिजन या वनवासी कहने लगे हैं तो लगता है उनसे उनकीयह पहचान जानबूझ कर छिनी जा रही है और उन्हें वन मानुस बनाया जा रहा है।" कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवसी समाज को 'आदिवासी' शब्द के अलावा अन्य शब्द स्वीकार नहीं है। 'गिरिजन' शब्द उसी प्रकार प्रतिबंधित शब्द है जिस प्रकार 'हरिजन' शब्द। अतः आदिवासी शब्द ही इन समुदायों के लिए न्यायसंगतहै। किन्तु भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए' अनुसूचित जनजाति' शब्द स्वीकार किया गया है जिस पर भी आदिवासी समाज प्रश्नचिन्ह लगा चुका है।

बोध प्रश्न –

- आदिवासी विमर्श को परिभाषित कीजिए.

2) 'आदिवासी' शब्द के समानांतर प्रयुक्त होने वाले शब्द

'आदिवासी' शब्द की संकल्पना आधुनिक काल की है। इस समुदाय को अनेक विद्वानों ने अपनी अपनी विद्वत्ता के अनुसार संबोधित किया है। प्रसिध्दनृतत्त्वशास्त्री एच.एल. रिजले, लेके, ग्रियर्सन, सोमर्ट, टोलेट्रास सेनविक मार्टिन तथा भारतीय समाज सुधारक ठक्कर बापा तथा जवाहर लाल नेहरू इन्हें आदिवासी शब्द से संबोधित करते हैं। हट्टन ने इन्हें 'प्राचीन जनजाति कहा है'। बेंस ने 'वन्यजाति' कहा है। अतः 1891 की जनगणना से लेकर आज तक इन्हें अनेक नामों से चिन्हित किया जाता रहा है। सन् 1901 की जनगणना में आदिवासी समाज को प्रकृतिवादी कहा गया। सन् 1911 की जनगणना में इन्हें प्रकृतिवादी अथवा जनजातीय धर्म को मानने वाले के रूप में कहा गया। सन् 1921 की जनगणना में इन्हें पहाडी एवं अन्य जनजातियों का नाम दिया गया। सन् 1931 में इन्हें आदिम जनजाति कहा गया। भारत सरकार अधिनियम- 1935 में इन्हें केवल जनजातियाँ शब्द से संबोधित किया गया था और इसी शब्द कोस्वतन्त्र भारत के संविधान में अपना लिया गया। इस शब्द पर कोई सार्थक विचार-विमर्श संविधान सभा में नहींहुआ।

स्वतंत्रता के पश्चात इन जनजातियों में अनके उपवर्ग बनाये गये। सेंसेस ऑफ इण्डिया 1961 वॉल्यूम-1, पार्ट वी.वी. द्वितीय के पृष्ठ संख्या 23 पर जनजातियों को अनेक उपवर्गों में विभिन्न नाम जैसे- प्राचीन जनजाति, प्राचीन जनजाति अथवा आदि आदिम जनजाति, पहाड़ी जनजाति, आतंरिक जनजाति, आदिवासी जंगली तथा जिप्सी जनजाति, पिछ्ड़ी जनजाति, आपराधिक जनजाति, विन्चक एवं अपराधिक जनजाति आदि उपवर्ग से संबोधित किया गया है।कहना न होगा कि आदिवासी समुदाय को अनेक नाम, अनेक उपाधि, अनेक पहचान देकर संपूर्ण आदिवासी समाज की एकता, संगठन शक्ति तथा समग्र प्रभाव को धूमिल किया जा रहा है। मानवशास्त्र के शब्द कोष में आदिवासी को एक सामाजिक समूह माना जाता है जो प्रायः

निश्चित भूभाग में रहते हैं, जिनकी अपनी भाषा, सभ्यता तथा सामाजिक संगठन है और यही परिभाषा एवं नाम सभी को स्वीकार्य होना आवश्यक है।

बोध प्रश्न –

- 'आदिवासी' शब्द के समानांतर प्रयुक्त होने वाले शब्द कौन-कौन से हैं ?

3) भारतीय संविधान में आदिवासी संबंधी प्रावधान

संविधान सभा ने 'आदिवासी' शब्द के लिए 'जनजाति' शब्द स्वीकार किया तथा जनजातियों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं अस्मिता से जुड़े हुए पहलुओं को एकत्रित कर जनजातियों के हित में अनेक प्रावधानों को संविधान में सम्मिलित किया है। भारतीय संविधान की पांचवी अनुसूची के अनुच्छेद 244 (1) के अनुसार अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण का अधिकार स्वयं जनजातियों के पास है। किन्तु इस अनुच्छेद का अनुपालन नहीं हो पाया है। इन क्षेत्रों पर प्रशासन और नियंत्रण भारत के राष्ट्रपति एवं प्रांतीय राज्यपाल के द्वारा नियंत्रण होता है। अनुसूचित क्षेत्र में पारंपरिक ग्रामसभा का अपना एक विशिष्ट महत्त्व होता है। जो जनजातीय समुदाय के अपने जीवन मूल्य, मानदंड, संस्कृति, रीति-रिवाज को नियंत्रित करती है। सरकार द्वारा 'पेसा' कानून के तहत ग्रामसभा को पारम्परिक सारे अधिकारों के साथ-साथ उस विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के संसाधनों पर भी अधिकार प्रदान किया गया है।

संविधान का अनुच्छेद 275 (1) के तहतसरकार का कर्त्तव्य है कि वह जनजातियों के समग्र विकास हेतु एक केन्द्रीय कोष का निर्माण करे। संविधान, जनजातीय विशिष्टता एवं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए जनजाति क्षेत्र में शक्ति एवं सुशासन स्थापित करने की भी बात करता है अर्थात् अनुसूचित क्षेत्र में समान्य कानून व्यवस्था लागू नहीं होगी बल्कि उस क्षेत्र के अनुकूल विशिष्ट व्यवस्था स्थापित की जायेगी।भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त अनुच्छेद 46, अनुच्छेद 244, 275, अनुच्छेद 29, अनुच्छेद 30, अनुच्छेद 347, अनुच्छेद 350, अनुच्छेद 350 a, b तथा अनुच्छेद 339 (1) (2) आदि के तहत जनजाति समुदायों को अनेक अधिकार प्रदान किये गये हैं। संविधान में पर्याप्त प्रावधानों के बावजूद जनजाति समाज का विकास कई कारणों से बाधित होता रहा है तथा उन पर अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष शोषण, अत्याचार तथा उनके अधिकारों को छीना जा रहा है। आदिवासी समाज अपने ऊपर होते अन्याय तथा अपनी धूमिल होती अस्मिता को बनाये रखने हेतु संघर्ष कर रहा है। भारत के विकास तथा समृद्धि में सर्वाधिक कीमत आदिवासी समाज द्वारा ही चुकायी जा रही है। फलतः आदिवासी साहित्य विमर्श एक नये रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। आदिवासी-लेखन अपने समय की अनेक चुनौतियों को लेकर खड़ा है।

बोध प्रश्न –

- भारतीय संविधान में आदिवासी संबंधी प्रावधान कौन-कौन से हैं ?

4) हिंदी में आदिवासी-विमर्श की शुरूआत

आदिवासी विचारधारा प्राचीन समय से लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक संस्कृति एवं समाजिक जीवन मूल्यों में विद्यमान रही है। किन्तु सृजनात्मक साहित्य का उद्भव और विकास आधुनिक काल में हुआ। जिस प्रकार दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श की शुरूआत हुई उसी प्रकार अपने अनेक प्रश्नों एवं चुनौतियों के साथ-साथ अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को लेकर आदिवासी-विमर्श भी प्रारम्भ हुआ। नवशिक्षित आदिवासी युवकों का जीवन के प्रति नया एहसास तथा अनुभव तेज और विद्रोही तो है ही साथ ही नवनिर्माण हेतु सक्षम भी है। यह पीढ़ी अपने संपन्न धरोहर की खोज तथा यथार्थ स्थिति का चित्रण नये तेवर के साथ कर रही है। आदिवासी साहित्यिक सृजनात्मक विचारधारा की शुरूआत 10 नवम्बर, 1979 में 'आदिवासी साहित्य मंच' के निर्माण से होती है। इसी मंच से आदिवासी लेखन को एक बल मिला। इसके पश्चात 1984,1987,1988 तथा 1989 में विभिन्न साहित्य सम्मेलन महाराष्ट्र तथा अन्य राज्यों में हुए। हिंदी साहित्य में आदिवासी सृजनात्मक साहित्य की शुरुआत सन् 1952 में रांगेय राघव द्वारा रचित उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' तथा 1953 देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा रचित उपन्यास 'रथ के पहिए' से माना जा सकता है किन्तु वास्तविक सृजनात्मक सहित्य और जुझारू विचारधारा युक्त आदिवासी विमर्श 20 वींशदी के अंतिम दशक से शुरू होता है। इस दशक में कई महत्त्वपूर्ण रचनाओं का सृजन हुआ जैसे- 'जहाँ बाँस फूलते हैं', 'काला पहाड़', 'जंगल जहाँ शुरू होता है' आदि उपन्यासों में गंभीरता के साथ आदिवासी मुद्दों को उठाया गया।21 वींसदी के प्रारम्भिक दशक से आदिवासी-विमर्श की भूमिका बनाने तथा अपना स्वर भारतीय स्तर पर उठाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा इस दशक में साहित्य कीविभिन्न विधाओं में यथा उपन्यास, कविता, कहानी, नाटक, यात्रा वृत्तांत, चिंतन परक लेखन आदि के क्षेत्र में क्रमशःविकास हुआ।

बोध प्रश्न –

- हिंदी में आदिवासी-विमर्श की शुरुआत कब हुई ?

5) हिंदी में आदिवासी-विमर्श के विभिन्न मुद्दे

वर्तमान समय में हमअनेक उपलब्धियों तक पहुँच चुके हैं किन्तु इसके साथ कई चुनौतियाँ भी हमारे समक्ष खड़ी है। वैश्वीकरण तथा तकनीकी के विकास के इस दौर में आदिवासी समाज के समक्ष अनेक समस्याएँ खड़ी है, जिनका निराकरण वैचारिक आन्दोलन के द्वारा ही किया जा सकता है। वैचारिक आन्दोलन को सृजनात्मक साहित्य से चेतना एवं सृजनात्मक शक्ति प्राप्त होती है। आज का समय अनेक दृष्टिकोण, स्थितियों एवं परिस्थितियों के अवलोकन की मांग करता है। आदिवासी साहित्य-विमर्श के इस समय अनेक ज्वलंत मुद्दे हैं। जिन पर न केवल आदिवासी समाज बल्कि समस्त मानवजाति को सोचने पर मजबूर करते हैं। आदिवासी संस्कृति, धर्म एवं साम्प्रदायिकता, आदिवासी शिक्षा, आदिवासी भाषा, विस्थापन की समस्या, नक्सलवाद, , आदिवासी-अस्मिता,आदिवासी और पर्यावरण, आदिवासी नीति और आदिवासी संकट, आदिवासी विकास, वैश्वीकरण और आदिवासी, घरेलू कामगार और आदिवासी महिलाएँ, रोजगार, कौशल विकास तथा आदिवासियों के परम्परागत उत्पादन, बाजारवाद

तथा विपणन की समस्याएँ तथा उभरती हुई आदिवासी चेतना को सही दिशा देना आदि समस्त मुद्दे आदिवासी समुदायों के मानवाधिकारों के संकट को खड़ा करते हैं। आज आदिवासी समाज, असमानता, सामाजिक असुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा, कुपोषण, बालश्रम, जबरन काम की स्थिति, मनमाने ढंग से जीवन में हस्तक्षेप, पोषण स्तर का अभाव, महिलाओं का मानसिक-शारीरिक शोषण आदि अनेक समस्याओं से घिरा है। आदिवासी सृजनात्मक साहित्य इन विभिन्न मुद्दों पर अपनी आवाज बुलंद कर रहा है। आदिवासी विमर्श के सन्दर्भ में एक विशेष मुद्दे का परिचय देना आवश्यक है। आज विश्व पर्यावरणीय समस्याओं से गुजर रहा है। मानव कीअतिक्रमणात्मक प्रवृत्तियों के फलस्वरूप अनेक समस्याएँ उभरी है। आदिवासी समुदाय भी इस समस्या से अछूता नहीं है। उत्खनन, परियोजनाओं तथा वन विनाश के कारण आदिवासी समाज पेट, चर्मरोग, कलरा, पेचिस, अतिसार, नहरूसा, कैंसर जैसी प्राण घातक बीमारियों से पीड़ित है। हलांकि परम्परागत आदिवासी जीवन शैली प्रकृति अनुरूप पर्यावरण हितैषी है। किन्तु भरतीय विकास का गंभीर मूल्य आदिवासी समुदाय चुका रहा है। 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'मरंग गोंडा नीलकंठ हुआ' आदि अनेक उपन्यासों में इन स्थितियों का चित्रण हुआ है। आदिवासी समुदाय अपने ही क्षेत्र में सदा संभावित हस्तक्षेप एवं खतरों के भय में जीवन व्यतीत कररहा है। चाहे वह हस्तक्षेप नौकरशाही का हो, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का या फिर सुधारवादी राजनेताओं का अंत में एक गंभीर मूल्य इन समुदायों को चुकाना ही पड़ रहा है। खुलेआम आदिवासी क्षेत्र में घुसपैठ तथा आदिवासी संसाधनों उनके श्रम का एक पक्षीय उपभोग हो रहा है। परम्परागत रूप से यह समाज संग्रहवादी नहीं रहा है फलत: इनके पास संपत्ति एवं संसाधनों का अभाव है। आर्थिक स्थिति की विभिन्न चुनौतियाँ इस समाज को विभिन्न स्तरों पर शोषित होनेहेतु विवश करती है। आज इनके परम्परागत अनायास प्राप्त वन्य उत्पादन तथा अन्य जीवन शैलियों को लगभग समाप्त कर दिया गयाहै और जीवन जीने के वैकल्पिक तरीके इनके पास नहीं है।

अब सवाल उठता है कि इतनी गंभीर स्थिति में आदिवासी जीवन व्यतीत कर रहा है तब सरकार क्या कर रही है ? सरकार अपने स्तर पर प्रयासरत है। विकास की अनेक नीतियां बनायी गई हैं तथा मानवाधिकारों के हितों की रक्षा हेतु अनेक कानून भी बनाए गए हैं। विभिन्न प्रकार की योजनाओं की घोषणा की गई है। शिक्षा सम्बन्धी, स्वास्थ्य, प्रशासन, स्वशासन तथा गरीबी से उभारने हेतु अनेक तरीके भी प्रस्तुत किए गए हैं। इन सारे प्रयासों के बावजूद आदिवासियों का विकास नहीं हो पाया और उनका अस्तित्व आज खतरे में पड़ा हुआ है। इन सभी का एकमात्र कारण है सरकार के प्रयासों का उचित क्रियान्वयन न होना तथा भ्रष्ट शासन तंत्र जिसके परिणाम स्वरुप कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकल पाता।आदिवासी नेता आदिवासियों के नाम पर आदिवासियों की परियोजनाओं को गटक लेते हैं। प्रशासन सुविधाओं को लक्षित क्षेत्र तक पहुँचने ही नहीं देता इस पर आदिवासी समाज की अशिक्षा ही मूल कारण है। आज नयी दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है और आदिवासी आन्दोलन को एक नई दिशा प्रदान करना आज के समय की प्रमुख मांग है।

बोध प्रश्न –

- हिंदी में आदिवासी विमर्श के भिन्न-भिन्न मुद्दों को बताइए।

6) हिंदी में आदिवासी-लेखन

इस समय साहित्य की समस्त विधाओं में आदिवासी जीवन को ध्यान में रखकर लेखन हो रहा है। आदिवासी साहित्य के तीन रूप हम देख सकते हैं-

1. आदिवासियों का वाचिक या मौखिक साहित्य। इसे‘पुरखा-साहित्य’ कहा जाता है।
2. गैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के जीवन पर लिखा गया साहित्य।
3. शिक्षित आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के जीवन और उनके समक्ष उत्पन्न होने वाली चुनौतियों को ध्यान में रखकर लिखा गया आदिवासी-लेखन।

कथा-साहित्य : उपन्यास-

1. जंगल के गीत- पीटर पॉल एक्का
2. ग्लोबल गांव के देवता- रणेंद्र
3. बड़े सपनों की ऊँची उड़ान- कडूलाना अजय
4. अल्मा कबूतरी- मैत्रेयी पुष्पा
5. धूणी तपे तीर- हरिराम मीणा

कहानियाँ-

1. पगहा जोरी जोरी रे घाटो- रोज केरकेट्टा
2. लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ- सं. वंदना टेटे
3. आदिवासी कहानियाँ- सं. केदार प्रसाद मीणा

कविताएँ-

1. नगाड़े की तरह बजते शब्द- निर्मला पुतुल
2. अपने घर की तलाश में- निर्मला पुतुल
3. बेघर सपने- निर्मला पुतुल
4. नन्हें सपनों का सुख- सरिता बडाइक
5. सुबह के इंतजार में-हरिराम मीणा
6. बाघ और सुगना मुंडा की बेटी- अनुज लुगुन
7. कोनजोगा- वंदना टेटे
8. जंगल के अधियारें से- राठोड पुण्डलिक

यात्रा-वृत्तान्त

1. जंगल जंगल जलियांवाला- हरिराम मीणा
2. साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक- हरिराम मीणा
3. आदिवासीलोक की यात्राएं- हरिराम मीणा
4. वह भी कोई देस है महाराज- अनिल यादव

नाटक

1. हिरमा की अमर कहानी- हबीब तनवीर
2. एक बार फिर- सुनील कुमार 'सुमन'
3. मोर्चा मानगढ़- घनश्याम सिंह भाटी 'प्यासा'
4. धरती आबा- हृषीकेश सुलभ
5. अगिन तिरिया- रविन्द्र भारती

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आदिवासी
2. अरावली उद्घोष
3. अखड़ा
4. आदिवासी साहित्य
5. युध्दरत आम आदमी
6. आदिवासी सत्ता

बोध प्रश्न –

- हिंदी में आदिवासी लेखक कौन-कौन हैं ?
- आदिवासी प्रत्र-पत्रिकाओं के नाम बताइए।

15.3.4 अल्पसंख्यक-विमर्श

इस इकाई में समकालीन विमर्शों पर बात की जाएगी जिसमें एक विमर्श अल्पसंख्यक-विमर्श भी है। अल्पसंख्यक-विमर्श को समझने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बातें जानना आवश्यक है। जैसे 'अल्पसंख्यक' से तात्पर्य क्या है ? 'विमर्श' से क्या आशय है ? 'अल्पसंख्यक-विमर्श' की अवधारणा क्या है ?आदि। इस इकाई में 'अल्पसंख्यक विमर्श' की सैद्धान्तिकी को समझने के पश्चात् हिंदी में अल्पसंख्यक-विमर्श की वैचारिकी को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा। क्योंकि अल्पसंख्यक-विमर्श की वैचारिकी से बिना परिचित हुए अल्पसंख्यक-विमर्श को समझना कष्ट साध्य ही होगा। इसके उपरांत हिंदी में अल्पसंख्यक-विमर्श की कुछ रचनाओं और रचनाकारों का भी परिचय दिया जाएगा। 'अल्पसंख्यक' शब्द 'अल्प' और 'संख्यक' दो शब्दों के समायोजन से बना है,यह इसकी सामान्य अवधारणा है। 'अल्पसंख्यक'शब्दका शाब्दिक अर्थ है- कम जनसंख्या वाले लोग। 'अल्पसंख्यक' शब्द ही अपने आप में भ्रमित करने वाला शब्द है क्योंकि कम जनसंख्या का अर्थ कितना होना चाहिए?इससे संख्या का कोई उचित मानदंड स्थित नहीं हो पाता है। इस शब्द से समस्या इसलिए भी उत्पन्न होती है क्योंकि हमने अंग्रेजी के 'माइनॉरिटी' शब्द का रूपांतरण किया है। यह शब्द भले ही पश्चिमके लिए उपयुक्त हो क्योंकि वहां भारत देश जैसी विविधता या विभिन्नता नहीं है। किन्तु भारत के परिप्रेक्ष्य में यह शब्द अर्थ

बोध के स्तर पर सटीक नहीं है। इसलिए 'अल्पसंख्यक' शब्द की उचित परिभाषा और अर्थ निर्धारण की आवश्यकता है। अब पश्चिम में 'माइनॉरिटी' शब्द की उत्पत्ति पर भी एक नजर डालना आवश्यक है। एटिमोलोजी शब्दकोश के अनुसार 'माइनॉरिटी' शब्द मध्यकालीन लैटिन के (मिनोरिटास) 'minoritas' शब्द से बना है।इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1525-1535 में किया गया था। समय के साथ-साथ इसके अर्थ में भी परिवर्तन होता गया। 'लोगों का वह समुदाय जो जाति और भाषा के आधार पर अन्य वर्ग से पृथक् हों, वह अल्पसंख्यक है।'

योर डिक्शनरी मेंअल्पसंख्यक की परिभाषा निम्न प्रकार दी गयी है -"The definition of a minority is group of people that differ in some way from the majority of or any part of a whole that is smaller than other part."

अतःइससे स्पष्ट होता है कि स्थान,समय और परिस्थिति के आधार पर पश्चिम देशके लिए यह शब्द उपयुक्त हो सकता है।

भारतदेश बहु-भाषिक और बहु-संस्कृतियों वाला देश है जहाँ कौन अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक होगा इसका निर्धारण करना मुश्किल-सा प्रतीत होता है क्योंकि इसके आधार कई बन सकते हैं –जैसे धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषाई आदि। इसलिए अल्पसंख्यक वर्ग के निर्धारण की समस्या को हमारे संविधान द्वारा सुलझाया गया। भारत में अल्पसंख्यक सम्बन्धी दो प्रावधान भारतीय संविधान में निर्दिष्ट किये गए हैं-(1) भाषाई, (2)धार्मिक।भाषाई-स्तर पर अनेक जन-समुदाय अल्पसंख्यक हैं,इससे अल्पसंख्यक का निर्धारण और एक जटिल समस्या बन जाती है। धार्मिक-स्तर पर भारत में मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, पारसी एवं जैन को मानने वाले समाहित किये गए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में 'अल्पसंख्यक' का चुनाव मूल रूप से धार्मिक ही रहा। समकालीन आलोचना में 'विमर्श' शब्द उत्तर-आधुनिक सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है। यह पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी के 'डिस्कोर्स' के समानार्थक रूप में हिंदी में प्रचलित है। इस शब्द का विकास सन् 1325-75 ई. के बीच हुआ। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले मिडिल इंग्लिश में 'दिस्कौर्स' (discours) के रूप में हुआ। बाद में लैटिन के मध्य प्रान्त में यही 'discours' ने 'discourse' का रूप ले लिया जो कि वर्तमान में उसी रूप में प्रचलित है।

"'डिस्कोर्स' के लिए फ़ादर कामिल बुल्के ने अपने 'अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश' में...हिंदी समानार्थी शब्द दिए हैं :- भाषण, प्रवचन, प्रबंध, निबंध आदि। इन संज्ञाओं के क्रिया पद हैं- भाषण देना, बोलना। धार्मिक प्रवचन के लिए अंग्रेजी में 'डिस्कोर्स' शब्द चलता है। अंग्रेजी में यह धार्मिक प्रवचन, भाषण के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है और आज भी होता है।"हिंदी में भी 'विमर्श' शब्द का बहुत प्रचलन होने लगा है। इसको लोकप्रिय बनाने का श्रेय प्रोफेसर सुधीश पचौरी को है। क्रिस बार्कर ने विमर्श को इस प्रकार परिभाषित किया है -'विमर्श, ज्ञान की वस्तुओं का बोधगम्य तरीके से परिकल्पना करते हैं, संरचना करते हैं, निर्माण करते हैं, साथ ही तर्क के अन्य तरीकों को बोधगम्य बनाते हैं।'साहित्य में विमर्श की परम्परा कई शताब्दी पूर्व से चली आ रही है। पर नए विमर्शों ने मनुष्य की गरिमा, सामाजिक सम्मान और समता मूलक

न्याय को प्राथमिकता दी है। अब विमर्शों का केंद्र मनुष्य केन्द्रित चिंतन से जुड़ गया है जो अवसरों की समानता, प्रतिभा की बात करता है और चली आ रही पुरानी मानसिकता को तोड़ लोगों की सोच में परिवर्तन चाहता है। समाज-व्यवस्था में सुधार की अपेक्षा करता है,समाज में चली आ रही दोहरे मानदंड की कलई खोलता है और लोगों के लिये एक ऐसा समाज बनाना चाहता है जिसमें कोई भेद भाव नहीं हो। मुख्य रूप से नए विमर्श नस्ल, जातीय, धार्मिक, लैंगिक जैसे किसी भी प्रकार के भेद भाव का प्रतिरोध करता है।

बोध प्रश्न –

- 'डिस्कोर्स' इस शब्द का विकास कब हुआ ?

'अल्पसंख्यक-विमर्श' एक नया विमर्श है, जो अल्पसंख्यक वर्ग की ज्वलंत समस्या को लेकर उभरता है। जब भी अल्पसंख्यक की उपेक्षा की जाती है चाहे उसका आधार कुछ भी क्यों न हो तब अपनी अस्मिता और अस्तित्व को लेकर खड़ा हुआ विमर्श ही अल्पसंख्यक-विमर्श है। पश्चिम में इस विमर्श की शुरुआत **स्पेन** से होती है और धीरे-धीरे पूरे विश्व में स्थापित हो जाती है।कार्ल-मार्क्स ने 'जेविश-क्वेश्चन'(1844) को अल्पसंख्यक-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में सर्वप्रथम सिद्धांत रूप में उठाया था। उसका विकास पश्चिम में भिन्न-भिन्न विचारकों ने किया था। जैसे – **गीलेसदेलयूज़े** और **फेलिक्सगुअत्तरी।** भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ 'अल्पसंख्यक' शब्द का परिचय हुआ। उत्तराधुनिक समाज में अस्मिता की तलाश के दौरान अल्पसंख्यक-विमर्श को भी गति मिलना प्रारंभ हुआ। इस तरह समकालीन विमर्शों की होड़ में अल्पसंख्यक-विमर्श भी अल्पसंख्यक मुद्दों को लेकर उपस्थित हुआ।जैसे-

- असुरक्षा की भावना
- पहचान का संकट
- संस्कृति के विलय का डर
- भाषा का प्रश्न
- मीडिया में अल्पसंख्यक
- तुष्टिकरण की सच्चाई

निष्कर्षतः अल्पसंख्यक को जानने,समझने, और परिभाषित करने की प्रक्रिया का नाम 'अल्पसंख्यक-विमर्श' है। अल्पसंख्यक हैं कौन ? उनका सम्बन्ध किस देश-प्रदेश से है? उनकी भाषा-बोली क्या है? देश के साथ उनके धर्म, मजहब का क्या ताल्लुक है? उनके आचार-विचार, तीज-त्यौहार क्या होते हैं? खुद अल्पसंख्यक लेखक, कलाकार, चिन्तक अल्पसंख्यकों के बारे में क्या सोचते हैं? गैर-अल्पसंख्यक रचनाकार की अल्पसंख्यक के प्रति दृष्टि क्या है? उनके केंद्र में कौन-कौन से मुद्दे हैं ? इन सबको परिभाषित करता है- 'अल्पसंख्यक-विमर्श'।

बोध प्रश्न –

- अल्पसंख्यक – विमर्श को परिभाषित कीजिए.

अ) **हिंदी में अल्पसंख्यक वैचारिकी का विकास :**

हिंदी साहित्य में ‘अल्पसंख्यक-वर्ग’ की भी एक वैचारिक भूमिका अवश्य है। पर ‘अल्पसंख्यक’ वैचारिकी का कैसे और किस तरह विकास हुआ ? यह एक बहुत उलझा हुआ प्रश्न है, यह समस्या हमारे सामने तब उभरती है जब ‘अल्पसंख्यक’ वर्ग का चुनाव कर उसकी परंपरा या वैचारिकी के विकास को तलाशना होता है। क्योंकि कुछ ‘अल्पसंख्यक’ वर्ग जैसे - जैन, बौद्ध, सिख हैं, जो कभी बहुसंख्यक हिन्दू -वर्ग का हिस्सा हुआ करते थे, वे अभी उनसे अलग हो चुके हैं और उन्हें भी अब ‘अल्पसंख्यक-वर्ग’ का दर्जा दिया जाता है। बहरहाल जो भी हो आदि काल से ही ‘अल्पसंख्यक’ वर्ग के साहित्य का प्रस्थान बिंदु देखने को मिलता है चाहे वह बौद्ध-साहित्य हो, जैन-साहित्य हो, सिख-साहित्य या मुस्लिम-साहित्य। हिंदी साहित्य के इतिहास में भी ‘अल्पसंख्यक- विमर्श’ की शुरुआत हो चुकी है। अगर ‘अल्पसंख्यक’ की वैचारिक परंपरा की नींव तलाश की जाएगी तो यह परंपरा आदि काल से सरहपा, शबरपा,गोरखनाथ, शालिभद्र सूरी,अमीर ख़ुसरो; भक्ति काल में कबीर, मलिकमुहम्मदजायसी,रहीम, गुरु गोविन्द सिंह तथाआधुनिककाल में बदीउज्जमा, राही मासूम रज़ा से होते हुए नासिरा शर्मा, अनवर सुहैल तक फैली हुई है। ‘वागर्थ’ पत्रिका के अंक में समीक्षक भारत भारद्वाज लिखते हैं –“प्रसिद्ध चित्रकार लियोनार्दो दा विंची की रहस्यमयी कृति मोनालिजा की तरह आज भी अमीर ख़ुसरो की ये पंक्तियाँ –‘गौरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केश,चल ख़ुसरो घर आपने,रैन भई चहुँ देश’ का पाठ और व्याख्या आलोचकों को उलझाती है। इसी तरह जायसी की ‘पद्मावत’ न केवल हिंदी साहित्य की एक अनमोल विरासत है बल्कि बहुमूल्य धरोहर भी...कबीर को हम कैसे भूल सकते हैं! वे तो लोकमानस में गहरे पैठे हुए हैं, उसी तरह रहीम भी।” प्रो. गोपाल राय आधुनिक काल में राधाकृष्ण दास के उपन्यास ‘निस्सहाय हिन्दू’ से मुस्लिम समाज का साहित्य में प्रवेश को स्वीकार करते हैं। प्रेमचन्द भी ‘प्रेमाश्रम’ और ‘रंगभूमि’ आदि उपन्यासों में हिन्दू-मुसलमान संबंधों पर बात करते हैं। यदि आधुनिक अल्पसंख्यक लेखकों पर गौर करें तो सबसे पहले बदिउज्जमा के उपन्यास ‘एक चूहे की मौत’ और ‘सभापर्व’ आते हैं। उसी कड़ी का हिस्सा रहे राही मासूम रजा जो‘आधा गाँव’ उपन्यास मेंएक तरफ देश की विभाजन की त्रासदी को व्यक्त करते हैं तो दूसरी तरफ उस आधे गाँव के नंगे यथार्थ को भी प्रस्तुत करते हैं, जो हिन्दू-मुसलमानों में बंटा हुआ है। इसीपरंपरा को आगे चल कर –शानी, अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, मंजूर एहतेशाम, इसराइल, नईम, जाबिर हुसैन, आबिद सुरती, हसन् जमाल, हबीब कैफी, आलम शाह, नासिरा शर्मा, मेहरून्निसा परवेज, अनवर सुहैल जैसे अल्पसंख्यक रचनाकार बढ़ाते हुए नजर आते हैं। अतः देखा जाये तो आधुनिक काल में एक बड़ा फ़लक मिल रहा है मुस्लिम रचनाकार को जो कि ‘अल्पसंख्यक’ समुदाय का सबसे ज्यादा पीड़ित वर्ग है। ‘अल्पसंख्यक’ वर्ग के और भी समुदाय हैं जो कि मुस्लिम ‘अल्पसंख्यक’ की तरह जर्जरित अवस्था

में नहीं हैं, कहने का तात्पर्य अन्य अल्पसंख्यक वर्ग मुस्लिम अल्पसंख्यक की तरह सामाजिक दंश तो झेल रहे हैं किन्तु आर्थिक और शैक्षिक तौर पर मुस्लिम अल्पसंख्यक वर्ग की तरह पिछड़े हुए नहीं हैं। कहना न होगा कि इसविमर्श की पहल तो मुस्लिम रचनाकारों ने की है किन्तुधीरे-धीरे 'अल्पसंख्यक' वर्ग के अन्य रचनाकार भी इस विमर्श को आगे बढ़ाने में सहयोग कर रहे हैं। अतः कुछ समय बाद जरूर 'अल्पसंख्यक' वर्ग का एक मुकम्मल चित्र हमारे सामने उपस्थित होगा।

बोध प्रश्न –

16 अल्पसंख्यक वर्ग किसे कहा जाए और क्यों ?

आ)**हिंदी में अल्पसंख्यक-विमर्श के रचनाकार**

राही मासूम रज़ा, बदिउज्जमाँ, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंजूर ऐहतशाम, असगर वजाहत, नासिरा शर्मा और मेहरुन्निसा परवेज आदि बहुत बड़े अल्पसंख्यक रचनाकार हैं, जिन्होंने मुस्लिम परिवेश को आधार बना कर लिखा है। जैसे-राही मासूम रज़ा ने विभाजन के पश्चात की त्रासदी, सांप्रदायिक दंगे, मुस्लिम-संस्कृति और हिन्दू-मुस्लिम केसंबंधों को आधार बनाकर साहित्य-लेखन किया है। बदि उज्जमाँ भी देश-विभाजन को गलत बताते हैं। उनका मानना है कि-पाकिस्तान का बनना न बनना कोई महत्त्व नहीं रखता। अंग्रेजों की कुटिल राजनीति का पर्दाफ़ाश करते हुए विभाजन के मूल में अंग्रेजों की भूमिका को स्वीकारते हैं (छाको की वापसी, सभा पर्व)।अब्दुल बिस्मिल्लाह ने हिन्दुस्तान-पाकिस्तान युद्ध, इंदिरा गाँधी के समय में कांग्रेस का विभाजन, बांग्लादेश का उदय, नक्सलवाद आदि को अपने लेखन का आधार बनाया है। मंजूर एहतेशाम ने साहित्य में हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर सुलझी हुई प्रगतिशील दृष्टि से विचार किया है। धार्मिक कट्टरता, पाकिस्तान का प्रश्न, अंग्रेजों की कुटिल राजनीति और उनके चलते हिन्दू-मुसलमानों में बढ़ती दूरी, समाज के पिछड़ेपन के कारणों को देश-विभाजन के मूल मेंमाना है। असग़र वजाहत नेमुस्लिम समाज के अपने अन्तर्विरोध और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को केंद्र में रख कर अपनी रचनाएँ की हैं। नासिरा शर्मा ने ईरान की कथा, मध्यवर्गीय मुस्लिम शिक्षित स्त्री का संघर्ष, विभाजन की त्रासदी, धर्म और सम्प्रदाय की राजनीति को आधार बनाया है। मेहरुन्निसा परवेज का केन्द्रीय विषय मध्यवर्गीय नारी-जीवन की त्रासदी है। वे प्रेम, विवाह, तलाक़, अवैध सम्बन्ध, परित्यक्ता नारी का अकेलापन, नारी जीवन की विवशता का मार्मिक चित्र साहित्य में उपस्थित करती हैं।

बोध प्रश्न –

17 अल्पसंख्यक – विमर्श के रचनाकारों के नाम बताइए.

15.4 पाठ सार

समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्शों ने परंपरागत सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के सामने अनेक मुश्किलें खड़ी कर दी हैं। इन विमर्शों ने पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था, वर्णाश्रम और जाति आधारित समाज व्यवस्था, राज्य और केंद्र की नीतियों के प्रति खुला प्रतिरोध दर्ज किया है। नागरिक या मानवीय गरिमा को साहित्य और समाज का प्राथमिक-विमर्श बनाया है।

बहुसंख्यक धर्म की राजनीति के खिलाफ अल्पसंख्यक के मानवाधिकारों को केन्द्रीय बहस का मुद्दा बनाया है। समकालीन विमर्शों ने मानवाधिकार के औचित्य को साहित्य में समादृत कर दिया है। साहित्य, समसामयिक और समकालीन जीवन मूल्यों के साथ आगे बढ़ रहा है।

15.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं –

1. 20 वीं शताब्दी के अंतिम दशक में दुनिया भर के सामजिक राजनैतिक और आर्थिक आन्दोलनों के संपर्क में आने के कारण हिंदी साहित्य में नए विमर्श की शुरुआत हुई।
2. ये नए विमर्श बड़ी सीमा तक उत्तर आधुनिक चिंतन की देन है। जिसमें एक केंद्रीय सत्ता की सर्वोपरिता का खंडित होना तथा हाशिए पर स्थित समुदायों का केंद्र की ओर बढ़ना शामिल है।
3. भारतीय समाज में लंबे समय से स्त्री, दलित, आदिवासी और अपसंख्यक समुदाय हाशिए पर रहे हैं। इसलिए इस काल में मुख्य रूप से स्त्री विमर्श, दलित विमर्श आदिवासी विमर्श और अल्पसंख्यक विमर्श का आभार देखा जा सकता है।

15.6 शब्द संपदा

1. **सेक्स/लिंग और जेंडर :**सेक्स यह व्याकरण का एक शब्द है, जो संज्ञा को वर्गीकृत करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है, जैसे- महिला, पुरुषया हिजड़ा (Neuter)। अंग्रेजी भाषा के अनुसार, लिंग सामान्य रूप से संज्ञाओं में, जैविक लिंग के अंतर को उल्लेखित करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जैसे- आदमी और औरत। लिंग से अभिप्राय एक ऐसी विविध और जटिल प्रक्रिया से है जिसमें प्रजनन क्षमता, शारीरिक श्रम और सांस्कृतिक कार्यों के आधार पर महिलाओं और पुरुषों में भेदभाव, 'यौन डिवीज़न' किया जाता है। स्त्रियाँ निम्न स्थिति में हैं और पुरुष नहीं हैं। लिंग सांस्कृतिक रूप से परिभाषित होते हैं और सामाजिक रूप से निर्मित होते हैं। जबकि सेक्स प्राकृतिक होते हैं, जैविक होते हैं और उन्हें बदला नहीं जा सकता, जबकि लिंग से जुड़ी पहचान को समाज, कबीला और राज्य, बदल सकते हैं। लिंग एक सामाजिक श्रेणी है जिसमें लिंग को जैविक शरीर के ऊपर थोपा गया है। जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और जैविक शरीर को लिंग और कामुकता की राजनीति में उभरते हुए देखा जा सकता है। ब्राडली हेरियर के अनुसार- जेंडर से तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है जिसमें महिलाओं और पुरुषों की विविध और जटिल व्यवस्थाओं, जिसमें लिंगों के प्रजनन कार्य, श्रम पर आधारित अंतर और सांस्कृतिक यौन अंतर को संदर्भित किया जाता है।
2. **पितृसत्ता:** जब किसी समाज की संरचना में सत्ता का केंद्र पुरुषों की प्रस्थिति (status) होती है, तबइस स्थिति को हम पितृसत्ता कहते हैं।
3. **जाति:** भारतीय समाज व्यवस्था का वास्तविक यथार्थ और क्रूर चेहरा।
4. **वर्ग:** आर्थिकआधार पर समाज को समझने काआधुनिक आधार।

5. **मूलनिवासी:** प्राचीनता के ज्ञात सिद्धांत के आधार पर किसी स्थान, देश के प्रारम्भिक/पहले बसने वाले जन समुदाय।

6. **अल्पसंख्यक :** जनसंख्या, भाषायी और धार्मिक आधार से जुड़ी हुई अवधारणा।

15.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1.स्त्री विमर्श क्या है इसकी पृष्ठभूमि पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालें। ?

2.दलित विमर्श को परिभाषित करते हुए दलित साहित्य पर प्रकाश डालें।

3.आत्मकथा से आपका अभिप्राय क्या है ? आत्मकथा की भूमिका को विस्तार पूर्वक बताइए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1.आदिवासी' शब्द की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए आदिवासी विमर्श की संकल्पना सौदाहरण स्पष्ट कीजिए।

2.'अल्पसंख्यक' शब्द की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए अल्पसंख्यक-विमर्श की साहित्यिक रचनाओं पर प्रकाश डालें।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1.'सिमोन द बोउआ' कब प्रकाशित हुआ ? ( )

(अ) 1949 (आ) 1950 (इ) 1951 (ई) 1952

1 'मित्रो मरजानी' किसकी कृति है ? ( )

(आ) प्रभा खेतान (आ) मैत्रीय पुष्पा

(इ)नासिरा शर्मा (ई)गद्य काव्य

2 'एक कहानी यह भी' किसकी कृति हैं ? ( )

(अ) मन्नू भंडारी (आ)शिवानी

(इ) कृष्णा सोबती (ई) मृदृला गर्ग

4. 'हादसे' किसकी आत्मकथा है ? ( )

(अ) रमणिका गुप्ता (आ) कृष्णा अग्निहोत्री

(इ) प्रभा खेतान (ई) मन्नू भंडारी

5. 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' किसकी की पंक्ति है ? ( )

(इ) महादेवी वर्मा (आ) उषा प्रियवंदा

(इ) ममता कालिया (ई) राजी सेठ

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. 'मायानंद बलिदान' नाटक जुलाई__________में प्रकाशित हुई।

2.'अपना देश' एकांकी नाटक __________की है।

3.'अछूत का बेटा' __________में प्रकाशित हुई।

3 आदिवासी शब्द अंग्रेजी के __________शब्द का हिंदी अनुवाद है

4 जंगल के गीत उपन्यास __________की रचना है।

III सुमेल कीजिए।

1.	अछूतों का पैगम्बर	(अ) 1998
2.	दिग्विजयी रावण	(आ) 1954
3.	वीरों की ललकार	(इ) 1946
4.	अछूतों का बिगुल	(ई) 1985
5.	भीम सागर	(उ) 1952

15.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास : सुमन राजे,
2. इतिहास में स्त्री : सुमन राजे,
3. स्त्री अध्ययन की बुनियाद : प्रमीला केपी,
4. 'द सेकेंड सेक्स' सिमोन द बोउआ (इस पुस्तक का प्रभा खेतान द्वारा हिंदी अनुवाद 'स्त्री-उपेक्षिता' नाम से हुआ है)
5. दलित साहित्य का स्वरुप: विकास और प्रवृत्तियां-डॉ. गुणशेखर
6. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली-डॉ. अमरनाथ
7. उत्तरशती के विमर्श और हाशिये का समाज- चौथीराम यादव
8. भारतीय मुसलमान (हिंदी उपन्यास के आईने में)- नामदेव
9. मसावात की जंग- अली अनवर
10. भारतीय मुसलमान (मिथक और यथार्थ)- राजकिशोर
11. आदिवासी साहित्य यात्रा- सं. रमणिका गुप्ता
12. आदिवासी कौन- रमणिका गुप्ता
13. आदिवासी दुनिया- हरिराम मीणा
14. आदिवासी उपन्यासों का समाज शास्त्र- डॉ.राठोड पुण्डलिक
15. झारखण्ड के आदिवासियों के बीच- वीरभारत तलवार

इकाई-16 समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्श- 2

रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मूल पाठ : समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्श- 2
    16.3.1 किसान-विमर्श
    16.3.2 वृध्द-विमर्श
    16.3.3 बाल-मजदूर-विमर्श
    16.3.4 प्रवासी-साहित्य के मुद्दे
    16.3.5 तृतीय लिंगी विमर्श
    16.3.6 पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी-विमर्श
16.4 पाठ सार
16.5 पाठ की उपलब्धियाँ
16.6 शब्द-संपदा
16.7 परीक्षार्थ प्रश्न
16.8 पठनीय पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

समकालीन हिंदी साहित्य का परिदृश्य बहुलतावादी स्वरों को आत्मसात् करते हुए विकसनशील है। इस दौर में भारत का सबसे बड़ा उत्पादक वर्ग किसान और उसकी किसानी वैश्विक सभ्यता की सबसे बड़ी आपदा से जूझ रहे हैं। यह वर्ग वैश्वीकरण के भंवर जाल में फंस चुका है। यह भारत का सबसे बड़ा असंगठित, सामाजिक वर्ग है। इसकी जीवन-स्थिति को लेकर रचनाकारों का संवेदनशील मन रचनात्मक रूप में अभिव्यक्त हो रहा है।इससे जुड़े हुए साहित्य की इस पाठ में समीक्षा है।

समकालीन हिंदी-जगत में 'विमर्श' लोकप्रिय शब्द है। अवस्था-विशेष को लेकर हिंदी में प्रारंभिक दो स्वर महत्त्वपूर्ण हुए हैं। एक, बाल-जीवन के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण से रचनाकारों का लेखन सामने आ रहा है, दूसरा बुजुर्गों के प्रति भारतीय समाज में आये अचानक बदलाव ने परंपरागत जीवन मूल्यों को किनारे कर दिया है। इसका मूल नई आर्थिकी और उपभोक्तावादी समाज से उत्पन्न जीवन-दृष्टि में हैं।

हिंदी भाषा और साहित्य का एक अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ भी है। इसका इतिहास लगभग 100-125 वर्षों का है। इसके प्रति दृष्टि पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध्द में विश्व हिंदी सम्मेलनों की वजह से गयी। दूसरा कारण भारत वंशियों का अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक जड़ों की पहचान और अस्मिता की तलाश से भी रहा है।प्रवासी भारतीयों के हिंदी-लेखन ने 'हिंदी में प्रवासी-साहित्यिक विमर्श' को जन्म दिया है।

मानव सभ्यता की विकास यात्रा में आरंभ में केवल दो ही लिंग थे- स्त्री और पुरूष। इसी कड़ी में तृतीय लिंग ने भी जन्म लिया। यह तो बात हुई यौनिकता के आधार पर। इसी क्रम में थर्डजेंडर को परंपरागत धार्मिक मतों ने कहीं इन्हें सामाजिक समावेशन का अधिकार दिया तो कहीं इन्हें हिक़ारत के भाव से समाज से बहिष्कृत कर दिया।इस रूप में इनके साथ जो व्यवहार सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था ने किया उसे हम जेंडर/लैंगिक अध्ययन के अंतर्गत समाहित करते हैं।मानवीय गरिमा से महरूम रखना, प्राकृतिक भेद नहीं बल्कि मानवजनित व्यवस्था की देन है। इसे बदलने के क्रम में जो संघर्षहुआ है, जोकानून बने हैं और जो साहित्य प्रकाशित रूप में इनकी अस्मिता (LGBTIQ) को अभिव्यक्त कर रहा है उसकी दस्तक हिंदी साहित्य में मौजूद है।

मानव सभ्यता विकास की ऐसी सुरंग में चली गयी है जहाँ से प्रकाश की कोईलौ दिखाई नहीं देती है। आज धरती और इस ब्रह्माण्ड का वातावरण बदला हुआ है। इसके कारणों में पर्यावरण को हानिपहुँचानाप्रमुखहैं जिसके कारण पारिस्थितिकी बदल रही है। इसको ध्यान में रखकर हिंदी में जिन रचनाकारों की दृष्टि गयी, उनपर इस पाठ में विवेचन होगा।

16.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई को पढ़कर आप

- भारतीय अन्नदाता किसान वर्ग से संबंधित साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय परिवार व्यवस्था के भीतर बाल और वृद्ध जीवन के समक्ष आनेवाली चुनौतियों और उससे संबंधित साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी भाषा और साहित्य के प्रवासी संदर्भ को समझ सकेंगे।
- थर्ड जेंडर अथवा तृतीय लिंगी समुदाय से संबंधित हिंदी साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- पारिस्थितिकी और जीवन-प्रणालियों पर गंभीर संकट के संदर्भ में हिंदी साहित्य और पर्यावरण के अन्तः संबंध को समझ सकेंगे ।

16.3 समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्श- 2

16.3.1 किसान - विमर्श

(क) किसान: अर्थ और परिभाषा

'किसान' वह व्यक्ति है जो खेती का काम करता है। मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया के अनुसार किसान शब्द का अर्थ है-जो फसल उगाते हैं, कृषक, खेतिहर- खेती करने वाला, जो खेत और फसल में अपना योगदान देते हैं। जिनके पास स्वयं का खेत है और दूसरे कामगारों से काम करवाते हैं, किसान हैं।हिंदी विश्वकोश के अनुसार- 'किसान' हिंदी का एकवचन पुलिंग शब्द है। जिसके अन्य अर्थ हैं- कृषक, खेतिहर, नाई-वारी वगैरह के कमाने का घर। किसान से ही किसानी शब्द बना है जो हिंदी का स्त्रीलिंग शब्द है, जिसका अर्थ है कृषि-कर्म, खेती का काम।''किसान' अपने-आप में एक व्यापक अर्थ समेटे हुए है, जिसको परिभाषित करने में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के हिसाब से किसान शब्द की परिभाषा को सीमाबद्ध किया है- स्वामी

सहजानंद के दृष्टिकोण से अगर हम देखें तो-'समाजके जो स्तर और दल जितने ही गरीब और नीचे हैं उतने ही वो हमारे (किसान सभा के) करीब हैं । अर्द्ध सर्वहारा या खेत मजदूर और टूटपूंजिये खेतिहर यही दो दल हैं जिन्हें हम किसान मानते हैं।'

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्युरो (NCRB) के अनुसार- 'जो छह माह से ज्यादा किसानी करते हैं उन्हें हम किसान मानते हैं।NCRB के तहत किसानों को तीन श्रेणी में बाँटा गया है- 1. फार्मर 2. टेनेन्ट फार्मर 3. लेबर फार्मर। प्रथम श्रेणी के किसान के पास स्वयं की जमीन होती है जिस पर वह स्वयं खेती करता है। NCRB इन्हीं को मूलतः किसान मानती है। द्वितीय श्रेणी के किसान के पास स्वयं की जमीन तो नहीं होती लेकिन वह दूसरे की जमीन लेकर खेती करता है। तृतीय श्रेणी के किसान के पास भी अपनी जमीन नहीं होती है, वह खेती भी नहीं करता है बल्कि दूसरों के खेतों में मजदूरी का काम करता है। इस प्रकार से द्वितीय और तृतीय श्रेणी के किसान के पास पट्टा न होने की वजह से NCRB इन्हें किसान मानती ही नहीं जबकि यही किसान सबसे ज्यादा आत्महत्या करते हैं। महिलाओं को भी इन्हीं की श्रेणी में रखा जाता है।

बोध प्रश्न –

- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार किसान किसे कहा जाए ?

(ख)किसान-विमर्श की पाश्चत्य और भारतीय परम्परा

अर्थशास्त्र में दो शब्द है- किसान (पेजेंट) और खेतिहर (फार्मर) ये दोनों शब्द एक दूसरे के पर्याय नहीं बल्कि भिन्न हैं- किसान मानव सभ्यता के साथ तब से जुड़ा है जब से कृषि कार्य प्रारम्भ हुआ जबकि खेतिहर का उदय पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था यानि बाजार में बेचकर मुनाफ़ा कमाने की प्रवृत्ति की प्राबल्य के साथ हुआ। 'पूंजीवाद का प्रभाव सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में दिखा। औद्योगिकीकरण से विकसित नवीन आर्थिक व्यवस्था और उससे उत्पन्न सामाजिक शोषण की आलोचना सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में आरम्भ हुई थी। क्योंकि छोटे कृषकों की भूमि समृद्ध जमींदार खरीदते जा रहे थे, जिससे छोटे किसानों की दशा दयनीय होती जा रही थी। इसलिए टॉमस पेन आदि विचारकों ने यह व्यक्त करना प्रारम्भ किया कि भूमि पर समाज का अधिकार होना चाहिए। टॉमस पेन ने अपनी चर्चित पुस्तक 'राइट्स ऑफ़ मैन' (1791ई.) में भूमि के समाजीकरण, बड़ी जागीरों पर अधिकाधिक मृत्युकर तथा मजदूरों एवं उनके परिवारों को वृद्धावस्था पेंशन की माँग प्रस्तुत की। 1819 ई. में रॉबर्ट ओवन ने 'ए न्यू व्यू ऑफ़ सोसाइटी' में समाज के सभी वर्गों में सहयोग व आत्मनिर्भर समुदायों के विकास पर बल दिया। उसकी योजनाएँ पूर्णरूप से सफल तो नहीं हो सकीं परन्तु उसके लेखों व कार्य-पद्धति ने इंग्लैण्ड में समाजवाद व धर्मनिरपेक्षता की नींव अवश्य डाल दी थी।'

बोध प्रश्न –

- NCRBके तहत किसानों को किन तीन श्रेणियों में बाँटा गया है ?

'आज के भूमंडलीकरण के दौर में महान इतिहासकार हाब्सबॉम ने हाल ही में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'ग्लोबलाइजेशन डेमोक्रेसी एण्ड टेररिज्म' में बतलाया है कि 19वीं सदी तक

अधिकतर लोग किसान थे और कृषि ही अर्थव्यवस्था का आधार थी। पर अब बड़ी तेजी से कृषक वर्ग लुप्त होता जा रहा है, और कृषि महत्वहीन होती जा रही है। शहरीकरण तेजी से बढ़ रहा है। आज इंडोनेशिया में किसानों का अनुपात 67% से 44%, पाकिस्तान में 50% से कम, तुर्की में 75% से घटकर 33%, फिलिपींस में 53% से 37% और मलेशिया में 51% से 18%, चीन में पूरी जनसंख्या में किसानों का हिस्सा 1950 में 86% था। जो 2006 में 50% हो गया है । अभी भारत , बांग्लादेश, म्यांमार आदि में 60% जनसंख्या है । लेकिन औद्योगिकीकरण की त्वरित गति को देखते हुए यह स्थिति कब तक रहेगी, यह बेहद चिंतनीय है।' ('बदलती दुनिया में किसान पर निबन्ध'- रश्मि बी.-http;//www.essaysinhindi.com)

भारत में कृषक शब्द अतीत काल से प्रचलित है। 'अमरकोश' के द्वितीय कांड के नौवें सर्ग में उससे जुड़े कार्य-व्यापार का विस्तृत उल्लेख है। 'किसान' शब्द फ़ारसी और संस्कृत के मिलन का परिणाम है। अंग्रेजी का पेजेंट अपने समतुल्य फ्रेंच शब्द और लैटिन शब्द से निकला है। किसान आम तौर पर ऐसी किसी वस्तु का उत्पादन नहीं करता जिसका उपयोग वह न करे और सिर्फ बाजार में बेचे।

हमारे यहाँ राज्यशासन की नीतियों के सम्बन्ध में प्राचीन धार्मिक साहित्य में किसानों की दशा के बारे में तत्कालीन बुद्धिजीवियों, ऋषि-मुनियों ने राजा से सीधे प्रश्न किये हैं।'महाभारत' के 'लोकपाल- सभाख्यान पर्व' में देवर्षि नारद ने एक पत्रकार की तरह राजा युधिष्ठिर से एक नहीं बल्कि 108 सवाल पूछ डाले। उनमें से ये 3-4 प्रश्नों में किसानों की चिंता दिखाई देती है-

1. क्वचित् राष्ट्रे तड़ागानि पूर्णानि च वृहन्ति च।
भागशो विनिष्टानि न कृषिदेव मातृका।।

क्या राज्य के सभी हिस्सों में पानी से भरे तालाब, झील तथा पानी संरक्षण के लिए पुष्करिणी आदि बने हुए हैं ? क्या तुम्हारी प्रजा केवल आकाश वृष्टि यानि वर्षा के सहारे ही खेती तो नहीं करती है ? किसानों की बात रखते हुए नारद ने अगला सवाल किया-

2. क्वचित् भक्तं बीजम् च कर्षकस्या वसीदती।
प्रत्येकं च शतम् वृद्धया ददास्यऋण अनुग्रहम्।।

बोध प्रश्न –

- भारत में किसानों की आर्थिक स्थिति के बारे में बताइए .

क्या तुम्हारे राज्य में किसान का अन्न या बीज बर्बाद तो नहीं होता ? क्या तुम प्रत्येक किसान का ध्यान रखते हुए जरूरत पड़ने पर उसे ऐसी ऋण सुविधा उपलब्ध कराते हो, जिसे वह समय पर वापस भी कर सके।

3. क्वचित् अनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिः जनैः।
वार्तायाम् संस्थिता तात लोकोयम् सुख मेधते।।

क्या तुम्हारे राज्य में पुरुषों वार्ता, कृषि, गोपालन तथा व्यापार कार्य सही तरीके से होता है ? क्योंकि वार्ता वृत्ति ही सुख का मार्ग प्रशस्त करती है।इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे यहाँ

किसान विमर्श की शुरुआत महाभारत काल से ही दिखायी पड़ती है। परन्तु हम हमेशा से किसान-मजदूर के साहित्य को महत्त्वहीन मानते आये हैं।

(ग)हिंदी साहित्य में किसान-विमर्श

किसान कविता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए डॉ.रामाज्ञा शशिधर ने लिखा है कि-'अपने स्वायत्त एवं अधीनस्थ दोनों रूपों में किसान कविता किसान चेतना के अनुभव, उमंग, शोषण एवं स्वप्न के प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है।'डॉ. रामाज्ञा शशिधर कहते है कि-'हिंदी आलोचना कितनी यथास्थितिवादी एवं प्रभुत्व समर्थक रही है इसका पता हिंदी की काव्य प्रवृत्तियों के नामकरण से चलता है। यहाँ व्यक्तियों के नाम पर भारतेन्दुयुगीन कविता, द्विवेदीयुगीन कविता; युगीन चेतना के नाम पर मध्यकालीन, आधुनिक कालीन, छायावादी, प्रगतिवादी, नई कविता है; अकविता ही नहीं भूखी, नंगी जैसी किस्म-किस्म की कविता है, अस्मिता बोध के नाम पर स्त्री कविता, दलित कविता है; लेकिन जन प्रतिरोध की रचनात्मक अभिव्यक्ति को रूपाकार देने वाले वर्गीय बोध के नाम पर 'किसान कविता' की कोई अवधारणा नहीं है।इस बिंदु पर मार्क्सवादी आलोचना भी जड़ीभूत सौंदर्याभिरूचिकी शिकार है। जो जबान रोटी की कृतज्ञता से इनकार करती है वह रोटी पर रची गई कविता से घृणा करती है। किसान कविता की परम्परा का अध्ययन इसलिए भी लाजिमी है'।

हिंदी में किसान-विमर्श सर्वप्रथम कविता के रूप में आया। हिंदी में किसान जीवन की कविता की परम्परा पुरानी है। प्राक-औपनिवेशिक किसान जीवन की कविता का व्यवस्थित रूप कबीर में यत्र-तत्र दिखता है। सूर और तुलसी के पास भी किसान जीवन की कविता है। उस समय भी कबीर ने किसान की दशा पर चिंता व्यक्त की है जो उनकी इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है-

'अब न बसूं इहि गाउँ गोसाईं।
तेरे नेवगी खैरे सयाने हो राम।
नगर एक तहँ जीवधर महता, बस जु पंच किसान।
नैन नकटू श्रवनू रसनू इंद्री, कहया न माने हो राम।
गाउँ कु ठाकुर खेत कुनापै, काईथ खरच न पारै।
जोरि जेवरी खेत पसारे, सब मिली मोकौ मारे हो राम।
खोटो...महतो विकट बलाही, सिरकस दम का पारै।
बुरौ दीवान दादि नहिं लागै, इक बाँधै इक मारै,हो राम।'

बोध प्रश्न –

- हिंदी में किसान विमर्श सर्वप्रथम किस विधा में आया ?

‘आरम्भिक आधुनिकता’ के सामन्ती ढांचे में किसानों का शोषण होता था। इसका प्रमाण सिर्फ कबीर की किसान कविता में ही नहीं बल्कि ठीक वैसी ही शब्दावली में ब्रज के महत्त्वपूर्ण कवि सूरदास के यहाँ भी उपलब्ध है-

‘अधिकारी जम लेखा माँगै,तातैं हौं अधीनौं,
घर मै गय नहिं भजन तिहारौ, जौन दिय मै छूटौं।
धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौं।
अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही ।
लागै धरम बतावै अधरम , बाकी सब रही।
सोई करौ जु बसतै रहियै, अपनी धरियै नाऊँ।
अपने नाम की बैरख बांधौ,सुबस बसौं इहिं गांऊँ।’

सूरदास ने प्रत्यक्ष और सांकेतिक दोनों रूपों में किसान शोषण की गाथा लिखी है। सूरदास प्राक-औपनिवेशिक व्यवस्था में सूदखोरी की संरचना पर प्रतीकात्मक प्रहार करते हैं-

‘सबै कूर मोसों ऋण चाहत, कहौ कहाँ तिन दीजै
बिना दियै दुख देत दयानिधि, कहौ कौन विधि कीजै’।
‘सूर मूर अक्रूर लै गयो, ब्याज निवेरत ऊधो।’

तुलसीदासकी‘कवितावली’ की इन पंक्तियों के माध्यम से तो उस समय के किसान की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का पता चलता है-

‘खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि।
वणिक को वणिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सिद्धमान सोच बस।
कहें एक एकन सो कहाँ जायीं का करी’।

बोध प्रश्न –

- किस दौर में किसानों का शोषण प्रारंभ हुआ ?

15वीं-16वीं शताब्दी में हमारे यहां सामंतों का बोलबाला था।जिसमें किसान बनिया और नौकर-चाकर सभी तबाह थे क्योंकि इनके शोषण की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी।इसके बाद रीतिकाल में कवि राजाश्रित हो गये जिसके कारण उनके काव्यों में किसान जीवन अभिव्यक्त नहीं हो सका।रीतिकालीन कवियों में नगर संस्कृति व राज दरबार की संस्कृतियों की अभिव्यक्ति प्रचुर संख्या में मिलती हैं।लगभग इसी समय घाघ और भड्डरी नाम के दो कवि हुए।जिन्हें कृषि पंडित एवं व्यवहारिक पुरुष के नाम से जाना जाता है।रामनरेश त्रिपाठी ने ‘घाघ और भड्डरी’(हिन्दुस्तानी अकेडमी 1931)शीर्षक नाम से अत्यंत महत्त्वपूर्ण संकलन तैयार किया।बड़े गर्व की बात है कि उस समय खेती को उत्तम व्यवसाय माना गया लेकिन वही खेती जिसमेंकिसान भूमि को स्वयं जोतता हो। उस समय व्यापार को मध्यम व्यवसाय तथा नौकरी को तो निकृष्ट कोटि का व्यवसाय माना जाता था। जो घाघ की कविता में अभिव्यक्त है कि-

‘उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान।’

घाघ ने इस समस्या को उसी समय इंगित कर दिया जो प्रेमचन्द से लेकर संजीव तक के किसानों के लिए मृत्यु का कारण बनीं।वह है ऋण की समस्या।घाघ ने लिखा है कि –

'खेती करै बनिज को धावै, ऐसा डूबे थाह न पावै।'

आज जब पर्यावरण और खेत दोनों पर संकट मडराया है तो हमारे कृषि वैज्ञानिक चिल्ला रहे हैं कि जैविक खेती करो। घाघ, डाक, भड्डुरी जैसे किसान कवि इन वैज्ञानिकों और यहाँ तक की साहित्यकारों के लिए भी कभी उपयोगी नहीं लगे। शायद इसी लिए उन्हें हिंदी साहित्य से निकाल कर बाहर फेंक दिया गया। आज उनकी हर एक पंक्ति प्रासंगिक लग रही है जैसे-

'खाद पड़े तो खेत, नहींतो कूड़ा रेत।'

'गोबर राखी पाती सडै,फिर खेती में दाना पडै।'

'सन के डंठल खेत छिटावै,तिनते लाभ चौगुनो पावै।'

'गोबर, मैला, नीम की खली, या से खेती दुनी फली।'

तो क्या इन सबसे भी कभी पर्यावरण को नुकसान पहुँच सकता है? व खेत अनुर्वर हो सकते हैं? पानी में विषैले तत्व मिलने की सम्भावना बन सकती है ? खेत की मेड़ बंदी को घाघ महत्त्वपूर्ण मानते हैं इसी लिए तो वह कहते हैं कि-

'सौ की जोत पचासै जोते,उंच के बांधे बारी।
जो पचास का सौ न तुले ,देव घाघ को गारी।।'

इस प्रकार फसल के बोने का उचित समय,बीज की मात्रा,बुवाई का तरीका, मौसम का पूर्वानुमान आदि की जानकारी इनकी कविताओं से मिलती है।जो उस समय के अनपढ़ किसानों के जबान पर रहती थीं।एक प्रकार से माने तो चलते-फिरते कृषि विश्वविद्यालय थे ये कवि।

बोध प्रश्न –

- कृषि वैज्ञानिको की क्या राय है खेती को लेकर ?

आधुनिक काल में राजनीतिक प्रगति के समानांतर साहित्यिक प्रगति की दिशा भी जनतान्त्रिक होती जा रही थी।आधुनिक हिंदी साहित्य के सर्वाधिक सम्मानित लेखक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किसान जीवन पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'सम्पत्तिशास्त्र'(1908) लिखी।अनुवाद समझकर लोगों ने इस पुस्तक की उपेक्षा की।इस पुस्तक में द्विवेदी जी ने एक अर्थशास्त्री की भूमिका में उन्नत भारत का ब्लू प्रिंट तैयार करते हैं।उस समय से अगर इस पुस्तक के आधार पर नीतियाँ निर्मित और क्रियान्वित की जाती तो भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप आज कुछ और होता। प्रो.मैनेजर पाण्डेय ने 'सम्पत्तिशास्त्र' के 2009 वाले संस्करण की प्रस्तावना में लिखा है कि- 'सम्पत्तिशास्त्र के लेखक के मन में सबसे अधिक आक्रोश और बेचैनी भारत के किसानों की तबाही और कृषि की बर्बादी को लेकर है। इसलिए पुस्तक में सबसे अधिक चर्चा कृषि और किसान जीवन की समस्याओं की है। आज भी जिसे यह जानना हो कि अंग्रेजों ने किस तरह अपनी कुटिल

औरनिर्मम नीतियों से भारतीय किसानों का शोषण और दमन करते हुए उन्हें अकाल और भुखमरी के रास्ते मौत के मुँहमें ढकेला, उसे सम्पत्तिशास्त्र जरुर पढ़ना चाहिए'। उस समय मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती'(1912) में हिंदुस्तान के कृषि और किसानों की हालात पर विस्तार से लिखा। फिर उन्होंने 'किसान'(1917) नामक काव्य लिखा। वैसे गुप्त जी उस समय अकेले ऐसे कवि थे जोकि उपेक्षितों को साहित्य में लाने का काम किये। यह उनकी महानता का प्रतीक है। सियारामशरण गुप्त का 'अनाथ' और गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' का 'कृषक क्रंदन'(1916)भी इसी समय लिखा गया। इन कवियों की कविताओं में भी 'उद्धार' भावना की ही प्रमुखता है।

आधुनिक हिंदी गद्य के विकास के साथ लोकतान्त्रिक अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम महाकाव्यों का स्थान उपन्यास ने ले लिया। राजघरानों के चरित्रों व पात्रों का स्थान उपेक्षित और वंचित मजदूर, किसान व स्त्रियों ने ले लिया। 'भारतीय उपन्यास का स्वतंत्र रूप तब विकसित हुआ जब उपन्यास रचना के केंद्र में भारतीय किसान जीवन आया। तभी वह यथार्थवाद विकसित हुआ जो राष्ट्रीय जागरण का अभिन्न अंग था। किसान जीवन से जुड़कर ही उपन्यास की सच्ची भारतीयता विकसित हुई और उपन्यास राष्ट्रीय जीवन की महा गाथा का प्रतिनिधि साहित्य कारूप बना। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किसान भारतीय समाज का मेरुदंड पहले भी था और आज भी है। उस समय भारतीय किसान एक ओर साम्राज्यवादी शोषण का शिकार था और दूसरी ओर सामन्ती लूट का।यही कारण है कि उपन्यास में जब किसान जीवन आया तो भारतीय उपन्यास राष्ट्रीय भावना और चेतना का अभिव्यंजक बना। भारतीय उपन्यास में किसान आया तो अपने साथ वह अपनी संस्कृति, भाषा और कथन भंगिमाएं भी लेकर आया। जिससे उपन्यास का नया यथार्थवादी रूप निखरा। तभी भारतीय उपन्यास जनजीवन के इतिहास का आख्यान बना'।

बोध प्रश्न –

- आधुनिक हिंदी साहित्य के सम्मानित लेखक ने किसान जीवन पर किस महत्वपूर्ण पुस्क की रचना की ?

(घ)किसान आन्दोलन और साहित्य

'1857 से पूर्व 1855-56 में पूर्वी हिंदी क्षेत्र के संथाल आदिवासी किसानों ने सुसंगठित, रणनीतिक, सशस्त्र और व्यापक किसान आन्दोलन किया। यह 1857 की तरह साम्राज्य मुक्ति का आन्दोलन न होकर जमीदारों और महाजनों से भी मुक्ति का सामन्तवाद विरोधी आन्दोलन था। तीस से पचास हजार विद्रोहियों में से पन्द्रह से पचीस हजार तक को कत्ल कर दिया गया। जुलाई-अगस्त के चिर स्मरणीय दिनों में राज महल की पहाड़ियाँ खून से नहलाई गयीं।राजस्थान में मेवाड़ के भीलों का आन्दोलन 1881 के आस पास हुआ।19 वीं सदी में डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा में गोविन्द गिरी के नेतृत्व में भील किसानों का आन्दोलन हुआ'।

तेलंगाना में कोमाराम भीम के नेतृत्व में चलने वाला आन्दोलन भी ऐसा ही था पर संगठन, शिक्षा, संचार व आधुनिक शस्त्रों के अभाव में ये आन्दोलन बहुत दिनों तक नहीं चल पाए।ब्रिटिश और अन्य स्थानीय सरकारों ने इन्हें कुचल डाला।आज हमें उन आदिवासी नायकों की वीरता को दाद तो देनी ही पड़ेगी। महात्मा गाँधी को भी अंततः कहना पड़ा कि- 'हमें केवल किसान ही मुक्ति दिला सकते हैं।वकीलों,डाक्टरों या धनी जमींदारों के बूते की बात नहीं है'। (महात्मा गाँधी के भाषण का अंश bhu-1916) इस पूरे परिदृश्य को प्रेमचंद ने बखूबी समझा।जिसकी परिणति उन्होंने 'प्रेमाश्रम' के रूप में दी।'प्रेमाश्रम तक प्रेमचन्द की निगाह में किसानों के असली शत्रु जमींदार थे।उस समय किसानों की लड़ाई सामन्तवाद से थी न कि साम्राज्यवाद से।जबकि इसके मूल में साम्राज्यवाद ही था, जिस पर प्रेमचंद की निगाह उस समय तक नहीं पहुँच पा रही थी।इस दौर तक गाँधी और स्वाधीनता आन्दोलन का प्रभाव प्रेमचन्द की रचनादृष्टि पर नहीं पड़ रहा था'।

बोध प्रश्न –

- किसान आन्दोलन से आप क्या समझते हैं ?
- किसान आन्दोलन की शुरुआत कब हुई ?

एक तरह से देखें तो 1917 से 1936 का समय काफी आंदोलित रहा है।1917 में चम्पारण सत्याग्रह, अवध में 'रूरे किसान सभा' की स्थापना, रूस में वोलशेविक क्रांति तथा 1918 में यू.पी.किसान सभा का गठन, किसान लोक जागरण के लिए 'विद्या प्रचारिणी सभा'- विजौलिया का गठन।1929 में 'बिहार किसान सभा' का गठन तथा स्वामी सहजानंद के नेतृत्व में पुनः1936 में 'अखिल भरतीय किसान कांग्रेस' की स्थापना लखनऊ में की गयी।स्वामी सहजानंद उसके प्रथम अध्यक्ष बने।1936 में उत्तर-प्रदेश किसान संघ का गठन पुरुषोत्तमदास टंडन के नेतृत्व में किया गया।यही 1917 से 1936 का समय उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द का समय भी रहा है।प्रत्येक आन्दोलन उनके लेखन का प्रेरणास्त्रोत रहा है।'प्रेमाश्रम' के बाद प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' में पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों के खतरे को पहचाना और किसानों को सचेत किया।'प्रेमाश्रम में किसान और जमींदार का सम्बन्ध मुख्य है जबकि 'रंगभूमि' में देहात और शहर का सम्बन्ध मुख्य है।शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान है।उसके बाहर की भूमि उनके मनोरंजन और विनोद की जगह है।जहाँ न्याय के बहाने गरीबों का गला घोंटा जाता है।शहर के आस-पास गरीबों की बस्तियां होती है, बनारस में पांडेयपुर ऐसी ही बस्ती है'। प्रेमचंद के 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' उपन्यासोंमें किसान जीवन का सन्दर्भ उत्तरोत्तर प्रमुख होता गया।

नागार्जुन ने 1952 में 'बलचनमा' के माध्यम से एक परिश्रमी एवं ईमानदार किसान को अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ दिखाकर किसान जीवन पर लिखे जाने वाले उपन्यासों के गतिरोध को तोड़ा। फणीश्वरनाथ रेणु ने इस परम्परा को आगे बढ़ाने का काम 1954 में 'मैला आंचल' के माध्यम से किया।1968 में 'रागदरबारी' तथा 1991 से 1997 के बीच 'पाहीघर', 'बेदखल', 'डूब' और 'पार' ऐसे ही छिट-पुट उपन्यास हैं जो किसान जीवन की कहानी कहते हैं।प्रेमचन्द की परम्परा के वाहक संजीव 'फ़ांस' (2015) उपन्यास लेकर आते हैं। पंकज सुबीर का उपन्यास 'अकाल में उत्सव'(2016) किसानों के शोषण का नया शोक नामा है।

बोध प्रश्न –

- किसान आन्दोलन पर आधारित प्रमुख साहित्यिक रचनाओं के बारे में बताइए .

16.3.2 वृद्ध-विमर्श

(अ) वृद्ध-विमर्श की वैचारिकी का विकास

अंग्रेजी के 'डिस्कोर्स' शब्द का हिंदी प्रतिरूप है- 'विमर्श'। क्रिस बार्कर ने इसको परिभाषित किया है- "विमर्श, ज्ञान की वस्तुओं का बोधगम्य तरीके से परिकल्पना करते हैं, संरचना करते हैं, निर्माण करते हैं, साथ तर्क के अन्य तरीकों को 'अबोधगम्य' बनाते हैं।" वृद्धों के जीवन से जुड़े हुए महत्त्वपूर्ण पहलुओं की चर्चा, विचार-विनिमय के माध्यम से वृद्धों के जीवन-संघर्ष एवं अस्तित्व पर विचार करना ही 'वृद्ध-विमर्श' है। इसे हम 'वरिष्ठ-जन'का साहित्य क्यों न कहें

वृद्धों की उपेक्षा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर का एक सामाजिक मुद्दा है। वृद्धों की उपेक्षा के अनेक कारण हैं- जिनमें पूँजीवाद की प्रवृत्ति, अर्थ का बढ़ता हुआ महत्त्व और संवेदनहीन होता मानव समाज प्रमुख है। आज के इस दौर में वृद्ध माता-पिता अपने लड़कों को बोझ-सा प्रतीत हो रहे हैं। वह उनकी देखभाल करने के लिए राजी नहीं है। इस स्वार्थ की प्रवृत्ति के कारण आज घर-घर के वृद्ध उपेक्षा की जिंदगी व्यतीत कर रहे हैं। इसी उपेक्षा को निरंतर बढ़ते देख हिंदी कथाकारों ने इस विषय को अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। अब प्रश्न है कि वृद्धावस्था की उम्र कितनी होगी? डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा ने 'मनोविज्ञान' की दृष्टि से... "65 वर्ष से वृद्धावस्था" मानी है।

इतिहास साक्षी है प्राचीन काल में वृद्धों की स्थिति अत्यंत उन्नत और सम्मानीय थी। परिवार में कोई भी फैसला उनकी सलाह एवं सुझाव के आधार पर होता था। चीन के दार्शनिक कनफ्यूशियस ने लिखा है- "घर समाज की सबसे छोटी इकाई होगी और बुज़ुर्ग की आज्ञा का पालन परिवार का हर सदस्य करेगा।"

नाटककार विलियम शेक्सपियर ने मनुष्य जीवन की सात अवस्थाओं की चर्चा की है जिनमें वृद्धावस्था भी एक है। शेक्सपियर ने वृध्दावस्था की दयनीय स्थिति के बारे में लिखा है- "जीवन का अंतिम दृश्य बड़ा विचित्र होता है। यह हमारे जीवन का ऐतिहासिक पहलू है। जिसमें

एक दूसरा बचपना भी है और भुलक्कड़पन भी, मैं दंतविहीन, नेत्रविहीन और रूचिविहीन, मेरा जीवन अब कुछ भी नहीं, मानो सब कुछ खतम।”

लेकिन आज के दौर में वृद्ध एवं युवा-पीढ़ी का तालमेल नहीं बैठ पा रहा है। वैश्विक-समाज का बहुलांश ऐसा है जहाँ वृद्धों को आर्थिक-तंगी और भावनात्मक सुरक्षा के अभाव का सामना करना पड़ रहा है। सिमोन द बोउवार का कथन है- “समाज में जब तक व्यक्ति का योगदान रहा, तब तक वह समाज का अभिन्न अंग बना रहा और जैसे ही बूढ़ा हो गया वह समाज से कट गया और केवल एक ‘वस्तु’ बनकर रह गया; ऐसी वस्तु जिसका न कोई मोल है, न किसी काम का है और न ही कुछ पैदा कर सकने योग्य।”

परंपरागत भारतीय उपजीव्य ग्रंथों‘रामायण’ और ‘महाभारत’ में वृध्द-विमर्श के सूत्र देखे जा सकते हैं। राम का अपने पिता की आज्ञा मानना और उनके वचन की रक्षा करना जहाँ सुखात्मक जीवन को जन्म देता है वहीं कौरवों का अपने बुजुर्गों का निरादर करना ‘महाभारत’ को जन्म देता है। यह विमर्श पीढ़ियों के अन्तराल और सोच से उत्पन्न हुआ है। समसामयिकदौर में इन दोनों पीढ़ियों के मध्य खाई अत्यधिक गहरी हुई है।

(आ)कविता

हिंदी कविता में वृध्द-विमर्श का सन्दर्भ हम तुलसीदासके यहाँ देख सकते हैं। तुलसी को असाध्य रोग होने और वृध्दावस्था के कारण असीम पीड़ा का बोध हुआ था। तुलसी के दौर के कवि केशवदास भी वृद्धावस्था के आने पर भयभीत नज़र आते हैं। आधुनिकहिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण कवि सूर्यकांत त्रिपाठी‘निराला’नेतो इस अवस्था पर एक कविता ही लिख दी है-

मैं अकेला; देखता हूँ,
आ रही मेरे दिवस की सांध्य बेला।
पके आधे बाल मेरे, हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मंद होती आ रही, हट रहा मेला।
जानता हूँ, नदी-झरने जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख, कोई नहीं भेला।

बोध प्रश्न –

- विलियम शेक्सपियर ने मनुष्य जीवन में वृद्धावस्था के दयनीय स्थिति पर क्या कहा है ?

(इ) उपन्यास

हिंदी में ममता कालिया का **‘दौड़’**उपन्यास इस समस्या के बढ़ते हुए दंश को भारतीय समाज व्यवस्था के क्रम में रेखांकित करता है। नई पीढ़ी पैकेज के कारण अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के अवसरों को भुनाने के लिए लालायित है तो घर में बुजुर्ग माँ-बाप अकेलेपनके दंश को झेलने के लिए विवश है। यह नयी दौड़ है जिसमें आर्थिकी सर्वाधिक भूमिका निभा रही है। इसके लिए कहीं-न-कहीं समाज की वर्तमान सोच और परिवार की व्यवस्था इसके लिए जिम्मेदार है। इसी कड़ी में ‘**जिंदगी ईमेल**’,‘**रेहन पर रग्घू**’ और‘**पासवर्ड**’उपन्यासों को देखा जा सकता है। नयी तकनीकी के प्रभाव के कारण जिन्दगी में मुलाकात स्काईप पर हो रही है। इस व्यवस्था के साथ पुरानी पीढ़ीअपने को सहज नहीं पाती है।

बोध प्रश्न –

- 'रेहन पर रग्घू किसकी रचना है ?

(ई)कहानी

हिंदी कहानी में वृद्ध-जीवन पर संवेदनशीलता और दायित्वबोध के साथ प्रेमचंद ने सर्वप्रथम लिखा है। इन्होंने वृध्द-जीवन की त्रासद स्थिति को कहानी का विषय बनाया है। उनकी वृध्द-जीवन पर आधारित प्रतिनिधि कहानी है-'बूढ़ी काकी'। 'बूढ़ी काकी' कहानी वृद्ध-विमर्श की कहानी है। इस कहानी ने तत्कालीन समाज और पाठक वर्ग का ध्यान अपनी ओर खींचा। बूढ़ी काकी शुरूआत में आर्थिक रूप से संपन्न होती है। वह अपने भतीजे बुद्धिराम के नाम सारी संपत्ति कर देती है। उसके बाद उस घर में उसकी उपेक्षा और अवहेलना शुरू हो जाती है। वह विवश है लेकिन कुछ नहीं कर पाती। यह कैसी जीवन की सामाजिक-आर्थिक विसंगति है कि बूढ़ी काकी को बूढ़ापे में लोगों की जूठन से पेट भरना पड़ रहा है! प्रेमचंद ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि वृद्धों की बात पर कोई गौर नहीं करता, लोग यह समझकर छोड़ देते हैं कि अमुक व्यक्ति अनावश्यक बक-बक कररहा है। जब बूढ़ी काकी अपना दुखड़ा लोगों के सामने रखती है तो बुध्दिराम तथा रूपा का विचार है कि वह चटोरी और नये-नये व्यंजनों की लालची है।

जिसके धन से वे लोग अपने बेटे का धूम-धाम से तिलक करते हैं वही काकी जब अपने भोजन की तलाश में जाती है तब रूपा किस तरह से भरी सभा में उसे कोसती है। यह प्रसंग अत्यंत मर्मस्पर्शी है- "ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाए ऐसी जीभ।" प्रेमचंद ने समाज की उस सोच को दिखाया है कि लोग, बड़े-बुज़ुर्गों का अपमान भी करें और बात समाज में उजागर भी न हो।

बोध प्रश्न –

- वृद्धा विमर्श पर आधारित दो कहानियों के बारे में बताइए .

भीष्म साहनी ने यह दिखाया है कि बदलते हुए परिदृश्य में इस भौतिकवाद ने रिश्तों को तार-तार कर दिया है। एक बेटे को माँ से अधिक अमीर व्यक्ति महत्त्वपूर्ण लगता है। कहानीकार ने मध्यवर्गीय शिक्षित व्यक्ति जो युक्ति-युक्त तरीकों से वृद्धों का अपमान करता है, उसकी कलई खोली है। उस कहानी में कुल मिलाकर चार पात्र होते हैं। बूढ़ी-माँ, शामनाथ, रूपा और चीफ़। अतिथि के स्वागत में बूढ़ी-माँ कहीं अपमान का कारण न हो जाए इसको लेकर पति-पत्नी दोनों चिंतित हैं। शामनाथ कहता है- "माँ, आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटों की आवाज़ दूर तक जाती है।" यह कैसी विसंगति है कि वह माँ जो एक बेटे को रोते हुए नहीं देखना चाहती थी, हमेशा अपने बच्चे के दर्द को अपना दर्द समझकर उन्हें दूर करने का प्रयास करती थी पर आज बेटे को माँ का खर्राटा भी सहनीय नहीं है। माँ कहती है- "क्या करूँ, बेटा मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी से उठी हूँ, नाक से साँस नहीं ले सकती।"

जब शामनाथ अपनी माँ को चूड़ी पहनने के लिए आदेश देता है तो माँ कहती है- "चूड़ियाँ कहाँ से लाऊँ बेटा, तुम तो जानते हो, सब जेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गये।" यह सुनते ही बेटा आग बबूला हो गया, माँ पर धौंस जमाते हुए कहता है- "यह कौन-सा राग छेड़ दिया माँ! सीधा कह दो, नहीं है जेवर, बस। इससे पढ़ाई-वढ़ाई का क्या ताल्लुक है?" तालुक तो बहुत है इसी के कारण वह बेटा चीफ को दावत देने योग्य बना।

कथाकार दो स्थितियों की ओर इशारा करता है- एक, उन लोगों पर जो अपने अभिभावकों का अपमान करके वृद्धाश्रम जाने के लिए मजबूर कर देते हैं। दूसरी स्थिति, बेटे उनका अपमान तो करते हैं लेकिन यह भी चाहते हैं कि समाज में उनकी बदनामी न हो। समाज के लोग उन्हें यह कहे कि अमुक व्यक्ति अपने माता-पिता की भरपूर सेवा करता है। शामनाथ की माँ जब इस घर से ऊबकर बेटे से हरिद्वार भेजने की विनती करती है। तब शामनाथ जरा ठिठक कर कहता है- "तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो, माँ! तुम जान-बूझकर हरिद्वार जा बैठना चाहती हो, ताकि दुनिया कहे कि बेटा माँ को अपने पास नहीं रख सकता!"

कथाकार उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी में भी वृद्ध-जीवन की स्थिति का वर्णन किया गया है। 'वापसी' कहानी में उन्होंने यह दिखाया है कि किस तरह एक पिता सरकारी नौकरी के बाद अपने परिवार के तमाम लोगों को सभी सुख-सुविधाओं से संपन्न करता है, पर वही पिता जब सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त होने पर घर आता है तो परिवार में अपने को अजनबी महसूस करने लगता है। पूरे परिवार के लोग उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार करते हैं जैसे वह व्यक्ति उन लोगों का कुछ है ही नहीं! "गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है। उसी प्रकार बैठक में कुरसियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गयी थी।"

पिता गजाधर बाबू उन सबके साथ उसी तरह आनंद से जीना चाहते थे जैसे वे लोग हर्षोल्लास के साथ घर में रहते थे। बाबू, घर में प्रवेश करने पर नरेंद्र से पूछता है तो वह बड़े अनमने ढंग से उत्तर देता है- "कुछ नहीं बाबूजी!" यह कैसी विडंबना है कि गजाधर बाबू के आने से पूर्व उस घर में चहल कदमी हो रही थी पर उनके आने के बाद सन्नाटा छा जाता है। क्या उस पिता का गुनाह है जो अपने घर में आया है? वह तो अपनों के साथ रहने आया है। यहाँ तो उसे सबका सत्कार मिलना चाहिए। लेकिन सबके-सब अपमान करने पर आमदा थे। उनके साथ इस तरह का बर्ताव देख कर ह्रदय द्रवित हो जाता है- "अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है।... पत्नी की कोठरी में झाँका तो अचार, रजाइयों और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पायी।" कथाकार इस विडंबना को दिखाता है कि पूरे परिवार के लोग उन्हें मजबूर कर देते हैं कि वे अपने आप इस घर को छोड़कर चले जाये। उनकी पत्नी भी उनका विरोध करती है- "बूढ़े आदमी हैं,... चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं?"

हिंदी में वृध्द-जीवन पर आधारित प्रधान कहानियाँ हैं- 'दादी-अम्मा'(कृष्णा सोबती), 'उसका आकाश'(राजी सेठ), 'बुढ़वा मंगल'(रवीन्द्र कालिया), 'अपना रास्ता लो बाबा!'

(काशीनाथ सिंह), 'पिता'(ज्ञानरंजन), 'बेंच पर बूढ़े'(मृदुला गर्ग), 'छप्पन तोले का करधन'(उदय प्रकाश), 'उलटबाँसी'(कविता) 'फोटो का सच'(तरुण भटनागर), 'पेंशन'(राधेश्याम)।हिंदी कहानी में वृद्ध-विमर्श की दशा और दिशा की सभी संभावनाएँ व्यक्त हो रही हैं। भौतिक प्रगति ने वृध्दाश्रमों को जन्म दिया है और इससे सामाजिक ताना-बाना छिन्न-भिन्न हुआ है।

बोध प्रश्न –

- वापसी कहानी में किस वृद्ध पात्र के बारे में बताया गया ?

16.3.3 बाल-मजदूर-विमर्श

बाल-साहित्य: ऐतिहासिक-परिप्रेक्ष्य

हरिकृष्ण देवसरे के अनुसार- 'बाल-साहित्य बच्चों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह तथ्य मनोवैज्ञानिक रूप से 'पंचतंत्र' युग से स्वीकार किया गया है'।सन् 1873 मेंतत्कालीन लोकप्रिय बाल साहित्यकार मेरी मेम्सडॉज ने अंग्रेजी कीपहली बाल पत्रिका का अंक निकाला जिसका नाम 'सेंट निकोलस मैगज़ीन फॉर ब्वायज एंड गर्ल्स' रखा। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा कि- 'हर युग के बच्चों के लिए' साहित्यलिखा जाना चाहिए।

भारतीय साहित्य में बांग्ला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम में सर्वप्रथम बाल-साहित्य लिखा गया। प्रेमचंद ने अनेक बाल कहानियां लिखी हैं उनमें 'ईदगाह' सबसे महत्त्वपूर्ण है।हिंदी में माखनलाल चतुर्वेदी और सोहनलाल द्विवेदी ने बच्चों को युग के अनुरूप बनाने और समसामयिक वातावरण से परिचित कराने के उद्देश्य से बाल गीत लिखे। बच्चों को विज्ञान के क्षेत्र में विकसित करने के उद्देश्य से 'डॉ. गोरखप्रसाद, चन्द्रमौलि शुक्ल' ने वैज्ञानिक लेखन लिखा। सन् 1960 के बाद हिंदी में बाल साहित्य को अभिव्यक्ति देने के लिए 'धर्मयुग', 'पराग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' की विशेष भूमिका रही है। बच्चों के जीवन में आ रहे बदलाव को प्रभाकर माचवे ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

'अब के बच्चे बड़े सयाने/गाते हैं टी.वी. के गाने/उन्हें न भाते दूध-बतासे/ चॉकलेट के बिना रुआँसे/अब न खेलते कोई कंचे/ उन्हें चाहिए सिर्फ़ तमंचे/ नहींकबड्डी अथवा कुश्ती/ लिखना पढ़ना? आती सुस्ती/ अब बूझो 'क्विज' तो हम मानें/ अब के बच्चे कितना जानें ?/ अब के बच्चे नहीं हैं भोले/ अब के बच्चे जगत टटोलें/ कंधे पर बिस्तर और झोले/ साइकिल से गिरि-वन में डोलें'।

अब के बच्चों को परिकथाएँ और लोक कथाएं पसंद है। इसी क्रम में 'हैरी पॉटर', 'सिंड्रेला', 'स्नोह्वाइट' जैसी रचनाएँ लोकप्रिय हो रही है। अब बच्चों को बाल पुस्तकों की आवश्यकता हो गयी है और इसका एक बड़ा बाजार है। हरिकृष्ण देवसरे ने 'भारतीय बाल साहित्य' नाम से चौबीस भाषाओं में बाल कहानियों का एक संकलन निकाला है।हिंदी में मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' उपन्यास लिखकर इस दिशा में सार्थक हस्तक्षेप किया है।'बाल भारती' पत्रिका बच्चों के लिए बाल साहित्य प्रकाशित कर रही है।

बोध प्रश्न –

- बाल-श्रम क्यों और किस वजह से बढ़ रहा है ?

हिंदी साहित्य में बाल-श्रम का सन्दर्भ

- क्या साहित्य सच्चे अर्थों में समाज का दर्पण है?
- कई विमर्शों के चलते बाल-विमर्श की आवश्यकता क्यों है?
- बाल-श्रम किसे कहेंगे?
- बच्चा किन-किन परिस्थितियों के कारण बाल-श्रमिक बनता है?

प्रतिदिन समाचार पत्रों में हमें यह समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती नज़र आ रही है, और आश्चर्य की बात यह है कि संसार में सबसे अधिक बाल श्रमिक भारत में ही हैं।बालश्रम से यहाँ तात्पर्य बच्चों द्वारा किया गया श्रम या मजदूरी से नहीं है। बच्चों द्वारा किया गया काम लाभदायक भी हो सकता है और इससे बच्चों की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक शिक्षा या सामाजिक विकास की वृद्धि भी हो सकती है अगर वह बच्चों की शिक्षा, मनोरंजन और आराम में हस्तक्षेप न करता हो।स्कूल के बाद खाली समय में घरवालों को घरेलू कामों में, व्यापार में सहायता करना निश्चय ही बच्चों के विकास के लिए एक अच्छा संकेत है । जब ऐसे काम सच में सामाजिकीकरण तरीके का एक हिस्सा हो और माँ-बाप द्वारा अपने गुण बच्चों तक पहुँचाने का साधन हो तब यह बालश्रम नहीं है।अब देखना यह है कि इस भयावह नागरिक समस्या ने हमारे साहित्य पर किस तरह अपना प्रभाव डाला है। पिछले 30-35 वर्षों में हिंदी में बहुत सारा साहित्य बालश्रम समस्या को आधार बनाकर लिखाजा रहा है।साहित्य का काम केवल सूचना प्रदान करना नहीं होता। ये छोटे-छोटे मासूम बच्चे जो गरीब, भूख, अशिक्षा के शिकार हैं, ये केवल संख्या नहीं हो सकते, वे हांड़-मांस के जीवित शरीर हैं। उनके भीतर भी स्पंदन होता है। उनका भी एक छूट गया संसार है।सामाजिक समस्याओं को अलग-अलग साहित्यकार, अलग-अलग तरीकों से अपनी रचना में चित्रित करता है।

मेहनत-मजदूरी में लगे हुए इन बच्चों की करूणा, मार्मिक दशा, विडंबना और उनकी सामाजिक स्थिति का वर्णन हिंदी साहित्य में देखने को मिलता है। काम करते हुए बच्चे हमारे चारों ओर हैं, फिर भी वे प्रायः हमें दिखाई नहीं पड़ते हैं या फिर हम इनको देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। व्यक्त जीवन में हम इनके बारे में सोचकर अपना समय व्यर्थ नहीं करना चाहते हैं।

बच्चों द्वारा किया जानेवाला श्रम किसे कहेंगे? इसकी निश्चित और सटीक परिभाषा अभी तक नहीं दी गई है। विश्व श्रम संगठन के विशेषज्ञों की अपनी-अपनी व्याख्याएँ हैं । लेकिन एक साहित्यकार के लिए ये सब बातें बेमतलब हैं। 12 वर्ष से अधिक उम्र के मेहनत-मजदूर करनेवाले बच्चे को आप बाल-श्रमिक कहें या नहीं इस पर बहुत बहसें हो सकती हैं । लेकिन रचनाकार रेलवे-प्लेटफार्म पर कुलीगिरी करते हुए, कचरा बीनते हुए, अखबार बेचते हुए,

पकौड़े तलते हुए, गलीचे-दरियां बुनते हुए, भीख माँगते हुए बच्चों के पास जाकर उनसे उनके उम्र का प्रमाणपत्र नहीं माँगता। बल्कि वह हमेशा सोचता है कि एक तरफ बच्चों के पास इतनी भोजन की सामग्री है कि वे मोटापे की महामारी झेल रहे हैं तो दूसरी तरफ ये बाल मजदूर हैं जिन्हें दो जून की रोटी जुटाने के लिए हाड़-तोड़ मेहनत करनी पड़तीहै।

अंतर्राष्ट्रीय बालश्रम कानून से संबंधित अध्ययन बताते हैं कि बच्चों के काम के घंटे निर्धारित नहीं है। उनसे बड़ों की तुलना में देर तक काम लिया जाता है और बड़ों की तुलना में कम वेतन दिया जाता है । इन बच्चों के कंधों पर परिवार का बोझ होता है, उन्हें परिवार के आजीविका के लिए धन कमाना होता है, परिवार पूरी तरह उन पर आश्रित होता है, इसलिए ये बच्चे खतरनाक परिस्थिति जैसे पटाखे बनाने वाली फैक्ट्री, पीतल उद्योग, काँच की चूड़ियाँ बनाने वाली फैक्ट्री में काम करने से हिचकते नहीं हैं। मालिक इन बच्चों का बहुत शोषण करते हैं क्योंकि ये बच्चे अपने हक के लिए लड़ भी नहीं सकते क्योंकि उन्हें अपने परिवार का गुजारा करना होता है।

बच्चों की इस असहाय स्थिति को साहित्यकार अनुभव करता है और संवेदनशील होने के नाते अपनी रचना के माध्यम से लोगों के दिलों में इन बच्चों के प्रति सचेतनता लाने की कोशिश करता है।साहित्यकार बहुत सहज सरल शब्दों के प्रयोग से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त बड़ी सरलता से कर देते हैं। एक आम पाठक भी इनका मर्म समझ पाते हैं, साहित्यकार ऐसा इसलिए करता है क्योंकिवह आम जनता तक अपना संदेश पहुँचाना चाहता है, और साहित्य के माध्यम से समाज की इन विसंगत स्थितियों को दिखाना चाहता है।मजदूरी करनेवाले बच्चों की विवशता, उसकी दिनचर्या, उनकी थकान, बीमारी, स्वप्न, अकेलापन, छोटी-छोटी खुशियाँ, अपमान पीछे छूट गए दिन और आगे आनेवाले दिनों की कल्पना इन सब चीजों का उल्लेख रचनाकार अपनी रचना में करता है।साहित्यकार इस करूण स्थिति को चित्रित करना चाहता है जो समाज में हम सबके सामने घटित होता है। मगर हम उसे देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। लेकिन एक साहित्यकार देखता है कि बच्चों की आँखों में बचपन की मासूमियत नहीं है, उसकी जगह भूख, डर, थकान ने ले ली है।

बोध प्रश्न –

- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बालश्रम करवाना एक कानूनी जुर्म क्यों है ? स्पष्ट कीजिए।

परवीर शाकिर की कविता 'एक मुश्किल सवाल' होटलों में काम करने वाले उन बाल मजदूरों पर आधारित है जिनके चेहरों और आँखों से अभी बचपन का भोलापन और मासूमियत गई भी नहीं है, मगर पैसे वाले घरों में न पैदा होने के कारण उन्हें होटलों में बर्तन माँजकरऔर जूठन उठाकर परिवार का बोझ अपने कंधों पर उठाना पड़ रहा है। जिन कंधों पर स्कूल के बस्ते होने चाहिए थे उन कोमल कंधों पर परिवार का बोझ उठाना पड़ रहा है। जिन हाथों में कलम

होनी चाहिए थी, गरीबी से विवश होकर आज बच्चों के उन हाथों में तरकारी काटते रहने की लकीरें हैं और उन लकीरों में बर्तन माँजने की राख जमीं हुई है।शाकिर जी समाज से यह प्रश्न करती हैं कि यह कैसी विडम्बना है कि इन छोटे-छोटे बच्चों को काम करना पड़ रहा है जिसके फलस्वरूप बचपन में ही ये बच्चे बड़े होते जा रहे हैं। बूढ़ों की तरह इनके कंधे वजनदार सामान उठाने के कारण आगे की तरफ झुके हुए हैं और पौष्टिक आहार न मिल पाने के कारण इनमें प्रतिरोधक क्षमता का अभाव होने के कारण ये बहुत जल्द बीमारी का शिकार हो जाते हैं।बाल श्रमिकों की स्थिति को इस तरह से कविता में लाने के तरीके से थोड़ा भिन्न ढंग हिंदी के चर्चित कवि राजेश जोशी का है । कवि का इरादा केवल एक मार्मिक दृश्य की रचना करना नहीं है, उससे आगे जाकर हमारे देखने की आदत की मीमांसा करना है। राजेश जोशी की बहुचर्चित कविता- 'बच्चे काम पर जा रहे हैं, कोहरे से ढंकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं, सुबह-सुबह,'। कवि पहली पंक्ति में ही जैसे चित्र खींचता है पाठक के सामने कि सुबह का समय है और आप अभी ठीक से जगे भी नहीं हैं, और आप देखते हैं कोहरे से ढंकी सड़क पर काम पर जाते हुए बच्चों को, ये मैले-कुचले बच्चे जो अपना बस्ता उठाए जा रहे हैं, पहली नज़र में स्कूल जाते बच्चों की तरह ही दिखते हैं लेकिन ये स्कूल जाते बच्चे नहीं हैं।कवि इस सवाल के आगे दुनिया की बड़ी से बड़ी घटना को भी स्थगित कर देना चाहते हैं- 'आखिर बच्चे काम पर क्यों जा रहे हैं?' यह प्रश्न कवि की भावुक मनः स्थिति के साथ-साथ अबोधता को अभिव्यक्त करता है।जोशी जी कोरी संवदेनहीनता और हमारी स्वार्थपरता को धिक्कारते हैं कि देखो आप अपने घरों में तो चैन की नींद सो रहे हैं लेकिन जिसे आप देश का भविष्य कहते हैं वो पढ़ने जाने की बजाय काम पर जा रहे हैं।

और यदि यह सचमुच भयानक स्थिति है तो इस दुनिया के सारे काम इतनी सहजता से कैसे चले आ रहे हैं? क्यों कोई विद्रोह नहीं हो रहा है? आज तक किसी ने क्यों प्रतिवाद नहीं किया है? कौन प्रतिवाद करे इस व्यवस्था का? क्योंकि आज जो भी व्यवस्था में हैं, इनमें से आधे लोग ऐसे हैं जिनके घरों में 7-8 साल का एक घरेलू नौकर काम कर रहा है।

बालश्रम की विवरणी प्रस्तुत करना यानि बालश्रम क्या है?कितने प्रतिशत बच्चे बाल श्रमिक हैं, ये सब बताना बहुत आसान है मगर आज हमें इस सवाल का उत्तर ढूँढ़ना चाहिए कि बच्चे आखिर क्यों काम पर जा रहे हैं? क्या सरकार की सारी नीतियाँ-आँगनवाड़ी कार्यक्रम और सर्वशिक्षा अभियान ये सब बच्चों को उनका मौलिक अधिकार यानि शिक्षा उपलब्ध कराने में असफल साबित हो रही हैं? क्या सरकार द्वारा प्रबंध किए गए खाना, किताबें, स्कूली-वस्त्र, साईकिलइन गरीब बच्चों को आकर्षित करके उनको 8वीं तक की शिक्षा प्रदान कराने में असफलसाबित हो रहे हैं? क्या कोई सरकारी और गैर-सरकारी कार्यक्रम इन काम करते बच्चों

को उनका बचपन लौटाने में सक्षम नहीं है?तो फिर बचा ही क्या इस दुनिया में क्योंकि जो बच्चे कल के भविष्य हैं, आज उन पर किसी का ध्यान नहीं जा रहा सब अपना विकास करना चाहते हैं, बच्चों का विकास हो रहा है या नहीं इस पर किसी का भी ध्यान नहीं है।

अशिक्षा के कारण और गरीबी की मार से लोग अपने छोटे-छोटे बच्चों से काम करवाने से भी हिचकते नहीं हैं। ये गरीब माँ-बाप यह सोचकर अपने नन्हें-मुन्नों को काम पर भेज देते हैं कि पढ़-लिखकर बच्चा आखिर क्या करेगा? काम पर जाएगा तो दो-चार पैसे कमाएगा और परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने में माँ-बाप का सहयोग करेगा।बच्चा भी स्वयं यह सोचने लगता है कि पढ़ाई-लिखाई से अच्छा है, उन तीन-चार घंटों में अगर वह काम करता है तो रात में अच्छा भोजन कर सकता है।

गरीब होने पर भी हर माँ-बाप की तरह गरीब माँ-बाप के कुछ सपने होते हैं कि उनका बच्चा पढ़ लिखकर बड़ा आदमी बने, अच्छी नौकरी करे और उनके बुढ़ापे का सहारा बने मगर दो वक्त की रोटी उन्हें विवश कर देती है, अपने बच्चे को काम पर भेजने के लिए, पेट की भूख और कर्ज उन्हें विवश कर देताहै और अशिक्षा उन्हें अंधा कर देती है। इसी बात का उल्लेख इब्बार रब्बी ने अपनी कविता 'आठ साल का वह' में किया है। रब्बी कहते हैं कि पान सिंह नामक एक आठ साल का बच्चा जो साफ बोल भी नहीं सकता है उसको अपनी माँ ने दिल्ली भेज दिया पैसे कमाने के लिए ताकि पैसों से उसकी माँ घर चला सके।कवि ने यहाँ माँ का उल्लेख इसलिए किया है क्योंकि एक माँ के लिए उसका बच्चा बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। मगर इधर पान सिंह की माँ आठ साल के पान सिंह को दिल्ली भेज रही है जहाँ न उसके रहने का पता है और न खाने का ठिकाना। बस माँ को यह खबर है कि जाते ही मनीऑर्डर करेगा पान सिंह। गरीबी के कटु प्रहार ने एक माँ के हृदय को भी कठोर बना दिया है, इसलिए उसने अपने जिगर के टुकड़े को अपनी आँखों से दूर दिल्ली भेज दिया है, जहाँ रहने, खाने-पीने की खबर लेने वाला कोई नहीं है।

उदारीकरण आ गया और इसका सबसे सशक्त और सबल उदाहरण है हमारी तकनीकी और मीडिया में अद्‌भुत विकास मगर ये सोचने वाली बात हे कि क्या इनके विकास से बाल श्रमिकों की स्थिति पर कोई प्रभाव पड़ा है?मीडिया केंद्रित है कुछ खास तबके के लोगों तक। मीडिया केवल सेलीब्रेटी के बच्चों की बात करता है। टेलीविजन के विज्ञापनों में केवल उन्हीं बच्चों को दर्शाया जाता है जो सुंदर हैं, हृष्ट-पुष्ट हैं, उन बच्चों को नहीं दिखाया जाता जो भूखे, नंगे और चिथड़ों में लिपटे हुए दाने-दाने को तरसते हैं। सितारों के पीछे मीडिया साए की तरह लगी रहती है, देश की सच्चाई, देश का समाचार देने के बजाय ये हमें नेताओं और बड़े-बड़े सितारों की घर की बात बताती है।बाल श्रमिकों पर निश्चय ही कुछ और भी उल्लेखनीय साहित्य लिखे गए हैं, यहाँ उद्देश्य उनकी संख्या गिनाना नहीं है। इस विषय पर सामने आये कुछ साहित्य का जायजा लेते हुए हमारी दिलचस्पी उस केंद्रीय बिंदु पर एकाग्र होने की रही है, जहाँ रोज-मर्रा

की दुनिया में कुछ दिखता है और कुछ ओझल बना रहता है। कई बार तो हमें इसका आभास तक नहीं होता कि कितना कुछ ओझल बना रहता है। इतनी अधिक मात्रा में शोषण हमारे चारों तरफ मौजूद हैं किन्तु इस बात पर विश्वास करने वालों की संख्या भी अभी बहुत कम है। 'हजार साल से जलते हुए उस जंगल में/सिर्फ उम्मीद का एक पेड़ हरा है अब भी'।

बोध प्रश्न –

- बालश्रम के प्रमुख कारण क्या हो सकते हैं ?

16.3.4 प्रवासी साहित्य के मुद्दे

प्रवासी साहित्य :ऐतिहासिक-परिप्रेक्ष्य

हिंदी के प्रवासी साहित्य के संबंध में सर्व प्रथम तोताराम की सन् 1914 में'फिजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' रचना उपलब्ध हुई है। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने सन् 1914 से 1936 तक का समय प्रवासी साहित्य को अर्पित कर दिया। उनकेऔर गाँधीजी के प्रयास से सन् 1922 में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में प्रवासी विभाग का प्रस्ताव पारित हो गया। कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में जाकर प्रवासी विभाग स्थापित हो पाया। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने 'प्रवासी'शब्द की जगह 'भारतवंशी' शब्द का व्यवहार किया। उनके अनुसार हिंदी भाषा भाषियों की संख्या जिन देशों में अधिक थी उन्होंने अपने देश-प्रेम, संस्कृति-प्रेम तथा प्रवासी जीवन के तनावों को हिंदी भाषा में अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया। प्रवासियों के लिए अंग्रेजी में दो शब्दों का व्यवहार होता है- एक'इमिग्रेंट'और दूसरा 'डायस्पोरा'। इन दोनों शब्दों की जगह हिंदी में 'प्रवासी' शब्द लोक प्रचलन में आ गया है। भारत सरकार ने प्रवासियों के सम्मान और मिलन के लिए 9-11 जनवरी, 2003 को पहला 'प्रवासी भारतीय दिवस' आयोजित किया।

बोध प्रश्न –

- प्रवासी साहित्य की अवधारणा को समझाइए।

निर्मल रानी के अनुसार- 'प्रवासी साहित्य का संबंध प्रवासी लोगों द्वारा लिखे साहित्य से है। प्रश्न यह उठता है ये प्रवासी लोग कौन हैं और इनके साहित्य की विशेषता अथवा सुंदरता क्या है, इसी से जुड़ा है इस साहित्य का स्वरूप और सौंदर्यशास्त्र।आजकल साहित्य में कई विमर्श प्रचलित हैं। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श की भांति इधर प्रवासी विमर्श ने भी जगह बनाई है। प्रवासी-विमर्श की विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत रचनात्मक साहित्य अधिक लिखा गया है। इसके आलोचनात्मक पक्ष पर उतना बल नहीं दिया गया है।... प्रवासी लोगों की 3 श्रेणियां बनाई जा सकती हैं। एक श्रेणी में वे लोग हैं, जो गिरमिटिया मजदूरों के रूप में फिजी, मॉरीशस, त्रिनिडाड, गुआना, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भेजे गए थे। दूसरी श्रेणी में 80 के दशक में खाड़ी देशों में गए अशिक्षित-अर्द्धशिक्षित, कुशल अथवा अर्द्धकुशल मजदूर आते हैं।

तीसरी श्रेणी में 80-90 के दशक में गए सुशिक्षित मध्यवर्गीय लोग हैं जिन्होंने बेहतर भौतिक जीवन के लिए प्रवास किया।’

हिंदी के प्रवासी साहित्य कोमहाद्वीपों के आधार पर और हिंदी की वहाँ पर उपस्थिति को ध्यान में रखकर डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इसेतीन भागों में बाँटा है-

1. ‘भारत से गिरमिटिया मजदूर बनकर जाने वाले देशों में रचा गया हिंदी साहित्य: इन देशों में मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, गयाना, ट्रिनिडाड एंड टुबेगो आते हैं।
2. भारत के पड़ोसी देशों में भारत वंशियों द्वारा रचा गया हिंदी साहित्य: नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, श्रीलंकाएवं म्यंमार (बर्मा) आदि।
3. विश्व के अन्य महाद्वीपों के देशों में रचाहिंदी साहित्य:
   - (क) अमेरिका महाद्वीप- संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, क्यूबा।
   - (ख) यूरोप महाद्वीप- रूस, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, हॉलैंड, नीदरलैंड, आस्ट्रिया, स्विट्ज़रलैंड, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, इटली, पोलैंड, चेक, हंगरी, रोमानिया, बल्गारिया, उक्रेन तथा क्रोशिया।
   - (ग) अफ्रीका महाद्वीप- दक्षिण अफ्रीका, टी-यूनियन द्वीप।
   - (घ)एशियामहाद्वीप- चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, मंगोलिया, उजबेकिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्की, थाईलैंड।
   - (ङ) ऑस्ट्रेलिया- ऑस्ट्रेलिया।’

बोध प्रश्न –

- प्रवासी साहित्य किन-किन जगहों पर आधृत है ?

हिंदी में प्रवासी साहित्य के मुद्दे

हिंदी में प्रवासी साहित्य विशेषकर मॉरिशस, सूरीनाम, अमेरिकाऔर इंग्लैंड का विशिष्ट है। मॉरिशस के **प्रारंभिक प्रवासी साहित्य** में निम्न लिखित मुद्दे प्रधान थे-

- ‘भारत एवं भारतमाता स्मरण। (‘एक स्वर से कहो भारतमाता की जय’- ‘मॉरिशस मित्र’, 5-2-1926)
- आर्य संस्कृति का प्रचार प्रसार और उसकी स्थापना।
- धार्मिक चेतना की प्रधानता। (‘सनातन धर्म का झंडा, बजा डंका उड़ावेंगे’, सनातनधर्मार्क, 20-4-1934)
- हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुति।
- हिन्दूत्यौहारों का स्मरण।
- भारतीय जीवन-मूल्यों की स्थापना।
- हिन्दू, हिंदी, हिन्दुस्तानी का संकल्प।
- हिन्दू जाति का जागरण।
- आत्मविस्मृति को त्यागने एवं अस्तित्व रक्षा की व्याकुलता का आह्वान।

- पराधीनताकी पीड़ा और स्वाधीनता का लक्ष्य।
- मातृभूमि और राष्ट्र से प्रेम।
- राष्ट्र एवं समाज सुधार की तीव्र कामना। ('अछूतों को अपनाओ', 'मॉरिशस मित्र'-10-02-1927), ('शुद्र को नीच कहै सोइ नीच', 'सनातन धर्मार्क', 23-03-1934)
- मॉरिशस एवं भारत के लोक नायकों तथा सुधारकों का स्तुति गान। (मणिलालने मॉरिशस में लोक चेतना का कार्य किया। स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गाँधी की स्तुति की गयी है)
- सांप्रदायिक एकता, शिक्षा का महत्त्व, स्वभाषा का आग्रह, अंग्रेजी सभ्यता की कटु आलोचना (होली की ठिठोली, फैशन की फजीहत) और पीड़ित एवं निर्धन की हित कामना।
- अंग्रेजी राज-भक्ति के साथ प्रजा-भक्ति, धर्मान्तरण का विरोध और शत्रु को नष्ट करने की आकांक्षा। (दमन करना विधर्मी को, यही सबको सिखावेंगे, 'सनातन धर्मार्क'-20-04-1934)
- कृषक कल्याण कीभावना। (श्रम जीवी किसान की सेवा, ईश्वर की सेवा समतूल, 'आर्यवीर'- 10-07-1936')।

प्रारंभिकहिंदी का प्रवासी साहित्य लोक जागरण की चेतना से विकसित हो रहा था। इसमें धर्म औरधार्मिक संस्थाएं विशिष्ट भूमिका निभा रहे थे। आर्य समाज, सनातन धर्म से जुड़ी हुई संस्थाएं अतीत का गौरवगान गा रही थी, भारत के स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़कर प्रबोधन और प्रेरणा के गीत लिखे जा रहे थे। इस क्रम में धार्मिक संस्थाएं आचरण और पवित्रता के विचारों को लेकर नाटक खेल रही थीं। प्रवासीहिंदीपत्रकारिता इसमेंसक्रिय थी। 'डॉ. श्यामधर तिवारी ने मॉरिशस के साहित्य को चार कालों में विभक्त किया है-

1. प्रारंभिक काल- पूर्व प्रारंभिक काल या भाषा-संरक्षण-काल- 1834 से 1900 तक
2. उत्तर प्रारंभिक काल या प्रेरणा काल – 1900से 1935 तक
3. मध्य काल या संघर्ष काल- 1935 से 1968 तक
4. आधुनिक काल या विकास काल- 1968 से अबतक'

मॉरिशस में दो मार्च 1913 के 'हिन्दुस्तानी' पत्र में प्रकाशित 'होली' कविता तथा'सत्य होली' लेख पहली पद्य-गद्य रचनाएँ हैं।निर्मल रानी ने उचित ही लिखा है कि- 'मॉरीशस के अभिमन्यु अनत ही एक ऐसे लेखक हैं जिनको उल्लेखनीय माना जाता है। उनके उपन्यास 'लाल पसीना' ने काफी प्रशंसा पाई है। फिजी, त्रिनिडाड, अफ्रीका अथवा गुआना से कोई ऐसा लेखक चर्चित नहीं हुआ जिसको प्रवासी लेखन में ख्याति प्राप्त हुई हो।इन दो वर्गों के लेखन को ही प्रवासी साहित्य की संज्ञा दी गई है। वस्तुत:, पराए देशों में पराए होने की अनुभूति और उस अपरिचित परिवेश

में समायोजन के प्रयास, नॉस्टेल्जिया, सफलताएं और असफलताओं को ही प्रवासी साहित्य का आधार माना जा सकता है'।

बोध प्रश्न –

- प्रवासी साहित्य के मुद्दे कौन-कौन से रहें ?

हिंदी में प्रवासी साहित्य के रचनाकार और उनका साहित्य

सोमदत बखोरी, ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर', अभिमन्यु अनत, कमला प्रसाद मिश्र, डॉ. पुष्पिता, बटुक, धुरन्दर, डॉ. भूदेव शर्मा, अंजना संधीर, डॉ. सुधा ओम ढींगरा, उषा राजे सक्सेना, सुषम बेदी, पद्मेश गुप्त,गुलशन, गुदारी दत्त विनय, ओंकार नाथ श्रीवास्तव, तेजेंद्र शर्मा, जकिया जुबैरी, नीना पॉल, दिव्या माथुर, उषा वर्मा, जय वर्मा आदि रचनाकार प्रवासी जीवन के अनुभवों, दंशों और पीड़ाओं को अभिव्यक्ति दे रहे हैं। हिंदी के प्रवासी साहित्य में लेखिकाओं की भागीदारी बढ़ी है। उषाप्रियंवदा भारत से जाकर साहित्य लेखन का कार्य कर रही है। नीना पॉल ('कुछ गांव-शहर कुछ शहर-शहर'), डॉ. सुधा ओम ढींगरा ('कौन सी जमीन अपनी'), दिव्या माथुर ('शाम भर बातें') और सुषम बेदी ('चिड़िया और चील', 'हवन') इस कड़ी को आगे बढ़ा रही है।इन्होंने औपनिवेशिक अनुभव से बाहर निकलकर अपने स्वत्व को पहचाना है। अपनी सांस्कृतिक जड़ोंकी पहचान के लिएभारतका स्मरण किया है। यह यूरोप, अमेरिका या गिरमिटिया मजदूरों के जीवनानुभव का यथार्थ है। इन्होंने प्रवासी मन, उसकेस्वप्न, आकांक्षा, पीड़ा और परिवेश को अभिव्यक्ति दी है। सुषम बेदी के उपन्यास परंपरा और आधुनिकता की टकराहट से जन्म लेते हैं। अनत के उपन्यासों में गिरमिटियाओं के शोषण और दमन का चित्रण हुआ है। प्रवासी साहित्य के स्वरूप को हम चार भागों में बाँट कर देख सकते हैं-

1. सूचनात्मक साहित्य। इसके अंतर्गत भारत वंशियों से जुड़ी हुई घटनाओं को इसमें समाहित किया गया है।
2. प्रवासीलोक साहित्य का संरक्षण। इसके अंतर्गत मॉरिशस के लोक साहित्य का दस्तावेजी करण हुआ। इसको भारत की भोजपुरी, अवधी भाषा और साहित्य के साथ देखने की कोशिश की गयी।
3. प्रबोधन परक प्रवासी साहित्य- इसके अंतर्गत प्रवासी लोगों की एकता,पराधीनता से उनकी मुक्ति और संगठन बध्दता के रूप में गीत और कविता का लेखन कार्य हुआ। मॉरिशस को आजादी 12 मार्च, 1968 को प्राप्त हुई, इस सन्दर्भ में प्रबोधन परक साहित्य का विशेष महत्त्व है।
4. विविध विधाओं में सृजनात्मक साहित्य- कथा-साहित्य के अंतर्गत उपन्यास और कहानियों की रचना हुई। इस क्रम में कहानियाँ अधिक लिखी गईं।

हिंदी के प्रवासी साहित्य में इतिहास-बोध की गहरी पीड़ा को अभिमन्यु अनत ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

'जिसका अतीत नहीं/भविष्य नहीं/ उसका वर्तमान कैसे हो सकता है ?'

मॉरिशस देश का हिंदीका प्रवासी साहित्य भारतीय मजदूरों के संघर्ष से अपना नाता जोड़ता है। इतिहास द्वारा उसे भूलने के खिलाफ कवि दुखी होकर कहता है-

'वह अनजान आप्रवासी/ देश के अंधे इतिहास ने न तो उसे देखा था/ न तो गूंगे इतिहास ने/ कभी सुनाई उसकी पूरी कहानी हमें/ न ही बहरे इतिहास ने सुना था उसके चीत्कारों को/ जिसकीइस माटी पर बही थी पहली बूंद पसीने की/ जिसकेचट्टानों के बीच हरियाली उगाई थी/ नंगी पीठों पर सहकर बांसों की बौछार/ बहा-बहा कर लाल पसीना/ वह पहला गिरमिटिया इस घाटी का बेटा/ जो मेरा भी अपना था, तेरा भी अपना'। ('गुलमोहर खोल उठा'- अनत)

हिंदी के प्रवासी साहित्य को विश्व हिंदी सम्मेलनों ने भी उजागर करने में विशिष्ट भूमिका निभाई है। मॉरिशस, सूरीनाम, इंग्लैंडमें हुए विश्व हिंदी सम्मेलनों ने दुनिया का और हिंदी जगत का ध्यान आकर्षित किया है। हिंदी के प्रवासी साहित्य का महत्त्व दो बिन्दुओं में बांटकर देखा जा सकता है-

1. भाषिक आधार पर- हिंदी भाषा के विकास में प्रवासी हिंदी साहित्य का विवेचन करना आवश्यक है।
2. साहित्यिक विधाओं में नवीन प्रयोग, नयेमानदण्डों को जन्म देते हैं। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य के विकास में और साहित्य इतिहास लेखन में इसकी क्या भूमिका हो सकती है ? इस नजरिये से प्रवासी साहित्य को देखना जरूरी है। सुषम बेदी इस विचार को महत्त्व देती है। राजेंद्र यादव ने प्रवासी साहित्य के बारे में लिखा है कि- 'यह संस्कृतियों के संगम की खूबसूरत कथाओं से युक्त है'। हालांकि यह केवल सांस्कृतिक संगम नहीं है बल्कि कई विविधताओंऔर बहुलतावादी जीवन-संस्कृतियों का दहकता हुआ दस्तावेज भी है।

बोध प्रश्न –

- प्रवासी साहित्य के विषय को ध्यान में रखते हुए डॉ. श्यामधर तिवारी ने इस साहित्य को किन चार कालों में विभाजित किया ?
- हिंदी के प्रवासी साहित्य का महत्व बताइए।

16.3.5 तृतीय लिंगी विमर्श

थर्ड-जेंडर : ऐतिहासिक- परिप्रेक्ष्य

मानव समाज की विकास यात्रा में यौनिकता जोकि जैविक वास्तविकता है उसके आधार परआरंभिकदौर में स्त्री-पुरुष के आधार पर द्वि लिंगी समाज की व्यवस्था की गयी थी। परवर्ती दौर में इस क्रम में अन्य लिंगगत मानव का जन्म होने पर समाज और भाषा की व्यवस्था दो कीजगह त्रिस्तरीय हो गयी। जैसे- स्त्री लिंग और पुलिंग के साथ नपुंसक लिंग का भी समावेश हो गया। यह समाज की जेंडर गत व्यवस्था और शक्ति संरचना को ध्यान में रखकर हुआ है।

परंपरागत साहित्य में भारत और यूनान में थर्ड जेंडर को सामाजिक स्वीकार्यता प्राप्त हुई है। उसेसमाज में समाविष्ट किया गया।इस्लाम के उदय के साथ इन को हरम और राजकीय सेवा में समाविष्ट किया गया।आधुनिक काल में विशेषकर औपनिवेशिक दौर में अंग्रेजों ने इस

तबके के प्रति घोर अमानवीय कार्य किया। उन्होंने 1860, 1871 मेंबने कानूनों के आधार पर इनको सामाजिक वैधानिकता से बहिष्कृत करके अमानवीय जीवन जीने के लिए बाध्य कर दिया। भारतीयऔर पाश्चात्य मिथक शास्त्र के ज्ञाता डॉ. देवदत्त पटनायक के अनुसार- 'परंपरागतहिन्दू, बौध्द, जैन और यूनानी दर्शन में इनके प्रति प्राकृतिक और मानवीय सदाशयता के विचार थे,किन्तुयूरोप के अधिसंख्यक राष्ट्रों में इनके प्रति पूर्वाग्रह और घृणा के बीज सूत्र देखे जा सकते हैं'।

किसी भी सामाजिक वर्ग को कानूनी प्रावधान बनाकर कैसे अपराधी, जरायम पेशा सिध्द किया जाता है इसकी मिसाल है- भारतीय दंड संहिता की धारा-377।भारतके उच्चतम न्यायालय ने सितंबर, 2018 को समान नागरिकता के क्रम में इस वर्ग के लिए ऐतिहासिक फैसला सुनाया है।

इस वर्ग को उत्तराधुनिक शब्दावली में 'क्वीर' के नाम से अभिहित किया जाता है।'क्वीर' वर्ग का एक संक्षेपण इस प्रकार है- LGBTIQ (Lesbian, Gay, Bisexual, Transgender, Intersex and Queer)।क्वीर नजरिये से सत्ता, संरचना को देखना और उसका प्रत्याख्यान करना इनका अभिप्रेत है।इस वर्ग के प्रति औसतन समझ और धारणा पूर्वाग्रहों पर आधारित है। मीडिया भी 99 प्रतिशतइनके प्रति पूर्वाग्रही ही है, विशेषकर सिनेमा जगत में।इस वर्ग के प्रति बाइनरी/द्विपदी/द्वि लिंगी समाज व्यवस्था ने अनेक प्रतिबन्ध लगाये थे। जिसमें पहला प्रतिबन्ध यह था कि ये सामान्य मनुष्य नहीं हैं। इन्हें किसी भी श्रम शील काम मेंन लगाया जाय। दूसरा ये विश्वास के योग्य नहीं हैं। इनकी यौनिकता को आधार बनाकर लिंगगत भेदभाव का विस्तार किया गया। पितृसत्ता, धर्मसत्ता, राजसत्ताके साथ बहुसंख्यक समाजसत्ता ने भी इस अन्याय पूर्ण काम को अंजाम दिया था।

इस वर्ग की समस्याओं को चित्रित करने वाला साहित्य ही तृतीय पंक्ति/थर्ड जेंडर/ LGBTIQ का साहित्य कहलाता है। इस वर्ग का मानना है कि- 'Human dignity is more Important' अर्थात् 'मानवीय गरिमा से जीवन जीना' जरूरी है।

बोध प्रश्न –

- थर्ड-जेंडर से क्या अभिप्राय है ?
- तीसरे लिंग के रूप में किसे जाना जाता है ?

थर्ड जेंडर से संबंधित साहित्य

हिंदी साहित्य में 'उग्र'ने आधुनिक काल में इस वर्ग से संबंधित कहानियां लिखी थी। कमलेश्वर ने'एक सड़क सत्तावन गलियां' में इस वर्ग का चित्रण किया था। उर्दू में मंटो ने इस वर्ग को संवेदनशीलता के साथ साहित्य में दर्ज किया। सूरज बड़त्या ने'कबीरन' कहानी में हिजड़ा स्त्री (हिजड़ी) का चरित्र बहुत ही मार्मिकता से प्रस्तुत किया है।

कथाकार नीरजा माधव का 'यमदीप' (2002), महेंद्र भीष्म ने 'किन्नर कथा' (2011), 'मैं पायल', कमलादास का कथा संग्रह 'हिजड़ा', निर्मला भुराड़िया 'गुलाम मंडी' (2014) और प्रदीप सौरभ ने 'तीसरी ताली' (2014) लिखकर इस वर्ग के प्रति पाठकों और जनता की रूचि

में परिवर्तन लाने का कार्य किया है। पारस दासोत ने 'मेरी किन्नर केन्द्रित लघु कथाएं' (2013) लिखी है। नाटककार महेश दातानी ने 'सेवेन स्टेप्स राउंड द फायर' में हिजड़ों की संवेदना को बहुत ही सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है। थर्ड जेंडर को विषय बनाकर उपरोक्त रचनाकारों ने कथा-सृष्टि का विकास किया है।

इस वर्ग के स्वानुभूति संपन्न रचनकारों के लेखन कर्म ने सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया है। जिनमें आत्मकथाएं अधिक हैं। जो इस प्रकार हैं-'आई एम विद्या'- (2007),'द ट्रुथ अबाउट मी ए हिजड़ा लाइफ स्टोरी', रेवती- (2010) और 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी'- लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी प्रमुख हैं। इन रचनाओं में इस वर्ग के समक्ष आनेवाली सामाजिक औरस्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का ईमानदारी पूर्वक चित्रण हुआ है। पुलिस द्वारा प्रताड़ना इन सबका केन्द्रीय कथा प्रसंग है। मानसिक विकार से ग्रस्त सभ्य समाज इनकी दृष्टि में दोहरे चरित्रों का है। इसवर्ग का सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष भी इन रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ है। इनकी अस्मिता और पहचान को हिंदी साहित्य में इक्कीसवीं शताब्दी के शुरुआत में ही अभिव्यक्ति मिल रही है यह साहित्य और समाज के लिए शुभ संकेत है।

बोध प्रश्न –

- थर्ड जेंडर पर लिखे साहित्यिक रचनाओं के नाम बताइए।

16.3.6 पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी-विमर्श

'पर्यावरण' का शाब्दिक अर्थ है- परि+ आवरण अर्थात्जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है। इसी पर्यावरण में जीवों की जीवन प्रणाली अवस्थित है। इस जीवन प्रणाली को पर्यावरणीय विज्ञान की शब्दावली में पारिस्थिति की के नाम से जाना जाता है। आज ये दोनों शब्दावलियाँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी हैं। वर्तमान समय में पर्यावरण ज्वलंत मुद्दा है। इस मुद्दे को केंद्र में लाने का कार्य 'संयुक्त राष्ट्र संघ' के स्टॉक होम (1972) में हुए सम्मेलन को जाता है। स्वीडन ने पर्यावरण प्रदूषण के खिलाफ विश्व के नागरिकों का ध्यान खींचा। भारत में 'चिपको' आन्दोलन ने पर्यावरण के प्रति और पृथ्वी की हरियाली को बचाने के लिए नागरिकों को उन्मुख किया।

पर्यावरण के अंतर्गत प्राकृतिक संसाधन, पारितंत्र, जैव-विविधता, पर्यावरणीय प्रदूषण समाहित होते हैं। पर्यावरण का विषय-क्षेत्र अनेक विषयों का मेल है जिनमें विज्ञान और सामाजिक अध्ययन दोनों शामिल हैं। आज प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो रहा है जिसके कारण विभिन्न जीवों के अस्तित्व पर संकट छा गया है। परंपरागत प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और आज के उपभोक्तावादी समाज को संचय की प्रवृत्ति ने घेर लिया है। इसके कारण जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग और जल वायु परिवर्तन को देखा जा सकता है। ओजोन परत में छेद भी सभी जीवों के लिए खतरे की घंटी है। यह सामाजिक मुद्दा है जो संपूर्ण ब्रह्माण्ड से जुड़ा हुआ है। नभचर, थलचर और जलीय जीवों के लिए मानव के हस्तक्षेप ने संकट खड़े करदिये हैं। यह सब विकास, गति, प्रगति और आर्थिकी के कारण हो रहा है।

प्रकृति और मानव का आदिम युग से सहजात संबंध रहा है। मानव या अन्य जीवों के होने का आधारभूत कारक है- प्रकृति। प्रकृति और मानव के संबंधों को मानव सभ्यता की

विकास यात्रा में परिवर्तित होते हुए देखा गया है। पश्चिम की दृष्टि प्रकृति को जीतने की या उसपर विजय पाने की रही है। भारतीय दृष्टि इससे इतर प्रकृति के साथ सहजीवन की रही है। इसलिए हिंदी साहित्य मेंप्रकृति और मानव को केंद्र बनाकर लिखा गया महाकाव्य 'कामायनी' में कवि जयशंकर प्रसाद लिखते हैं-

'प्रकृति रही दुर्जेय, हम सब थे भूले मद में'।

अर्थात् आधुनिकता की सबसे पहले मुठभेड़ प्रकृति की सत्ता रही। इस सत्ता को कमजोर करना और मानव को सर्वोपरि बनाना इसका मकसद था। इस मकसद ने पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थिति की को बिगाड़ के रख दिया है। धरती की उर्वरता को नष्ट करके रसायनिक खादों से मनुष्य के जीवन के समक्ष अनेक संकट खड़े का दिए हैं, जैसे- स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, इसका मूल कारण कीटनाशकों का अत्यधिक प्रचलन में आना है।

कवि एकांत श्रीवास्तव 'नागकेसर का देश यह' कविता-संग्रह में छत्तीसगढ़ में पायी जाने वाली धान की किस्मों के बारे में बताते हैं और नये संकट से जागरूक भी करते हैं। उनके अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य में चावल की 350 से अधिक परंपरागत किस्में थीं लेकिन अब उनमें से नयी बाजारवादी व्यवस्था के कारण लुप्त कर दी गयी हैं। नागकेसर भी धान की ही एक किस्म थी जो अब ख़त्म हो गयी है। छत्तीसगढ़ को एक ज़माने में 'धान का कटोरा' कहा जाता था जो आज 'रेड जोन'बना हुआ है। परंपरागत बीजों की किस्में धरती को ध्यान में रखकर, उसकी मिट्टी की नमी औरउष्णता को ध्यान में रखकर सामूहिक मानव मेधा ने तैयार की थी। आज उस मेधा के परंपरागत ज्ञान को भूलकर हम मिट्टी को बंजर और ऊसर बना रहे हैं। यह मृदा प्रदूषण है जो पर्यावरण प्रदूषण का ही एक घटक तत्व है।

भारतीय साहित्य में थेरी गाथाओं में सुमंगल माता का प्रसंग महत्त्वपूर्ण है। जैसे-

'मैं आज वृक्ष-मूलों में ध्यान करती हुई/ जीवनयापन करती हूँ।/ अहो! मैं कितनी सुखी हूँ/ मैं कितने सुख से ध्यान करती हूँ !'। (सुमन राजे-हिंदी साहित्य का आधा इतिहास)

स्नेहमयी चौधरी वर्तमान विकास पर सवाल खड़े करते हुए लिखती हैं-

'धीरे-धीरे मैं/ सारी सभ्यताओं के खिलाफ होती जा रही हूँ/ सारी विकास योजनाओं और व्यवस्था के विरुध्द होती जा रही हूँ / जानती हूँ किस कदर अकेली होती जा रही हूँ'।निर्मला पुतुल प्रकृति के साथ सहजात संबंधों को महत्त्व देती है। जैसे- 'वे करती प्रेम जंगलों से, नदियों से,पहाड़ों से/ मिट्टी से, गीतों से, फसलों से/ उनके नाते रिश्ते की परिधि में आते/ गाय, बकरी, सुअर भी/ घर की परिधि से बाहर भी/ दूर क्षितिज तक फैली होती/ उनकी दुनिया/ जहाँ होता पहाड़-सा दुख पहाड़-सा धीरज!/ जंगल की सी वीरानियाँ'।

दुनिया की लगभग एक चौथाई आबादी विकास के नाम पर विस्थापन सेजूझ रही है। विकास परियोजनाओं के नाम पर पर्यावरणको सर्वाधिक क्षति पहुंचायी जा रही है इसको व्यक्त करते हुए कवि हरिराम मीणा लिखते हैं कि-

'वह कुबेर चर रहा था पहाड़ों को/ जंगलों को/ वनस्पतियों को/ जीवों को/ पी रहा था नदियों को/ झरनों को/ सरोवरों को/ झीलों को/ समुद्रों को'।हिंदी में इस विषय पर ज्ञानेंद्रपति, सुदीप

बैनर्जी, एकांत श्रीवास्तव, राजेश जोशी, विनोद कुमार शुक्ल, निर्मला पुतुल, रोज केरकेट्टा आदि ने गंभीर और सार्थक कविताएँ लिखी हैं।

बोध प्रश्न –

- पर्यावरण विमर्श से क्या अभिप्राय है ?
- पर्यावरण को बचाने के लिए मानव समाज को किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

16.4 पाठ सार

समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्शों में वैश्विक दुनिया के सामाजिक मुद्दे समाहित हो रहे हैं। हिंदी का समकालीन साहित्य जन-तांत्रिक सामाजिक कर्म है। यह कर्म, लेखन से जुड़कर विमर्श के अनेक आयामों को प्रस्तुत कर रहा है। सामाजिकता और लोकतंत्र को लेकर हिंदी के समकालीन विमर्श आगे बढ़ रहे हैं, परंपरागत वर्चस्व और स्थापित प्रभुत्व को तोड़ रहे हैं। तकनीकी के विकास ने वैश्विक मानव समाज को निकट ला दिया है। अब उसकी चेतना समग्र रूप में एकात्मक हो रही है।

16.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं –

1. 21वीं शताब्दी में भारतीय समाज राजनीति और चिंतन में जो नए विमर्श प्रकट हुए उन्होंने कई ऐसे समुदायों और मुद्दों को एकाधिक केन्द्रों के रूप में स्थापित किया जो 20वीं सदी के अंत तक या तो उपेक्षित थे या पूरी तरह अनुपस्थित।
2. इस काल के हिंदी साहित्य में जहाँ किसानों और बाल मजदूरों की व्यथा को सार्थक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई वहीँ वृद्ध विमर्श भी पूरी जोर से उभरा।
3. समकालीन हिंदी साहित्य का एक बड़ा हिस्सा प्रवासी साहित्य से आच्छादित दिखाई देता है। जिन्हें 20 वीं सदी के पूर्वाध में गिरमिटिया मजदूरों के रूप में भारत के बहार जबरन ले जाया गया था साथ ही वे प्रवासी भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्वेच्छा से विदेशों में जा कर बस गए हैं।
4. तृतीय लिंगीय विमर्श और हरित विमर्श (पर्यावरण विमर्श) ने भी समकालीन हिंदी साहित्य में अपनी सटीक उपस्थिति दर्ज कराई है।

16.6 शब्द-संपदा

1 बाल-श्रम : बाल श्रम का मालाब है जिसमें कार्य करने वाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से छोटा होता है। इस प्रथा को कई देशों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने शोषित करने वाली प्रथा माना है।

3. पारिस्थितिक स्त्रीवाद : यह एक पूर्णतः नया दर्शन है। यह महिलाओं की जैविक, सृजनात्मक और मातृ भूमिका पर आधारित है।

16.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1.किसान विमर्श की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। हिंदी साहित्य में किसान विमर्श पर विस्तृत लेख लिखिए।

2.शब्द का अर्थ बताइए। हिंदी साहित्य में किसान आंदोलन की परिपाटी को 'किसान विमर्श' विस्तारपूर्वक समझाइए।

3.वृद्ध – विमर्श को परिभाषित कीजिए। हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सौदाहरण स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1.बाल साहित्य क्या है ? बाल साहित्य की पृष्ठभूमि को संक्षिप्त में लिखिए।

2.प्रवासी साहित्य क्या है ? प्रवासी साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को संक्षिप्त रूप में स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I बहु विकल्पीय प्रश्न

1.'आई एम् विद्या' आत्मकथा का प्रकाशन कब हुआ ? ( )
(अ) 2006 (आ) 2007
(इ) 2008 (ई) 2009

2. पर्यावरण को और किस नाम से जाना जाता है ? ( )
(अ) पारिस्थितिकी (आ) प्रकृति
(इ) पारितंत्र (ई) आवरण

3. 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' कृति के रचनाकार कौन है ? ( )
(अ) लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी (आ) जयप्रकाश कर्दम
(इ) महेंद्र भीष्म (ई) जैनेन्द्र

4. 'बलचनमा' उपन्यास के केंद्र में कौन है ? ( )
(अ) मजदूर (आ) किसान
(इ) श्रमिक (ई) सामंत

5. संजीव का फांस उपन्यास कब प्रकाशित हुआ ? ( )
(अ) 2014 (आ) 2015
(इ) 2017 (ई) 2016

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1.वृद्धों को उपेक्षा स्तर का एक सामाजिक मुद्दा है।___________

2.हिंदी कविता में वृद्ध विमर्श का संदर्भ हम ___________के यहाँ देख सकते हैं।

3.'मैं अकेला : देखता हूँ' कविता ___________की है।

4. 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास ___________ने लिखा है।

5. वामसी कहानी के केन्द्रीय पात्र ___________है।

III सुमेल कीजिए।

1.	किसान विमर्श पर आधारित कृति	(अ) वापसी
2.	वृद्ध – विमर्श पर आधारित कृति	(आ) फांस
3.	बाल साहित्य पर आधारित कृति	(इ) सत्य होली
4.	प्रवासी साहित्य पर आधारित कृति	(ई) आपका बंटी
5.	थर्ड जेंडर पर आधारित कृति	(उ) यमदीप

16.8 पठनीय पुस्तकें

1. भारत में सामाजिक आन्दोलन : घनश्याम शाह
2. किसान आन्दोलन की साहित्यिक जमीन : रामाज्ञा शशिधर
3. अपनी माटी का किसान विशेषांक : अंक, 25
4. बड़े-बुज़ुर्ग कहानियाँ रिश्तों की : सं. प्रियदर्शन
5. हिंदी कहानियाँ : सं. डॉ. संजय सिंह
6. भारतीय बाल साहित्य : सं.हरिकृष्णदेवसरे
7. हिंदी का प्रवासी साहित्य : डॉ. कमल किशोर गोयनका
8. इको- फेमिनिज़्म : के. वनजा
9. बीसवीं शताब्दी में विश्व इतिहास के प्रमुख मुद्दे : सं. अनिरुध्द देशपाण्डे
10. बाल श्रमिक: स्थिति; कारण व निदान : आर. खरे
11. धूप घड़ी : राजेश जोशी

परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना

MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY
PROGRAMME: M.A –HINDI
I – SEMESTER EXAMINATION
TITLE& PAPER CODE :हिंदी साहित्य का इतिहास (MAHN103CCT)
TIME: 3 HOURS TOTAL MARKS:70

यह प्रश्न पत्र तीन भागों में विभाजित हैं- भाग -1, भाग -2 औरभाग - 3 प्रत्येक प्रश्न के उत्तर निर्धारित शब्दों में दीजिए।

भाग – 1

1. निम्नलिखित विकल्पों में सही विकल्प चुनिए। 10X1=10

i. हिंदी साहित्य की भूमिका' के लेखक कौन हैं ? ( )
(अ) रामचंद्र शुक्ल (आ) बच्चन सिंह
(इ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (ई) रामस्वरूप चतुर्वेदी

Ii. आदिकाल को चारण काल किसने कहा ? ( )
(अ) शिवसिंह सेंगर (आ) ग्रियर्सन (इ) रामचंद्र शुक्ल (ई) मिश्रबंधु

iii. आदिकाल को किसने 'भारतीय जन-भाषाओं के उदय के नाम से अभिहित किया है ? ( )
(अ) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (आ) रामचंद्र शुक्ल
(इ) डॉ. नामवर सिंह (ई) ग्रियर्सन

iv. सिद्धों की संख्या कितनी है ? ( )
(अ) 9 (आ) 12 (इ) 15 (ई) 84

v. पृथ्वीराज रासो में कितने प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है ? ( )
(अ) 45 (आ) 68 (इ) 86 (ई) 54

vi. संतों ने किस दार्शनिक चिंतन का सूत्रपात नहीं किया ? ( )
(अ) व्यापक (आ) स्वतंत्र
(इ) संकुचित (ई) अर्ध – स्वतंत्र

vii. ग्वाल कवि किस काव्य धारा के कवि है ? ( )

(अ) रीतिबद्ध (आ) रीतिमुक्त

(इ) रीति सिद्ध (ई) इनमें से कोई नहीं

viii. गोदान उपन्यास कब प्रकाशित हुआ ? ( )

(अ)1935 (आ) 1936 (इ) 1930 (ई)1934

ix. जायसी का जन्म कब हुआ ? ( )

(अ) 1490 ई. (आ) 1492 ई.

(इ) 1452 ई. (ई) 1494 ई.

x. हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचना है। ( )

(इ) हिंदी साहित्य अभ्युदय (आ) हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

(इ) हिंदी साहित्य का सबोध इतिहास (ई) हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास

भाग – 2

निम्नलिखित आठ प्रश्नों में से किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 200 शब्दों में देना आनिवार्य है। **5X6 =30**

2. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का काल विभाजन किस आधार पर किया है ? संक्षिप्त रूप से चर्चा करें।

3. सिद्ध और नाथ की चर्चा करते हुए इन दोनों के बीच अंतर को स्पष्ट कीजिए।

4. गोरखनाथ कौन थे उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए। ?

5. निर्गुण भक्ति से क्या अभिप्राय है और निर्गुण ब्रह्म के प्रति आस्था को लेकर संत कवियों ने क्या कहा है ?

6. मीरांबाई का परिचय देते हुए उनकी साहित्यिक रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

7. रीतिकाल की धार्मिक परिस्थिति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

8. आदिवासी’ शब्द की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए आदिवासी विमर्श की संकल्पना सौदाहरण स्पष्ट कीजिए।

9. प्रवासी साहित्य क्या है ? प्रवासी साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को संक्षिप्त रूप में स्पष्ट कीजिए।

भाग- 3

निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं तीन प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 500 शब्दों में देना अनिवार्य है। 3X10=30

10. साहित्येतिहास का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकी आवश्यकता तथा साहित्येतिहास लेखन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

11. आदिकालीन प्रवृतियों की चर्चा कीजिए।

12. रासो साहित्य की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

13. भक्ति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। भक्ति आंदोलन के उदय की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

14. हिंदी कहानी के विकास में नई कहानी की भूमिका और विशिष्टता पर प्रकाश डाले।

*****

महत्त्वपूर्ण बिंदु

महत्त्वपूर्ण बिंदु